

# शोध दिशा

ISSN 0975-735X

शोध अंक 13

जनवरी-मार्च 2011

100 रुपए

## संपादकीय कार्यालय

हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,  
बिजनौर 246701 (उ०प्र०)  
फोन : 01342-263232, 09368141411  
ई-मेल : giriraj3100@gmail.com  
वेब साइट : www.hindisahityaniketan.com

## क्षेत्रीय कार्यालय

दिल्ली एन०सी०आर०

अनुभूति

सी-106, शिव कला

बी 9/11, सैक्टर 62, नोएडा

फोन : 09952070700

## हरियाणा

गीतिका गोयल

ए-801, पार्क व्यू सिटी-2

सोहना रोड, गुडगाँव (हरियाणा)

फोन : 0124-4012173, 09582845000

## हरियाणा, हिमाचल एवं पंजाब

डॉ० हरिशरण वर्मा

710/35 जनता कालोनी

रोहतक (हरियाणा) 124001

फोन : 01262-248211, 09355676460

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

## संपादक

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

## प्रबंध संपादक

डॉ० मीना अग्रवाल

## संयुक्त संपादक

डॉ० शंकर क्षेम

## सह संपादक

डॉ० रश्मि त्रिवेदी

## कला संपादक

गीतिका गोयल

अनुभूति

## उपसंपादक

डॉ० अशोककुमार

## विधि परामर्शदाता

अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

## आर्थिक परामर्शदाता

ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी०ए०

## शुल्क

आजीवन : तीन हजार रुपए

वार्षिक शुल्क : चार सौ रुपए

यह प्रति : एक सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी आफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

## परामर्श-मंडल

- डॉ० आर.पी.सिंह (पूर्व कुलपति, मेरठ विश्वविद्यालय) प्राचार्य बरेली कॉलेज, बरेली (उ०प्र०)
- डॉ० अशोक चक्रधर, प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
- डॉ० हरिमोहन, प्रोफेसर हिंदी विभाग, के०एम०मुंशी हिंदी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
- डॉ० हरमहेंद्रसिंह बेदी, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर
- डॉ० रामसजन पांडेय, प्रोफेसर हिंदी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
- डॉ० आनंदप्रकाश त्रिपाठी, अध्यक्ष हिंदी अध्ययन मंडल, डॉ० हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
- डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', (पूर्व प्राचार्य) 74/3 नया नेहरूनगर, रुड़की (उत्तराखंड)
- डॉ० आदित्य प्रचंडिया, प्रोफेसर हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट (डीम्ड यूनिवर्सिटी) दयालबाग, आगरा (उ०प्र०)
- डॉ० माया टाक, प्रोफेसर संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- डॉ० संतराम वैश्य, प्रोफेसर हिंदी विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखंड)
- डॉ० अनिलकुमार जैन, प्रोफेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- डॉ० हनुमानप्रसाद शुक्ल, प्रोफेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- डॉ० बाबूराम, एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र
- डॉ० मुकेश गर्ग, रीडर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ० पद्मा पाटिल, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महा०)
- डॉ० जितेंद्र वत्स, प्रोफेसर हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)
- डॉ० दिनेशकुमार चौबे, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
- डॉ० लालबहादुर रावल, प्राचार्य, आर०एस०एम० स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धामपुर (उ०प्र०)
- डॉ० महेश दिवाकर, अध्यक्ष हिंदी विभाग, गुलाबसिंह कॉलेज, चाँदपुर (उ०प्र०)
- डॉ० शाहबुद्दीन शेख, प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा०, औरंगाबाद (महा०)
- डॉ० महेशचंद्र, रीडर हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ०प्र०)
- डॉ० हरeram पाठक, अध्यक्ष हिंदी विभाग, डिगबोई महिला महाविद्यालय, डिगबोई (तिनसुकिया) असम
- डॉ० शंभुनाथ तिवारी, रीडर हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भीलवाड़ा (राज०)
- डॉ० सुरेंद्र विक्रम, अध्यक्ष हिंदी विभाग, लखनऊ क्रिश्चियन कॉलेज, लखनऊ (उ०प्र०)
- डॉ० श्यामधर तिवारी, प्रोफेसर हिं०वि०, संघटक महाविद्यालय पौड़ी, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर
- डॉ० प्रवीणकुमार वर्मा, रीडर हिंदी विभाग, सनातन धर्म कॉलेज, पलवल (हरियाणा)
- डॉ० संतोषकुमार गौड़, रीडर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ०प्र०)
- डॉ० उषारानी वर्मा, रीडर हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रुद्रपुर (उत्तराखंड)
- डॉ० सभापति मिश्र, प्राचार्य, हॉडिया पोस्टग्रेजुएट कॉलेज, हॉडिया (इलाहाबाद)
- डॉ० घनश्याम अरोरा, पूर्व रीडर इतिहास विभाग, वर्धमान कालेज, बिजनौर (उ०प्र०)

## अभिव्यक्ति में उलझाव की समस्या

सबसे पहला प्रश्न यह है कि एक लेखक, कवि, पत्रकार या व्यंग्यकार आखिर किसके लिए लिखता है? वह किससे अपनी बात कहने के लिए कागज़ पर शब्दों की फ़सल बोता है? क्या लिखते समय ऐसा कोई व्यक्ति या बहुत सारे व्यक्ति उसके सामने होते हैं, जिनसे कुछ कहने या जिन्हें कुछ बताने की इच्छा उसके मन में हो? क्या लिखते समय पाठकों अथवा श्रोताओं की उपस्थिति को वह अपनी चेतना के स्तर पर महसूस कर रहा होता है? अपने अनुभव के आधार पर मेरा उत्तर है कि नहीं। रचना-प्रक्रिया से गुज़रने के ठीक समय ही नहीं, सोच-विचार के समय भी पाठकों और श्रोताओं की उपस्थिति का कोई बोध उसे नहीं होता। वह रचनात्मक अवस्था में इतना ध्यानमग्न होता है कि कोई दूसरा तो क्या, उसे स्वयं अपनी स्थिति का बोध भी प्रायः कम ही रहता है? तब इसी के गर्भ से निकला यह प्रश्न उठता है कि एक लेखक जो कुछ भी लिखता है, वह किसी और के लिए नहीं लिखता, सिर्फ़ अपने या अपने संतोष के लिए लिखता है? प्रकृति ने उसे रचनात्मकता दी है, अभिव्यक्ति की लगन दी है, वह अपनी बात व्यक्त करने के लिए बाध्य है। क्या यह सही है? मेरा उत्तर अब भी यही है कि नहीं। फिर यदि लेखक को लिखते समय पढ़ने या सुननेवालों का बोध नहीं होता, अपनी उपस्थिति का आभास भी कम ही होता है तो फिर यह समस्त रचनात्मक प्रक्रिया किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए चलती है? आप वस्त्र-विक्रेता की दुकान पर कपड़ा ख़रीदने जाते हैं, उससे अपनी आवश्यकता का कपड़ा दिखाने के लिए कहते हैं। वस्त्र-विक्रेता आपकी माँग के अनुसार विभिन्न किस्मों के कपड़े आपको दिखाता है। आप उनमें से कोई एक पसंद करते हैं और ख़रीद लेते हैं। इस पूरे व्यवहार में आपने जितने वाक्य बोले और वस्त्र-विक्रेता ने आपके जितने वाक्यों का उत्तर दिया, उन सबका एक निश्चित उद्देश्य था। आपको ज्ञात था कि आप एक ग्राहक हैं और दुकान स्वामी वस्त्र विक्रेता है। वे वाक्य भी पहले से निश्चित थे, जो आपने बोले। किंतु लेन-देन की इस अभिव्यक्ति की समानता लेखक, कवि अथवा किसी भी श्रेणी के साहित्यकार की अभिव्यक्ति से नहीं की जा सकती है। ग्राहक के रूप में जो भाषा आपने बोली थी, वह आवश्यकता अथवा अधिक उचित होगा कि भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाली भाषा थी। यह भाषा या इस भाषा के द्वारा की गई अभिव्यक्ति ज्ञात की तरफ़ यात्रा करती है और अपने लक्ष्य पर पहुँचकर विस्मृतियों की धुंध में खो जाती है। साहित्य की भाषा और उससे जुड़ी अभिव्यक्ति का संबंध बिलकुल दूसरा है। दोनों के बीच किसी भी स्तर पर कोई समानता, कोई तालमेल नहीं है। आइए, पता लगाएँ कि एक कवि या लेखक की अभिव्यक्ति किसी पाठक या किसी श्रोता

के साथ कैसे जुड़ती है?

दरअसल, प्रत्येक रचनाकार की मानसिक पृष्ठभूमि में पाठकों अथवा श्रोताओं का अस्तित्व पहले से ही छिपा रहता है। वह सम्मुख नहीं होता, अज्ञातवास में होता है, किंतु होता अवश्य है। रचनाकार जब रचना- प्रक्रिया से गुज़र रहा होता है तो मस्तिष्क के पाताल में और नीचे चला जाता है। यदि ऐसा न हो और पाठकों का समूह चेतना के स्तर पर अपनी उपस्थिति बनाए रखे तो वह निश्चित रूप से लेखक की एकाग्रता और ध्यानमग्नता में बाधा डालेगा और यह बाधा लेखक को अपनी रचनात्मक के प्रति समर्पित होने से रोक देगी। इस प्रकार सोच-विचार से लेकर रचना-प्रक्रिया की अवस्था तक लेखक श्रोताओं अथवा पाठकों के बीच नहीं होता। वह एक स्वतंत्र रचयिता की भाँति उस वृत्ति को जन्म दे रहा होता है, जो उसके मस्तिष्क में है। किंतु चूँकि मस्तिष्क की पृष्ठभूमि में पाठक या श्रोता पहले से मौजूद होते हैं, सो वे, रचना पूर्ण होते ही प्रकट हो जाते हैं। इन छिपे हुए पाठकों में सबसे पहला पाठक स्वयं रचनाकार होता है। रचनाकार अपने द्वारा व्यक्त किए गए विचारों को सबसे पहले स्वयं अपने आपको सुनाता है। वह अब रचनाकार नहीं रहता, स्वयं अपना पाठक बन जाता है। पाठक बनकर वह अपनी कृति के गुणों-अवगुणों पर दृष्टि डालता और हर प्रकार संतुष्ट होकर उसे उन पाठकों के सुपुर्द कर देता है, जिन तक उसे अपनी बात पहुँचानी होती है। यहाँ से अभिव्यक्ति में उलझाव का सामना एक पाठक को करना होता है। अभिव्यक्ति में उलझाव की समस्या का सीधा संबंध यद्यपि पाठकों के वर्ग से है किंतु लेखकों को भी इसकी जिम्मेदारी से मुक्त किया जाना संभव नहीं।

इससे पहले कि हम उलझाव की बात आगे बढ़ाएँ, यह देख लें कि आखिर अभिव्यक्ति की जटिलता या उसमें आया उलझाव किस-किस प्रकार का होता है और क्यों होता है? इसमें कौनसा वास्तविक है और कौनसा वास्तविक नहीं है।

पहले हम लेखक को लेते हैं। यदि कोई ऐसा अनुभव, कोई ऐसा अनूठा अहसास, कोई ऐसी विचित्र अनुभूति या कोई ऐसी अद्भुत विचारशैली उसके पास है, जिसे व्यक्त करने के लिए वैसा शब्द-भंडार लेखक के पास नहीं है, जो उसे सही अर्थों में पाठकों तक पहुँचाने का काम कर सके तो निश्चित रूप से लेखक की अभिव्यक्ति जटिल, पेचीदा और उलझाववाली हो जाएगी। अभिव्यक्ति को सीधा या टेढ़ा बनाने में जो भी भूमिका होती है, वह भाषा की होती है, विचार की नहीं होती। यदि कोई विषय लेखक के मस्तिष्क में स्वयं साफ़ नहीं है, वह स्वयं उसे पूरी तरह नहीं समझ रहा है या वह उस विषय का भली प्रकार विश्लेषण नहीं कर सका है तो निश्चित ही न समझी गई विषयवस्तु की अभिव्यक्ति जटिल और अपने अल्प ज्ञान को छिपाने के लिए उलझाव वाली होगी।

दूसरी श्रेणी में वे लेखक आते हैं, जिनमें अपने पाठकों अथवा श्रोताओं को अपने ज्ञान से प्रभावित करने की प्रवृत्ति होती है। रचना के दौरान भी, जब लेखक पाठकों के हर तरह के सरोकारों से दूर होता है, उनके अवचेतन में पाठकों को अपने ज्ञान से प्रभावित करने का विचार काम करता रहता है। परिणामतः उसकी भाषा जटिल और उलझाव वाली हो जाती

है। ऐसी रचना पाठकों पर रुआब जमाने का काम तो करती है, पर उन्हें विश्वास में नहीं लेती।

तीसरी श्रेणी में वे लेखक आते हैं, जो विचार अथवा अनुभवों के अनुकूल उपयुक्त भाषा का प्रयोग करने में सफल नहीं हो पाते जो विचार वे सामने लाते हैं, भाषा उसे व्यक्त करने के अनुकूल नहीं होती या वे स्वयं ऐसी भाषा को तलाश कर पाने में सक्षम नहीं हो पाते। परिणामतः ऐसी रचना श्रोताओं के लिए जटिल और उलझानेवाली बन जाती है। वे शब्दों की भूलभुलैया में भटकते हैं और अर्थों की तह तक नहीं पहुँच पाते। पर यह दोष पाठकों का नहीं। लेखक का होता है, क्योंकि वह भाषा पर ऐसा अधिकार स्थापित नहीं कर सका है, जो उसे, उसके हर तरह के विचारों को अभिव्यक्त करने के काम में कारगर हो सकती हो।

चौथी श्रेणी में ऐसे लेखक आते हैं, जिनके मस्तिष्क की पृष्ठभूमि में पहले ही से चुने हुए वर्गीकृत पाठक स्थान ग्रहण किए रहते हैं। मान लीजिए कि एक उच्च स्तरीय लेखक जिन प्रबुद्ध पाठकों के लिए लिखना चाहता है, उनमें मानसिक तौर पर अतिशिक्षित एवं उच्च शिक्षा प्राप्त बुद्धिजीवियों का वर्ग सम्मिलित है। ऐसी स्थिति जाने-बूझे और सोचे-समझे बगैर भी उसकी अभिव्यक्ति कुछ ऐसे ढंग की होगी, जो थोड़े कम मानसिक स्तर के पाठकों को कठिन दिखाई देती हो या उन्हें जटिल दिखाई दे रही हो। उदाहरण के तौर इन दो पंक्तियों पर ध्यान करें—

सात दिन तक खिलाया जिसे गोद में

आठवें दिन वो बच्चा बड़ा हो गया

एक साधारण बल्कि औसत दर्जे का पाठक भी अपनी पहली प्रतिक्रिया में उक्त पंक्तियों को अति जटिल अथवा उलझाववाली कहने में हिचक नहीं करेगा। क्यों? क्योंकि मात्र सात दिन तक गोद में पलनेवाले बच्चे का मात्र 8वें दिन प्रौढ़ हो जाने की अभिव्यक्ति का जो अजूबा है, उसे समझने की बौद्धिक क्षमता उसमें नहीं है। यह पाठक उस वर्ग के हैं, जो केवल गद्यात्मक अभिव्यक्ति की भाषा समझते हैं। यह भाषा चाहे छंदबद्ध हो अथवा छंदविहीन, होनी चाहिए गद्य की भाँति सीधी और स्पष्ट किंतु बौद्धिक स्तर पर इनसे ऊपर की सोच का पाठक तुरंत उक्त पंक्तियों में प्रयुक्त किए गए प्रतीकों तक पहुँच जाएगा। वह समझ जाएगा कि 'सात दिन' यहाँ गिनती के सात दिन नहीं है। यह बालक की अल्पायु या बहुत छोटी उम्र को दर्शाने के लिए प्रयोग किए हैं, जबकि 'आठवाँ दिन' उसके शीघ्र प्रौढ़ हो जाने के प्रतीक के तौर पर लाया गया है। रचनाकार बताना चाहता है कि आधुनिक समाज और विकास की आपा-धापी ने किस तरह बालकों से उनका बालपन छीन लिया है। वे बाल्यावस्था ही में बड़े या प्रौढ़ हो रहे हैं। तुतलाकर बोलनेवाली आयु ही में वे इतना कुछ सीख जाते हैं, जितना पहले प्रौढ़ आयु का युवक भी नहीं सीख पाता था। इस तरह उक्त दोनों पंक्तियाँ कम बौद्धिक स्तर वाले पाठक के लिए जटिल और उससे ऊपर की प्रतिभा वाले पाठक के लिए प्रतीकात्मक अर्थ देने वाली हो गईं। हम पहले वर्ग के पाठक की पंक्तियों को न समझने का दोष रचनाकार को नहीं देंगे और यह अपेक्षा करेंगे कि धीरे-धीरे उसका मानसिक स्तर ऊँचा होगा और वह प्रतीकात्मक भाषा में की गई अभिव्यक्ति को समझने का अभ्यस्त हो जाएगा।

दूसरे उदाहरण के रूप में अब इन पंक्तियों पर दृष्टि डालिए। यह एक प्रतिष्ठित

पत्रिका में प्रकाशित हुई एक छोटी-सी कविता है। कृपया इसे ध्यान से पढ़िए—

रात के आवारा  
मेरे पास भी रुको  
मुझे दो/ ऐसी नींद  
जिस पर एक तिनके का दबाव भी नहीं  
ऐसी नींद/ जैसे चाँद में पानी की घास

ये पंक्तियाँ जटिल हैं। उलझी हुई हैं। इनका समझना उस पाठक के लिए भी मुश्किल है, जो उच्च शिक्षा प्राप्त है, बुद्धिजीवी है और प्रतीकात्मक कविता का रहस्य भली प्रकार जानता है। ऐसा क्यों हुआ है? इसलिए कि रचनाकार भाषा और अभिव्यक्ति दोनों ही स्तरों पर कोई ऐसा पुल तैयार करने में सफल नहीं हो सके, जो किसी भी स्तर के पाठक से उसका छोटे-से-छोटा संबंध भी स्थापित कर सकता हो।

‘रात के आवारा?’ यह नितांत अपूर्ण, अभिव्यक्ति है। कौन आवारा? पंक्ति सुनते ही तुरंत यह सवाल सामने आ जाता है। किंतु इस कौन का उत्तर पंक्ति में कहीं नहीं है। रचनाकार के मस्तिष्क में कहीं हो तो हो। पाठक कविता की अगली पंक्तियों की तरफ़ बढ़ता है। उसे लगता है कि रचनाकार उस ‘आवारा’ से जो भी वह है, विनती कर रहा है, उसे एक ऐसी ‘नींद’ दे जिस पर किसी हल्के से हल्के तिनके का भी दबाव न हो। यहाँ तक बात समझ में आती है कि कविता का पात्र किसी आवारा? से (जो भी वह है) ऐसी नींद इसलिए माँग रहा है कि वे दिनरात के हंगामों से भरे जीवन से ऊब गया है। वह कुछ क्षण की शांति चाहता है। सो जाना चाहता है। उसके लिए शहरों की या जीवन की निरंतर चलने वाली हलचल असहनीय हो गई है। लेकिन आगे चलकर जब वह यह बताना चाहता है कि कैसी नींद चाहता है तो बात फिर उलझ जाती है। वह ‘चाही गई नींद’ की उपमा देते हुए अपने ‘आवारा सहयोगी’ से बताता है, ‘ऐसी नींद चाहिए जैसी ‘चाँद में पानी की घास।’ अब यह जो चाँद में पानी की घास का प्रतीक है, इसका अर्थ अच्छे-से-अच्छे प्रतिभा वाले पाठक के पल्ले नहीं पड़ेगा। वह सवाल करेगा कि क्या चाँद में पानी होता है और क्या उस पानी की घास होती है। पाठक को उसके मन में उठे इन सवालों का कोई उत्तर नहीं मिलेगा। उत्तर इसलिए नहीं मिलेगा कि ‘चाँद’ और ‘चाँद में पानी की घास’ के जो प्रतीक कविता में प्रयोग किए गए हैं, वे इस सीमा तक निजी और इस हद तक व्यक्तिगत हो गए हैं, जिनमें किसी और की छोटी-से-छोटी भागीदारी भी आसान नहीं रही है।

साहित्य में, विशेषकर काव्य-साहित्य में नितांत निजी एवं विशुद्ध व्यक्तिगत प्रतीकों के प्रयोग का कोई अर्थ नहीं है। प्रतीकों की भूमिका तो रचना में साहित्यकार की कल्पना, उसकी प्रतिभा तथा रचना को कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक प्रभावपूर्ण अर्थों को विस्तार देने और पाठक की सोच को एक अद्भुत अनुभव से गुज़ारने का काम सुनिश्चित करती है। यदि प्रतीक पाठक से नाता नहीं जोड़ रहे हैं और रचनाकार की सोच से बाहर नहीं निकल रहे हैं तो स्पष्ट है कि वे प्रतीक जटिलता ही नहीं, अर्थविहीनता भी पैदा करेंगे।

‘आवारा’ शब्द ने जो जटिलता उत्पन्न की थी, उसने तिनके का दबाव भी नहीं तक पहुँचकर अपने उलझाव को और गहरा बना लिया। ‘नहीं’ के स्थान पर यदि ‘न हो’ प्रयोग किया गया होता तब भी एक कमजोर सा सूत्र पाठक और रचनाकार के संबंधों को जोड़ने का थोड़ा बहुत काम कर सकता था— कृपया इस पंक्ति को एक बार फिर पढ़िए—

जिस पर एक तिनके का दबाव भी नहीं’

‘नहीं’, शब्द निद्रा की अवस्था को ‘भूतकाल’ की ओर ले जा रहा है, जबकि रचनाकार अभी एक ऐसी शांत नींद का अभिलाषी है, जिस पर एक ‘तिनके’ का दबाव भी न हो। यहाँ हम यह भी देखते हैं कि रचनाकार भाषा पर अपना अधिकार खो बैठा है। चाँद पर पानी की घास को यदि हम ऐसी चीज़ मान लें, जो अस्तित्वहीन है तो फिर कविता हमें मृत्यु की ‘इच्छा’ के अर्थों तक ले जाएगी? लेकिन यह अर्थ हमारी अपनी खोज का परिणाम होगा। इसमें कवि की अभिव्यक्ति सहयोगी नहीं बनेगी।

इस लंबी चर्चा से क्या ज्ञात होता है? यह कि रचनाकार का या तो भाषा पर पूर्ण अधिकार नहीं होता, या वह सुविचारित ढंग से अपनी रचना या कविता में ऐसे प्रतीक प्रयोग करता है, जो नितान्त निजी और पूर्णरूप से व्यक्तिगत होते हैं और उनका कोई संबंध पाठक की अनुभूति से नहीं होता, रचनाकार या तो स्वयं उस विषय को भलीप्रकार नहीं समझ पा रहा होता है, जिसे उसने अभिव्यक्ति देने का निश्चय किया है या वह जानबूझकर उलझाव उत्पन्न कर पाठकों को अपने ज्ञान से प्रभावित करने की चेष्टा में है। इन सभी स्थितियों में रचना एक ऐसी जटिलता या उलझाव की भेंट चढ़ जाती है, जिससे बचा जा सकता है। इस बिंदु को सदैव याद रखें कि ‘उलझाव’ और ‘तहदारी’ में अंतर होता है। ‘तहदारी’ रचना का स्तर बढ़ाती है, जबकि उलझाव रचनाकार की उस अक्षमता का पता देता है, जो किसी भी कारण उसमें आई है।

ऊपर दी गई छोटी-सी कविता के बाद अब दो और छोटे-छोटे अंश देखिए—

‘मैं कोई आत्मकथा तो लिखने चला नहीं हूँ। और मानो जब एक कथा ही लिखने चला हूँ तो भी यह अहसास बहुत ज़्यादा हो रहा है कि पात्रों-चरित्रों के कुछ आत्मवृत्त या जीवन-प्रसंग भी कितने आधे-अधूरे ही प्रायः साबित होते हैं। तर्क दिया जा सकता है कि फिर उन्हें लाया ही क्यों? पर उन्हें लाए बिना भी कोई निस्तार कहाँ है? मीनाक्षी के विवाहोपरांत जीवन के बारे में जानता ही क्या हूँ? और उसे भी कहाँ जानता हूँ, जो पूना पहुँचने के बाद उसके जीवन में घटित हुआ। तब क्या किसी व्यक्ति से संबंधित समाचारों का कोई महत्त्व नहीं है? निश्चय ही है। वे न हों तो स्मृति-संसार वास्तव में कितना अधूरा और एक तरफ़ हो जाए।’

यह एक कहानी का प्रारंभिक अंश है। इसमें अभिव्यक्ति के जिस उलझाव का अहसास होता है, वह भाषा के स्तर पर है, विचारों के स्तर पर नहीं है। गद्य लिखनेवाला कोई लेखक यदि पाठक से अपने-आपको पढ़वा लेता है तो उसे सफल मानना चाहिए। पाठक यदि आरंभ में ही उसकी भाषा, अभिव्यक्ति की शैली अथवा लेखन के ढंग से प्रभावित नहीं होता है तो निश्चित तौर पर वह आगे नहीं बढ़ेगा और पढ़ना छोड़ देगा लेखक की हैसियत से आप अपने पाठक के मन में रुचि एवं आकर्षण की कैसी स्थिति उत्पन्न कर पाए हैं? यह बहुत

महत्त्वपूर्ण सवाल है। पाठक के मन में रुचि तथा लिखे गए गद्य के प्रति आकर्षण प्रयोग की गई भाषा से उत्पन्न होता है। यदि लेख में प्रयोग की गई भाषा पाठक को अपनी प्रारंभिक पंक्तियों ही से अपनी ओर आकर्षित नहीं कर रही है तो वह पूरा लेख पढ़ने का साहस नहीं करेगा। पाठक से स्वयं को पढ़वा पाना लेखक की पहली सफलता है। ऊपर दिए गए अंश में यह गुण नहीं है। इसमें शब्दों का सटीक प्रयोग नहीं हुआ है। व्याकरण के दृष्टिकोण से भी वाक्यों की बनावट दुरुस्त नहीं है। चिह्नित स्थानों पर ध्यान दें।

‘लिखने चला हूँ तो भी यह अहसास बहुत ज्यादा हो रहा है।’ यह भाषा अशुद्ध है। ‘भी’ का प्रयोग इस वाक्य में आवश्यकता के बिना ही हुआ है और ‘बहुत ज्यादा’ जिसका संबंध ‘अहसास’ है अपने संबंधी शब्द से आगे या अलग-थलग जा पड़ा है। वाक्य की संरचना इस तरह होनी चाहिए थी, लिखने चला हूँ तो यह अहसास बहुत ज्यादा हो रहा है। इसी तरह ‘आधे-अधूरे’ ही प्रायः वाला वाक्य भी भाषा और अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से ठीक नहीं है। तीसरा तर्क वाला वाक्य तो अभिव्यक्ति के स्तर पर बिलकुल ही उलझकर रह गया है। कुल मिलाकर देखें तो यह एक ऐसा गद्यांश है, जो ऊबड़-खाबड़ रास्ते की याद दिलाता है। एक ऐसा ऊबड़-खाबड़ रास्ता जिस पर पहले तो यात्री चलना ही नहीं चाहता और यदि चलता है तो लड़खड़ाकर चलता है और हाँफ-हाँफ जाता है।

उक्त उदाहरण अभिव्यक्ति में भाषा के स्तर पर आनेवाले उलझाव की ओर संकेत करने के लिए दिया गया है। किस विचार के लिए किन शब्दों का प्रयोग होना चाहिए? और भाषा की शुद्धता का ध्यान किस प्रकार रखा जाना चाहिए? यह जानना नितान्त आवश्यक है। अशुद्ध और खराब भाषा अच्छे-से-अच्छे विचार को भी न केवल उलझा देती है, बल्कि अरुचिकर भी बना देती है। सफल अभिव्यक्ति का अर्थ यह है कि लेखक ने शब्दों और भाषा के स्तर पर अपना दायित्व सुंदर ढंग से पूरा किया है और उसने पाठक से ऐसा संबंध स्थापित किया है, जिसमें संकोच या पराएपन का बोध नहीं रहता। यह तभी संभव है जब भाषा पर लेखक की पकड़ हो और उसे अपने विचार शुद्ध भाषागत व्यवस्था तथा आकर्षक ढंग से व्यक्त करने का तरीका आता हो।

शुद्ध भाषा का अभिप्राय यह नहीं है कि लेखक को व्याकरण की निर्धारित सीमा से बाहर निकलने की अनुमति ही नहीं है। अनुमति है लेकिन इस शर्त के साथ कि व्याकरण की व्यवस्था से अलग हटकर अभिव्यक्ति और भी कलात्मक और आकर्षक हो गई हो। पाठक को ऐसा लगना चाहिए कि यदि व्याकरणगत व्यवस्था का अनुपालन किया जाता तो अभिव्यक्ति के वर्तमान सौंदर्य पर आँच आ सकती थी। मन चाहे ढंग से भाषागत व्यवस्था को तोड़ने का अधिकार किसी को नहीं है। साहित्यकार के लिए ही क्या, एक साधारण पत्र-लेखक तक के लिए आवश्यक है कि वह विचारों को व्यक्त करने वाली भाषा पर ध्यान दे। क्योंकि पाठकों के पास जो चीज विचारों को लेकर जाएगी, वह भाषा है और शब्द है। यदि भाषा त्रुटिपूर्ण है, उलझी हुई है तो लिखनेवाला अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकेगा। अभिव्यक्ति में भाषा के स्तर पर उलझाव कैसे आता है, इसे आपने ऊपर लिखी पंक्तियों में



देखा। कई बार लेखक के मस्तिष्क में विचार ही स्पष्ट नहीं होते। वह यह तो जानता है कि उसे किस विषय पर लिखना है किंतु विषय से संबंधित समस्त आवश्यक पक्ष उसे स्पष्ट नहीं होते। ऐसी स्थिति में भी अभिव्यक्ति जटिल हो जाती है। नीचे लिखी पंक्तियों पर ध्यान दें :

‘जिनका जीवन में कोई लक्ष्य नहीं होता, वे भी तनावग्रस्त हो जाते हैं। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि आपका लक्ष्य माउंट एवरेस्ट पर चढ़ने का है या हर चौथे महीने के बाद छोटी किताब को प्रकाशित करना है। किसी भी लक्ष्य में मुकाबले की भावना छिपी होती है, जो जीवन में सही मायने में भाग लेने की भावना को आगे बढ़ाती है। यदि आपके जीवन में लक्ष्य समय के अनुसार या क्रमबद्ध है तो ताश खेलना और बुनना भी एक सही अर्थों में मुकाबले में भाग लेना ही है।

‘आदमी ने सभ्यता के विकास के प्रारंभिक करोड़ों वर्ष तो सिर्फ भोजन को इकट्ठा करने में लगाए। झुंडों में वे शिकार करते थे और इकट्ठे मिलकर कार्य करते थे। क्योंकि वे हमेशा कार्य करने में व्यस्त रहते थे। उनके तनाव का स्तर आज के मनुष्य के तनाव के स्तर से काफी कम था। दस हजार वर्ष पहले आदमी ने खेती करनी आरंभ की काम और वह भी झुंडों में इकट्ठे इसलिए तनाव का स्तर भी कम था। पिछले 300 वर्ष से आदमी औद्योगिक क्षेत्र में प्रवेश कर चुका है। आज मनुष्य को आजीविका के लिए ज्यादा देर तक काम नहीं करना पड़ता है। उसके पास बहुत-सा समय है। वह इसे टेलीविजन के सामने अधिक से अधिक तनावग्रस्त विचार अपनाने के लिए प्रयोग कर सकता है या वह उठकर अधिक से अधिक कार्य कर सकता है।

ऊपर अंकित गद्यांश से पाठक की समझ में क्या आ रहा है? क्या इस विषय से संबंधित जो जिज्ञासा उसके मन में है, वह शांत हो रही है। यह पढ़कर उसके पहले ज्ञान या जानकारी में कुछ वृद्धि हो रही है? वह किसी सत्य तक पहुँच रहा है? किसी वास्तविकता को पहचान रहा है? नहीं, मैं जब इन पंक्तियों को पढ़ता हूँ तो मुझे यह आभास तो हो जाता है कि वर्तमान जीवन में मानसिक तनाव या अवसाद की जो परिस्थितियाँ तीव्र होती जा रही हैं, लेखक उनके संबंध में अपने विचार व्यक्त कर रहा है। किंतु अभिव्यक्ति में उलझाव इतना है कि स्पष्ट रूप में और भरपूर ढंग से वह अपनी बात कहने में समक्ष नहीं लगता। उलझाव विचारों में भी है और भाषा के स्तर भी। विचारों में इसलिए है कि संभवतः लेखक ने अवसाद, टेंशन अथवा मानसिक तनाव के विषय पर्याप्त अध्ययन नहीं किया है। विषय को सरसरी तौर पर देखा और व्यवहार किया है। उसकी दृष्टि हर पहलू पर नहीं है। विषय की माग तो यह है कि लिखनेवाला लेखन से पूर्व आधुनिक समाज, विशेषकर नगरीय समाज, उसकी समस्याएँ, आर्थिक स्थिति, तेज गति से दौड़ते हुए जीवन, प्रति-स्पर्धा की बढ़ती हुई होड़ तथा तेजी से बढ़ती हुई भौतिक आवश्यकताओं और उनकी प्राप्ति जैसे सभी बिंदुओं का अध्ययन करे और तर्कों के आधार पर ऐसे निष्कर्ष निकाले, जो यह प्रमाणित कर सकते हों कि आधुनिक जीवन में मानसिक तनाव बढ़ाने के मुख्य कारण वास्तव में ये हैं। उपर्युक्त पंक्तियाँ इस तैयारी से नहीं लिखी गईं परिणाम यह हुआ कि अभिव्यक्ति उलझ गई और उसमें

जटिलता पैदा हो गई। ऐसा लेखक, जो विषय से संबंधित आवश्यक ज्ञान, सोच-विचार तथा विषय के उपयुक्त भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त किए बिना ही लिखने बैठ गया है, वह न तो पाठकों के साथ ही न्याय कर पाता है और न विषय के साथ ही। लेखक के रूप में सदैव यह बात ध्यान में रहनी चाहिए कि अभिव्यक्ति का संपूर्ण सरोकार भाषा से है। विचार लेखक की व्यक्तिगत संपत्ति हो सकते हैं किंतु जब वे शब्दों में ढलकर मस्तिष्क से बाहर आ जाते हैं तो यह संपत्ति लेखक से पाठकों को हस्तांतरित हो जाती है। अब वह चीज़ जो दूसरों को स्थानांतरित हो रही है, वह कैसी हो? कौन चाहेगा कि वह भद्दी और अस्वीकार्य हो।

भाषा अथवा शब्दों का महत्त्व समझने की ज़रूरत है। कितने लोग हैं जिन्होंने यह अनुभव किया होगा अथवा जो गहन सोच-विचार के बाद इस अकाट्य तथ्य तक पहुँचे होंगे कि सोचने के लिए भी मनुष्य को शब्दों की ज़रूरत होती है। शब्दों और भाषा के बिना वह सोच भी नहीं सकता। उसे विचार भी आते हैं तो शब्दों के माध्यम से आते हैं और तो और स्वप्न भी वह भाषा या शब्दों के बिना नहीं देख सकता। स्वप्न में जो दृश्य वह देख रहा है, उसे व्यक्त करने के लिए भी शब्दों की ही आवश्यकता होती है। सोच से लेकर स्वप्न तक का माध्यम शब्द है। तब शब्द या भाषा के प्रति उदासीनता या असावधानी अभिव्यक्ति के रास्ते में कैसी-कैसी अड़चनें पैदा कर सकती है, इसे समझना मुश्किल नहीं है।

एक ही प्रकार की भाषा हर तरह की अभिव्यक्ति के अनुकूल नहीं होती। दोहे की जो भाषा है, वह ग़ज़ल की भाषा नहीं होगी। जो ग़ज़ल की भाषा है, वह छंदबद्ध अथवा छंदमुक्त कविता की भाषा नहीं होगी। जो कहानी की भाषा है, वह व्यंग्य-लेखों की भाषा नहीं होगी। जो निबंधों की भाषा है, वह नाटकों की भाषा नहीं होगी, जो वैज्ञानिक विषयों की भाषा है वह सामाजिक एवं राजनीतिक विषयों की भाषा नहीं होगी। जो धार्मिक विषयों की भाषा है वह आम जन की भाषा नहीं होगी। स्पष्ट है कि विषय के साथ भाषागत व्यवहार भी बदल जाता है। अब यह लेखक का दायित्व है कि वह अपने विषय को दृष्टि में रखकर यह निर्णय ले कि उसे अपनी अभिव्यक्ति के लिए किस उपयुक्त भाषा की आवश्यकता होगी। यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह अपने लक्ष्य में कदापि सफल नहीं हो पाएगा।

अभिव्यक्ति अनिवार्य रूप से पाठकों से अपना रिश्ता जोड़े रखती है। पाठक तक रचना के पहुँचने से पहले ही यह रिश्ता जुड़ चुका होता है। लेखक और पाठक के बीच यह रिश्ता एक ऐसे पुल की तरह होता है, जो इन दोनों को भाषा के माध्यम से विचारों या विषयों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया से जोड़ता है। विचारों अथवा विषयों का प्रस्तुतीकरण किस तरह का हो, यह निर्णय करना पाठक का नहीं, लेखक का काम है। लेखक का यह निर्णय जितना सही होगा, अभिव्यक्ति भी उतनी ही सटीक होगी।

अभिव्यक्ति में उलझाव की समस्या कई बार पाठक पक्ष की ओर से भी आती है। वर्तमान शिक्षित समाज में सभी तरह के पाठकों का बौद्धिक स्तर एक जैसा नहीं है। कुछ गहरी और तहदार साहित्यिक रचनाओं को समझने की योग्यता रखते हैं। कुछ बिलकुल सीधी और सामने की बात ही समझ सकते हैं, गहरी और गूढ़ नहीं। ऐसी स्थिति में लेखक

बिलकुल सामने की और सीधी सरल चीजें लिखता है तो उसका साहित्य सपाटबयानी की भेंट पर स्तरहीन हो सकता है और यदि वह तहदार और गहरी अर्थपूर्ण चीजों की रचना करता है तो पहले वर्ग के पाठकों के लिए उसकी अभिव्यक्ति जटिल और उलझाव से भरी ही होगी। सवाल उठता है कि ऐसी स्थिति में क्या किया जाना चाहिए?

साहित्यकार का दायित्व केवल अपनी रचनाएँ अपने ढंग से पाठकवर्ग तक पहुँचाना ही नहीं होता। उसकी जिम्मेदारी पाठकों का मानसिक स्तर बढ़ाना भी है। यह नहीं होना चाहिए कि वे साधारण पाठकों के बाज़ार की माँग का पूरा करने के लिए उनके स्तर पर उतर आएँ। वे ऐसी सामग्री प्रस्तुत करें, जो प्रतिभाशाली पाठकों को भी स्वीकार हो और उनसे नीचे के पाठकों के मानसिक स्तर को ऊपर उठाने का काम भी कर सकती हो। स्वयं निम्न स्तर पर उतरने की तुलना में अपने पढ़नेवालों के स्तर को ऊपर उठाना अधिक तर्कसंगत है।



डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल  
संपादक

## अनुक्रम

अभिव्यक्ति में उलझाव की समस्या / डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	3
प्रेमचंद के झूठे दावेदार / डॉ० कमलकिशोर गोयनका	15
रीतिकवियों की राष्ट्रीयता / साहित्यवारिधि डॉ० रामानंद शर्मा	21
आधुनिक हिंदी-काव्य में राष्ट्रीयता का उद्भव और विकास	
डॉ० अशोक उपाध्याय	40
हिंदी कथासाहित्य में कमलेश्वर का योगदान / कौशलकुमारी	49
पंकज मित्र की कहानियों में समकालीन संदर्भ / किरणबाला सिंह	63
दुनिया में हिंदी / डॉ० संजयकुमार सिंह	67
भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी / श्रीमती वंदना सेमल्टी	72
हिंदी में दलित-साहित्य : आस्वाद के धरातल पर / डॉ० सुरेंद्रकुमार मीणा	78
राष्ट्रीय चेतना में भारतेंदु का योगदान/ अशोककुमार मीणा	82
तत्कालीन राजनीतिक चिंतन और डॉ० राधाकृष्णन की राजनीतिक सोच	
फा० वैलेरियन स्टैनी डिसूजा	86
नई कविता के प्रतिमान / बीना सिंह	92
समाजवादी चेतना की औपन्यासिक अभिव्यक्ति : बलचनमा/ डॉ० मजीद शेख	95
आप रसखान को हिंदू मानते हैं या मुसलमान? / अभिषेक शर्मा	102
पत्रकारिता : स्वरूप व क्षेत्र / डॉ० वंदना शर्मा	110
पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी का साहित्यिक प्रदेय / राजबाला	115
विष्णु प्रभाकर के नाटकों में नारी की विविध समस्याएँ/ कु० गीतिका चौहान	122
प्रसाद-काव्य में कल्पना के रूप / वंदना पांडेय	131
संत रविदास की भक्ति-भावना/ रुपिन्द्र शर्मा	136
कालजयी कथाकार प्रेमचंद / डॉ० सरबजीत कौर राय	141
वैश्वीकरण के दौर में हिंदी के बढ़ते कदम / डॉ० हरीशकुमार	148
भारत में महिला सशक्तीकरण की विसंगतियाँ / कुलभूषण मौर्य	155
हिंदी-कहानी : व्यावहारिक समीक्षा की समीक्षा / डॉ० बागेश्री चक्रधर	162
हिंदी मराठी संतों का प्रगतिशील दृष्टिकोण / डॉ० सुधाकर शेंडगे	175
समीक्षक डॉ० धर्मवीर भारती (प्रगतिवाद : एक समीक्षा के विशेष संदर्भ में)	
डॉ० आशा अग्रवाल	179
रामकाव्य : परंपरा एवं युगबोध / सारिका	185

निर्गुण काव्यधारा के कालजयी हस्ताक्षर कबीर / डॉ० अमरदीप दयोल	190
नारी-विमर्श और समकालीन हिंदी नवगीत / डॉ० सुनीतादेवी	196
हिंदी-उपन्यासों में प्रवासी भारतीय/ प्रणु शुक्ला	201
श्रीरामकथामृत में वर्णित समाज / जोगेश	206
अज्ञेय साहित्य : प्रभाव और प्रासंगिकता / गरिमा त्यागी	212
सूरकाव्य में दार्शनिक चेतना / आशुतोष वाशिष्ठ	217
अपभ्रंश साहित्य का महनीय ग्रंथ : 'अपभ्रंश-आलोक' / डॉ० श्रीरंजन सूरदेव	222
हरिशंकर आदेश के प्रबंधकाव्य : प्रयोग और प्रयोजन / कनुप्रिया प्रचण्डिया	225
हरियाणवी लोककाव्य में शृंगार-योजना / सुनीता	232
इक्कीसवीं शताब्दी के नाटकों में परिवर्तित रंगमंचीय स्वरूप / भागीरथ	237
लाला भगवानदीन दीन जी का समग्र प्रदेय / श्रीमती किरन मिश्रा	245
हिंदी-लघुकथा के विकास में रूप देवगुण का योगदान / भरतलाल	251
भारतीय महिलाएँ-तब और अब : एक परिदृश्य / नमिता श्रीवास्तव	256
जनवादी कवि के रूप में नागार्जुन / डॉ० राजकुमार 'जमदग्नि'	261
नारी-मुक्ति आंदोलन और स्त्री-लेखन / सुश्री स्नेहा सिंह	269
पाषाण-युद्ध की निराली छटा : बग्वाल / डॉ० ( श्रीमती ) इला साह	275
जयप्रकाश नारायण के राजनीतिक एवं सामाजिक विचार	
डॉ० अशोककुमार सिंह	283
उच्चशिक्षा में प्रचलित परीक्षा-प्रणाली के प्रति शिक्षकों के दृष्टिकोण का अध्ययन	
डॉ० अशोककुमार सिंह	291
सामान्य बी०टी०सी० एवं विशिष्ट बी०टी०सी० प्रशिक्षित अध्यापकों की	
व्यावसायिक संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन/ प्रदीपकुमार सिंह	296
इलाहाबाद जनपद के प्राथमिक विद्यालयों में कक्षा-प्रबंध का अध्ययन	
गीता कुशवाहा	301
रवींद्रनाथ टैगोर के व्यक्तित्व से प्रभावित ओबामा/ डॉ० ( श्रीमती ) कुमुद दुबे	308
माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता हास के आर्थिक कारणों के प्रति शिक्षकों,	
छात्रों एवं अभिभावकों के दृष्टिकोण का अध्ययन / विनोदकुमार यादव	311
जयप्रकाश नारायण और उनके आंदोलन / आलोक सिंह	315
जयप्रकाश नारायण के सामाजिक विचार / आलोक सिंह	324
लव जिहाद : एक समालोचना / राजेंद्रप्रसाद शुक्ल	331
गुजरना एक ग्रामगंधी रचना से / डॉ० प्रवीणकुमार वर्मा	333

## आजीवन सदस्य

### डॉ० रामानंद शर्मा

अध्यक्ष हिंदी विभाग, हिंदू (पी०जी०) कालेज  
9, जिगर कालोनी  
मुरादाबाद (उ०प्र०)

### डॉ० मधुलिका तिवारी

रीडर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग,  
एल०आर० पी०जी० कॉलेज, साहिबाबाद  
गाजियाबाद (उ०प्र०)

### डॉ० शंकरलाल शर्मा 'क्षेम'

अध्यक्ष हिंदी विभाग,  
आ०एस० (पी०जी०) कालेज  
धामपुर (बिजनौर)

### डॉ० शाहबुद्दीन निजाज़ मुहम्मद शेख़

प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा०  
औरंगाबाद,  
अध्यक्ष, राष्ट्रीय हिंदी सेवा महासंघ  
78/484 सिविल हडको,  
अहमदनगर 414003 (महा०)

### डॉ० लियाकत मियां भाई शेख़

अखिलेश नगर, प्लॉट क्र० 11  
नए बस स्टैंड के पास  
गंगापुर,  
ज़िला औरंगाबाद (महा०)

### डॉ० अशोक द्रौपद गायकवाड़

कृतज्ञता, अवधूत पार्क  
आरोह निसर्ग के पास  
कादंबरी नगरी के सामने  
पाइप लाइन रोड, सावेडी  
अहमदनगर (महा०) 414003

### प्रा० दत्तात्रेय माधवराव टीलेकर

द्वारा संतोष मेडिकल  
साई प्रेस्टिज, फ्लैट क्रमांक 13  
पाटिल अली, ओतूर  
तह० जुन्नर, ज़िला पुणे (महा०) 412409

### डॉ० माजिद मुनीर शेख़

पो० सष्ट, पिंपल गाँव, तालुका अंबड  
ज़िला जालना (महा०) 431212

### डॉ० वंदना सेमल्टे

टी०एफ० 7, प्रेरणा अपार्टमेंट्स, गांधी नगर  
गाजियाबाद 201001

### श्री हरिराम 'पथिक'

स्नह गंगा, विष्णुधाम कालोनी,  
गली नं० 3, न्यू माधो नगर  
सहारनपुर (उ०प्र०)

### प्राचार्या,

कन्या महाविद्यालय  
विद्यालय मार्ग  
जालंधर (पंजाब) 144004

## 'शोध दिशा'

के

शोध अंकों के

आजीवन सदस्य बनिए

और

बिना किसी अतिरिक्त व्यय के

शोध दिशा के सभी अंक

प्राप्त कीजिए।

अब तक प्रकाशित अंक भी

उपहारस्वरूप भेजे जाएँगे।

**आजीवन शुल्क**

व्यक्तिगत : 3000 रुपए

संस्थागत : 4000 रुपए

## प्रेमचंद के झूठे दावेदार

डॉ० कमलकिशोर गोयनका

प्रेमचंद हिंदी के ऐसे लेखक हैं, जो अपने जीवन-काल से आज तक तरह-तरह के झूठे दावों से आहत होते रहे हैं। उनके जीवन-काल में उन पर अनेक आरोप लगाए गए, जैसे वे ब्राह्मणद्रोही हैं, अँग्रेजी साहित्य के नक़लची हैं, वे समसामयिकता के लेखक हैं आदि। प्रेमचंद के देहांत और भारत की स्वतंत्रता के बाद मार्क्सवादियों ने उन्हें अपने शिकंजे में कस लिया और घोषणा कर दी कि प्रेमचंद का अंतिम वर्षों में गांधीवाद से मोह-भंग हो गया था और वे मार्क्सवादी हो गए थे। मार्क्सवादियों के इस दावे ने प्रेमचंद को मार्क्सवाद का मसीहा तो बना दिया, परंतु उन्हें देश की परंपरा, संस्कृति, मूल्य, मानवीयता तथा राष्ट्रीयता से बहिष्कृत करके भारतीयता से ही दूर कर दिया। मार्क्सवादियों के इस झूठे दावे की कलाई खुल चुकी है और वे अब भारतीयता के संवाहक लेखक के रूप में स्वीकृत होकर पूरे विश्व के प्रिय लेखक बने हुए हैं।

प्रेमचंद पर ऐसे झूठे दावे अभी ख़त्म नहीं हुए हैं। ऐसी ही दो किताबें इधर मेरी नज़र में आई हैं। पहली किताब है 'समक्ष' जिसमें प्रेमचंद की बीस उर्दू-हिंदी कहानियों का समांतर पाठ दिया गया है। इस योजना के प्रस्तावक तथा प्रकाशन महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय है। प्रकाशक में प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय की प्रकाशन संस्था हंस प्रकाशन, इलाहाबाद का नाम भी छपा है। आरंभ में 'विश्वविद्यालय का वक्तव्य' शीर्षक से उनकी इस प्रकाशन-योजना का परिचय तथा उसकी नीतियों की चर्चा है, परंतु उस पर किसी के हस्ताक्षर नहीं हैं। फिर भी यह मानना उचित होगा कि यह वक्तव्य तत्कालीन कुलपति अशोक बाजपेयी का है, क्योंकि वही इसके प्रतीक लेखक माने जा सकते हैं। इतना तो स्पष्ट है कि अशोक बाजपेयी के कुलपतित्वकाल में इसकी योजना बनी, और उन्होंने इसके संपादन का दायित्व अमृतराय के सुपुत्र प्रो० आलोक राय तथा मुश्ताक़ अली को सौंपा तथा 440 पृष्ठों की इस पुस्तक के प्रकाशन का व्यय भी उठाया। पुस्तक में दिए विवरण से यह स्पष्ट नहीं है कि हंस प्रकाशन, इलाहाबाद का नाम प्रकाशक के रूप में क्यों दिया गया।

'समक्ष' पुस्तक में प्रकाशित 'विश्वविद्यालय का वक्तव्य' में व्यक्त विचारों की परीक्षा पहले ज़रूरी है। इसमें नए किस्म की पाठ्य-सामग्री देने के दावे के साथ यह दावा भी किया गया है कि यह पुस्तक 'लोकतांत्रिक और पारदर्शी प्रक्रिया तथा विशेषज्ञों की समिति द्वारा चुने गए संपादकों के द्वारा तैयार की गई है।' खेद है, वक्तव्य में न तो लोकतांत्रिक एवं पारदर्शी प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया और न विशेषज्ञों की समिति के सदस्यों के नाम ही दिए गए, अतः ये दावे झूठे प्रतीत होते हैं। विश्वविद्यालय की विशेषज्ञ समिति को यह स्पष्ट करना चाहिए था कि उसने किस आधार पर आलोक राय तथा मुश्ताक़ अली को इस पुस्तक का

संपादक क्यों बनाया? क्या इन दो विद्वानों ने इससे पूर्व प्रेमचंद पर कोई अनुसंधान किया है, क्या वे प्रेमचंद के अध्ययन-अध्यापन से संबद्ध रह हैं तथा क्या हिंदी-उर्दू साहित्य इन्हें प्रेमचंद-विशेषज्ञ के रूप में स्वीकार करता है? क्या विशेषज्ञ समिति को मालूम था कि मदनगोपाल, कमर रईस, कमलकिशोर गोयनका आदि ने प्रेमचंद के अध्ययन और अनुसंधान को जीवन के चार-पाँच दशक दे दिए और यदि नहीं मालूम था तो इसे विशेषज्ञ-समिति कहने का दावा झूठा है। हिंदी के मार्क्सवादियों को कमलकिशोर गोयनका से एलर्जी है, परंतु मदनगोपाल और कमर रईस तो थे; और इनसे बेहतर कोई दूसरे व्यक्ति नहीं हो सकते थे। अतः इस पुस्तक के संपादकों का चयन लोकतांत्रिक प्रक्रिया से नहीं हुआ, यदि होता तो प्रेमचंद के विशेषज्ञों को रखा जाता। इससे स्पष्ट है कि संपादकों को नियुक्त करनेवाली विशेषज्ञ-समिति में भी प्रेमचंद के विशेषज्ञ थे तो उन्हें बताना चाहिए कि 'समक्ष' पुस्तक के लिए आलोक राय तथा मुश्ताक अली का चयन किस आधार पर हुआ? आलोक राय अमृतराय के पुत्र और प्रेमचंद के पौत्र हैं तथा अँग्रेजी के प्रोफेसर हैं तथा प्रेमचंद पर उनकी कोई पुस्तक है, इसकी मुझे जानकारी नहीं है तथा मुश्ताक अली के प्रेमचंद-संबंधी कार्यों की मुझे जानकारी नहीं है। यह मेरी अज्ञानता हो सकती है, परंतु संपादकों एवं प्रकाशकों का भी यह दायित्व था कि वे पुस्तक में संपादकों के प्रेमचंद-संबंधी कार्यों का विवरण देते, जिससे पाठक को यह तसल्ली हो कि यह कार्य प्रेमचंद के वास्तविक विशेषज्ञों द्वारा ही किया गया है।

'समक्ष' में आलोक राय ने 'भूमिका' लिखी है, परंतु चयन के संबंध में टिप्पणी किसने लिखी है, इसका कोई उल्लेख नहीं है। इस टिप्पणी (चयन के संबंध में) में इतनी ग़लतियाँ हैं तथ्यों की तथा अनेक उपलब्ध सूचनाओं को छोड़ दिया गया है कि इसका दोष किसे दिया जाए? आलोक राय ने अपनी भूमिका में हिंदी-उर्दू की भाषागत सांप्रदायिकता, पाठ-भेद, नुक्तों की अनावश्यकता, पाठकों की विभिन्नता आदि पर जो विचार व्यक्त किए हैं, उन पर अच्छी-खासी बहस हो सकती है, परंतु उनका यह दावा सच नहीं है कि प्रेमचंद की उर्दू एवं हिंदी परंपराओं के अदीब प्रायः एक-दूसरे के पाठ या टैक्टस् से अनभिज्ञ रहे हैं। आश्चर्य है कि आलोक राय ने सन् 1983 में छपी (लगभग 20 वर्ष पूर्व प्रकाशित) जाफ़र रजा की पुस्तक 'प्रेमचंद उर्दू-हिंदी कथाकार' का उल्लेख किया है, परंतु यह नहीं मानते कि उर्दू के अदीब प्रेमचंद की रचना के उर्दू-हिंदी पाठों से परिचित थे। दुख इसका भी है कि उन्होंने कमलकिशोर गोयनका की पुस्तक प्रेमचंद और 'शतरंज के खिलाड़ी' (1980) तथा 'प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू की कहानियाँ' (1990) पुस्तक भी नहीं देखी, जिनमें प्रेमचंद की कहानियों के हिंदी-उर्दू पाठों का हिंदी में विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है। 'समक्ष' पुस्तक के प्रकाशन के 12 वर्ष पूर्व 'प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू कहानियाँ' पुस्तक भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली से छपी थी और उसमें प्रेमचंद की 25 कहानियों के हिंदी तथा उर्दू पाठ देने के साथ उनका तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया था। आश्चर्य है कि कुलपति अशोक बाजपेयी आलोकराय तथा मुश्ताक अली किसी को भी इन पुस्तकों की जानकारी नहीं थी, जबकि ये दोनों पुस्तकें हिंदी के प्रतिष्ठित प्रकाशकों ( भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली तथा पूर्वोदय प्रकाशन नई दिल्ली) से प्रकाशित हुई थीं। यदि इन व्यक्तियों ने किसी प्रेमचंद के अध्येयता से पूछा होता तो इन्हें इन पुस्तकों की जानकारी मिल जाती, परंतु यही महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी



विश्वविद्यालय तथा उसके कुलपति की लोकतांत्रिक एवं पारदर्शी प्रक्रिया है, जिसमें उपलब्ध पुस्तकों एवं उनके रचयिताओं की उपेक्षा एवं अवमानना तो है ही, साथ पारदर्शी निर्णय भी गोपनीयता के आवरण में छिप जाते हैं। 'समक्ष' पुस्तक की मौलिकता तथा नई किस्म की पाठ्य-सामग्री देने का दावा भी एकदम खोखला एवं झूठा सिद्ध हो जाता है। इसके साथ हिंदी-संसार को धोखे में रखने तथा 'समक्ष' पुस्तक पर हुआ अपव्यय का दोष भी जुड़ जाता है।

'समक्ष' में 'चयन के संबंध में' शीर्षक टिप्पणी तो अनेक गंभीर दोषों एवं त्रुटियों से भरी पड़ी है। इन दोषों-त्रुटियों की ज़िम्मेदारी किसकी है? इस पर भी विश्वविद्यालय तथा संपादक इस पुस्तक को अनुसंधान की दृष्टि से ठोस तथा नए किस्म की पाठ्य-सामग्री घोषित करता है। इस टिप्पणी से यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

1. इस टिप्पणी के अनुसार 'प्रेमचंद की उर्दू कहानियाँ' डॉ॰ कमर रईस को 1994 में प्रकाशित पुस्तक 'प्रेमचंद के नुमाइंदा अफ़साने' तथा प्रेमगोपाल मित्तल की उर्दू पुस्तक 'प्रेमचंद के सौ अफ़साने' (प्रकाशित 1990 में) से लिए गए हैं। यह अशोक वाजपेयी के महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की उच्चकोटि की अनुसंधान-नीति का प्रमाण है कि इन उर्दू-कहानियों के प्रथम प्रकाशन एवं प्रथम संस्करण के पाठ की पूर्णतः उपेक्षा की गई और यह सोचने का भी कष्ट नहीं किया गया कि प्रथम प्रकाशन अथवा प्रथम संस्करण में प्रकाशित कहानियों का उर्दू पाठ 70-80 वर्षों के बाद सन् 1990 तथा 1994 में प्रकाशित पुस्तकों में आते-आते कितना बदल गया होगा। कमलकिशोर गोयनका की कई पुस्तकों में इसका सप्रमाण विवेचन है कि प्रेमचंद की रचनाओं के प्रथम संस्करणों तथा आज के संस्करणों के पाठ में काफ़ी अंतर आ गया है। अतः 'समक्ष' के संपादकों को 'ज़माना', 'हमदर्द', 'कहकशा' 'जामिया' आदि उर्दू पत्रिकाओं तथा 'सोज़ेवतन', 'फ़िरदौसे ख़्याल', 'मेरे बेहतरीन अफ़साने' 'प्रेमचंद चालीसी-2', 'वारदात', 'निजात', 'जादे-राह' तथा 'दूध की क्रीमत' आदि उर्दू कहानी-संग्रहों के प्रथम संस्करणों से उर्दू-कहानियों के पाठ को लेना चाहिए था। संपादकों के लिए इन मूल स्रोतों को खोजना आसान नहीं था और शायद इसी कारण आसान रास्ता चुना गया और इसी कारण प्रेमगोपाल मित्तल जैसे अज्ञात संपादक की पुस्तक से भी कहानियाँ ले ली गईं। संपादक-गण कम-से-कम यह तो कर ही सकते थे कि प्रेमचंद की जीवित अवस्था में जो उर्दू कहानी-संग्रह छपे थे, उनके प्रथम संस्करण तलाश करते और उनसे ही कहानियों का पाठ होते। यदि प्रेमचंद के समर्पित शोधकर्ताओं को इस कार्य के लिए चुना गया होता, तो इतनी बड़ी भूल नहीं होती। 'समक्ष' में कहानियों के हिंदी पाठ 'मानसरोवर' गुप्तधन तथा कफ़न कहानी-संग्रहों से लिए गए हैं, परंतु वे कौनसे तथा किस वर्ष के संस्करण से लिए गए हैं, इसका उल्लेख नहीं है। यह अनुसंधान के नाम पर मज़ाक नहीं तो और क्या है?

2. 'चयन के संबंध में' शीर्षक टिप्पणी में बीस उर्दू-हिंदी-कहानियों के प्रथम प्रकाशन तथा संकलन के तथ्य दिए गए हैं, जो कई स्थानों पर इसलिए ग़लत और अधूरे हैं, क्योंकि संपादकों ने इस विषय से संबंधित पुस्तकों की पूर्णतः उपेक्षा कर दी। यदि उन्होंने 'प्रेमचंद विश्वकोश' तथा 'प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू कहानियाँ' शीर्षक पुस्तकें देखी होतीं, तो

मौलिकता एवं अनुसंधान के ऐसे झूठे दावे नहीं किए जाते। यह कोई बतानेवाली बात नहीं है कि मौलिक अनुसंधान का दावा करनेवाले विद्वानों के लिए यह जरूरी होता है कि वे संबंधित विषय पर हुए शोधकार्य को गंभीरता से देखें और उसकी आवृत्ति से नहीं, उसके दोषों को दूर करते हुए अपने नए निष्कर्षों को प्रस्तुत करें। यह खेदजनक है कि 'समक्ष' पुस्तक को तैयार करते समय संपादकों ने अपने समक्ष अर्थात् हिंदी-संसार के समक्ष उपलब्ध सामग्री की पूर्णतः उपेक्षा कर दी और पाठकों के सामने झूठी मौलिकता का दावा पेश कर दिया।

3. प्रेमचंद की कहानी 'दुनिया का अनमोल रतन' इस पुस्तक में पहले क्रम पर है तथा इसकी प्रकाशन-तिथि के प्रमाण के लिए किन्हीं प्रेमगोपाल मित्तल का उल्लेख किया गया है। यह मित्तल साहब कौन है, ये प्रेमचंद-विशेषज्ञ कैसे मान लिए गए, क्या इसके विद्वान संपादक इसे बताएँगे? यह कहानी किसी उर्दू-पत्रिका में छपी थी या नहीं, इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है, अतः 'सोजेवतन' कहानी-संग्रह की प्रकाशन तिथि जून 1908 (प्रेमचंद विश्वकोश खंड-2, पृ० 432) है और यही तिथि इस कहानी की प्रकाशन-तिथि मानी जानी चाहिए।

4. 'बड़े घर की बेटा' कहानी के लिए संपादकों ने बताया है कि वह सन् 1947 में छपने वाले 'मानसरोवर' खंड-7 में पहली बार छपी थी, परंतु वह 'सप्त-सरोज' जून 1917 में पहली बार हिंदी में छपी थी। इसी प्रकार 'नमक का दरोगा' कहानी भी मानसरोवर, खंड-8 से पहले 'सप्त-सरोज' जून 1917 में छप चुकी थी। संपादकों ने प्रेमचंद के पहले हिंदी कहानी-संग्रह को भी नहीं देखा।

5. हिंदी-कहानी 'पंच परमेश्वर' की प्रकाशन-तिथि जुलाई 1917 बताई गई है, जबकि यह जून 1916 है। अमृतराय ने भी यही तिथि दी है। इसका अर्थ है कि संपादकों ने अमृतराय की पुस्तक 'प्रेमचंद कलम का सिपाही' भी नहीं देखी।

6. हिंदी-कहानी 'बूढ़ी काकी' किस हिंदी पत्रिका में सबसे पहले छपी, यह संपादकों के साथ अमृतराय को भी नहीं मालूम। यह कहानी 'श्री शारदा' के जनवरी 1921 के अंक में छपी थी। इसी तरह पशु से मनुष्य हिंदी-कहानी 'प्रभा' के फरवरी, 1920 के अंक में छपी थी। 'ब्रह्म का स्वांग' हिंदी-कहानी के प्रथम प्रकाशन के बारे में संपादकों एवं अमृतराय को कोई जानकारी नहीं है। यह कहानी भी 'प्रभा' के मई 1920 के अंक में छपी थी।

7. 'शतरंज के खिलाड़ी' हिंदी-कहानी के उर्दू रूप 'शतरंज की बाजी' उर्दू मासिक पत्रिका 'जमाना' के दिसंबर 1924 के अंक में छपी थी। इसकी जानकारी भी इनके पास नहीं थी।

8. आश्चर्य है संपादकों को प्रेमचंद की पुस्तक 'मेरे बेहतरीन अफसाने' भी नहीं मिली। यह उर्दू कहानी-संग्रह सन् 1933 में छपा था और इसमें 'सुजान भगत' कहानी छपी है।

9. 'नया विवाह' हिंदी-कहानी का विवरण भी ग़लत है। यह हिंदी-कहानी 'सरस्वती' मई 1932 में छपी थी और उर्दू में बाद में सन् 1933 में, जबकि संपादकों के विचार में यह पहले उर्दू में छपी थी।

10. 'निजात' उर्दू-कहानी 'वारदात' से पहले इसी शीर्षक से सन् 1933 में प्रकाशित उर्दू कहानी-संग्रह में छप चुकी थी।

11. 'कफ़न' कहानी के बारे में भी संपादकों द्वारा दी गई सूचना दोषपूर्ण है। अमृतराय की सूचना ग़लत है कि यह कहानी जामिया उर्दू पत्रिका में 1936 में छपी थी। जबकि सत्य यह है कि यह कहानी 'जामिया' के दिसंबर, 1935 के अंक में छपी थी और हिंदी में 'चाँद' हिंदी-पत्रिका के अप्रैल, 1936 के अंक में पहली बार छपी थी। अफ़सोस है संपादकों को हिंदी 'कफ़न' के प्रथम प्रकाशन की भी कोई जानकारी नहीं थी। हिंदी-कहानी 'मृतक भोज' जनवरी 1932 में पुस्तक रूप में छपी थी, यह भी उन्हें ज्ञात नहीं था।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि 'समक्ष' के संपादकों ने प्रेमचंद की उर्दू तथा हिंदी कहानियों के प्रथम प्रकाशन तथा प्रथम संकलन आदि की पूरी खोज-ख़बर नहीं की तथा उपलब्ध सामग्री का भी उपयोग नहीं किया तथा दावा यह किया कि यह पुस्तक मौलिकता तथा वैज्ञानिक अनुसंधान का जीवंत प्रमाण है। हिंदी में अनुसंधान की जैसी दुर्दशा है, यह पुस्तक 'समक्ष' वास्तव में उसका जीवंत उदाहरण है। प्रेमचंद की उर्दू-कहानियों के नागरी लिपि में लिप्यंतरण की परीक्षा अभी शेष है, जो हिंदी-उर्दू भाषा के विशेषज्ञ ही बैठकर कर सकते हैं, परंतु 'समक्ष' पुस्तक का यह प्रयास कितना सार्थक, कितना मौलिक तथा कितना शोध-आधारित है, यह उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हिंदी के विद्वान अब तय कर सकते हैं तथा महात्मा गांधी हिंदी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय के अधिकारियों तथा संपादकों से यह प्रश्न भी पूछा जाना चाहिए कि ऐसे अमौलिक एवं निरर्थक कार्य में वर्षों की मेहनत तथा लाखों के धन के अपव्यय का औचित्य क्या था? यदि अशोक बाजपेयी तथा प्रो० आलोक राय एवं मुस्ताक़ अली ने भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू कहानियाँ' देखी होती तो निश्चय ही 'समक्ष' पुस्तक के कार्य को वे आरंभ ही नहीं करते और यदि करते तो 'समक्ष' का दूसरा ही रूप होता।

प्रेमचंद को लेकर झूठे दावे वाली एक और पुस्तक मेरी नज़र में आई है। यह पुस्तक है—'सोलह अप्राप्य कहानियाँ' अर्थात् प्रेमचंद की अप्राप्य सोलह कहानियों का यह संग्रह किन्हीं तारकेश्वरनाथ सिंह ने संपादित किया है तथा इसका प्रकाशन सुदेश साहित्य मंडल 16 यू०बी० बंगलों रोड, जवाहरनगर दिल्ली 110007 से हुआ है। यह सोलह अप्राप्य कहानियों का संग्रह अंदर के पृष्ठों में जाकर प्रेमचंद की चुनी हुई सोलह हृदयस्पर्शी कहानियाँ के संग्रह के रूप में बदल जाता है, परंतु संपादक और प्रकाशक के ये दोनों ही दावे झूठे हैं। यह न तो अप्राप्य कहानियों का संग्रह है और न प्रेमचंद की चुनी हुई कहानियों का ही संग्रह है। इसमें दी गई सोलह कहानियाँ सभी उपलब्ध कहानियाँ हैं और प्रेमचंद के कहानी-संग्रहों में मौजूद हैं। इस कहानी-संग्रह की पंद्रह कहानियाँ, मानसरोवर, खंड 2 से तथा एक कहानी मानसरोवर खंड-3 से ली गई है। प्रेमचंद के कहानी-संग्रह 'मानसरोवर' (आठ खंड) अपने प्रकाशन काल से आज तक बाज़ार में उपलब्ध हैं, अतः इनकी कहानियों के इस संग्रह को अप्राप्य कहानियों का संग्रह कहना एकदम असत्य है। प्रेमचंद को लेकर ऐसे झूठे दावे पाठकों को भ्रमित करेंगे और लेखक की ग़लत तस्वीर पेश करेंगे। संपादक एवं प्रकाशक अप्राप्य कहानियों का संग्रह बताकर इसे सरकारी ख़रीद में बेचकर लाभ उठाना चाहता है, परंतु उसे समझना चाहिए कि वह ऐसा करके कितना बड़ा साहित्यिक अपराध कर रहा है। प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य (दो खंड) पुस्तक जब भारतीय ज्ञानपीठ ने छपी तो उसमें सारी सामग्री अप्राप्य थी

और जब श्रीपतराय ने मेरी दी हुई प्रेमचंद की सोलह अप्राप्य कहानियों का संग्रह सोलह अप्राप्य कहानियाँ शीर्षक से प्रकाशित किया, तो वे सब कहानियाँ हिंदी में अनुपलब्ध ही नहीं, अज्ञात भी थीं।

इस प्रकार प्रेमचंद को लेकर झूठे दावे किए जा रहे हैं, कहीं ये बौद्धिक हैं और कहीं व्यावसायिक तथा कहीं ये घोर राजनीतिक हैं। ये सभी प्रयास प्रेमचंद को अपने-अपने स्वार्थों और कटघरों में बंद करके उन पर अपना अधिकार करने के क्षुद्र प्रयास हैं, जिनका पर्दाफाश जरूरी है। प्रेमचंद को मार्क्सवादी बताने के झूठे दावे का खोखलापन तो नंगा हो चुका है, अब अन्य दावों के भ्रमजाल को तोड़ना भी जरूरी है। मनुष्य की महानता जहाँ सच्चे अनुयायी पैदा करती है, वहाँ झूठे दावेदार भी कुकुरमुत्तों की तरह उत्पन्न होते हैं, जो महानता के सच्चे रूप को घूमिल करते हैं। प्रेमचंद को ऐसे ही दावेदारों से बचाने की आवश्यकता है। यदि हिंदी के नामवरी विद्वान इस कार्य को नहीं करें तो प्रेमचंद के पाठकों को इस महत् कार्य को अपने हाथ में लेना चाहिए। प्रेमचंद के वास्तविक स्वरूप की रक्षा के लिए हमें यह तो करना ही होगा।

□ ए-98 अशोक विहार, फेज प्रथम

दिल्ली

मो० 09811052469

## रीतिकवियों की राष्ट्रीयता

साहित्यवारिधि डॉ० रामानंद शर्मा

डी०लिट०

उपप्राचार्य एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग

हिंदू कालेज, मुरादाबाद (उ०प्र०)

रीतिकालीन कवियों पर जो आरोप लगाये जाते हैं, उनमें एक यह भी है कि राजाश्रित होने के कारण आश्रयदाता की प्रशस्ति उनके काव्य का अपरिहार्य अंग बन गयी है, फलतः उनकी राष्ट्रीयता की भावना संकुचित हो गयी है। यह आरोप निराधार तो नहीं है, लेकिन इसे यथार्थ भी नहीं कहा जा सकता। यदि हम पुरातन काव्य की आलोचना आज के मानदंडों पर करते हैं, तो उस काव्य के साथ न्याय कदापि नहीं कर सकते। वस्तुतः पुरातन काव्य के समीक्षण, और विशेषतः दोषारोपण से पूर्व, उस काल की परिस्थितियों तथा समानान्तर धाराओं का आकलन और विश्लेषण आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। अतएव रीतिकवियों की राष्ट्रीयता पर दृक्पात से पूर्व तत्कालीन परिस्थितियों और तज्जन्य इतिहासकारों के दृष्टिकोण पर प्रकाश डालना आवश्यक समझते हैं।

### ऐतिहासिक परिस्थितियाँ

अंतिम हिंदू सम्राट पृथ्वीराज चौहान की पराजय के पश्चात् तुर्क और अफगानों का दिल्ली पर अधिकार हो गया। मुहम्मद शाहबुद्दीन गौरी दिल्ली और कन्नौज को जीतकर तथा कुतुबुद्दीन ऐबक को अपना प्रतिनिधि बनाकर वापस लौट गया। इसके साथ ही गुलामवंश का शासन प्रारंभ हुआ। 'ऐबक' फ़ारसी का शब्द है, जिसका अर्थ है गुलाम। इस वंश में दस शासक हुए, जिन्होंने सन् 1206-1290 ई० तक 84 वर्ष शासन किया। ये शासक थे— कुतुबुद्दीन ऐबक, शम्सुद्दीन अल्तमिश, रज़िया बेगम, नासिरुद्दीन, गयासुद्दीन बलबन और मुअज्जुद्दीन केकुबाद। ये सभी सुलतान न केवल मुस्लिम थे, बल्कि इस्लाम को राजधर्म भी मानते थे और उसके प्रचार-प्रसार के लिए प्रयत्न भी करते थे, लेकिन उनकी समस्या थी हिंदू राजाओं तथा किसानों का विरोध। 'सुल्तानों को प्रतिवर्ष विद्रोही हिन्दुओं और विरोधी किसानों का दमन करने के लिए सैनिक यात्राएँ करनी पड़ती थीं। लगभग प्रत्येक सुल्तान को एक ही भूप्रदेश कई-कई बार जीतना पड़ता था। इन परिस्थितियों में गुलाम सुल्तानों के सामने समस्या यह थी कि पूर्वाधिकारियों से प्राप्त राज्य की रक्षा कैसे की जाए, आक्रमणकारी युद्धों द्वारा नये प्रदेश जीतने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था।' <sup>1</sup> वस्तुतः विजित प्रदेशों के हिंदू राजा और किसान इन सुल्तानों के प्रति निरंतर विद्रोह करते रहते थे।

सन् 1290 से 1320 ई. तक खलजी वंश का शासन रहा। इनमें जलालुद्दीन फ़िरोज़शाह, अलाउद्दीन, कुतुबुद्दीन मुबारकशाह और नासिरुद्दीन मलिक ख़ुसरो शासक रहे। इनमें अलाउद्दीन ही प्रभावशाली शासक था और उसका शासन भी अधिक समय (सन् 1295-1316 ई.) तक रहा। अपने चाचा और श्वसुर जलालुद्दीन की छलपूर्वक हत्या कर अलाउद्दीन सुल्तान बना तथा शक्ति एवं निरंकुशता के बल पर उसने शासन किया। उसने गुजरात, रणथम्भौर, चित्तौड़ आदि हिंदुओं के राज्य विजित किये। गुलाम वंश के निर्णय धार्मिक ग्रन्थों के अनुसार ही होते थे, लेकिन अलाउद्दीन राजकीय कार्यों में धार्मिक व्यक्तियों का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करता था। अलाउद्दीन को विद्रोह की आशंका रहती थी, फलतः उसने हिंदुओं को निर्धन बनाने की युक्ति निकाली। कराधान इतने कठोर किये कि वे रोज़ी-रोटी के जाल से बाहर निकल ही न सके। उसने सम्मेलन एवं गोष्ठियों पर रोक लगा दी, जिससे षड्यंत्र न पनप सके। विद्रोह के संदेह में बीस हजार नवमुस्लिमों की हत्या करा दी।<sup>2</sup> अलाउद्दीन ने गुजरातनरेश की पत्नी कमला का धर्मपरिवर्तन कराकर उससे निकाह किया और उसकी बेटी देवल को अपने पुत्र की पत्नी बनाया।

सन् 1320-1414 ई. तक तुगलक वंश का शासन रहा। इस वंश के शासकों में गयासुद्दीन तुगलक, मुहम्मद-बिन-तुगलक, फ़िरोज़ तुगलक, महमूदशाह का नाम मुख्य है। इनमें मुहम्मद तुगलक और महमूद शाह को ही शासन करने का अधिक समय मिला, शेष का शासन अल्पकालिक ही रहा। इनमें मुहम्मद बिन तुगलक अपनी भूलों के लिए अधिक चर्चित रहा। राजधानी-परिवर्तन और युद्धों की असफल योजनाओं में जन-धन की अपार हानि हुई। महमूद शाह का शासन तैमूर के आक्रमण के कारण भुखमरी, अराजकता तथा राज्य की दुर्दशा के लिए अधिक जाना गया। मुहम्मद तुगलक और फ़िरोज़ तुगलक के शासनकाल में धर्माधता बहुत बढ़ गयी थी। मंदिर-निर्माण, मूर्तिपूजा आदि पर कड़ा दंड दिया जाता था और धार्मिक सामग्री को सार्वजनिक रूप से नष्ट कर दिया जाता था। मुहम्मद तुगलक 'रक्तपिपासु' कहा गया है, वह प्रतिदिन किसी न किसी का वध करता था। विजित प्रदेशों के राजकुमारों को धर्मांतरण के लिए विवश किया जाता था, उनकी बहू-बेटियों को ईद आदि के समय नृत्यगान के लिए बाध्य किया जाता और बाद में परिजनों को लूट की वस्तुओं के समान उपभोग के लिए वितरित कर दिया जाता था।<sup>3</sup> इस काल में शासन में अराजकता, अव्यवस्था, विलासिता, षड्यन्त्र आदि उत्तरोत्तर पनपते रहे। यही कारण है कि तैमूर के आक्रमणों का प्रबल प्रतिरोध न हो सका।

सन् 1414 से 1451 ई. तक सैयद वंश का शासन रहा। इस काल में खिज़्र ख़ाँ, मुबारकशाह, मुहम्मदशाह और अलाउद्दीन आलमशाह का शासन रहा। इनमें न्यूनाधिक योग्यता खिज़्र ख़ाँ में ही थी, लेकिन अव्यवस्था इतनी थी कि राजस्वप्राप्ति के लिए उसे सैनिक यात्राएँ करनी पड़ती थीं, विद्रोहों का निरंतर सामना करना पड़ता था। मुबारक शाह की भी यही स्थिति थी, उसे भी कोई सफलता नहीं मिली। उसके दरबार में पहली बार दो हिंदू अमीरों का उल्लेख अवश्य मिलता है। मुहम्मदशाह के शासनकाल में हिंदू-विरोधी अभियान चलते रहे। सैयदकाल विरोधों, संघर्षों, षड्यंत्रों आदि से ग्रस्त रहा और कोई भी सफल एवं प्रभावी शासक नहीं दे सका।

सन् 1451-1526 ई० तक लोदीवंश का शासन रहा, जिसमें बहलोल लोदी, सिकंदर लोदी और इब्राहीम लोदी तीन शासक हुए। बहलोल अपनी वीरता और योग्यता के बल पर आगे बढ़ा था। उसने विद्रोहों को दबाने, शासकों को अपना बनाने तथा अशांति एवं अव्यवस्था को दूर करने में काफी सफलता प्राप्त की। वह दानी, विद्याप्रेमी तथा सच्चा मुसलमान था, लेकिन साम्प्रदायिकता से ग्रस्त नहीं था, फलतः हिंदुओं का स्नेह एवं सहयोग पाने में सफल रहा। सिकंदर रणकुशल एवं अनुभवी शासक था, वह साहित्यप्रेमी और कलापारखी था और दीन-दुखियों एवं गुणी व्यक्तियों के प्रति उदार भी। 'वह योग्य, शक्तिशाली, कुशल शासक होते हुए भी धर्मान्ध, असहिष्णु मुसलमान था। हिंदुओं को जबरन मुसलमान बनाना, मंदिरों का ध्वंस करना, वह इस्लाम की सच्ची खिदमत समझता था। उसने मथुरा के मन्दिर तुड़वाकर मूर्तियाँ कस्सावों को दे दीं, ताकि वे उन पर मांस कूटें।' <sup>4</sup> इतिहासकार भी स्वीकारते हैं— 'शासक के रूप में सिकंदर के चरित्र का सबसे बड़ा कलंक उसकी धर्मान्धता थी। सैनिक यात्राओं के दौरान हिंदू-मंदिरों का विध्वंस करना और उनके स्थान पर मस्जिदें खड़ी करना उसने एक नियम बना लिया था। हिंदूधर्म को कुचलने और इस्लाम का उत्थान करने के लिए उसने हर समय प्रयत्न किया।' <sup>5</sup> इब्राहीम दानी, गुणी, पराक्रमी, साहसी और कर्तव्यशील होकर भी क्रोधी, हठी, प्रतिशोधी और क्रूर स्वभाव का था, फलतः उसने सभी को असन्तुष्ट कर लिया था। तनिक-सी भूल पर कारावास या प्राणदण्ड उसका स्वभाव बन गया था। शरणागत होने पर भी वह प्रतिशोध लेने में नहीं चूकता था। अफगानियों ने दौलत ख़ाँ के नेतृत्व में विद्रोही सेना गठित की। विद्रोही व्यक्तियों और राणा साँगा के साथ युद्ध में उसे काफी क्षति उठानी पड़ी। दौलत ख़ाँ के निमंत्रण पर ही बाबर भारत आया और अप्रैल, सन् 1526 ई. में पानीपत के मैदान में इब्राहीम मारा गया। इब्राहीम के पतन के साथ ही सल्तनत काल पूर्ण होता है। इस सल्तनत काल की समीक्षा करते हुए डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव टिप्पणी करते हैं— 'सुल्तान को अपने निजी जीवन में ही नहीं, बल्कि शासन के सम्बन्ध में भी इन (शरीयत) नियमों का पालन करना पड़ता था।... भारत में इस्लामी राज्य का आदर्श था— देश की समस्त जनता को मुसलमान बनाना, देशी धर्मों का मूलोच्छेदन करना तथा जनता को मुहम्मद का धर्म अंगीकार करने पर बाध्य करके दार-उल-हर्ब (गैरमुसलमानों का देश) को दार-उल-इस्लाम (मुसलमानों का देश) में परिवर्तित करना।' <sup>6</sup>

मुगलकाल रीतिकाल के मूल में है और विशेष रूप से शाहजहाँ का व्यक्तित्व। अतएव इस काल की नीतियों पर विस्तार से विचार अपेक्षित है। मुगल साम्राज्य की स्थापना ज़हीरुद्दीन मुहम्मद बाबर ने की, जिन्हें शासन के लिए कम ही समय मिल पाया। उनका यह अल्पकालिक समय भी युद्धों में ही व्यतीत हुआ और वहाँ उनका व्यवहार निष्पक्ष नहीं था। "हमारे देश के लोगों के साथ उसने धार्मिक उदारता और सहिष्णुता की नीति नहीं बरती। राणा साँगा के विरुद्ध उसने धर्मयुद्ध (जिहाद) प्रारम्भ किया था और अपने आदमियों को यह कहकर उसके विरुद्ध लड़ने को भड़काया था कि वह काफ़िर है और उसके खिलाफ़ युद्ध करना हमारा धार्मिक कर्तव्य है। विजयप्राप्ति के पश्चात् उसने ग़ाज़ी (काफ़िरों का नाशक) का खिताब प्राप्त किया था। चंदेरी के मेदिनी राय के विरुद्ध भी उसने ऐसा ही धर्मयुद्ध लड़ा था और एक धर्मान्ध सुन्नी के रूप में व्यवहार किया था। अयोध्या में उसने अपनी मस्जिद

ऐसे स्थान पर निर्माण कराई थी, जिसे श्रीरामचंद्र जी का जन्मस्थान मान लाखों हिंदू पूजते थे। चुंगी-कर हटाने में भी उसने हिंदू-मुसलमान के भेदभाव को माना था।<sup>7</sup> स्पष्टतः बाबर का व्यवहार सल्तनतकाल के शासकों जैसा ही था। हुमायूँ दुर्भाग्यशाली सुल्तान था और उसका अधिकांश समय युद्धों में ही व्यतीत हुआ। शेरशाह को जनकल्याणकारी योजनाएँ प्रारम्भ करने का श्रेय अवश्य प्राप्त है, लेकिन हिंदू राजाओं के विरुद्ध धर्मयुद्ध और विजयप्राप्ति के पश्चात् मंदिर गिराकर मस्जिदें बनवाने के आरोप से भी वह मुक्त नहीं है। 'यह कहना उचित न होगा कि शेरशाह धार्मिक पक्षपात से बिल्कुल रहित था और हिंदूधर्म के प्रति उसका दृष्टिकोण 'श्रद्धापूर्ण उपेक्षा' से प्रेरित था। किन्तु इसके साथ ही उसको उन सुल्तानों की श्रेणी में बिठाना भी उचित नहीं है जो हिन्दुओं को तुच्छ और उनके धर्म को अमान्य या गया-बीता समझते थे।'<sup>8</sup> वस्तुतः वह सल्तनतकालीन शासकों और अकबर के मध्य की सशक्त कड़ी है और हिन्दुओं के प्रति उसका दृष्टिकोण सुल्तानों की अपेक्षा उदार और अकबर की अपेक्षा संकीर्ण था। 'उसकी सहिष्णुता का दायरा अकबर जैसा विशाल भले ही न हो, परंतु उसमें कट्टरता नहीं थी। ... उदारता और सहिष्णुता का जो पौधा शेरशाह ने लगाया, अकबर के काल में वह वट वृक्ष बन गया।'<sup>9</sup> जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर अत्यन्त उदार और सहिष्णु सम्राट था। अपनी उदारता के कारण वह हिंदुओं में जितना लोकप्रिय हुआ, उतना मुसलमानों में नहीं। उसने सभी धर्मों की उत्तम बातों को मिलाकर एक व्यापक धर्म बनाने का प्रयास किया और हिंदुओं की अनेक बातें वैयक्तिक जीवन में स्वीकारीं। 'सम्राट ने हिंदूधर्म के बहुत से विश्वासों और विधानों को अपना लिया था; उदाहरणार्थ पुनर्जन्म और कर्मवाद के सिद्धांत। हिंदू रहन-सहन को भी उसने अपनाया था। रक्षाबंधन, दशहरा, दिवाली और वसन्त आदि हिंदू त्योहारों को वह बड़े उत्साह से मनाता था। कभी-कभी वह अपने मस्तक पर हिन्दुओं की भाँति तिलक भी लगाया करता था।'<sup>10</sup> उसकी हिंदू निष्ठा का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि उसने अपने अन्तिम दिनों में सोने और चाँदी के ऐसे सिक्के भी चलाए, जिन पर राम और सीता का चित्र अंकित था और नागरी में 'रामसिय' लिखा हुआ था।<sup>11</sup> इतिहासविदों का यह कहना अयथार्थ नहीं है— 'अकबर ने पर्याप्त मात्रा में हिंदूधर्म का आदर किया। केवल एक विषय ऐसा था, जिसका उतार उसके पास नहीं था। देश का शासन मुस्लिम क़ानून से होता था और कुरआन पर आधारित होने के कारण उस क़ानून में यह विधान था कि यदि मुसलमान अपराधी हो, तो उसके विरुद्ध काफ़िर गवाह की गवाही सुबूत नहीं मानी जाएगी। फलतः मुसलमानों के विरुद्ध हिंदुओं को न्याय अभीष्ट मात्रा में नहीं मिल पाता था।'<sup>12</sup> स्पष्टतः अकबर मुसलमान होकर भी हिंदूरीति-नीति के अत्यधिक निकट आ गया था और उसकी अनेक बातें उसने ग्रहण कर ली थीं। इतिहासकार तो यहाँ तक मानते हैं— 'यदि हिंदू पंडितों और राजाओं में इतनी उदारता होती कि वे मुसलमान राजा को हिंदूधर्म में दीक्षित करने को तैयार होते और उस समय मूर्तिपूजा तथा जात-पाँत को दूर रखने की चेष्टा करते, तो सम्भव था कि अकबर हिंदूधर्म ग्रहण कर लेता।'<sup>13</sup> भोगविलास और मद्यपान के अत्यधिक अभ्यस्त तथा हिंदू माता से उत्पन्न नूरुद्दीन मुहम्मद जहाँगीर में पिता जैसी उदारता एवं सहिष्णुता नहीं थी। वह क्षणिक आवेग में धर्मविरोधी कार्य कर डालता था। उसने राजौरी के हिंदुओं को इसलिए दंडित करने का आदेश दिया, क्योंकि वे मुस्लिम कन्याओं से विवाह कर उन्हें हिंदूधर्म में प्रविष्ट कर लिया करते थे।



मेवाड़ और काँगड़ा में युद्ध के दौरान उसने मंदिरों को नष्टभ्रष्ट कराया, अजमेर के वाराह मंदिर को नष्ट करके मूर्ति को तालाब में फिकवा दिया। शाहजहाँ में तो उदारता और सहिष्णुता का नितांत अभाव था। शाहजहाँ के आदेश से मंदिरों के जीर्णोद्धार का कार्य रुक गया था और नवनिर्मित मंदिरों को ध्वस्त करा दिया गया था। फलतः वाराणसी क्षेत्र में 72 मंदिर गिरा दिए गए थे। नौकरी और उपहारों का प्रलोभन देकर हिंदुओं को धर्मपरिवर्तन के लिए बाध्य किया जाता था। राजसिंह कछवाहा के पुत्र बख्तावर सिंह को धर्मांतरण के लिए दो हजार रुपया और एक सरोपा प्राप्त हुआ था। पंजाब, कश्मीर और गुजरात में हिंदू-मुस्लिम मिलकर रहते थे और परस्पर वैवाहिक संबंध भी रखते थे। हिंदू लड़की मुसलमान से विवाह कर मुस्लिम हो जाती थी और मुस्लिम लड़की हिंदू से विवाहकर हिंदू। शाहजहाँ ने इस प्रथा पर रोक लगा दी और आदेश दिया कि समस्त मुस्लिम लड़कियों को उनके हिंदू पतियों से छीनकर माता-पिता को सौंप दिया जाये। हिंदू पति मुस्लिम पत्नी को तभी साथ रख सकेगा, जब वह धर्मपरिवर्तन कर मुस्लिम विधि से निकाह करले।<sup>14</sup> शाहजहाँ के व्यक्तित्व की यह संकीर्णता औरंगजेब में व्यापक और विस्तृत रूप में पहुँची। मुहिउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब ने इस्लाम को राजधर्म बनाकर हिंदूधर्म के प्रति घोर असहिष्णुता दिखायी। उसने दरबार में नृत्यगान, जन्मदिन पर तुलादान और झरोखादर्शन को इस्लाम विरोधी मानकर बंद करा दिया, काफ़िरों के मंदिरों और पाठशालाओं को नष्टभ्रष्ट करने के आदेश दिये। 'संसारप्रसिद्ध बनारस के विश्वनाथ, मथुरा के केशवदास तथा पाटन के सोमनाथ जैसे पवित्र मन्दिरों को गिरा दिया गया, यहाँ तक कि मुग़लों के मित्र हिंदू नरेशों के राज्यों-जयपुर आदि- के मंदिरों तक को नहीं छोड़ा गया। कभी-कभी तो मूर्तियों को तोड़ने के साथ-साथ अनियंत्रित भ्रष्टता का कार्य तक सम्पन्न हुआ, जैसे देवालय में गौओं का वध करना, मूर्तियों को जनता के पैरों द्वारा कुचला जाना।'<sup>15</sup> परिणामतः उत्तर भारत में सिक्ख, जाट और बुंदेले उसके विरोध में खड़े हो गए तो दक्षिण में मराठाओं ने उसे चैन से जीने नहीं दिया। औरंगजेब के पश्चात् सन् 1707 से 1857 तक ये शासक हुए-बहादुरशाह, जहाँदार शाह, फ़रुखसियर, रफी-उद-दरजात, रफीउद्दौला, मुहम्मदशाह, अहमदशाह, आलमगीर द्वितीय, शाहआलम द्वितीय, अकबर द्वितीय और बहादुरशाह। ये प्रायः सभी साधनहीन, पराक्रमहीन, विलासी और अकर्मण्य रहे। 'धार्मिक असहिष्णुता की नीति उत्तरकालीन मुग़ल सम्राटों के दिल्ली दरबार में तब तक जारी रही, जब तक वे अपने मन्त्रियों के हाथ की कठपुतली नहीं बन गए। बहादुरशाह (1707-11) की सरकार बड़ी कठोर थी और मुसलमानों के साथ पक्षपात करती थी। उसके काल में जज़िया और तीर्थयात्रा-कर पहले की तरह ही जारी रहे। उसका उत्तराधिकारी जहाँदारशाह उसी के पदचिह्नों पर चलता रहा। इन दोनों सम्राटों के शासनकाल में न तो कोई विशेष योग्य हिंदू था, न कोई उच्च पद पर ही योग्य हिंदू प्रतिष्ठित किया गया। किन्तु जब 1713 ई. से फ़रुखसियर सम्राट हुआ और सैयद भाइयों ने राजनीति को अपने हाथ में ले लिया, तब जज़िया जैसा घृणित कर उठा लिया गया था, किन्तु तीर्थयात्रा-कर अब से मुग़ल साम्राज्य के अन्त तक जारी रहा। मुहम्मदशाह के बाद दिल्ली के जितने भी शासक हुए, वे मराठों से सदा डरते रहे और अपनी हिंदू जनता के सताने का विचार स्वप्न में भी नहीं कर सके।'<sup>16</sup>

राजनीतिक इतिहास के इस संक्षिप्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि पृथ्वीराज

चौहान के पश्चात् दिल्ली सल्तनत सदैव मुसलमानों के अधिकार में रही और अकबर जैसे एक-दो उदार सुलतानों के अतिरिक्त सभी शासक हिंदू जनता को न केवल दोगम दर्जे का नागरिक मानते रहे, बल्कि उनके धर्मस्थलों, रीतिरिवाजों, पर्वत्योहारों को तिरस्कृत भी करते रहे।

### प्रमुख इतिहासकार

मध्यकालीन सुलतानों ने अपने संरक्षण में इतिहासग्रंथों का लेखन फ़ारसी में कराया। यहाँ प्रमुख इतिहासकारों का संक्षिप्त परिचय और उनकी प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला जा रहा है—

१. **अमीर खुसरो** : पटियाली (जनपद एटा) में उत्पन्न अबुल हसन यामिनुद्दीन 'अमीर खुसरो' नाम से प्रसिद्ध हुए। खुसरो फ़ारसी भाषा का प्रतिनिधि कवि और लेखक हैं। अमीर खुसरो ने बलबन से लेकर जूना ख़ाँ तक सात सुलतानों को देखा और अलाउद्दीन खलजी, मुबारकशाह और गयासुद्दीन तुगलक का दरबारी कवि बना तथा इनके युद्ध अभियानों में भी सम्मिलित हुआ। उसने तीनों राजवंशों के शासनकाल की घटनाओं को गद्य और पद्य में क़सीदे, मसनवी और इतिहास के रूप में प्रस्तुत किया। न केवल साहित्य, बल्कि इतिहास-ग्रंथ 'खजाइन-उल-फुतूह' में भी उसकी दृष्टि निष्पक्ष नहीं रही है। हम्मीरदेव और अलाउद्दीन के अन्तिम युद्ध, जिसमें वह स्वयं सम्मिलित था, के विषय में वह लिखता है 'उसके साथ दो-चार ही काफ़िर थे।' जबकि चौहानवंश पर शोध करने वाले डॉ॰ दशरथ शर्मा कम से कम चार सेनापतियों की उपस्थिति स्वीकारते हैं। वर्तमान इतिहासकार उसके द्वारा कथित 'अलाउद्दीन की सफलताओं' और 'गयासुद्दीन तुगलक की उपलब्धियों' को अतिशयोक्तिपूर्ण मानते हैं। डॉ॰ गणेशप्रसाद बरनवाल का तो यह अभिमत है— 'अमीर खुसरो वस्तुतः एक कवि है और वह भी दरबारी, उसमें एक इतिहासकार को खोजना समीचीन नहीं है।' <sup>17</sup>

२. **ज़ियाउद्दीन बर्नी** : बर्नी ने 'तारीख़े-फ़िरोज़शाही' की रचना सन् 1359 ई॰ (फ़िरोज़ तुगलक के शासनकाल) में पूर्ण की और उसे अपने प्रिय सुलतान को समर्पित किया। उसके पिता और चाचा खलजी सुलतानों के समय उच्च राजकीय पदों पर थे और वह स्वयं भी खलजी और तुगलक सुलतानों का प्रत्यक्ष द्रष्टा था, लेकिन आधुनिक इतिहासकार उसके तथ्यों को प्रामाणिक नहीं मानते। इलियट उसे 'पाखंडी वृत्तांतकार' मानते हुए तुगलक की नाराज़गी के कारण कुछ घटनाओं को छिपाने या उन पर पर्दा डालने का आरोप लगाते हैं। 'बर्नी कट्टर सुन्नी उलेमा वर्ग का सदस्य था। अतः बहुसंख्यक हिंदुओं के प्रति उसमें घृणा भाव का होना स्वाभाविक था। ... सुलतानों के हिंदू-विरोध के अनुपात में वह उनकी प्रशंसा अथवा आलोचना करता है। ऐसा करने में बर्नी ने कितनी बार तथ्यों की बलि चढ़ायी, वसूलफ़रोशी की, यह बेमानी है, उसने अपना 'मिशन' पूरा किया। सुलतानों के मूल्यांकन की एक और कसौटी बर्नी रखता है, वह है मुस्लिम प्रजा की हित-हानि।' <sup>18</sup> स्पष्टतः यह एक आश्रित उलेमा का सांप्रदायिक दृष्टि से लिखा गया पक्षपातपूर्ण विवरण है, तथ्यपरक इतिहास नहीं, जबकि इसकी भूमिका में तथ्यपरकता और तत्त्वान्वेषण की दर्पमयी उक्तियाँ मिलती हैं। डा. नूरुल हसन और प्रो॰ मौहम्मद हबीब ने भी इसकी अनेक बातों को काल्पनिक कहा है।

३. **मुहम्मद कासिम हिंदूशाह 'फ़रिश्ता'** : 'फ़रिश्ता' अहमदनगर के सुलतान मुर्तज़ा निज़ामशाह की सेवा में था। राजकीय अभियानों में निरंतर व्यस्त रहने वाले फ़रिश्ता के ऐतिहासिक ज्ञान और प्रखर प्रतिभा से परिचित होने पर विद्याप्रेमी इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय

ने उसे 'हिंदुस्तान में इस्लामी शासनकाल' का इतिहास लिखने की आज्ञा दी, जिसे उसने पाँच वर्ष के परिश्रम के पश्चात् सन् 1611 ई० में पूर्ण किया और अपना ग्रंथ इब्राहीम आदिलशाह को समर्पित किया।

'तारीख़े-फ़रिश्ता' मूलतः दक्षिण के सुल्तानों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है। वह मूलतः भारतवर्ष में इस्लाम के विकास से संबंधित है। लेखक की दृष्टि इस्लामिक अवश्य रही है, लेकिन उसमें अन्य इतिहासकारों की अपेक्षा कट्टरता कम है। सम्पादक महोदय ने स्वयं भी इस तथ्य को स्वीकारा है— 'यह नहीं कहा जा सकता कि वह धार्मिक कट्टरता से पूर्ण मुक्त है, किन्तु मध्य युग के अन्य लेखकों की तुलना में हिंदुओं के प्रति द्वेषभाव उसमें कम है।' <sup>19</sup> दक्षिण भारत के सुल्तानों के ऐतिहासिक स्रोत के रूप में इसका विशेष महत्त्व है, उत्तर भारत का वर्णन और विवरण भी सीमित ही है।

४. **अबुल फ़ज़ल** : सन् 1551 में जन्मा अबुल फ़ज़ल, मुबारक नागौरी का पुत्र और शेख़ अबुल फ़ैज़ी का छोटा भाई था। 22-23 वर्ष की अवस्था में उसका परिचय अकबर-दरबार से हुआ और वह शीघ्र ही अकबर का मित्र और विश्वासपात्र बन गया। वह न केवल श्रेष्ठ वीर था, बल्कि फ़ारसी का ज्ञाता और शास्त्रज्ञ विद्वान् भी था। 'अकबर ने इसे अपने शासनकाल का इतिहास लिखने का आदेश दिया था, अतएव इसने साम्राज्य के सभी राजाओं और नवाबों को लिखा कि वे अपने-अपने वंश की तवारीख़ लिखकर प्रस्तुत करें। अतएव बाबर और हुमायूँ के शासनकाल की घटनाओं का वर्णन लिखने के लिए गुलबदन बेगम और जौहर को आदेश दिया गया। अब्बास सरवानी को भी सूर-अफ़ग़ानों का इतिहास लिखने का काम सौंपा गया। बाबर की आत्मकथा, मिर्जा हैदर दोगलत की तारीख़े-रशीदी भी अबुल फ़ज़ल को उपलब्ध करायी गई।' <sup>20</sup> इस सामग्री के आधार पर अबुल फ़ज़ल ने 'अकबरनामा' और 'आइने-अकबरी' की रचना की। अबुल फ़ज़ल अकबर को 'इंसाने-कामिल' तथा 'नूर' का अंश मानता था और उसकी सहिष्णुता एवं उदारता से प्रभावित भी था। उसने 'सुलहकुल' के प्रचार-प्रसार में व्यापक भूमिका निभायी थी, लेकिन अकबर की कुछ पराजयों पर अबुल फ़ज़ल मौन भी दिखता है।<sup>21</sup>

५. **अब्दुल कादिर बदायूँनी** : बदायूँनी शेख़ मुबारक का शिष्य और अबुल फ़ज़ल एवं फ़ैज़ी का सहपाठी था। बदायूँनी नौ वर्ष पटियाली के जागीरदार हुसैन ख़ाँ की सेना में रहा। सन् 1574 ई० में अकबर ने उसे इमाम के पद पर नियुक्त किया। उसकी इतिहास की पुस्तक 'मुन्तख़्वा-उल-तवारीख़' है, जिसमें मुग़लवंश का सन् 1595-96 तक का इतिहास और सूफ़ी संतों, विद्वानों, शायरों आदि की जीवनियाँ हैं।

बदायूँनी इमाम था और उसका दृष्टिकोण मज़हबी था। उसने 'इस्लाम के हित का ध्यान' रखकर इतिहास लिखा है और स्वयं कहा है— 'उसकी लिखी तवारीख़ से केवल वे ही लोग लाभान्वित होंगे जो न्यायकारी हैं, बुद्धिमान् हैं, लेकिन जो लोग शरा का पालन नहीं करते और उसके नियमों की उपेक्षा करते हैं, उनको इस ग्रन्थ से कोई लाभ नहीं होगा।' <sup>22</sup> अकबर द्वारा कुछ इस्लामविरोधी आदेश देने पर बदायूँनी उसे नास्तिक भी मानते हैं। वस्तुतः बदायूँनी 'इस्लाम के काल्पनिक पतन' की बात करता है।

६. **अब्दुल हमीद लाहौरी** : अपने पूर्वजों की परंपरा का पालन करते हुए शाहजहाँ

ने अब्दुल हमीद लाहौरी को अपने समय का इतिहास लिखने के लिए नियुक्त किया। लाहौरी ने सन् 1627 से 1654 तक का इतिहास स्वयं लिखा और अंतिम तीन वर्षों का इतिहास उसके शिष्य मौहम्मद वारिस ने पूर्ण किया। लाहौरी की धारणा है— 'जब तक शरा के नियमों का पालन नहीं होता, तब तक मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। सरकार के स्थायित्व का आधार राजा द्वारा प्रेरित श्रद्धा और भय होता है।' इसका आशय यह है कि लाहौरी सुल्तान से शरा के नियमों का परिपालन आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी मानता है। अपने इसी दृष्टिकोण के कारण जहाँ तक शाहजहाँ ने कट्टर नीति का पालन किया, वाराणसी तथा अन्य क्षेत्रों के मंदिर तुड़वाने का आदेश दिया, लाहौरी ने उसकी प्रशंसा की, उसे धर्मरक्षक के रूप में चित्रित किया, पुर्तगालियों के प्रति शाहजहाँ के व्यवहार और धर्मस्थल बंद कराने के कार्य की भी प्रशंसा की, लेकिन विद्रोह करने के कारण जुझारसिंह और खानेजहाँ लोदी को कमीना लिखा। लाहौरी की रचना 'पादशाहनामा' सैनिक अभियानों, दरबारी गतिविधियों और राजनीतिक घटनाक्रमों से भरी पड़ी है। वस्तुतः यह ग्रन्थ सुल्तान शाहजहाँ के दृष्टिकोण के अनुरूप ही लिखा गया है, निष्पक्षता का इसमें अभाव है। इतिहासकारों ने भी इसे ऐतिहासिक महत्त्व का नहीं माना है— 'वास्तव में यह ग्रन्थ शाहजहाँ के जीवनचरित्र के रूप में लिखा गया था। .. शाहजहाँ की प्रशंसा करने के कारण यह ग्रन्थ एक प्रकार से उसका जीवनचरित्र बन गया है और ऐतिहासिक दृष्टि से उसका महत्त्व भी कम हो गया है।'

७. **मिर्जा मौहम्मद काज़िम** : औरंगज़ेब ने इसे मुंशी के पद पर नियुक्त किया था और इसकी मुंशीगीरी से प्रसन्न होकर अपने समस्त अभिलेखों को देखने और 'आलमगीरनामा' लिखने का आदेश दिया। काज़िम को आदेश था कि वह विश्वसनीय अधिकारियों और स्वयं बादशाह से भी आवश्यकतानुसार जानकारी ले सकता है। समस्त लिखित सामग्री को बादशाह को दिखाएँ और उसमें जो सुधार सुझाएँ जाएँ, वे भी उसमें सम्मिलित करें। काज़िम ने औरंगज़ेब के शासन के प्रारम्भिक दस वर्षों का विवरण इस ग्रंथ में लिखा, जिसमें बादशाह की स्थल-स्थल पर प्रशंसा की गयी है। बाद में औरंगज़ेब ने इतिहासलेखन को निषिद्ध कर दिया। औरंगज़ेब पर विस्तृत और गहन शोध करनेवाले जदुनाथ सरकार का मत है कि वह राज्य की बिगड़ती राजनीतिक परिस्थितियों को लिपिबद्ध कराकर जनसाधारण को इससे परिचित नहीं कराना चाहता था, इसलिए इतिहासलेखन निषिद्ध किया।

८. **मौहम्मद हाशिम अली उर्फ़ खाफ़ी ख़ाँ** : फ़रूख़शियर के शासनकाल में हाशिम हैदराबाद के निज़ाम का दीवान था। तभी उसके मन में मुग़लवंश का इतिहास लिखने की इच्छा उत्पन्न हुई और उसने 'तारीख़े-खाफ़ी ख़ाँ' जिसे सामान्यतः 'मुन्तख़ब-उल-लुबाव' नाम से जाना जाता है, की रचना की। इसके पहले खण्ड में हज़रत नोह से लेकर अकबर की मृत्यु तक तथा दूसरे खंड में औरंगज़ेब से लेकर मुहम्मद शाह तक के शासनकाल की घटनाओं का विवरण है। इसमें मुग़ल शासन के पतन की समीक्षा भी की गयी है। यद्यपि लेखक निष्पक्षता और निर्भीकता के दावे करता है, लेकिन शिया होने के कारण उनके प्रति पक्षपात स्पष्ट दिखता है। शिवाजी की प्रशंसा भी की गई है और उसे विद्रोही भी माना गया है। मुग़ल साम्राज्य के पतन के लिए सैयद-बंधुओं को उत्तरदायी ठहराया गया है तथा व्याप्त भ्रष्टाचार का सच्चा विवरण दिया गया है।

मध्यकालीन इतिहास और इतिहासकारों के इस संक्षिप्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सन् 1300-1857 ई. तक मुस्लिम शासकों ने तो हिंदू-विरोधी नीति अपनायी ही, इतिहासकारों ने भी कहीं मूक और कहीं मुखर शब्दों में उसका समर्थन ही किया। प्रायः सभी इतिहासकार राजाश्रित थे और आश्रयदाता का अप्रिय न लिखना उनका प्रयोजन था। मातृभूमि की रक्षा के लिए प्राण अर्पित करने वाले हिंदू नरेशों को तो वे 'काफ़िर', 'कमीना', 'दुष्ट' और 'बागी' कहते हैं और भाइयों का वध और पिता को कारागार में डालनेवाले औरंगज़ेब पर वे चुप हो जाते हैं। हिंदू नरेशों की बहू-बेटियों को उपभोग हेतु हरम में डालना, मन्दिरों एवं धार्मिक सामग्री को नष्ट करना, मन्दिरों में गोहत्या कराना, मूर्तियों को मांस कूटने हेतु कस्सावों को दे देना अथवा सीढियों पर डालना, जिससे जनसाधारण उन पर पैर रखकर चल सके- इन्हें वे मुस्लिम शासन के प्रचार-प्रसार का कार्य स्वीकारते हैं। चाटुकारिता के लिए अबुल फ़ज़ल की निंदा करनेवाला अब्दुल क़ादिर बदायूनी स्वयं अकबर की चाटुकारिता करता है, निर्भोक्ता और निष्पक्षता का दावा करने वाला ज़ियाउद्दीन बर्नी मुहम्मद तुगलक की अप्रसन्नता के कारण अप्रिय तथ्यों को छिपाता है अथवा उन पर पर्दा डालता है। हिंदू विरोधी दृष्टि तो प्रायः सभी की रही है। हिंदू ही नहीं, धर्मान्तरित नवमुस्लिमों को भी नरसंहार देखना पड़ा है। मुग़लकाल में भी पद और उपहारों का प्रलोभन देकर धर्मांतरण की प्रक्रिया चलती रही। जुझारसिंह के तीसरे पुत्र को इसलिए क़त्ल कर दिया गया, क्योंकि उसने धर्मान्तरण अस्वीकार कर दिया था। धर्मान्तरण अस्वीकार करने पर शम्भा जी को तड़पा-तड़पाकर मारा था। तब ये इतिहासकार मौन क्यों हो गए थे? इनकी मानवता कहाँ सो गई थी? क्या ये सांप्रदायिक विद्वेष से पीड़ित नहीं थे? इसे हिंदू-मुस्लिम संघर्ष कहना भी अनुचित है। यदि ऐसा होता तो जयसिंह और जसवंत सिंह औरंगज़ेब के सेनापति न होते, मुहम्मदशाह हम्मीरदेव का सैन्य अधिकारी न होता और महाराणा प्रताप अपनी सेना की कमान हकीम सूर को न सौंपते। वस्तुतः यह धर्मान्धता थी और शासकों के साथ इतिहासकार भी उसमें सहयोग दे रहे थे।

इन इतिहासकारों के समक्ष एक कवि के सत्य को प्रस्तुत करना अप्रासंगिक न होगा। उदयपुरनरेश जगतसिंह के आश्रित कवि बेनीप्रसाद का एक कवित्त इस प्रकार है-

बाढ़ी पातसाही, ज्यों ही सलिल प्रलै के बढ़ै  
 बूड़े राजा-राव, पै न कीन्हों तेग खरको।  
 देन लागे नवल दुल्हैया नवरोज में,  
 नीठि-नीठि पीछै मुख हेरैं आनि घर को।  
 बाही तरवारि, पातसाहन सों कीन्हों रारि,  
 भनै 'परसाद' अवतार साँचो हर को।  
 दुहूँ दीन जाना, जस अकह कहा ना, ऐसे-  
 ऊँचे रहे राना, जैसे पात अछैवर को।

-डॉ० रामानंद शर्मा : रीतिकाल के विस्मृत कवि, पृष्ठ 85

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि चित्तौड़ (मेवाड़) के महाराणाओं ने कभी भी अपनी कन्या मुग़लों को नहीं दी और मुग़लों के साथ वैवाहिक संबंध जोड़ने वाले राजपूतों को हेय दृष्टि से देखा। प्रताप ने तो अपने सीमित साधनों के साथ विरोधिनी परिस्थितियों में आजीवन

संघर्ष किया और कुंभलगढ़ एवं चित्तौड़ के अतिरिक्त अपने सभी दुर्ग मुगलों से छीन लिए थे। उनके पुत्र अमरसिंह ने विवश होकर अधीनता तो स्वीकार कर ली थी, लेकिन संधि की शर्तों में यह भी रखा था कि मेवाड़ के महाराजाओं को वैवाहिक संबंध बनाने के लिए विवश नहीं किया जाएगा, वे अपनी पुत्री मुगलों को कदापि नहीं देंगे। औरंगजेब इस बात से बहुत दुखी था। उसने दाराशिकोह का वध करके उसके हरम की एक दासी जो जार्जिया देश की थी, को अपनी पत्नी बनाया और उसे उदयपुरी महल नाम दिया। इसी से उसे कामबख्श नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। 'मुसलमान बादशाहों के लाख प्रयत्न करने पर भी उदयपुर के राणा वंश ने अपनी एक भी पुत्री उनको नहीं दी। इस खिजालत को मिटाने के लिए औरंगजेब ने दाराशिकोह की उस रखैल को अपनी पत्नी बनाकर उदयपुरी महल खिताब प्रदान किया था।' <sup>23</sup> इस छंद को राजप्रशस्ति तो कहा जाएगा, लेकिन यह ऐतिहासिक सत्य पर आधारित है और कवि पर चाटुकारिता, मिथ्याभाषिता अथवा अतिशयोक्ति का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

### तत्कालीन परिस्थितियाँ और रीतिकवि

औरंगजेब की धर्माधता और कट्टरता ने सभी हिंदू-संप्रदायों में विद्रोह की भावना उत्पन्न कर दी। जब वह गुजरात का गवर्नर था तो उसने अहमदाबाद के चूड़ामणि मंदिर में गायें कटवाकर उसे अपवित्र किया और बाद में उसे मस्जिद में परिणत कर दिया। मन्दिरों को मस्जिदों में बदलने और पद-प्रतिष्ठा-प्रलोभनों से हिन्दुओं को धर्मान्तरित करने का प्रबल उद्यम वह निरंतर करता रहा। मथुरा में गोकुल के नेतृत्व में जाटों ने प्रबल विरोध किया जो चूड़ामणि आदि जाट-नेताओं द्वारा निरंतर चलता रहा। इसी शाखा ने भरतपुर राज्य की स्थापना की। इन्होंने शाही सेना से निरंतर टक्करें लीं और उनके नगरों एवं शिविरों को लूटा। गुरु तेगबहादुर की मर्मांतक हत्या और गुरु गोविंदसिंह के पुत्रों के वध से सिक्ख समुदाय उद्वेलित हो उठा और औरंगजेब को निरंतर संघर्ष करना पड़ा। महाराष्ट्र में छत्रपति शिवाजी छापामार युद्धों से शाही सेना को निरंतर आतंकित किए रहे तो बुंदेलखंड में छत्रसाल औरंगजेब के लिए निरन्तर सिरदर्द बने रहे। इन सभी संघर्षशील राजाओं के आश्रय में कविगण भी रहते थे और वीरकाव्य की सृष्टि करते थे।

छत्रपति शिवाजी की युद्धशैली छापामार थी। उनकी सैनिक टुकड़ियाँ निरंतर घूमती रहती थीं और अचानक मुगल सेना पर आक्रमण कर मारकाट एवं लूटपाट मचाती थीं। मुगल साम्राज्य के नगरों एवं शिविरों को लूटना भी इनकी रणनीति का अंग था। जब तक मुगल सैनिक सँभलते, ये मारकाट और लूटपाट मचाकर भाग खड़े होते थे। इस आकस्मिकता से मुगल सेना में भय और आतंक का वातावरण बना रहता था। आश्रित कवि भूषण ने इस भय और आतंक के सुंदर चित्र अंकित किए हैं। एक कवित्त प्रस्तुत है—

चकित चकत्ता चौंकि-चौंकि उठै बार-बार,  
दिल्ली दहसति चितै चाह खरकति है।  
बलख बिलात, बिललात बीजापुर-पति,  
भिरत फिरंगनि की नारी फरकति है।  
थर-थर काँपत कुतुबसाही गोलकुंडा,  
हहरि हबस भूप भीर भरकति है।

सिंह सिवराज तेरे धौंसा की पुकार सुनि,  
केते पातसाहन की छाती धरकति है।  
शिवाजी के युद्धप्रयाण और प्रतिपक्षियों के भीतिपूर्वक पलायन के जैसे चित्र भूषण  
ने अंकित किये हैं, वैसे किसी अन्य कवि ने नहीं। अरिपलायन का एक छंद प्रस्तुत है—  
बाने फहराने, घहराने घंटा गजन के,  
नाहीं ठहराने राव-राने देस-देस के।  
नग भहराने, ग्राम-नगर पराने, सुनि-  
बाजत निसाने सिवराज जू नरेस के।  
हाथिन के हौदा उकसाने कुंभ कुंजर के,  
भौन के भजाने अलि छूटे लट केस के।  
दल के दरारन तें कमठ करारे फूटे,  
केरा के से पात बिहराने फन सेस के।  
प्रतिपक्षी योद्धाओं ही नहीं, रिपुरमणियों की उद्विग्नता के भी भूषण ने आलंकारिक  
चित्र प्रस्तुत किये हैं—

बदल न होंहि, दल दच्छिन उमंडि आयो,  
घटा ये नहीं है, इभ सिवाजी हँकारे के।  
दामिनी दमक नाहिं, खुले खग बीरन के,  
इंद्रधनु नाहिं, ये निसान हैं सवारी के।  
देखि-देखि मुगलों की हरमें भवन त्यागें,  
उझकि-उझकि उठैं बहत बयारि के।  
दिल्लीपति भूल मति गाजत न घोर घन,  
बाजत निसान ये सितारे गढ़धारी के।

भरतपुरनरेशों ने दिल्ली और शाही शिविरों पर निरंतर आक्रमण किए और औरंगज़ेब  
इनसे आजीवन संतप्त बना रहा। भरतपुरनरेश बदनसिंह के पुत्र सूरजमल उर्फ सुजानसिंह के  
आश्रित कवि सूदन ने 'सुजानचरित्र' में सुजानसिंह के सात युद्धों का यथातथ्य वर्णन किया  
है। यह वर्णन ऐतिहासिक सत्यता से परिपूर्ण है। 'लड़ाई की तैयारी, फौजों की सजावट,  
घुड़सवार, पैदल और तोपखाने आदि के आगे बढ़ने, हारी हुई सेना के तितर-बितर होकर  
भागने और विजयी सेना के उसका पीछा करने तथा लूटमार आदि के इनके द्वारा खींचे हुए  
दृश्य वास्तव में हिंदी-साहित्य में अद्वितीय कहे जा सकते हैं।' <sup>24</sup> सूदन वस्तुसूची के लिए  
अवश्य कुख्यात हैं, लेकिन विद्वानों ने उनकी सत्यप्रियता का गुणगान भी किया है। 'उन्होंने  
अपने चरितनायक के शत्रुओं के भी गुणगान मुक्तकंठ से किये हैं। उनमें यदि कोई प्रशंसनीय  
बात होती थी तो उनकी अवहेलना कर पाना या जानबूझकर उनके महत्त्व को संकुचित करना  
या उनमें व्यर्थ के दोष ढूँढना सूदन के स्वभाव के विरुद्ध था।' <sup>25</sup> सूदन की कविता का एक  
उदाहरण प्रस्तुत है—

श्रोनित अरघ ढारि लुत्थि जुत्थि पाँवड़े दे,  
दारु-धूम धूप-दीप रंजक की ज्वालिका।

चरबी को चंदन, पुहुप पल टूकनु के,  
 अच्छत अखंड गोला गोलिनु की चालिका।  
 नैवेद नीको साहि सहित दिली को दल,  
 कामना बिचारी मनसूर पन-पालिका।  
 कोटरा के निकट बिकट जंग जोरि सूजा,  
 भली बिधि पूजा के प्रसन्न कीनी कालिका।

इस काल के श्रेष्ठ वीर, प्रचंड सेनानी और कविकुलकल्पतरु थे महाराज छत्रसाल बुंदेला। उनके विषय में बुंदेलखंड में यह दोहा आज भी प्रचलित है, जो उनके प्रचंड शौर्य को प्रमाणित करता है—

इत जमुना उत नर्मदा, इत सरयू उत टोंस।  
 छत्रसाल सों लरन की, रही न काहू होंस।

छत्रसाल बुंदेला स्वयं तो सत्कपि थे ही, अच्छे आश्रयदाता भी थे। उनके आश्रय में 82 कवियों की सूचना मिलती है<sup>26</sup>, जिनमें गोरेलाल उर्फ लाल कवि ने उनको चरितनायक बनाकर 'छत्रप्रकाश' नामक श्रेष्ठ वीरकाव्य की रचना की है। छत्रसाल राजस्थानी योद्धाओं के समान प्राण-पण से युद्ध नहीं करते थे और अपनी दुर्बल स्थिति जानकर रणभूमि से पलायन भी कर जाते थे, लेकिन वे पुनः व्यापक तैयारी के साथ प्रतिपक्षी से जूझते और उसे परास्त करते थे। शाही सेना उनके नाम से भयभीत होती थी और चौंकती थी। इन मनोभावों का अच्छा चित्रण लाल कवि ने किया है—

चौंकि-चौंकि सब दिसि उठैं, सूबा खान खुमान।  
 अब धौं धावै कौन पर, छत्रसाल बलवान।  
 चौंकि-चौंकि चौकी उठैं, दौंकि-दौंकि उमराव।  
 फागे लसगर में परे, थाके सबै उपाव।

छत्रसाल के शौर्य और पराक्रम के सच्चे चित्र लालकवि ने अंकित किये हैं—

काटि कटक किरवान बल, बाँटि जंबूकनि देहु।  
 टाटि जुद्ध इहि रीति सों, बाँटि धरनि धरि लेहु।

छत्रसाल बुंदेला के शौर्य और पराक्रम के चित्र भूषण, नेवाज, हरिकेश आदि कवियों ने भी अंकित किये हैं। भूषण उनके शौर्य पर अनुरक्त हैं और उनकी तलवार की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

निकसत म्यान तें मयूखैं प्रलै-भानु कैसी,  
 फारैं तम-तोम से गयंदन के जाल कों।  
 लागति लपकि कंठ बैरिन के नागिन-सी,  
 रुद्रहिँ रिझावै दै-दै मुंडन के माल कों।  
 लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली,  
 कहाँ लौं बखान करौं तेरी करवाल कों।  
 प्रतिभट कटक कटीले केते काटि-काटि,  
 कालिका-सी किलकि कलेऊ देत काल कों।



इतना ही नहीं, वे उनके शौर्य का वर्णन भी अत्यंत प्रवाहपूर्ण एवं आलंकारिक भाषा में करते हैं। छंद दर्शनीय है—

भुज-भुजगोस की बैसंगिनी भुजंगिनी-सी,  
खेदि-खेदि खाती, दीह दारुन दलन के।  
बखतर पाखरन बीच धँस जाति, मीन-  
पैरि पार जात परबाह ज्यों जलन के।  
रैयाराव चंपति के छत्रसाल महाराज,  
'भूषण' सके करि बखान को बलन के।  
पच्छी पर छीने, ऐसे परै पर छीने बीर,  
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के॥

महाराज छत्रसाल बुंदेला के शौर्य और आतंक का एक सुंदर चित्र उनके आश्रित कवि नेवाज ने इस प्रकार अंकित किया है—

दाढ़ी के रखैयन की दाढ़ी-सी रहति छाती,  
बाढ़ी मरजाद अब हद्द हिंदुवाने की।  
मिटि गई रैयति के मन की कसक अरु,  
कढ़ि गई ठसक तमाम तुरकाने की।  
भनत 'नेवाज' दिल्लीपति-दल धक्धकात,  
हाँक सुनि राजा छत्रसाल मरदाने की।  
मोटी भई चंडी, बिन चोटी के सिरन खाय,  
खोटी भई संपति चकत्ता के घराने की।

छत्रसाल बुंदेला के शौर्य और पराक्रम का एक अत्यंत रमणीय चित्र उनके आश्रित कवि हरिकेश ने इस प्रकार अंकित किया है—

डहडहे डंकन को सबद निसंक होत,  
बहबही सत्रुन की सेना आनि सरकी।  
हाथिन के झुंड, मारु राग को उमंड, उतै-  
चंपति को नंद चढ्यो उमँग समर की।  
कहै 'हरिकेश' काली ताली दै नचत ज्यों-ज्यों,  
लाली परसत छत्रसाल मुख-बर की।  
फरकि-फरकि उठै बाहैं अस्त्र बाहिबे कों,  
करकि-करकि उठै करी बखतर की।

इस प्रकार छत्रपति शिवाजी, भरतपुरनरेश सुजानसिंह और छत्रसाल बुंदेला ने न केवल औरंगजेब की असहिष्णुता और धर्मान्धता के विरुद्ध संघर्ष किया, बल्कि सत्कवियों को आश्रय भी दिया, जिससे श्रेष्ठ वीरकाव्य की रचना हुई। सूदन, लाल और भूषण के वीरकाव्य की तुलना करते हुए मिश्रबंधुओं ने सत्य ही कहा है— 'युद्ध की तैयारी में सूदन, युद्धवर्णन में लाल और आतंक एवं भागने के वर्णन में भूषण प्रायः सर्वश्रेष्ठ हैं। इन तीनों महाशयों की कविता युद्धकाव्य का शृंगार है।' <sup>27</sup>

संवत् 1737 (3 अप्रैल, सन् 1680) को शिवाजी का महाप्रयाण हुआ और संवत् 1763 (20 फ़रवरी, सन् 1731) को महाराज छत्रसाल बुन्देला भी परलोक सिधार गए। परवर्ती मुग़ल बादशाहों की हिंदूविरोधी नीतियाँ यथावत् चलती रहीं। छत्रसाल बुंदेला से प्रेरणा लेकर एक अन्य क्षत्रियनरेश ने शाही सेना को प्रबल टक्कर दी और हिंदूनरेशों को संगठित करने का प्रयत्न किया। ये हैं असोथरनरेश भगवन्तराय खींची।

असोथरनरेश भगवन्तराय खींची की गणना रीतिकाल के कविकल्पतरुओं में की जाती है। भगवन्तराय प्रतापी नरेश थे और उन्होंने लखनऊ के नवाब सआदत ख़ाँ को युद्ध में परास्त किया था। उन्होंने छत्रसाल बुंदेला से प्रेरित एवं प्रभावित होकर हिंदूनरेशों को संगठित करने का भी प्रयास किया। भगवन्तराय स्वयं तो अच्छे कवि थे ही, उदार और गुणग्राहक आश्रयदाता भी थे, फलतः उनका दरबार सत्कवियों से सदैव शोभित रहा। देव, शंभुनाथ मिश्र, सुखदेव मिश्र, उदयनाथ 'कवींद्र', सदानंद, गोपाल, मुहम्मद, नेवाज, भूधर, चतुरसेन, मल्ल आदि का संबंध उनके दरबार से रहा है।<sup>28</sup> छत्रसाल बुंदेला के समान भगवन्तराय खींची भी दुर्धर्ष योद्धा और सफल संगठनकर्ता थे। उनके आश्रित कवियों ने उनकी प्रशस्ति में उनकी दानशीलता के साथ-साथ उनके शौर्य और पराक्रम का भी बखान किया और उस भय एवं आतंक का भी, जो शाही सेना में व्याप्त था। शंभुनाथ मिश्र उनकी युद्धवीरता का वर्णन करते हुए कहते हैं—

सुनि दल बल मुगलन के दलन को,  
 हर्षि उठि दौर्यो बीर हरिकेस-नंद है।  
 माते-माते हाथिन के हौदा खंड-खंड कीन्हे,  
 मारे बरछीन सों बिचारे बैरी-बुंद हैं।  
 भगवंत-नाहर के पंजा से निकसि 'संभु'  
 सहमे सआदत, चलै न छल-छंद है।  
 बोलत न डोलत, न खोलत पलक, जैसे-  
 सिंह के समेटे दबि रहत गयंद है॥

वे उनकी तलवार की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

वार न रहत, वार-पार ही बहति, जाकी-  
 धार ही में मीचु अरि-बर की बसति है।  
 बार-बार बैरिन को बारति बिदारति औ',  
 बादर बली में बीजुरी-सी बिलसति है।  
 'संभु' कहै काटि-कूटि कौचन की गिरह,  
 जिरह ज्यों तिधारा गंगधार में धँसति है।  
 भगवंत रैयराव म्यान तें तिहारी तेग,  
 अरिन के प्रानन समेत निकरति है।

भगवन्तराय के प्रताप, शौर्य और आतंक का एक सुंदर चित्र कवि नाथ ने इस रूप में प्रस्तुत किया है—

दिल्ली के अमीर दिल्लीपति सों कहत, बीर  
 दक्खिन सों दंड लै के सिंहल दबाइहैं।

जगती जलेसर की जोर लै सुमेरूहू लौं,  
 संपति कुबेर के घराने की कढ़ाइहैं  
 कहै कवि 'नाथ' लंकापति हू के भौन जाइ,  
 जम हू सों जंग जुर्दै, लोह को चबाइहैं।  
 आगि में जरेंगे, कूदि कूप में परेंगे, एक-  
 भूप भगवंत की मुहिम को न जाइहैं।

उदयनाथ 'कवींद्र' ने भी शाही सेना में व्याप्त इस भय और आतंक को ही शब्दायित किया है—

धुक्कत चलत अरि, लुक्कत उलूकन लौं,  
 मुक्कत किलान के धुकार नद बेस के।  
 भनत 'कविंद' जहाँ पेस को मवेसी कौन,  
 कंपत अवास अलकेस के, लँकेस के।  
 जीतिके जहूर साजै, फौजनि के अग्र बाजै,  
 भारी भगवंत के सँवारे बल बेस के।  
 दरजैँ दिली के उमराइन के उर परैँ,  
 गरजैँ नगारे गाजीपुर के नरेस के।

प्रशस्तिपरक छंद ही नहीं, सदानन्द ने 'भगवंतराय रासा' और गोपालकवि ने 'भगवन्तराय की विरुदावली' काव्य की रचना भी की। इनमें 'भगवंतराय रासा' उपलब्ध है और नागरीप्रचारिणी सभा काशी ने इसे अपनी पत्रिका में प्रकाशित भी किया है।

इन पराक्रमी एवं युयुत्सु नरेशों के प्रति कवियों के हृदय में कितनी श्रद्धा थी, इसे उन छंदों से जाना जा सकता है जो उनके मरणोपरान्त कवियों ने श्रद्धांजलिस्वरूप लिखे हैं। महाराज छत्रसाल बुन्देला के निधन के काफ़ी बाद कवि करणभट्ट ने उनका श्रद्धापूर्ण स्मरण इन शब्दों में किया है—

भौरनि को कंज, राजहंसनि को मानसर,  
 चंद्रमा चकोरनि को कहर बितै गयो।  
 द्विजनि को कामतरु कान्ह ब्रजमंडल को,  
 जलद पपीहनि को काहू ने रितै लयो।  
 दीपनि को दीप हीरहार दिगबालनि को,  
 कोकनि को बासरेस देखत अथै गयो।  
 छता छितिपाल छिति-मंडल उदार धीर,  
 धरो को अधार जो सुमेरु धौं कितै गयो।

—रसकल्लोल, छंद 56

भगवंतराय खींची के निधन पर कवि समाज में जो निराशा व्यापी, उसकी मर्मस्पर्शनी अभिव्यक्ति कवि मल्ल के निम्न छंद में उपलब्ध होती है—

आज महादीनन को सूखिगो दया को सिंधु,  
 आज ही गरीबन को सब गथ लूटिगो।

आज द्विजराजन को सकल अकाज भयो,  
 आज महाराजन को धीरज सो छटिगो।  
 'मल्ल' कहै आज सब मंगन अनाथ भये,  
 आज ही अनाथन को करम सो फूटिगो।  
 भूप भगवंत सुरलोक को पयान कियो,  
 आज कवितान को कलपतरु टूटिगो।

—रीतिकाल के विस्मृत कवि, पृष्ठ 110

इतना ही नहीं, कवि भूषण के नाम से भी एक छन्द उपलब्ध है, जिसमें भगवन्तराय खींची की मृत्यु पर अपरिमित शोक प्रकट किया गया है—

उठि गयो आलम सों रुजुक सिपाहिन को,  
 उठिगो बँधैया सब बीरता के बाने को।  
 'भूषन' भनत उठि गयो है धरा सों धर्म,  
 उठिगो सिँगार सबै राजा-रावराने को।  
 उठिगो सुकवि सील, उठिगो जसीलो डील,  
 फ़ैलो मध्यदेस में समूह तुरकाने को।  
 फूटे भाल भिच्छुक के जूझे भगवंत राय,  
 अरराय टूट्यो कुल खंभ हिन्दुवाने को।

—हिंदी वीरकाव्यसंग्रह, पृष्ठ 169-70

रीतिकाल में ऐसे एकनिष्ठ कवि भी मिलते हैं, जिन्होंने राजाश्रय के अस्तव्यस्त हो जाने पर जीविका हेतु अन्यत्र गमन उचित नहीं समझा। भिखारीदास, प्रतापगढ़ राज्य के अधि कृत हो जाने और आश्रयदाता हिंदूपति सिंह के धर्मान्तरण कर लेने पर संन्यासी हो गये, अन्यत्र नहीं गये। केशव इन्द्रजीत सिंह के राज्य से अपदस्थ हो जाने पर उनके भाई वीरसिंह देव से सुलह-प्रयासों में लगे रहे, अन्यत्र नहीं गये। उत्तरवर्ती रीतिकवि सेवक वाराणसी में आजीवन हरिशंकर सिंह के आश्रय में ही रहे और बुलाने पर भी कभी कहीं नहीं गए। वे काशीनरेश के यहाँ भी कभी नहीं जाते थे। धन्य है यह एकनिष्ठता, जो राजभक्ति का श्रेष्ठ स्वरूप प्रस्तुत करती है।

विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी में मुग़लों का वर्चस्व समाप्त-सा हो गया तो रीतिकवियों ने उन प्रतापी नरेशों पर प्रबंधकाव्यों की सर्जना की जो विधर्मी एवं अत्याचारी सुल्तानों के साथ संघर्ष में वीरगति को प्राप्त हुए। थें। यों तो 'पृथ्वीराजरासो' भी रीतिकालीन काव्य ही ठहरता है, क्योंकि राजस्थानी काव्यमर्मज्ञ पण्डित मोतीलाल मेनारिया ने नानाविध ऊहापोहों के पश्चात रचनाकालविषयक यह वक्तव्य प्रस्तुत किया है— 'वास्तव में न तो रासों की सबसे प्राचीन प्रति संवत् 1641 की लिखी हुई है और न रासो का निर्माणकाल संवत् 1600 के आसपास है। संवत् 1700 और संवत् 1732 के बीच किसी समय यह रचा गया है।' <sup>29</sup> इतना ही नहीं, उन्होंने प्रतिपाद्य के विषय में जो कहा है— 'मुसलमानों की धर्मान्धता और बर्बरता, राजपूतों के शौर्य, उनकी डाँवाडोल स्थिति और उनके पतनादि का जैसा मार्मिक, प्रकृत और क्षोभपूर्ण वर्णन रासों में मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। कहने को तो रासो पृथ्वीराज

का जीवनचरित्र है, परंतु वास्तव में है वह हिंदू-मुस्लिम संघर्ष की अमर कहानी।’<sup>30</sup> उसकी संगति जितनी रीतिकालीन राष्ट्रीय काव्यधारा से बैठती है, उतनी आदिकालीन काव्यों के साथ नहीं। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में रणथम्भौरनरेश हम्मीरदेव, जो पृथ्वीराज चौहान के वंशज एवं अत्यंत प्रतापी नरेश थे और जिन्होंने शरणागत की रक्षा का वचन निभाते हुए सुल्तान अलाउद्दीन खलजी के साथ संग्राम में प्राण अर्पित किये, पर कई प्रबन्ध लिखे गए। महेश कवि रचित ‘हम्मीररासो’ का रचनाकाल तो अज्ञात है, लेकिन जोधराज रचित ‘हम्मीररासो’ का समय नवीन शोधों से संवत् 1855 निर्धारित होता है, क्योंकि जोधराज के आश्रयदाता नीमराणा (निकट अलवर, राजस्थान) के चंद्रभान सिंह चौहान का शासनकाल संवत् 1827-1880 तक रहा है।<sup>31</sup> इसी चरितनायक पर ग्वाल कवि ने ‘हम्मीरहठ’ (रचनाकाल संवत् 1883) की रचना की और उसके अठारह वर्ष पश्चात् इसी कथा और अभिधान को लेकर चंद्रशेखर वाजपेयी ने ‘हम्मीरहठ’ (संवत् 1902) रचा। यह राष्ट्रीय काव्यधारा है और ये सभी प्रबंध वीरकाव्य के अन्तर्गत आते हैं। ग्वाल कवि ने हम्मीरदेव के सेनापति जाजदेव के शौर्य और पराक्रम का निम्न चित्र अंकित किया है—

काढ़ि तेग कटि तें सुभट जोर जाजा जब,  
जोति की जमातें जहाँ झलकत झुक्क-झुक्क।  
ताकत ही तुरक मुरक भजैं पाछे केते,  
आगे को सिधाये तें चबाय डार दुक्क-दुक्क।  
‘ग्वाल’ कवि कहत न मानै ढाल बखतर,  
तुरक सयाने पै अयाने जिती रुक्क-रुक्क।  
सीस गजराजन के गरब-गरूर भरे,  
फरकें धरा पै, धरा धरकत धुक्क-धुक्क।

—हम्मीरहठ, छंद 206

तो चंद्रशेखर वाजपेयी ने अरिपलायन के सुंदर चित्र अंकित किए हैं, जो भूषण कवि की विशेषता रही है। पलायन का एक सुंदर चित्र प्रस्तुत है—

भागे मीरजादे पीरजादे औ’ अमीरजादे,  
भागे खानजादे प्रान मरत बचायके।  
भागे गज-बाजि-रथ पथ न सँभारे परै,  
गोलनि पै गोल सूर सहमि सकायके।  
भागयो सुलतान जानि बचत न जान बेगि,  
बलित बितुंड पै बिराजि बलखायके।  
जैसे लगे जंगल में ग्रीषम की आगि, चलैं—  
भागि मृग-महिष-बराह बिललायके॥

—हम्मीरहठ, छंद 214

समाहार : रीतिकालीन परिस्थितियों, इतिहासलेखकों और कवियों के इस संक्षिप्त आकलन के पश्चात् यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि दोनों के राजाश्रित होने के पश्चात् भी इतिहासलेखकों की अपेक्षा कवि अधिक निष्पक्ष एवं उदार थे। उनमें इतिहासलेखकों

जैसी धर्मान्धता एवं संकीर्णता उपलब्ध नहीं होती। उन्होंने सुल्तानों के अत्याचारों एवं अनाचारों का वर्णन अवश्य किया है, लेकिन कहीं भी उन्होंने 'काफ़िर', 'कमीना', 'दोज़ख़ को प्राप्त हुआ', जैसे शब्दों का प्रयोग नहीं किया। जब ग्वाल 'विप्रन को बैरी सदा, गोवध को सरदार' कहते हैं तो वे औरंगज़ेब को लक्ष्य बनाते हैं, लेकिन उस पर वैयक्तिक आक्षेप नहीं करते।

रीतिकवि राजाश्रित थे, फलतः राजभक्ति उनके व्यक्तित्व का अपरिहार्य अंग थी, लेकिन राज्य (रियासत या देश) का विकसित रूप ही राष्ट्र है और राजभक्ति ही राष्ट्रभक्ति में परिणत होती है। इस प्रकार वे अपने चरितनायकों को लेकर वीरकाव्यधारा का पल्लवन करते हुए राष्ट्रीय काव्यधारा का ही पथ प्रशस्त कर रहे थे। अमेठीनरेश गुरुदत्त सिंह 'भूपति' के पराजित होने पर उनके आश्रित कवि उदयनाथ 'कवींद्र' असोथरनरेश भगवंतराय खीची के आश्रय में चले गये और उनकी वीरगति पर वे राव बुद्ध सिंह हाड़ा के आश्रय में पहुँचे। प्रबल पराक्रमी और दुर्धर्ष क्षत्रियनरेशों का आश्रय प्राप्त करने की कामना के मूल में उनकी राष्ट्रीय भावना ही थी और यही राष्ट्रीय भावना भूषण कवि को यह कहने को विवश करती है-

और राव-राजा एक मन में न ल्याऊँ, अब-

साहू को सराहौँ, के सराहौँ छत्रसाल को।

रीतिकवियों पर सामंतवादी प्रवृत्ति और सांप्रदायिकता के आरोप अज्ञताजन्य हैं। विदेशी इतिहास और संस्कृति में सिर खपाने वाले बुद्धिजीवी भारतीय इतिहास और सांस्कृतिक विकास को नहीं समझते, फलतः इस प्रकार के निराधार एवं अज्ञतामूलक आरोप लगाते हैं। विश्व संस्कृति को समझने से पूर्व भारतीय संस्कृति और चिंतनधारा को समझना आवश्यक है। उसे समझे बिना न हम मध्यकालीन संस्कृति के साथ न्याय कर सकते हैं और न मध्यकालीन काव्य के साथ। ऐतिहासिक परंपरा और इतिहासकारों का परिचय इसी भावना से रखा गया है।

### संदर्भ

1. डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, दिल्ली सल्तनत, पृ० 124
2. डॉ० देवेन्द्रसिंह चौहान, अलाउद्दीन खिलजी, पृ० 95
3. अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मुग़ल बादशाहों की कहानी, पृ० 191-92
4. वही, पृ० 217
5. डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, दिल्ली सल्तनत, पृ० 232
6. वही, पृ० 266
7. वही, पृ० 35
8. वही, पृ० 107.
9. डॉ० बालकृष्ण पंजाबी, भारत का इतिहास, पृ० 13
10. डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, मुग़लकालीन भारत, पृ० 167
11. डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त, हमारे देश के सिक्के, पृ० 84
12. डॉ० रमेशचन्द्र यादव, ज्योतिर्मय जनार्दन, पृ० 81
13. डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, मुग़लकालीन भारत, पृ० 168
14. डॉ० बनारसीप्रसाद सक्सेना, मुग़लसम्राट् शाहजहाँ, पृ० 68
15. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, मुग़लकालीन भारत, पृ० 313

16. वही, पृ० 465
17. डॉ० गणेशप्रसाद बरनवाल, दिल्ली सल्तनत, पृ० 208
18. वही, पृ० 209
19. डॉ० शैलनाथ चतुर्वेदी, तारीख-ए-फरिश्ता (भूमिका), पृ० 1
20. डॉ० विश्वेश्वर स्वरूप भार्गव, मध्यकालीन भारतीय इतिहास, पृ० 457
21. गुलबदन बाबर की पुत्री और हुमायूँ की बहिन थी, जिसने अकबर के आदेश पर सन् 1603 ई. में 'हुमायूँनामा' लिखा, हुमायूँ के विश्वास पात्र और अकबर के सेवक जौहर आफ़ताबची ने 'तज़किरात-उल-वाक़ेयात' लिखा तथा सैनिक अभियानों में भाग लेने वाले विश्वस्त सेवक निज़ामुद्दीन अहमद ने 'तबक़ात-ए-अकबरी' लिखा। अकबर के आदेश पर ही अब्बास ख़ाँ सरवानी ने 'तारीख़े-शेरशाही' लिखी, जिसमें शेरशाह का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है। यह समस्त सामग्री अबुल फ़ज़ल को उपलब्ध करायी गई।
22. डॉ० विश्वेश्वरस्वरूप भार्गव, मध्यकालीन भारतीय इतिहास, पृ० 462
23. अयोध्याप्रसाद गोयलीय, मुग़ल बादशाहों की कहानी, पृ० 293
24. डॉ० गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदी-वीरकाव्यसंग्रह, पृ० 242
25. वही, पृ० 243
26. डॉ० गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैया', बुंदेलखंड के अज्ञात रचनाकार, पृ० 295
27. मिश्रबंधु, मिश्रबंधुविनोद, पृ० 716.
28. डॉ० ओडम्प्रकाश अवस्थी : अनुवाक, पृ० 15.
29. पं० मोतीलाल मेनारिया, राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० 96
30. वही, पृ० 97
31. वेदप्रकाश गर्ग, हिंदी-साहित्य की भ्रांतियाँ और उनका निवारण, पृ० 165-66

## आधुनिक हिंदी-काव्य में राष्ट्रीयता का उद्भव और विकास

डॉ० अशोक उपाध्याय

अध्यक्ष हिंदी विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली

राष्ट्रीय भावना जनसमूह की वह शक्ति है, जो विशिष्ट ऐतिहासिक परंपरा तथा संस्कृति से प्रेरणा प्राप्त करके अपने सामाजिक जीवन को आधार मानते हुए उसके विविध अंगों को व्यवस्थित, शासित, स्वाधीन एवं समृद्ध बनाने की प्रेरणा प्रदान करके समस्त राष्ट्र के जन-जीवन को प्रोत्साहित करने में संलग्न रहती है। 'राष्ट्रीयता की भावना व्यक्ति को अपने राष्ट्र के लिए उच्चकोटि के शौर्य तथा बलिदान के लिए प्रेरणा देने वाली सामूहिक भावना की एक ऐसी उच्चतम अभिव्यक्ति है, जिसका संसार के इतिहास-निर्माण में बहुत बड़ा हाथ है। राष्ट्रीयता एक मानसिक अनुभूति अथवा मन की एक स्थिति है। सामान्यतः जीवन-यापन करने की समान पद्धतियाँ, समान परंपराएँ, समान आकांक्षाएँ, समान आर्थिक हेतु, समान इतिहास होने से शीघ्र ही राष्ट्रवाद की भावना विकसित होती है।' यह एक ऐसी अवधारणा है, जिसमें समूह या देश के जीवन, विकास, आत्मसम्मान तथा सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विरासत के प्रति गौरव की भावना के साथ-साथ उसके संरक्षण और लोकप्रसिद्धि का भाव तुष्टि प्रदान करता है और पराभव एवं निंदा की स्थिति असंतोष और विक्षोभ को आमंत्रण देती है। सन् 1857 ई० की क्रांति के उपरान्त आधुनिक हिंदी-कविता में राष्ट्रीय भावना का अभूतपूर्व विकास हुआ। इससे पहले यह राजदरबारों की रीति-सम्मत परिधि के भीतर बद्ध एवं सिद्ध रूप में विद्यमान थी। कभी-कभी इसमें मुक्त या स्वच्छंद होने की आकांक्षा भी परिलक्षित होती थी। आधुनिक काल में अपने 'आश्रयदाताओं की छत्रछाया को छोड़कर वह विशाल जनता के हृदय में आश्रय पाने के लिए चली अपने मूल्यवान अंगराग और आभरणों का तिरस्कार करके उसने कुंजों के कारागार के बदले खुली हवा में अभिसार किया। कोकिल की 'मधुर बानी' को छोड़कर उसने एक ऐसी वाणी में बोलना आरंभ कर दिया, जो अपनी सहजता और अनगढ़ता में लगभग ग्राम्य थी। नायिका-भेद की विराट् लीलाओं को छोड़कर उसने एक दूसरे ही अर्थ में नायिका का कार्य ग्रहण कर लिया।<sup>12</sup> इस कालखंड को भारतेंदुयुग कहा गया है। इसमें दो प्रमुख स्तर बहुत स्पष्ट दिखाई देते हैं— एक राजभक्ति का और दूसरा निज देश भारत की दुर्दशा के प्रति विक्षोभ और उसकी उन्नति के विचार का। भारतेंदु जी ने गद्य के साथ-साथ पद्य को भी देशकाल-परिस्थिति के अनुरूप नए-नए विचारों और विषयों की ओर अग्रसर करने का सफल प्रयास किया। उनके इस नए रंग में सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति की वाणी का था। उसी से लगे हुए विषय लोकहित, समाजसुधार, मातृभाषा का उद्धार आदि थे।



हास्य और विनोद के नए विषय भी इस काल में कविता को प्राप्त हुए। रीतिकाल के कवियों की रूढ़ियों में आरंभ से ही कई प्रकार के नए आलंबन सामने आने लगे—जैसे पुरानी लकीर के फ़कीर, नए फ़ैशन के गुलाम, नोच-खसोट करनेवाले अदालती अमले, मूर्ख और खुशामदी रईस, नाम या दाम के भूखे देशभक्त इत्यादि। इसी प्रकार वीरता के आश्रय भी, जन्मभूमि के उद्धार के लिए रक्त बहानेवाले, अन्याय और अत्याचार का दमन करने वाले, इतिहास-प्रसिद्ध वीर होने लगे।<sup>3</sup> स्पष्ट है कि हिंदी का आधुनिक काव्य यथार्थोन्मुख जीवनज्योति से परिप्लावित था। उसमें एक विशिष्ट विपत्तिकारक विदेशी शासन में स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास की अदम्य अभिलाषा थी और सच कहने की सामर्थ्य का निरंतर वृद्धिमान आत्मविश्वासपूर्ण सहज प्रवाह था। आचार्य नंददुलारे बाजपेयी के अनुसार 'भारतेंदुयुग में नई चेतना का अत्यंत सरल रूप दिखाई देता है। एक लंबी निद्रा के पश्चात आँखें खोलकर देश अपनी वास्तविकता का साक्षात्कार करता है। विवर्तन के एक ही आकुल क्षण में एक युग का अवसान होकर एक नए युग का अविर्भाव होता है। राष्ट्रीयता और जातीयता के पुनरुन्मेष के साथ आस-पास के जगत तथा पश्चिम के अनाहूत अतिथि सम्राट की यथार्थमूलक स्वीकृति और तज्जन्य प्रतिक्रिया दिखाई देती है। काव्य में पराधीनता का बोध प्रधान है और उसके साथ आकांक्षित मुक्ति की छटपटाहट भी। राष्ट्र अपनी समष्टि के पुनः मूल्यांकन में संलग्न होता है। हिंदी-काव्य में इसकी ध्वनि सुनाई पड़ती है, यह एक तात्कालिक और सहज प्रतिक्रिया थी।'<sup>4</sup> इसमें निहित गंभीर चिंतन के बीजमंत्रों का पुष्पित और पल्लवित रूप हमें द्विवेदीयुग और छायावाद तथा परवर्ती काव्य में दिखाई देता है। श्री मैथिलीशरण गुप्त जी ने लिखा है—

भू-लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ?  
 फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।  
 संपूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है।  
 उसका किजो ऋषिभूमि है, वह कौन भारतवर्ष है।<sup>5</sup>

श्री सियारामशरण गुप्त का जय-जय भारतवर्ष हमारे, जय-जय हिंद, हमारे हिंद का जयघोष भी यहाँ पर स्मरणीय है—

गंगा-जमुना का प्रवाह हे, अमल-अनिन्द्य, हमारे हिंद,  
 जय-जय भारतवर्ष हमारे, जय-जय हिंद हमारे हिंद!  
 सबका सुहित हमारा हित है, सार्वभौम हम सार्वजनीन।  
 अपनी इस आसिन्धु धरा में, नहीं रहेंगे होकर हीन।<sup>6</sup>

श्रीधर पाठक ने भारत को विश्व का सर्वश्रेष्ठ देश बताने के साथ-साथ भगवान की प्रियभूमि बताया है। देश की भौगोलिक और सांस्कृतिक एकता भी उनकी देशभक्तिपूर्ण रचनाओं विद्यमान है—

प्रनामि सुभग सुदेश भारत सतत मम-रंजनम्  
 मम देश मम सुखधाम मम तन-प्राण धन-जन जीवनम्।  
 मम ताट मात-सुतादि प्रिय निज-बंधु-गृह-गुरु मंदिरम्  
 सुर असुर-नर नागादि अगनित जाति-जन-पद सुंदरम्।<sup>7</sup>

श्री सुमित्रानंदन पंत के अनुसार कवि या लेखक अपने युग से प्रभावित होता है, साथ

ही अपने युग को प्रभावित भी करता है। छायावादी काव्य वास्तव में भारतीय जागरण की चेतना का काव्य रहा है। उसकी एक धारा राष्ट्रीय जागरण से संबद्ध रही है। जिसकी प्रेरणा गाँधी जी के नेतृत्व में स्वतंत्रता के युद्ध में निहित रही है और दूसरी धारा के संबंध उस मानसिक दार्शनिक जागरण की भावनात्मक तथा सौंदर्यबोध-संबंधी प्रक्रिया से रहा है, जिसका समारंभ औपनिषदिक विचारों तथा पाश्चात्य साहित्य और संस्कृति के प्रभावों के कारण हुआ है।<sup>8</sup> उन्होंने लिखा है—

बजे क्रांति की तूरी जनमादन  
कुडम कुडुम हो जाय दुंदुभि स्वर  
जीवन-हित मानव वरे मरण  
मृत्यु अंक में भी गावें जन  
वंदे मातरम्।  
दिशालोक श्रम से हों हर्षित  
काल विश्व-रचना में योजित  
भव संस्कृति में देश हो ग्रथित  
जन संपन्न, जगत मनुजोचित  
वंदे मातरम्।<sup>9</sup>

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के 'वंदे पद सुंदर तव, छंद, नवल स्वर गौरव' गीत का एक अंश भी यहाँ अवलोकनीय है—

बंदे पद सुंदर तव  
छंद नवल स्वर गौरव  
जननि जनक-जननि-जननि।  
जन्मभूमि-भाषे!  
जागो, नव अंबर-भर  
ज्योतिस्तर-वासे!  
उठो स्वरोर्मियो-मुखर  
दिक् कुमारिका पिक रव।<sup>10</sup>

हमारे देश का अतीत अत्यंत समृद्ध तथा महिमामंडित था। इसका अतुलनीय गौरव विश्वविख्यात था। मानव-सृजन के आरंभिक काल में विश्व के अन्य देश सभ्य होने का प्रयास कर रहे थे, उस समय भारत उन्नति के हिमशिखरों का मानदंड था। इसकी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक समृद्धि अन्य देशों के लिए ईर्ष्या का कारण बनी हुई थी। धीरे-धीरे गौरव और विकास की यह अजस्र धारा अवरुद्ध होती चली गई। विदेशी आक्रमणों के दुष्प्रभावों से पीड़ित राष्ट्र की अँग्रेजों ने दुर्दशा कर दी। भारतेंदु जी न दुखित मन से लिखा है—

सबके पहिले जेहि ईश्वर धन-बल दीनो।  
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो।  
सबके पहिले जो रूप रंग रस भीनो।  
सबके पहिले विद्याफल जेहिगहि लीनो।

हा-हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।<sup>11</sup>

भारतेंदु जी ने अतीत के महत्त्व का स्मरण करते हुए अँग्रेजों की खुलकर आलोचना 'देश की दुर्दशा' के संदर्भ में की है। हमारा गौरवपूर्ण अतीत सभी के सम्मान का विषय है। उसका महत्त्व संपूर्ण विश्व को भली प्रकार ज्ञात है। फिर भी हमें अतीत के गौरवमान के साथ-साथ भारी-भरकम वर्तमान की स्थिति का भी पूरा ध्यान रखकर आत्मालोचना अवश्य करनी चाहिए। इसी से हमारा अतीत पूर्वजों की रक्तकोशिकाओं के माध्यम से जीवंत होकर देश की सामर्थ्य में अभिवृद्धिकारक सिद्ध होगा। मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' की प्रस्तावना में लिखा है कि 'यह बात मानी हुई है कि भारत की पूर्व और वर्तमान दशा में बड़ा भारी अंतर है। अंतर न कहकर इसे वैपरीत्य कहना चाहिए। एक वह समय था कि यह देश विद्या, कला-कौशल और सभ्यता में संसार का शिरोमणि था और एक यह समय है कि इन्हीं बातों का इसमें शोचनीय अभाव हो गया है। जो आर्यजाति कभी सारे संसार को शिक्षा देती थी, वही आज पद-पद पर पराया मुँह ताक रही है। ठीक है, जिसका जैसा उत्थान, वैसा ही पतन!'<sup>12</sup> उन्होंने लिखा है—

'हतभाग्य हिंदू-जाति! तेरा पूर्व दर्शन है कहाँ?  
वह शील शुद्धाचार, वैभव देख, अब क्या है यहाँ?  
क्या जान पड़ती वह कथा अब स्वप्न की सी है नहीं?  
हम हों वहाँ, पर पूर्व-दर्शन दृष्टि आते हैं कहीं?'<sup>13</sup>

जयशंकर प्रसाद जी ने भी अतीत का स्मरण करते हुए उससे प्रेरित होकर देश के लिए अपना सर्वस्व निछावर करने का संकल्प इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार।  
उषा ने हँस अभिनंदन किया और पहनाया हीरक-हार।  
जगे हम लगे जगाने विश्व लोक में फैला फिर आलोक।  
व्योम तमपुंज हुआ तब नष्ट, अखिल संसृति हो उठी अशोक।  
वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है, वैसा ज्ञान।  
वही है शांति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्यसंतान।  
जिएँ तो सदा उसी के लिए, यही अभिमान रहे, यह हर्ष।  
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष।<sup>14</sup>

पं० राधेश्याम कथावाचक को भारत वीरों की याद में गाना भी रोना प्रीत होता है—

'भारत वीरों की याद में यह गाना भी रोना है।  
पानी ही नहीं है पात्र में आँसुओं से मुँह धोना है।

हुआ धर्मवान् धनवान् इसी भारत में  
और बड़े-बड़े विद्वान इसी भारत में  
था सबसे ऊँचा ज्ञान इसी भारत में  
अब उन्हीं की हम संतान हुए अज्ञान  
मिटा सब मान, गई सब शान...'<sup>15</sup>

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' ने लिखा है कि 'राष्ट्रीयता भारतवर्ष में पुनरुत्थान की कुक्षि

से उत्पन्न हुई। यहाँ पहले राममोहन, केशवचंद्र, दयानंद, विवेकानंद और एनी बेसेंट हुईं तब अरविंद, वारींद्र, तिलक, गोखले और गाँधी का आगमन हुआ। यही कारण है कि भारतीय राष्ट्रीयता के सर्वोच्च पुरुष महात्मा गाँधी राजनीति से अधिक संस्कृति के नेता दिखाई देते हैं।<sup>16</sup> राज्य के संरक्षकों के भुजा रूपी भुजंग यदि कीलित हो जाएँ और राज्य भोग का उपकरण बन जाए, तो वह निश्चित रूप से प्रजा के लिए रोग, बन जाएगा। ऐसी स्थिति में क्षत्रिय समाज का कर्तव्य और धर्म राजद्रोह हो जाता है। 'साकेत में श्री मैथिलीशरण गुप्त जी ने लिखा है—

राज्य में दायित्व का ही भार,  
सब प्रजा का वह व्यवस्थागार।  
वह प्रलोभन हो किसी के हेतु,  
तो उचित है क्रांति का ही केतु।  
दूर हो ममता, विषमता मोह,  
आज मेरा धर्म राजद्रोह।<sup>17</sup>

उनका स्पष्ट विचार है कि विपत्ति की विरासत बनने वाले कुशासन में पाप का प्रतीक अराजक भाव पुण्य बन जाता है। इसलिए यही उचित होगा कि—

राजपद ही क्यों न अब हर जाय?  
लोभ-मद का मूल ही कर जाय?  
कर सके कोई न दर्प न दंभ,  
सब जगत में हो नया आरंभ  
विगत हों नरपति रहें नर मात्र  
और जो जिस कार्य के हों पात्र।<sup>18</sup>

'साकेत' के राम के निम्नलिखित कथन में निहित राष्ट्रीय चेतना भी द्रष्टव्य है—

मैं आर्यों का आदर्श बताने आया,  
जन-सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।  
सुख-शांति हेतु मैं क्रांति मचाने आया।  
विश्वासी का विश्वास बचाने आया  
मैं आया उनके हेतु कि जो तपित हैं।  
जो विकल, विवश बलहीन दीन शापित हैं।

यहाँ सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जी की ओजस्वी वाणी का दुर्जेय संग्राम राग, मृत्युंजय व्योमकेश का पुण्य-स्मरण तथा 'सवा-सवा लाख पर एक को चढ़ाऊँगा' की सिंह-गर्जना करने वाले गुरुगोविंद सिंह जी के उपदेशों से उद्दीप्त तेजस्विता और 'योग्य जन जीता है' का राष्ट्रीय स्वर भी अवलोकनीय है—

जागो फिर एक बार  
पशु नहीं वीर तुम  
समर शूर क्रूर नहीं  
कालचक्र में ही दबे  
आज तुम राजकुँवर! समर सरताज

पदरज भर भी नहीं यह पूरा विश्वभार  
जागो फिर एक बार।<sup>20</sup>

यहाँ पर आधुनिक काव्य की मीरा के रूप में प्रतिष्ठित श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा  
विरचित निम्न पंक्तियाँ भी देखिए—

नहीं हलाहलशेष तरल ज्वाला से अब प्याला भरती हूँ,  
विष तो मैंने पिया, सभी को व्यापी नीलकंठता मेरी।  
घेरे नीला ज्वार गगन को बाँधे भू को छाँह अँधेरी,  
सपने जमकर आज हो गए चलती-फिरती नील शिलाएँ।  
आज अमरता के पथ को मैं  
जलकर उजिमाला करती हूँ।<sup>21</sup>

सन् 1924 ई० में प्रथम बार 'वैश्य' नामक पत्रिका में प्रकाशित श्री श्यामलाल गुप्त  
'पार्षद' के 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा' की राष्ट्रीय भावना जगजाहिर है। इसे उन्होंने  
श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी जी आदि राष्ट्रभक्तों के आग्रह पर लिखा था। गणेश जी से उनका  
परिचय मेस्टन रोड, कानपुर, होम रूलिंग पुस्तकालय के प्रबंधक प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री  
भगवतीप्रसाद बाजपेयी ने कराया था। 'प्रताप' में पार्षद जी की कविताएँ 'रामश्याम किंकर'  
के नाम से प्रकाशित होती थीं। कई बार पुरस्कार भी मिले और राष्ट्रीय चेतना की कविताएँ  
लिखने में रुचि बढ़ती चली गई। 'गणेश जी ने उनसे झंडागीत लिखने का अग्रह किया मेरी  
ओर से बार-बार टालमटोल होती रही और उनका आग्रह निरंतर बढ़ता ही गया। अंततः उन्होंने  
अपने मित्र पंडित गंगासहाय चौबे को यह जिम्मेदारी सौंपी कि 'कल सबेरे तुम पार्षद जी से  
झंडागीत लेकर आ जाओ। यदि वे न लिखें, उनको फिर यहीं लिवा लाओ। उस दिन रात में  
मैं उसी प्रकार चिंता में सो गया और सबेरे उठकर झंडागीत लिखने का प्रयत्न किया। मैंने दो  
तीन घंटे में दो झंडा गान लिखकर तैयार कर दिए। यों तो दोनों ही झंडागीत खूब चले, लेकिन  
'झंडा ऊँचा रहे हमारा' राष्ट्रगीत बन गया।<sup>22</sup> यहाँ उसकी कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा  
झंडा ऊँचा रहे हमारा  
सदा शक्ति बरसाने वाला  
प्रेमसुधा हर सरसाने वाला  
वीरों को हरसाने वाला  
मातृ भूमि का तन-मन सारा,  
झंडा ऊँचा रहे हमारा।<sup>23</sup>

दूसरे गीत को राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन जी ने अपेक्षाकृत कुछ कठिन माना। वैसे  
उनकी दृष्टि में दोनों एक-दूसरे बढ़कर थे। अतः इसकी भी कुछ पंक्तियाँ उदाहरणस्वरूप  
देखिए—

राष्ट्रगान की दिव्य ज्योति  
राष्ट्रीय पताका नमो-नमो।  
भारत-जननी के गौरव की,

अविचल शाका नमो-नमो।  
 कर में लेकर शूरमा  
 कोटि-कोटि भारत संतान  
 हँसते-हँसते मातृभूमि के  
 चरणों पर होंगे बलिदान।<sup>24</sup>

यहाँ श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की कविताओं का स्मरण करना आवश्यक है। डॉ० रामकुमार वर्मा के अनुसार, 'उनकी अधिकांश कविताएँ राष्ट्रीय हैं, क्योंकि उनका जीवन ही राष्ट्रीय भाव-मय है। सच्चे अनुभव ने उनकी कविताओं का अधिक स्पष्ट और हृदयग्राही बना दिया है। राष्ट्रीय कविताओं को उत्कृष्टता की दृष्टि से मैं इनकी कविताओं को एक भारतीय आत्मा की कविताओं में से किसी प्रकार ही नहीं समझता। एक बात और है। इन्होंने अपनी राष्ट्रीय कविताओं वीर-भाव के साथ ही साथ भावुकता भी इस प्रकार भर दी है कि उन कविताओं का मूल्य वस्तुतः देश के मूल्य के बराबर हो जाता है।<sup>25</sup> झाँसी की रानी कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

कुटिया में थी विषमवेदना, महलों में आहत अपमान,  
 वीर सैनिकों के मन में था, अपने पुरखों का अभिमान  
 नाना धुंधू पंत पेशवा जुटा रहा था सब सामान  
 बहिन छबीली ने रणचंडी का कर दिया प्रकट अह्वान।<sup>26</sup>

परंतु भारत में 'वीरों का कैसा हो बसंत' इस प्रश्न का उत्तर बड़ी सहजता से इस प्रकार दिया है—

भूषण अथवा कविचंद नहीं,  
 बिजली भरदे वह छंद नहीं,  
 है कलम बँधी स्वच्छंद नहीं,  
 फिर हमें बतावे कौन? हंत!  
 वीरों का कैसा हो बसंत? <sup>27</sup>

धार्मिक कट्टरता और जातिवादी मानसिकता हमारी राष्ट्रीय भावना के मार्ग का भयंकर अवरोध है। अतः इसका निराकरण होना चाहिए। पं० जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है कि 'हिंदुस्तान को अपनी मजहबी कट्टरता कम करनी चाहिए और उसे अपने विचारों और सामाजिक स्वभावों की अलहदगी से छुटकारा पाना चाहिए। यह अलहदगी उसके लिए जेलखाना बन गई है और यह हिंदुस्तान की भावना को कुचल रही है और इसकी तरक्की को रोक रही है। लोकाचार की पवित्रता के ख्याल ने सामाजिक संबंधों में दीवारें खड़ी कर दी हैं और सामाजिक कारवाइयों का क्षेत्र संकीर्ण संकीर्ण हो गया है। कट्टर हिंदू का रोजाना की ज़िंदगी की आध्यत्मिक बातों के मुकाबले इस बात से ज़्यादा ताल्लुक है कि क्या खाना चाहिए और किसको अलहदा रखना चाहिए। उसके सामाजिक जीवन में रसोईघर के नियम-उपनियमों की हुकूमत है।<sup>28</sup> सियारामशरण गुप्त जी ने अतीत का संकेत देते हुए देश की भिन्नता में अभिन्नता को उजागर करने का प्रयास किया है—

संततियाँ तेरी एक ही समान,

हिंदू, बौद्ध, क्रिश्चियन, पारसी, मुसलमान।  
 पूरे देश-भर में  
 पूरब से पश्चिम में, दक्षिण से उत्तर में  
 जाता और आता रहा  
 नूतन प्रतिष्ठा नित्य पाता रहा।  
 भिन्नता में भी अभिन्न वसुधा का एक ज्ञान।<sup>29</sup>

राष्ट्रीय भावना बाह्य कारणों से भी विकसित होती है और आंतरिक कारणों से भी उसका विकास होता है। चीन और पाकिस्तान-आक्रमण तथा सियाचिन का विजय-अभियान बाह्य प्रेरणा के ओजस्वी स्रोत हैं। दिनकर जी ने 'परशुराम की प्रतीक्षा' में चीन के आक्रमण के समय लिखा है—

जनता जगी हुई है।  
 ओ गांधी के शांतिसदन में आग लगाने वाले।  
 कपटी, कुटिल, कृतघ्न आसुरी महिमा के मतवाले?  
 वैसे तो मन मार शील से हम विनम्र जीते हैं।  
 आततायियों का शोणित, लेकिन हम भी पीते हैं।  
 मुख में वेद, पीछ पर तरकश, कर में कठिन कुठार।  
 सावधान! ले रहा परशुधर फिर नवीन अवतार।<sup>30</sup>

अब हमें शत्रु और मित्र की पहचान हो गई है और देश पर आनेवाले संकटों से सदैव सावधान रहने का सजग स्वभाव प्राप्त हुआ है। यही हमारी आंतरिक राष्ट्रीय भावना की जागृति का कारण भी है। देश की आंतरिक सुरक्षा-पद्धति का नवीनीकरण, सैन्यशक्ति तथा आधुनिकतम अस्त्र-शस्त्रों का नई युद्ध-शैली के अनुसार प्रयोग, सांप्रदायिक झगड़ों को शांत करने के प्रयत्न, योजना-बद्ध आधुनिक शिक्षा तथा राष्ट्रीय विकास की विभिन्न योजनाएँ इसी का प्रतिफल हैं। जीर्ण-शीर्ण संसाधनों को त्यागकर द्रुतगति से प्रगतिगामी होने की प्रवृत्ति ने हमारे राष्ट्रीय जीवन में चार चाँद लगा दिए हैं। श्री सुमित्रानंदन पंत जी ने ठीक ही कहा है कि 'हम अपनी मंथर गति से चलने की आदत को छोड़कर अपने भीतर नवीन प्रगति का वेग संचय करने का प्रयत्न कर रहे हैं। आज की आपात स्थिति का हम अधिक-से-अधिक उपयोग कर अपने इस प्राचीन देश को सर्वांगपूर्ण आधुनिक राष्ट्र का रूप देने के लिए कटिबद्ध होना चाहते हैं। इस जागरण की चेतना को नवीन जीवन-मूल्यों का रूप देकर उनका देश के कोने-कोने में प्रसार करना आज के साहित्यकार का मानवीय कर्तव्य हो गया है। 'चरैवेति चरैवेति यह जागरण का स्वप्न फिर से सो न जाय, वह अविराम गति से राष्ट्रीय जीवन में सक्रिय तथा मूर्त हो सके, आज के साहित्यकार को इसके लिए अश्रांत रूप से सजग एवं सृजन-तत्पर रहना है।'<sup>31</sup> इस संदर्भ में कीर्ति चौधरी का 'देव उवाच' भी पठनीय है—

उज्ज्वल है, उज्ज्वल लेंगे, उज्ज्वलतर देंगे  
 मानिकमुक्ता बाँएँगे, जी-भर काटेंगे।  
 करने दो मंथन उनको यदि बड़ा चाव है  
 अमृत तो हम लाएँगे, सबको बाँटेंगे।<sup>32</sup>

## संदर्भ

1. डॉ० सुधाकर शंकर कलबडे, आधुनिक हिंदी-कविता में राष्ट्रीय भावना, पृ० 22 पुस्तक संस्थान, नेहरूनगर, कानपुर, प्रथम संस्करण।
2. गंगाधर झा आधुनिक राष्ट्रीय चेतना का विकास, आलोचना, त्रैमासिक पृ० 258, संपादक, नंददुलारे बाजपेयी, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, जनवरी 1959 ई०
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 400, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
4. आचार्य नंददुलारे बाजपेयी, राष्ट्रीय साहित्य, पृ० 14, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 1996 ई०
5. श्री मैथिलीशरण गुप्त, भारत भारती, पृ० 10, साहित्य सदन चिरगाँव, झाँसी, संवत् 2040 वि०
6. श्री सियारामशरण गुप्त, अवरूपा, पृ० 63-64, सेतु प्रकाशन, झाँसी, प्रथम संस्करण।
7. श्रीधर पाठक, भारत गीत, पृ० 42-43, गंगा पुस्तक माला, लखनऊ, 1928 ई०
8. सुमित्रानंदनपंत रश्मिबंध, परिदर्शन, पृ० 14, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, एकादश संस्करण।
9. वही, पृ० 94, 95
10. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', राग-विराग, पृ० 75, संपादक, डॉ० रामविलास शर्मा, लोकभारती, प्रकाशन इलाहाबाद, सन् 1980 ई०
11. भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारत दुर्दशा, भारतेन्दु समग्र, पृ० 460, संपादक हेमंत शर्मा, हिंदीप्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1987 ई०
12. श्री मैथिलीशरण गुप्त, भारत भारती, प्रस्तावना, पृ० 3-4, साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी
13. वही, पृ० 159
14. जयशंकर प्रसाद, स्कंद गुप्त, पृ० 144-145 भारती भंडार, इलाहाबाद, संवत् 2024
15. पं० राधेश्याम कथावाचक, वीर अभिमन्यु, पृ० 11, श्री राधेश्याम पुस्तकालय, बरेली, 1977 ई०
16. दिनकर, पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण, पृ० 23, उदयाचल प्रकाशन पटना 1989 ई०
17. श्री मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, पृ० 201, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, संवत् 2028 वि०
18. वही, पृ० 202
19. वही, पृ० 234
20. निराला, राग-विराग, संपादक, डॉ० रामविलास शर्मा, पृ० 59-60, लोकभारती प्रकाशन
21. महादेवी वर्मा, संधिनी, पृ० 161, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 2004 ई०
22. श्री श्यामलाल पार्षद, उत्तर प्रदेश मासिक, 15 अगस्त, 1972 ई०, सं० ठाकुरप्रसाद सिंह, पृ० 35,
23. वही, पृ० 32
24. वही, पृ० 8, अगस्त 1979 ई०
25. डॉ० रामकुमार वर्मा, सिंहावलोकन मुकुल, सुभद्राकुमारी चौहान, पृ० 13, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, दिसंबर 1965
26. वही, पृ० 70
27. वही, पृ० 127
28. जवाहरलाल नेहरू, हिंदुस्तान की कहानी, पृ० 717, द्वितीय संस्मरण
29. सियारामशरण गुप्त, अनुरूपा, पृ० 73, सेतु प्रकाशन, झाँसी, 1988 ई०
30. दिनकर, परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० 42, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008 ई०
31. सुमित्रानंदन पंत, कला और संस्कृति, पृ० 30, किताब महल इलाहाबाद, 1978 ई०
32. कीर्ति चौधरी, तीसरा सप्तक, संपादक अज्ञेय पृ० 59, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1996 ई०



## हिंदी कथासाहित्य में कमलेश्वर का योगदान

कौशलकुमारी, शोधाछात्रा

एम०जे०पी० रुहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली (उ०प्र०)

डॉ० महेश 'दिवाकर'

शोध निर्देशक एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग

गुलाबसिंह हिंदू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चाँदपुर (बिजनौर) उ०प्र०

कमलेश्वर की प्रतिष्ठा एक सफल कथाकार के रूप में साहित्य-जगत् में है। आज़ादी के पश्चात् उन्होंने न केवल अनेक साहित्यिक आंदोलनों के उतार-चढ़ाव को देखा, अपितु, 'नई कहानी' आंदोलन का तो स्वयं नेतृत्व भी किया। साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवादी आंदोलन का उन पर व्यापक प्रभाव पड़ा और उससे उन्होंने प्रेरणा ग्रहण की। वे प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित हुए, लेकिन साहित्यजगत में उन्होंने अपने स्वतंत्र अस्तित्व का निर्माण किया। कहानी, उपन्यास, समीक्षा, यात्रा-साहित्य, संस्मरण, नाटक, अनुवाद, फिल्म, संपादन, पत्रकारिता आदि विधाओं के क्षेत्र में उन्हें ख्याति मिली, लेकिन कथासाहित्य के क्षेत्र में उनकी भूमिका विशेष उल्लेखनीय है। कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में जीवन और समाज की सहज हृदयसंवेद्य और अनुभवगम्य अनुभूतियों के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किए हैं, उसी प्रकार अपनी कहानियों में भी उन्होंने जीवन, समाज और देश के मार्मिक एवं यथार्थ रूप हमारे सम्मुख खड़े किए हैं।

कमलेश्वर ने वर्ण-विषय कस्बाई और महानगरीय, निम्नमध्यवर्गीय मानव-जीवन और जगत् से लिए हैं। उनके कथासाहित्य में व्याप्त संवेदनाएँ समाज और मानव-जीवन के प्रायः विविध आयामों को अपने पाठक तक पहुँचाती हैं।

कमलेश्वर समझौते के कथाकार न होकर विद्रोह के कथाकार हैं और सामाजिक क्रांति के सच्चे साहित्यिक संवाहक हैं। ललित मोहन अवस्थी ने 'कमलेश्वर : एक प्रतिबद्ध वामपंथी' शीर्षक अपने आलेख में लिखा है— 'सामाजिक क्रांति टुकड़ों-टुकड़ों में नहीं होती, और न आम आदमी की भागीदारी के बिना वह कभी सफल होती है। क्रांति की सफलता और चरितार्थता की पूर्ण शर्त है श्रमशील, जनवादी प्रगतिशील जन-वर्गों की एकजुटता, जनप्रयासों का एकीकरण, मार्क्सवाद की यही शिक्षा है।'<sup>1</sup> इसी तथ्य को कमलेश्वर ने साहित्यिक भाषा में इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है— 'अगर क्रांति आम आदमी की आत्मा को तेजस्वी नहीं बनाती, तो सड़ने लगती है।'<sup>2</sup> क्रांतिकारी साहित्य की इसी रचनात्मक आवश्यकता पर जोर देते हुए कमलेश्वर ने लिखा है— 'क्या साहित्य रचनात्मक रहते हुए भी क्रांति की भूमिका (अन्य लड़ाकू वर्गों के साथ) निभा सकता है? इसका सीधा और साफ़ उत्तर यही है कि मानसिकता-निर्माण के आगे की भूमिका को भी सिर्फ़ सही रचनात्मक साहित्य ही निभा सकता है (साहित्य).....क्रांति के प्रति और पक्ष में लिए गए मानसिकता-निर्माण के दायित्व

को क्रांति के प्रति संपूर्ण आस्था में तबदील करता है।’<sup>3</sup> और ‘एक सच्चे वामपंथी की भाँति यहाँ कमलेश्वर का दृष्टिकोण हर मामले में साफ़ है— साहित्यकार देश और समाज के अन्य लड़ाकू वर्गों के साथ मिलकर क्रांति की भूमिका निभाता है, अलग या अकेला नहीं, क्योंकि साहित्यकार कोई विशिष्ट जन नहीं होता, बल्कि ‘सामान्यजन का ही एक अंग होता है’ और यह कि रचनात्मक साहित्य ही सही अर्थों में क्रांति का पोषक होता है।’<sup>4</sup> निस्संदेह, कमलेश्वर के कथा-साहित्य से गुज़रकर इस तथ्य को जाना जा सकता है।

कमलेश्वर का यह विद्रोह वर्तमान शासन-व्यवस्था में निहित अवसरवादिता और स्वार्थपरायणता तथा मानव-जीवन और समाज में व्याप्त घोर आर्थिक विषमता एवं विसंगतियों को देखकर पनपता है। यही कारण है कि कमलेश्वर के कथासाहित्य में संश्लिष्ट जीवन-बिंब अलग-अलग उभरते हैं, किंतु उनका संवेदनात्मक हेतु और संवेदनात्मक अभिप्राय एक ही बिंदु पर व्यक्त होता है। उनके कथासाहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी संवेदना का संसार आस-पास के अनुभवों से रिला-मिला होने के कारण वैचित्र्यपूर्ण न होकर वैविध्यपूर्ण है। उन्होंने अपने ठोस अनुभवों से अपने कथासाहित्य को नवीन अर्थवत्ता और नवीन भावाभिव्यंजित संवेदना प्रदान की है।

उन्हें जब कोई टूटा हुआ कंधा, थका हुआ पैर, भीख माँगता हुआ हाथ, आँसू बहाती दीनहीन अबला, हटो-बचो के नारे लगाती नेतृत्वहीन भीड़, सांप्रदायिक तनाव, भीड़, धरना और घोर अव्यवस्था दिखाई देती तो वे उसे अपनी कथा में आत्मीयता के साथ प्रस्तुत करते हैं। वास्तव में, उनकी रचनाधर्मिता जिस ईमानदारी की माँग करती है, कमलेश्वर उसी सूझ-बूझ के कथाकार हैं। उन्होंने जीवनभर सच्चा दर्द बाँटा, झूठी मुस्कान नहीं बेची। कमलेश्वर के कथासाहित्य में संवेदना के बहुमुखी स्तर हैं। यहाँ पर संक्षेप में, कमलेश्वर के कथा-साहित्य में संवेदना-वैविध्य के प्रमुख बिंदुओं पर विवेचन एवं विश्लेषण करना संगत होगा—

### 1. रागात्मक संवेदना :

कोई भी मनुष्य किन्हीं भी परिस्थितियों में अपना जीवन-यापन क्यों न करता हो, रागात्मक क्षणों, अनुभवों के प्रति उसकी ललक अवश्य रहती है। भावुकता, आत्मीयता, प्रेम, स्मृति, अल्लहड़ता और आकर्षण की स्थितियाँ राग-संबंधों की भूमिका निर्मित करती हैं। कमलेश्वर एक ऐसे कथाकार हैं, जिनकी कहानियाँ हों, अथवा उपन्यास उनमें ‘रागात्मक संवेदना’ का एक स्पष्ट वृत्तचित्र दिखायी देता है। उनकी आरंभिक कहानियों में संवेदना का रूप एकदम रोमांटिक है। कथाकार कमलेश्वर ने आम आदमी के जीवन में प्रेम के विविध रूपों को यथार्थ के धारातल पर चित्रित किया है।

‘नीली झील’ कहानी में पच्चीस-छब्बीस वर्ष का महेसा और चालीस की न लगने वाली विधवा ब्राह्मणी पार्वती की प्रेमकथा का मार्मिक चित्रण हुआ है। महेसा-पार्वती का प्रेम व्यापक मानवीय करुणा और प्रेम के आदर्श मूल्यों से सहज भाव से अभिव्यंजित हुआ है। पार्वती की इच्छा की पूर्ति के लिए मंदिर-निर्माण के लिए एकत्र रुपये से महेसा दलदली नीली झील खरीद लेता है, ताकि वहाँ कोई चिड़ियों को न मार सके। इस कहानी के जन्म के पीछे अनुभूति की प्रामाणिकता ही पहली चीज है, और महेश पांडे का चरित्र लेखक का पूरी तरह ‘जीया’ हुआ चरित्र है, वरना कहानी दोनों स्तर पर इतनी गंभीरता और करुणा से आगे न बढ़ती।<sup>5</sup>

निश्चित रूप से इस कहानी में कमलेश्वर की 'रागात्मक संवेदना' अपने विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त हुई है। कहानीकार सुभाष पंत के शब्दों में, 'दरअसल, नीली झील कई स्तरों पर प्रतीक है। पहले स्तर पर कस्बे के आदमी की मासूमियत का प्रतीक, जिसकी हर कुर्बानी के साथ रक्षा करना चाहता है। दूसरे स्तर पर नीली झील कस्बे का प्रतीक है, जिससे संबंध टूट जाने को वह पीड़ा के स्तर पर अभिव्यक्त करना चाहता है। तीसरे स्तर पर नीली झील जिससे वह संवेदना के स्तर पर जुड़ा है। चौथे स्तर पर नीली झील उन मानवीय संघर्षों का प्रतीक है, जिसे लेखक धर्म की रूढ़ियों को तोड़ते हुए जीवित रखना चाहता है, भले ही उसे इस आस्था के लिए कहीं रोमैंटिक बोध या यथार्थोन्मुखी आदर्शवादिता का सहारा लेना पड़ा हो।' <sup>6</sup>

'पानी की तस्वीर' असफल प्रेम को रोमानी शैली में चित्रित करती है। <sup>7</sup> इसी प्रकार 'तीन दिन पहले की रात' में नायिका मीना के जीवन में तीन प्रेमी— दिवाकर, जितेंद्र और अमर आते हैं। लेकिन यह भी अपूर्ण प्रेम की कहानी है। <sup>8</sup>

इसी प्रकार, 'मेरी प्रेमिका' कहानी भी उल्लेखनीय है, जिसमें पत्र-शैली के माध्यम से लेखक ने प्रेम का चित्रण किया है और इसमें भी असफल प्रेम का आदर्शोन्मुख चित्र है। कहानी का अंत गहरी रागात्मक संवेदनाएँ छोड़ जाता है। <sup>9</sup> इसी प्रकार कमलेश्वर की अन्य कहानियों में भी रागात्मक संवेदना का उत्कृष्ट स्वरूप दिखायी देता है। इनके अतिरिक्त एक रुकी हुई ज़िंदगी, एक अश्लील कहानी, एक थी विमला, जो लिखा नहीं जाता, प्रेमिका, पीला गुलाब, तलाश, रातें, सच और झूठ, लहर लौट गई, कुछ नहीं, कोई नहीं आदि कहानियों में भी रागात्मक संवेदना का मार्मिक स्वरूप अंकित हुआ है।

कमलेश्वर के उपन्यासों में भी रागात्मक संवेदना का रूप असफल प्रेम-संबंधों के रूप में ही अधिकांशतया देखने को मिलता है। यथा 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' में सरनाम सिंह और रंगीले के साथ बंसिरी और कमला के रागात्मक चित्र मन पर मार्मिक संवेदना अंकित करते हैं। 'डाक बंगला' में कमलेश्वर ने इरा के जीवन-संघर्ष को चित्रित किया है। इस उपन्यास में एक अलग तरह की विचित्र-सी रूमानियत दृष्टिगोचर होती है। 'रागात्मक संवेदना' की दृष्टि से 'डाक-बंगला' उपन्यास अपने आपमें एक उपलब्धि है, क्योंकि इसमें इरा जैसी असाधारण नारी के असफल प्रेम-संबंधों के यथार्थ को रूपांकित किया गया है और साथ ही वर्णित है— तिलक, सोलंकी, विमल, बत्तरा और डॉक्टर के इरा के साथ असफल प्रणय-संबंधों की कहानी। कहानी का यह स्थल देखें। कितनी मार्मिक है, इसकी रागात्मक संवेदना— '....और विमल के लिए मैं अग्नि-परीक्षा देकर नितांत अकेली बनकर लौट आई। नया जीवन हुआ था मेरा और मन में दृढ़ विश्वास जग गया था कि अब मैं विमल को पूरी तरह बचा लूँगी। जो कुछ मैं उसके लिए कर सकती थी, जो मेरे वश में था, वह मैंने किया था। भ्रम, संशय और दुविधा के सारे साये मैंने मिटा दिए थे और मैं एकांतिक रूप से उसके लिए तैयार हो गई थी, यही सोचकर कि कम से कम वह मुझसे तो निराश और हताश नहीं होगा....पर मैं अकेली रह गई...अब तो बिलकुल अकेली हूँ। एक साल बाद विमल ने अस्पताल में आँखें मूँद लीं। कहते-कहते इरा रो पड़ी। सब-कुछ खोकर भी यही हाथ आया। यही मुझे पाना था तिलक....।' <sup>10</sup> कुल मिलाकर इस उपन्यास में रागात्मक संवेदना का यथार्थ-दर्शन होता है।

इसी प्रकार 'काली आँधी' में मालती और जग्गीबाबू, 'आगामी अतीत' में डॉ॰ कमलबोस और चंदा, 'तीसरा आदमी' में चित्रा, सुमंत और मैं तथा 'वही बात' में समीरा, नकुल और प्रशांत के बीच असफल प्रेम-संबंधों का मार्मिक चित्रण हुआ है।<sup>11</sup> और, 'तीसरा आदमी' में जो पति-पत्नी के बीच के रागात्मक संबंध है, वे 'तीसरे आदमी' की उपस्थिति से अत्यंत ही बोझिल हो गए हैं।<sup>12</sup>

इस प्रकार कमलेश्वर के कथा-साहित्य में रागात्मक संवेदना का जो स्वरूप है, वह आम आदमी की जिंदगी से असंपृक्त नहीं है। अपितु, उसमें जिंदगी को जीने की भरपूर तलाश है।

## 2. वैचारिक संवेदना :

कमलेश्वर के कथासाहित्य में जो रोमानी तत्त्व हैं, उन्हीं से उनकी वैचारिक संवेदना का विकास हुआ है। कमलेश्वर को रोमानी संदर्भों के कटु-तिक्त यथार्थ ने एक ऐसी स्थिति में ला खड़ा किया, जो वैचारिक संघर्ष को जन्म देती है। उनकी वैचारिक बैचेनी उनके कथासाहित्य में अनेक स्तरों पर उभरकर आयी है। भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था, कदाचार, दुराचार, जातिवाद, भाई-भतीजावाद, संप्रदायवाद, आर्थिक विषमताओं के फलस्वरूप उत्पन्न समस्याओं एवं विसंगतियों के कारण फैली गरीबी, भुखमरी, शोषण, कालाबाजारी आदि की स्थिति ने कमलेश्वर को बैचेनी दी है। वस्तुतः बैचेनी का यह अनुभव और इससे विकसित संवेदना ही कथाकार कमलेश्वर के वैचारिक संसार का ताना-बाना तैयार करती है।

नए कथालेखकों का एक वर्ग वह था, जो वैज्ञानिक विरोध को अधिकाधिक सामाजिकता में ढालने की कोशिश कर रहा था। इनकी दृष्टि अधिक जागरूक, समाजोन्मुखी थी और ये सही प्रगतिशील विचारधारा को विकसित कर रहे थे। यानी ये वे लोग थे जो समयगत संघर्षों को व्यक्ति के स्तर पर नहीं, सामाजिकता के संदर्भों में देख रहे थे और अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहे थे। कमलेश्वर इस वर्ग के ही सशक्त कथाकार हैं।

कमलेश्वर अपने कथासाहित्य में प्रारंभ से ही सामाजिकता के प्रति जागरूक रहे हैं; और जब-जब साहित्य को कलावादी नजरिए से देखने का प्रयास किया गया है, या व्यक्ति की कुत्सित मनोवृत्ति और कुंठाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम समझा गया है, तब-तब कमलेश्वर ने विद्रोह का झंडा उठाया है। कमलेश्वर की दृष्टि शुरू से ही साफ़, पैनी और ईमानदार रही है।

'राजा निरबंसिया' कहानी ने जहाँ एक ओर शिल्प के स्तर पर नया कीर्तिमान स्थापित किया, वहीं कथ्य के स्तर पर भी यह एक शाश्वत रचना है। इसे मात्र पारिवारिक टूटन की कहानी मानकर इसका मूल्यांकन संभव नहीं है। 'राजा निरबंसिया' के जगपति की टूटन के पीछे व्यवस्थाजन्य सांस्कृतिक और आर्थिक कारण मौजूद हैं। वास्तव में यह कहानी अपनी सीमा और संभावना में एक जनवादी वैचारिक संवेदना की कहानी है, जिसमें आर्थिक स्तर पर टूटते हुए आदमी की सच्ची तस्वीर है, न कि दांपत्य के बिखराव की एकांगी और निजी कहानी। यह कहानी आर्थिक शोषण को पूर्णतया उजागर करती है। इस कहानी से उत्पन्न वैचारिक संवेदना ने पाठकों को झिंझोड़कर रख दिया है।<sup>13</sup>

जगपति का यह द्वंद्व भी देखें— 'चंदा के लड़का हुआ है।...वह कुछ और जनती,

आदमी का बच्चा न जनती!...वह और कुछ भी जनती, क़कड़, पत्थर! वह नारी न बनती, बच्ची ही बनी रहती, उस रात की शिशु चंदा! पर चंदा, यह सब क्या करने जा रही है? उसके जीते-जी वह दूसरे के घर बैठने जा रही है? कितने बड़े पाप में ढकेल दिया चंदा को... पर उसे भी तो कुछ सोचना चाहिए। आख़िर क्या? ... आज का अँधेरा घर में तेल भी नहीं, जो दिया जला ले। और फिर किसके लिए, कौन जलाए? चंदा के लिए... पर उसे तो उसने बेच दिया था।' <sup>14</sup> अस्तु, संपूर्ण कहानी कमलेश्वर की वैचारिक संवेदना की जबर्दस्त छाप पाठकों के मन पर छोड़ती है। इसी प्रकार की अन्य कहानियों में बहुत ही उल्लेखनीय हैं— देवा की माँ, मुर्दों की दुनिया, कस्बे का आदमी, आत्मा की आवाज़, गर्मियों के दिन, गाय की चोरी, भटके हुए लोग, खोई हुई दिशाएँ, पराया शहर, तलाश, दुःखभरी दुनिया, अपने देश के लोग, एक रुकी हुई ज़िंदगी, मांस का दरिया, जोखिम, बयान, रातें, मानसरोवर के हंस, या कुछ और, नागमणि, साँप, लड़ाई, लाश, मैं, अपना एकांत, इतने अच्छे दिन, आज्ञादी मुबारक, रावल की रेल, सफ़ेद सड़क, इंतजार आदि कहानियाँ कमलेश्वर द्वारा अभिव्यक्त उनकी कस्बाई और महानगरीय वैचारिक संवेदना का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती हैं। यथा— 'बयान' नामक कहानी से यह स्थल देखें— 'बहुत दिनों के बाद उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर अँगुलियों को शटर की तरह दबाया था। दिन का वक्त था। वे कैमरा लिए बैठे थे। फिर उन्होंने मुझे वाइल की झीनी साड़ी पहनने को कहा था। मुझे तरह-तरह से बैठाया और लिटाया था और तस्वीरें ले ली थीं। उस वक्त उनकी एक आँख पहले की तरह काँप रही थी। मैं समझ गई थी, वे सिर्फ़ मुझे देख रहे थे। उस वक्त जब वे तन्मय थे...जी, यानी अपने में डूबे हुए थे, तब भी आठ-दस बार उनकी आँखों से खून के क़तरे टपके थे। उन्होंने मुझे बुरी तरह थका दिया था। खुद भी बेतरह थक गए थे। उसके बाद वे बिस्तर पर लेट गए थे और छत की तरफ़ टकटकी लगाए देखते रहे थे। मैं कपड़े पहनकर उन्हें चाय देने आई थी तो उनकी आँखों में खून डबडबा रहा था। ... संपादन में मेरी दो तस्वीरें छपी थीं। बस, यहीं से हंगामा शुरू हुआ था। मेरी वे अधनंगी तस्वीरें स्कूल के मैनेजर तक भी पहुँची थीं। उन्होंने फौरन तय किया कि इस तरह की औरत का स्कूल में रहना एक पल के लिए भी मुमकिन नहीं। मुझे उसी वक्त क्लास से बुलाया गया था और खड़े-खड़े हिसाब कर दिया गया था।' <sup>15</sup> निस्संदेह, कमलेश्वर की ये कहानियाँ उनकी वैचारिक संवेदना का उत्कृष्ट स्वरूप प्रस्तुत करती हैं।

वास्तव में, कमलेश्वर की वैचारिकता एक दृष्टि में समग्र जीवन-दृष्टि बनकर उनके कहानी-साहित्य में अभिव्यक्त हुई है। इसी प्रकार उनके उपन्यासों— एक सड़क सत्तावन गलियाँ, लौटे हुए मुसाफ़िर, तीसरा आदमी, डाक बंगला, समुद्र में खोया हुआ आदमी, काली आँधी, आगामी अतीत, वही बात, सुबह-दोपहर-शाम, रेगिस्तान और कितने पाकिस्तान में भी उनकी वैचारिक संवेदना के विविध आयाम देखने को मिलते हैं। वस्तुतः कमलेश्वर ने निजी जीवन के संघर्ष और बाह्य परिवेश में फैली सच्चाइयों के कड़वे घूँट पीकर जिस चिंतन को वाणी दी है, वह एक जागरूक और मूल्यान्वेषी कथाकार का चिंतन है। वे अराजकता, विकृति, अपसंस्कृति, आर्थिक विषमता, सामाजिक विसंगति, मूल्यगत-विश्रृंखलता, अस्तित्वहीनता और अव्यवस्था को कम करके एक स्वस्थ जीवन-दृष्टि के आकांक्षी हैं। जब वे देखते हैं कि कैसे मुट्ठीभर लोग पूरी व्यवस्था को अपने अनुरूप और अनुकूल बनाते हैं और अपने क्षुद्र

राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति हेतु ये लोग कुछ भी और कोई भी कोर-कसर नहीं उठा रखते हैं तो उनका वैचारिक चिंतन विद्रोह करने लगता है, और कलम से कहानियाँ और उपन्यासों की चिनगारियाँ झरने लगती हैं। वस्तुतः उनके किसी भी उपन्यास को उठा लीजिए, उसमें उनकी वैचारिक संवेदना अनेक स्थलों पर मुखरित हुई दिखाई देगी। 'कितने पाकिस्तान' नामक उपन्यास तो इस दृष्टि से उनकी 'वैचारिक संवेदनाओं' का गुलदस्ता है—

'देखो...हर सभ्यता, हर धर्म में ब्राह्मणवाद पैदा हुआ। भारत में तो वह बहुत देर से आया, पर मिस्र की सभ्यता में भी पुरोहितवाद और ब्राह्मणवाद पैदा हुआ। यह जड़ता का प्रतीक था...मेरे मिस्र में भी देवताओं के नाम पर जो प्रसाद चढ़ाया जाता था, वह वहाँ के मन्दिरों के पेट में जाता था। वे पुजारी उन मंदिरों में वैभव से रहते थे। वे श्रम, फौजी सेवा और करों से मुक्त थे। ये पुरोहित-पुजारी और ब्राह्मण ही मिस्र की सभ्यता के पतन का कारण बने।' <sup>16</sup> इसी प्रकार, इससे एक अन्य स्थल देखें—

'बकवास मत करो। ये ग्लत जानकारियाँ हैं।...भारत ने सबको जीवन का अधिकार दिया है। तुम तो अपने देश में एक भी विदेशी को आज भी घुसने नहीं देते, लेकिन इस भारत ने सदियों से सबको जीने का वसीला और रहने को पनाह दी है...तुमने तो अपने-अपने पाकिस्तान बनाए हैं और जब हमारी सभ्यताओं ने तुम्हारे आततायी संहारक आक्रमणों को झेला था, तब अपनी विजय को प्रसारित करने के लिए हमने उन आक्रांताओं के नरमुंडों को अपना परचम बनाया था...तब तुमने विश्व की आदिम सभ्यताओं पर नरभक्षी होने का आरोप और कलंक लगाया था...वही कलंक तुम आज भारत के पूर्वोत्तर प्रदेशों पर ला रहे हो...वे नरभक्षी नहीं, तुम्हारे नरमुंडों को काटकर परचम की तरह फहराने वाले योद्धा थे...।' <sup>17</sup> इस प्रकार यह अकेला ही उपन्यास कमलेश्वर की विविध वैचारिक संवेदनाओं का कोष है। इसी प्रकार, कमलेश्वर के अन्य उपन्यासों से उनकी वैचारिक संवेदनाओं के अनेक स्थल उद्धृत कर सकते हैं। ये संवेदनाएँ कमलेश्वर के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में उनके वैचारिक अनुभव एवं चिंतन को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती हैं।

कमलेश्वर की दृष्टि किसी एक व्यक्ति को नहीं, किसी एक समाज को नहीं, अपितु वह निखिल सृष्टि के मानव-जीवन और समाज को देखती-समझती हुई चिंतनपरक निष्कर्षों से जुड़ी है।

### 3. समसामयिक परिवेश से उत्पन्न संवेदना :

कमलेश्वर की कथा-यात्रा का आरंभ भले ही रोमांटिक हो, किंतु वे अपने समय, समाज और जीवन-परिवेश को कभी भी उपेक्षित करके नहीं चले। समसामयिक परिवेश के प्रति सचेतन दृष्टि, बदलते माहौल के प्रति संपृक्ति और समकालीन घटना-प्रसंगों व उनसे विकसित-उद्भूत स्थितियों के प्रति साझेदारी कमलेश्वर की संवेदना का एक वृहद और उल्लेखनीय संदर्भ है। वस्तुतः एक सजग कथाकार अपने युग से प्रभावित होता है और युग को भी प्रभावित करता है। युग के भीतर से ही वह ऐसा कुछ विशिष्ट भी पैदा करता है, जो उसकी अपनी पहचान होती है। यह पहचान युगीन सामयिक स्थितियों के चित्रण से बनती है। समसामयिकता पर बल देने की साहित्यकारों की दो प्रकार की दृष्टि रही है— एक तो यह कि समसामयिक कथा का समसामयिक महत्त्व होता है, पर ऐसे कथाकार को लोग महत्त्व नहीं देते।

दूसरी यह कि क्षणिक या सामयिक दृष्टि का मोह छोड़कर स्थायी और युगव्यापी जीवन की समस्याओं को समाज की दृष्टि में लाना चाहिए। वास्तव में, श्रेष्ठ और सच्चा कथासाहित्य तो वही होता है, जो कथाकार की अनुभूति की सच्ची उपज हो और उसने अपने लेखन में सत्य के साथ पूरी-पूरी तरह साक्षात्कार कर लिया हो। दूसरे शब्दों में कोई भी कथाकार सामयिक स्थितियों से अलग होकर नहीं लिख सकता। यही कारण है कि कमलेश्वर की कहानियाँ और उपन्यास मात्र प्रतिक्रियाएँ नहीं हैं, वरन् उनमें स्वातंत्र्योत्तर भारत के व्यक्ति समाज और परिवेश के विविध रंग भरे हैं। नए युग के विविध रूप स्वयं कथाकार ने देखे हैं।

राजा निरबंसिया, देवा की माँ, सुबह का सपना, मुरदों की दुनिया, पानी की तस्वीर में कस्बाई जीवन की आर्थिक विषमताओं और टूटते दांपत्य एवं पारिवारिक संबंधों के यथार्थ का चित्रांकन हुआ है। इसीप्रकार कस्बे का आदमी, खोई हुई दिशाएँ, एक रुकी हुई ज़िंदगी, दिल्ली में एक मौत, नामक कहानियों में समसामयिक सामाजिक विसंगतियों, विद्रूपताओं और क्रूरताओं के कारण संतुष्ट आम आदमी का चित्रांकन हुआ है। ये कहानियाँ समसामयिक कस्बाई और महानगरीय परिवेश की क्रूर, स्वार्थी, अजनबीपन से भरी यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति करती हैं। इसीप्रकार ज़िंदा मुर्दे, जार्ज पंचम की नाक, स्मारक, अपने देश के लोग, भरे पूरे अधूरे जैसी कहानियाँ अपना एक सामाजिक स्तर रखती हैं और ये किसी न किसी रूप में समकालीन सामाजिक विसंगतियों का पर्दाफाश करती हैं और यह एहसास दिलाती हैं कि कमलेश्वर अपने परिवेश के प्रति निरंतर सचेत हैं।

‘मांस का दरिया’ में वेश्या जीवन का बड़ा ही मार्मिक एवं यथार्थमय चित्र प्रस्तुत हुआ है। ‘बयान’ कहानी में कमलेश्वर ने समसामयिक समस्याओं, नई मानसिकता, नई चिंताओं और नये संक्रांत संबंधों के यथार्थ रूप को चित्रित किया है। यह कहानी आज के न्यायतंत्र के खोखलेपन को भी उद्घाटित करती है। व्यक्ति की मौत का कारण है क्रूर व्यवस्था और न्यायतंत्र क्रूर व्यवस्था पर प्रहार करने के स्थान पर उस व्यक्ति की मौत का कारण पारिवारिक संबंधों के बीच तलाशता है। कोर्ट के कटघरे में खड़ी पत्नी से न्यायाधीश और वकील बेहूदे प्रश्न करते हैं, जिनका उत्तर देती हुई वह पति की यातनापूर्ण ज़िंदगी और उस पर क्रूर सरकारी तंत्र के दबाव की कहानी कहती है और इसी यातना तथा दबाव को पति की मौत का कारण बताती है। वस्तुतः यह कहानी समसामयिक सामाजिक, राजनीतिक, प्रशासनिक तंत्र की विविध समस्याओं की पोल खोलती चलती है। एक स्थल देखें—

‘यह सरासर गलत है...आप लोग ग़लत और बेकार सवालों से सही नतीजे तक कैसे पहुँचेंगे। इन सब फ़िजूल की बातों से आप उनकी मौत की वजहें नहीं ढूँढ सकते। शादी से पहले का, बादल के टुकड़े की तरह तैरकर गुज़रा हुआ इश्क...उस प्रेम की काली परछाइयाँ...पति-पत्नी की कलह, छोटे-मोटे झगड़े, घरवालों से तनाव या पड़ोसियों से मनमुटाव— ये सब बड़ी मामूली बातें हैं। आप अभी तक इन्हीं के सहारे सच्चाइयों तक पहुँचने में लगे हैं। इनसे कुछ भी हासिल नहीं होगा।<sup>18</sup>

निश्चय ही, ‘बयान’ की भाँति लाश, जोखिम, लड़ाई, रातें आदि कमलेश्वर की ऐसी सशक्त कहानियाँ हैं, जो बड़ी ही बेरहमी से समसामयिक व्यवस्था के राजनीतिक-आर्थिक प्रपंचों और भ्रष्टता के तमाम सरोकारों को बेनकाब करती है और आम आदमी की विवशता,

घुटन, कुंठा, यातना, टूटन, निराशा को यथार्थ के धरातल पर चित्रित करती है।

कमलेश्वर के उपन्यासों में भी उनके कथ्य समसामयिक परिवेश से ही लिए गए हैं। चाहे भारत-पाक विभाजन हो, अथवा स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीतिक विद्रूपता और आर्थिक विषमता के कारण उत्पन्न अनेक सामाजिक समस्याएँ और विसंगतियाँ, कमलेश्वर के उपन्यासों में किसी न किसी रूप से चित्रित हुई हैं। 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' नामक उपन्यास में तत्कालीन छोटे-से कस्बे मैनपुरी की सामाजिक-आर्थिक व धार्मिक जिंदगी को दर्शाया गया है और निम्न-मध्यवर्गीय समाज की विविध समस्याओं को यथार्थ रूप में चित्रित किया गया है।

'लौटे हुए मुसाफ़िर' नामक उपन्यास में समसामयिक जीवन का संघर्ष यथार्थ रूप में भिन्न-भिन्न स्तरों पर सामने आता है। स्वाधीनता से पूर्व भारत के कस्बों में ही क्या, पूरे देश में सांप्रदायिक अराजकता व्याप्त थी, जिसके कारण लोगों के समक्ष रोज़ी-रोटी की विकट समस्या पैदा हो गई थी। इस स्थिति को कमलेश्वर ने बड़ी ही सूक्ष्मता से पकड़ा है।<sup>19</sup>

कमलेश्वर ने 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' और 'लौटे हुए मुसाफ़िर' के बाद 'काली आँधी' नामक उपन्यास में समसामयिक सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन का यथार्थ राजनीतिक परिवेश से उद्घाटित किया है। उपन्यास की नायिका मालती देश के उन राजनेताओं का प्रतिनिधित्व करती है, जो चुनाव में सफलता प्राप्त करने के लिए अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए जातियों को आधार बनाते हैं। 'काली आँधी' उपन्यास से यह स्थल देखें—

'देखिए, हम जातिवाद के सहारे चुनाव नहीं लड़ेंगे यह बात साफ़ है। पर, सच्चाई को भी देखिए! चुनाव-मैदान में इत्तफ़ाक से बनियों का कोई अपना केंडीडेट नहीं है। लाला दीनानाथ के खड़े होते ही सारे बनिये उनके इर्द-गिर्द जमा हो जाएँगे।...यह शर्तिया होगा, क्योंकि लोगों के मन में अपनी जाति के लिए लगाव होना लाजिमी है। ....आप सुनिए तो, मालती जी ने कहा था— जब सारे बनिये लाला दीनानाथ के झंडे के नीचे जमा हो जाएँगे, उस वक्त लाला दीनानाथ चुनाव मैदान से मेरे फेवर में विड़ा करेंगे। समझे आप! तब एक भी बनिया कहीं टूटकर नहीं जा सकता.....।' <sup>20</sup>

इस प्रकार, हम देखते हैं कि कमलेश्वर ने समकालीन राजनीतिक कुचक्रों को अपने उपन्यासों में स्थान दिया है।

'डाक बगला' में भी निम्न मध्यवर्ग की आर्थिक विषमताएँ, पारिवारिक बिखराव और टूटन को अंकित किया गया है। नारी आज भी कितनी असहाय और दयनीय है, इसका यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में हुआ है।<sup>21</sup>

इसी प्रकार 'तीसरा आदमी' व 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' उपन्यासों में भी निम्न मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ को वर्तमान आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर चित्रित किया गया है। आज के प्रायः सभी निम्न-मध्यवर्गीय परिवारों की स्थिति भी यही है, जहाँ आर्थिक विषमताओं के कारण वैयक्तिक व पारिवारिक स्तर पर घोर कटुता का वातावरण बन गया है। इसीप्रकार कमलेश्वर के सुबह-दोपहर-शाम, कितने पाकिस्तान, लौटे हुए मुसाफ़िर उपन्यासों में भारत-पाक-विभाजन और आजादी प्राप्ति के पश्चात् की सामाजिक, राजनीतिक व सांप्रदायिक स्थितियों की बड़ी ही यथार्थपूर्ण अभिव्यंजना हुई है। 'आगामी अतीत' में आज की जटिल और विषम, आर्थिक और सामाजिक स्थितियों का निरूपण किया



गया है। 'वही बात' में लेखक ने नारी-पुरुष-संबंधों के तनाव, टूटन और बिखराव को रूपायित किया है, जो आज के जीवन के यथार्थ को दर्शाते हैं।

वस्तुतः नारी हो या पुरुष, समग्र लेखन के केंद्र-बिंदु ही ये दो पात्र हैं। किसको दोषी ठहराया जाए? वस्तुतः यही जिंदगी बन गई है आज के आम आदमी की। वास्तव में, कमलेश्वर अपने समकालीन जीवन और सामाजिक परिवेश से इतने गहराई से यदि न जुड़े हुए होते तो वे इतना यथार्थ वर्णन अपने कथा-साहित्य में कैसे कर सकते थे? निःसंदेह, अपने समाज एवं जीवन को बिना देखे-भोगे सच्चाइयों को कोई भी व्यक्त नहीं कर सकता। कहने का तात्पर्य यह है कि आज हर आदमी-स्त्री हो या पुरुष किसी न किसी कारण से मछली-सी यातना भोगते हुए अपने जीवन का तड़प-तड़पकर अंत कर रहा है।

इस प्रकार कमलेश्वर के कथा-साहित्य में अपने समसामयिक परिवेश और उसमें जिंदा व्यक्ति से गहरा साक्षात्कार मिलता है। इस परिवेश का शायद ही कोई पक्ष अनछुआ रहा हो, जिसे कमलेश्वर ने अभिव्यंजित न किया हो। यही नहीं, उनकी संवेदना मात्र राष्ट्रीय एवं सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों तक ही सीमित नहीं रही, अपितु अंतरराष्ट्रीय संदर्भों से भी उसी भाँति जुड़ी है। युद्ध, अशांति, जनसंख्या-विस्फोट, छुआछूत, नस्लभेद, दहेज, पर्यावरण-प्रदूषण, आतंकवाद, अस्तित्व का संकट, स्वतंत्रता व समता और सह-अस्तित्व आदि समस्याओं को भी उनकी संवेदना ने अपने वृत्त में सँजो लिया है।

#### 4. मानवीय मूल्यों अथवा मानवतावाद से उत्पन्न संवेदना :

कमलेश्वर मानवीय मूल्यों और मानवीय संवेदना के कथाकार के रूप में न केवल विख्यात हैं, अपितु यह उनके कथा-साहित्य का एक सशक्त पक्ष भी है। मूल्यों के विघटन और विपर्यय के वातावरण में तो उनकी मानवीय संवेदना और अधिक प्रभावी और मार्मिक रूप में उभरी है, क्योंकि उनकी मानव और मानवता से गहरी आत्मीयता है, इसी कारण वे उसके हित में आम आदमी को न्याय दिलाने हेतु आरंभ से ही संघर्ष करते रहे। कमलेश्वर के कथा-साहित्य में आम आदमी के प्रति गहरी आत्मीयता एवं सहानुभूति है। वे जन-जन के कथाकार हैं। वे उन मूल्यों की स्थापना करना चाहते थे, जिनसे समग्र मानवता का विकास हो। मनुष्य में परस्पर भाईचारा, प्रेम, स्नेह, दया, त्याग आदि मनोवृत्तियों की अभिव्यक्ति हो। ऐसे नवीन मानवतावादी मूल्यों में मानव-स्वातंत्र्य, आत्माभिमान, समता, सहअस्तित्व, चैतन्य और संघर्ष शक्ति आदि उल्लेखनीय हैं। उनका कथा-साहित्य मूल्यबोध का साहित्य है, जिसमें मानवीकरण अथवा मानवतावाद से युक्त समग्र संवेदनाएँ भरी पड़ी हैं। वे वास्तव में मूल्यान्वेषी कथाकार हैं। मानव एवं मानवता-हितैषी सभी मानवीय मूल्य उनके कथासाहित्य में यत्र-तत्र अभिव्यक्त हुए हैं। कमलेश्वर अपनी 'कर्तव्य' कहानी में कर्तव्यपरायणता, देशभक्ति, नारी-सम्मान के प्रति अत्यंत सजग हैं।<sup>22</sup>

आज के जीवन में जो निराश हो चुके हैं, जीवन से पलायन कर रहे हैं, उन्हें प्रेरित करता हुआ लेखक-कथाकार 'नंगा आदमी' नामक कहानी में लिखता है— 'कायर की तरह भागने से जिंदगी हाथ नहीं आती। इसे दसों उँगलियों से पकड़ो, नाखून गड़ाकर पकड़ो।' <sup>23</sup>

राजनीतिक विद्रूपताओं के कारण आज कितनी मूल्यहीनता आ गयी है, इसका अनुमान लगाना कठिन है, लेकिन कथाकार कमलेश्वर 'अधूरी कहानी' में आम आदमी को

सचेत करना नहीं भूलते, 'सुधीर, एक बात जानते हो तुम! राजनीति आदमी को निष्ठुर बना देती है। उसकी दृष्टि हमेशा अपने शिकार पर अटकी रहती है। राजनीति का वह विद्यार्थी, जो उपयोगिता और आदर्श दोनों पर आस्था रखता है, अपने मन पर काबू नहीं पा सकता। उसका स्नेह शाश्वत नहीं होता' <sup>24</sup> इसी प्रकार, अनैतिक स्रोतों से कमाया हुआ धन व्यक्ति के जीवन को बर्बाद कर देता है। आज का युग आर्थिक मूल्यहीनता का युग है। चारों ओर लूट मची है। कमलेश्वर एक स्वस्थ एवं परिश्रम-आधारित समाज की स्थापना करना चाहते हैं, इसीलिए 'गाय की चोरी' नामक कहानी में उनका एक पात्र कहता है, 'मशक्कत का पैसा पैसा है, हराम के हीरे-जवाहरात धूल बराबर...।' <sup>25</sup> 'अकाल' कहानी में एटमबम और हाइड्रोजन बम के खतरे से आगाह किया गया है— 'पौध का क्या देखना! डालडा, एटम और हाइड्रोजन बम का जमाना है, एक गिरा कि सब साफ...वह नई और पुरानी पौध का फरख नहीं करता।'

'सुना, उसके जो परीक्षण किए जा रहे हैं, उनका धुँआ और धूल हर चीज़ को ज़हरीला कर देती है, अन्न-सब्ज़ी बगैरह को। और वही चीज़ हम-आप खा-पी रहे हैं।' <sup>26</sup>

इसी प्रकार नीली झील, पानी की तस्वीर, तीन दिन पहले की रात, पीला गुलाब', मेरी प्रेमिका, एक रुकी हुई ज़िदगी, एक अश्लील कहानी, प्रेमिका आदि कहानियों में प्रेम और उसके विविध रूपों का यथार्थ चित्रण हुआ है। आज के पारिवारिक और सामाजिक परिवेश में प्रेम का स्वरूप ही बदल गया है, और धन पर आधारित हो गया है यह प्रेम, अस्तु, अनेक कहानियों में कमलेश्वर का यही प्रेम का रूप चित्रित हुआ है।

कहानियों की भाँति ही कमलेश्वर के उपन्यासों में भी मानवता और मानवीय मूल्यों की अभिव्यंजना यत्र-तत्र हुई है। कमलेश्वर ने जहाँ परंपरागत मानवीय मूल्यों की अभिव्यंजना आज के जीवन और जगत के यथार्थ के माध्यम से की है, वहीं नवीन मूल्यों को भी उन्होंने संस्थापित किया है। 'कितने पाकिस्तान' नामक उपन्यास में मानवता और मानवतावादी मूल्यों को अभिमंडित किया गया है— '....महामान्य!....मनुष्य बनते ही उसने प्रेम नामक संवेग को तलाशा और स्थापित कर लिया। सम्राट गिलमेश ने मित्रता जैसी वृत्ति को खोज लिया। और उधर आर्य मनुष्य ने श्रम को खोजा और आतंकवादी प्रकृति को वशीभूत करने के लिए उसने शांति जैसी महाशक्ति का आविष्कार कर लिया है....शांति के बाद अब यदि मनुष्य को अंतिम रूप से कुछ तलाशना है, तो वह है— 'मृत्यु की औषधि'। श्रीमन! आप देवताओं का पराभव निश्चित है।

'क्रोधित मत होइए, महामान्य! सत्य को स्वीकारिए....मनुष्य ने जिन महाशक्तियों का अन्वेषण किया है, वे आपके पास नहीं हैं। उसने आविष्कृत कर लिया है— जीवन, कर्म, श्रम, प्रेम, मित्रता, और शांति जैसे जीवन के महातत्त्वों को....इसलिए, अब उसकी अमरत्व की कामना करना अनुचित नहीं है।' <sup>27</sup>

उपर्युक्त उद्धरण में एक साथ सत्य, अहिंसा, प्रेम, मित्रता, शांति, कर्म, श्रम आदि जीवन-मूल्यों की संस्थापना की ओर पाठकों का ध्यान कथाकार ने आकर्षित किया है। तथा, इसी उपन्यास में कमलेश्वर ने जीवन में दुःखों से छुटकारे का मार्ग बताते हुए लिखा है— '...त्रास से मुक्त होने का महामार्ग है एक-दूसरे में अटूट विश्वास....और संभावना के प्रति आस्था....संभावना की स्वीकृति....जो शक्तियाँ इसे नकारती हैं, वे संभावना-विरोधी हैं...क्योंकि

हर व्यक्ति के भीतर संभावना की एक अज्ञात ज्योति जल रही है...एक अखंड ज्योति...और संभावना ही सबसे बड़ा जीवन-प्रयोग है, जिसका आविष्कार खुद मनुष्य ने अपने जीवन को निरंतरता देने के लिए किया है।' 28

इसी प्रकार, 'सुबह-दोपहर-शाम' नामक उपन्यास में देशभक्ति, राष्ट्रीय स्वाभिमान, सत्य, अहिंसा, शांति आदि मानवीय मूल्यों को अभिव्यंजित किया गया है, तथा आतंकवाद का विरोध करते हुए कहा गया है—'आतंकवादियों से छुटकारा पाने का यही एक रास्ता है.....जब हर आदमी हरजाना भरेगा, तब वह आगे कभी उन आतंकवादियों को पनाह नहीं देगा यह तो साफ़ है कि.....हम अहिंसावादी हैं.....एक तरफ़ हमें अंग्रेज़ी सरकार का विरोध करना है, तो दूसरी तरफ़ इन आतंकवादियों का भी।' 29

इसी प्रकार, एक सड़क सत्तावन गलियाँ, डाक बंगला, लौटे हुए मुसाफ़िर, समुद्र में खोया हुआ आदमी, काली आँधी, आगामी अतीत, रेगिस्तान, वही बात आदि अन्य उपन्यासों में भी समकालीन युग-बोध और युग-सत्य को कमलेश्वर ने बड़ी ही प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है। इनमें कमलेश्वर द्वारा मानवीय मूल्यों और मानवतावाद से उत्पन्न संवेदना की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। वस्तुतः कमलेश्वर का कथा-साहित्य उन सभी नवीन विकसित मानवमूल्यों का भी प्रतिनिधित्व करता है, जिन पर आज के समाज का ढाँचा खड़ा है। वास्तव में, अस्तित्व की सार्थकता और मानवतावादी विचारधारा के पोषक कमलेश्वर पूर्णतः आशावादी हैं कि एक न एक दिन परिवर्तन अवश्य आएगा और मानवीय मूल्यों एवं समता पर आधारित सुंदर एवं स्वस्थ समाज की स्थापना का स्वप्न भी पूरा होगा। 30

### 5. लोकसंपृक्ति :

लोकसंपृक्ति से तात्पर्य लोकचेतना से हैं। कमलेश्वर की कहानियों और उपन्यासों में कस्बाई लोकजीवन की विविध छवियाँ अंकित हुई हैं। यही नहीं, लोकभाषा के प्रयोग ने लोकसंवेदना को बहुत समीप ला दिया है और कमलेश्वर ने तमाम लोकभावनाओं को उनमें सँजो दिया है। 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' नामक उपन्यास का यह आरंभिक स्थल ही देखें— 'नदियाँ गहरा उठती हैं, पर आदमी का आना-जाना नहीं रुकता। नदियों में कड़ाह पड़ जाते हैं और इन छोटी-छोटी बस्तियों के दिलेर लोग उन कड़ाहों में बैठकर बड़ी-बड़ी भँवरें, हाथी-डुबाऊ गहराइयों और चौड़े पाट-पारकर जाते हैं। जानवरों तक को लँघा ले जाते हैं। खास तौर से आषाढ़ में मंडी की नाड़ी धीमी पड़ जाती है...पूरी बस्ती पर उदासी छा जाती है। सब कामों के सिलसिले टूट जाते हैं। नाज की लदाई बंद हो जाती है। पल्लेदार और तौला बेकार हो जाता हैं। सौदागरों का आना-जाना बंद।' 31

इसी प्रकार, 'लौटे हुए मुसाफ़िर' से एक स्थल देखें—'जुम्मान साई लंबा चौंगा पहने, वीतराग-सा गली से होता हुआ शहर की ओर चला जाता। महमूद का अब्बा बैठा सूप बनाता रहता, नाज़िर का दादा पैर से छुरी दाबे खाल की डोरी काटता रहता। गली के हर छप्पर से बकरी के मिमियाने की आवाज़ आती और उस सिर पर भेड़ों या बकरियों की खालें लटकती हुई सूखती रहतीं। 32 इसी प्रकार, 'सुबह-दोपहर-शाम' में कमलेश्वर की लोकचेतना का यही रूप मिलता है। 33

उपर्युक्त तीनों स्थलों को देखें तो इनमें कमलेश्वर द्वारा अभिव्यक्त कस्बाई चेतना

और वहाँ की लोकभाषा के तेवर देखने को मिलते हैं। इसी प्रकार कमलेश्वर की एक-दो कहानियों—राजा निरबंसिया <sup>34</sup>, 'देवा की माँ' <sup>35</sup>, गाय की चारी <sup>36</sup> में भी लोकसंपृक्ति के स्थल दृष्टव्य हैं।

## 6. व्यंग्य-बोध :

कमलेश्वर एक ऐसे कथाकार हैं, जिन्होंने अपने कथासाहित्य में अपने परिवेश, समाज और अपने समय में उत्पन्न सभी समस्याओं—पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि—को अपनी सचेतन दृष्टि से सूक्ष्म रूप में पकड़ा। शासन-तंत्र की भ्रष्टता, राजनेताओं की स्वार्थपरता, अवसरवादिता, भाई-भतीजावाद, रिश्वतखोरी, मिथ्या दंभ, व्यवहारगत कृत्रिमता, ढोंग, जातिवाद, संप्रदायवाद आदि के कारण आज आदमी वास्तव में आदमी नहीं रहा है। कमलेश्वर ने यह सब-कुछ अपनी आँखों के सामने होते-घटते देखा है, तो उनका हृदय उन्हें बेचैन करता है, फलतः वे अपने कथासाहित्य में व्यंग्य करने लगते हैं। स्वातंत्र्योत्तर नए कथाकारों में उनका व्यंग्य, स्पष्ट, कटु एवं तीखा होते हुए भी क्रोधरहित हैं। उसमें कलात्मकता है। वह एक साथ ही तीखा चुभने वाला और आकर्षक है। इसके मूल में कमलेश्वर की परिवेशबद्धता है। उनका व्यंग्य एक साथ कई कार्य करता है। उनका कथासाहित्य इसका प्रमाण है।

कमलेश्वर की कहानी 'जार्ज पंचम की नाक' स्वातंत्र्योत्तर राजनीति और विदेशीपन पर करारा व्यंग्य करती है और हमारी दासता की मनोवृत्ति पर गहरा कटाक्ष भी करती है। <sup>37</sup>

'इतने अच्छे दिन' में कमलेश्वर ने गहरे व्यंग्य का सहारा लिया है। पूँजीवादी भ्रष्ट व्यवस्था ने आम आदमी को इतना निर्धन बना दिया है कि वह 'अकाल' में मरे बाप-दादा-माता-पिता की हड्डियों को बेचकर अपना पेट भरना चाहता है। <sup>38</sup> इसी प्रकार, 'रावल की रेल' नामक कहानी में भारतीय लोकतंत्र पर करारा व्यंग्य किया है— 'टिकिट खरीदने गया तो उसने टिकिट बाबू से पूछा— 'तीनों दर्जों का किराया एक है?' 'नहीं, फर्स्ट का सबसे ज्यादा, सैकिंड का उससे कम और थर्डक्लास का सबसे कम।' 'लेकिन तीनों दर्जों में सुविधाएँ तो बिलकुल एकसी हैं। फिर किराये में यह फर्क क्यों?' 'क्यों? क्योंकि यह लोकतंत्र की रेल है।' <sup>39</sup>

कमलेश्वर की कहानियों के अतिरिक्त उनके उपन्यासों में भी व्यंग्य का स्वरूप देखने को मिलता है। कमलेश्वर के उपन्यास 'काली आँधी' में स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक विद्रूपता पर करारा व्यंग्य किया गया है। आजादी के पश्चात् भारतीय राजनीति में क्षेत्रवाद, स्वार्थपरता, जातिवाद और अपराधी मनोवृत्ति ने अपना घर कर लिया है। <sup>40</sup> 'आगामी अतीत' उपन्यास में आज के जीवन का यथार्थ चित्रित हुआ है। <sup>41</sup>

## 7. व्यथाजनित संवेदना :

कमलेश्वर के कथासाहित्य में व्यथा, पीड़ा, दर्द, घुटन, वेदना, संत्रास, उदासीनता, विषाद, कुंठा, अकेलापन, शून्यता, अजनबीपन आदि विसंगतियों की भूमिका भी अत्यंत गहरी है। अमानवीय यथार्थता के अनुभवों ने समाज, संस्कृति, दर्शन-साहित्य, विवेक, तर्क, आस्था, निष्ठा और प्रतिबद्धता आदि के रूप को ही अंदर से बदल डाला है। कमलेश्वर के कथा-साहित्य में जो दर्द का रंग समाया है, उसमें आज की त्रासदी का यथार्थ उभरा है। समकालीन नए कथाकारों की भाँति कमलेश्वर ने भी आत्मनिवारण और आत्म-अभिव्यंजना को खुलकर अभिव्यक्त किया है। 'राजा निरबंसिया' की चंदा को आर्थिक विषमता के कारण स्वयं को कई लोगों के हाथों

बिकना पड़ता है, उसके मन में यही दर्द और टीस रहती है कि वह किसी एक पुरुष को अपना नहीं बना पाई।<sup>42</sup> इस कहानी में जगपति भी आर्थिक विषमता के कारण संतुष्ट है।

‘बेकार आदमी’ में सुशिक्षित, सुपात्र, सुयोग्य-प्रकाश नौकरी न मिलने के कारण अत्यंत कुंठित है, आर्थिक विषमता, बेरोजगारी और जीवन को चलाने की विवशता का संतुष्ट उसके कथन से स्पष्ट है।<sup>43</sup> वास्तव में, स्वातंत्र्योत्तर भारत में बेरोजगारी की व्यापक समस्या है। जिसके कारण आज की युवा पीढ़ी अत्यंत संतुष्ट है।

इसी प्रकार, नौकरी-पेशा, दुनिया बहुत बड़ी है, सीने का दर्द, मांस का दरिया, खोई हुई दिशाएँ, कस्बे का आदमी, फालतू आदमी, दुःखों के रास्ते, दूसरे, दिल्ली में एक मौत, नया किसान, बयान, अब और नहीं, जोखिम, इतने अच्छे दिन आदि ऐसी कहानियाँ हैं, जिनमें आर्थिक विषमता के कारण पारिवारिक टूटन बिखराव, दर्द, कसक, घुटन, कुंठा, अकेलेपन, अजनबीपन, विषाद, शून्यता आदि विसंगतियों को मुख्य रूप से चित्रित किया गया है।

कमलेश्वर के उपन्यास ‘एक सड़क सत्तावन गलियाँ’ में भी आर्थिक विषमता के कारण उत्पन्न, दर्द, टीस, घुटन और कुंठा आदि का चित्रण हुआ है।<sup>44</sup> ‘तीसरा आदमी’ नामक उपन्यास में पति-पत्नी-मित्र के कारण पारस्परिक रिश्तों के कारण संबंधों में तनाव उत्पन्न हो गया है। महानगर के छोटे-से कमरे में रहने के कारण पति-पत्नी के मन में मन-मुटाव, घुटन, दर्द, पीड़ा और वेदना का चित्रण हुआ है।<sup>45</sup> ‘डाक बंगला’ उपन्यास की इरा को आर्थिक विषमता के कारण क्या-क्या सहन नहीं करना पड़ा, लेकिन इस सबके बाद भी वह जीवन में अत्यधिक संतुष्ट है।<sup>46</sup> ‘काली आँधी’ नामक उपन्यास में आज की राजनीतिक विद्रूपता के कारण पति-पत्नी के रूप में जग्गी बाबू और मालती जी के संबंधों में खटास उत्पन्न हो गयी है। जग्गी बाबू के मन में मालती जी के कारण गहरा तनाव है। मालती राजनीतिक महत्वाकांक्षी महिला है, और जग्गीबाबू सीधे-सादे एक पति की भूमिका में।<sup>47</sup>

कमलेश्वर का एक भी उपन्यास ऐसा नहीं है जिसमें यह मार्मिक संवेदना किसी न किसी रूप में न आई हो। ‘आगामी अतीत’, ‘वही बात’, ‘सुबह-दोपहर-शाम’, ‘रेगिस्तान’ और ‘कितने पाकिस्तान’ नामक उपन्यासों में भी व्यथाजनित संवेदना के अनेकशः स्थल उनके कथ्यों में समाहित हैं।

निस्संदेह, उनकी संवेदना के धरातल उनके कथासाहित्य की विविधता के स्तरों को उद्घाटित करते हैं। इस दृष्टि से कमलेश्वर का कथासाहित्य हिंदी साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट उपलब्धि है। कमलेश्वर का यह योगदान हिंदी-साहित्य में सदैव उल्लेखनीय रहेगा।

### संदर्भ

1. संपादक, मधुकरसिंह, ‘कमलेश्वर’, पृ० 227
2. संपादक-कमलेश्वर, ‘सारिका’, अक्टूबर, 1974, पृ० 10
3. संपादक-कमलेश्वर, ‘सारिका’, मई, 1975, पृ० 22
4. संपादक, मधुकरसिंह, ‘कमलेश्वर’, पृ० 227 व 228
5. कमलेश्वर, ‘समग्र कहानियाँ’, (नीली झील), पृ० 354
6. संपादक, मधुकरसिंह, ‘कमलेश्वर’, पृ० 159
7. कमलेश्वर, ‘समग्र कहानियाँ’, (पानी की तवीर), पृ० 181
8. कमलेश्वर, ‘समग्र कहानियाँ’, (तीन दिन पहले की रात), पृ० 187

9. कमलेश्वर, 'समग्र कहानियाँ', (मेरी प्रेमिका), पृ० 329
10. कमलेश्वर, 'समग्र उपन्यास', (डाक बँगला), पृ० 286
11. कमलेश्वर, 'समग्र उपन्यास', (वही बात), पृ० 542
12. कमलेश्वर, 'समग्र उपन्यास', (तीसरा आदमी), पृ० 20
13. कमलेश्वर, 'समग्र उपन्यास', (राजा निरबंसिया), पृ० 144
14. उपरिवत्, पृ० 145
15. कमलेश्वर, 'समग्र उपन्यास', (बयान), पृ० 432-433
16. कमलेश्वर, 'समग्र उपन्यास', (कितने पाकिस्तान), पृ० 85-86
17. उपरिवत्, पृ० 327
18. कमलेश्वर, 'समग्र कहानियाँ', (बयान), पृ० 428
19. कमलेश्वर, 'समग्र उपन्यास', (लौटे हुए मुसाफिर), पृ० 138
20. कमलेश्वर, 'समग्र उपन्यास', (काली आँधी), पृ० 375
21. कमलेश्वर, 'समग्र उपन्यास', (डाक बँगला), पृ० 238-239
22. कमलेश्वर, 'समग्र कहानियाँ', (कर्तव्य), पृ० 24
23. कमलेश्वर, 'समग्र कहानियाँ', (नंगा आदमी), पृ० 76
24. कमलेश्वर, 'समग्र कहानियाँ', (अधूरी कहानी), पृ० 80
25. कमलेश्वर, 'समग्र कहानियाँ', (गाय की चोरी), पृ० 82
26. कमलेश्वर, 'समग्र कहानियाँ', (अकाल), पृ० 89
27. कमलेश्वर, 'कितने पाकिस्तान', पृ० 31
28. उपरिवत्, पृ० 130
29. कमलेश्वर, 'समग्र उपन्यास', (सुबह-दोपहर-शाम), पृ० 646
30. कमलेश्वर, 'समग्र उपन्यास', (कितने पाकिस्तान), पृ० 362-363
31. कमलेश्वर, 'समग्र उपन्यास', (एक सड़क सत्तावन गलियाँ), पृ० 11
32. कमलेश्वर, 'समग्र उपन्यास', (लौटे हुए मुसाफिर), पृ० 98
33. कमलेश्वर, 'समग्र उपन्यास', (सुबह-दोपहर-शाम), पृ० 576
34. कमलेश्वर, 'समग्र कहानियाँ', (राजा निरबंसिया), पृ० 144
35. कमलेश्वर, 'समग्र कहानियाँ', (देवा की माँ), पृ० 155
36. कमलेश्वर, 'समग्र कहानियाँ', (गाय की चोरी), पृ० 86
37. कमलेश्वर, 'समग्र कहानियाँ', (जार्ज पंचम की नाक), पृ० 288
38. कमलेश्वर, 'समग्र कहानियाँ', (इतने अच्छे दिन), पृ० 649
39. कमलेश्वर, 'समग्र कहानियाँ', (रावल की रेल), पृ० 545
40. कमलेश्वर, 'समग्र उपन्यास', (काली आँधी), पृ० 375
41. कमलेश्वर, 'समग्र उपन्यास', (आगामी अतीत), पृ० 482
42. कमलेश्वर, 'समग्र कहानियाँ', (राजा निरबंसिया), पृ० 142
43. कमलेश्वर, 'समग्र कहानियाँ', (बेकार आदमी), पृ० 148
44. कमलेश्वर, 'समग्र उपन्यास', (एक सड़क सत्तावन गलियाँ), पृ० 83
45. कमलेश्वर, 'समग्र उपन्यास', (तीसरा आदमी), पृ० 173
46. कमलेश्वर, 'समग्र उपन्यास', (डाक बँगला), पृ० 286
47. कमलेश्वर, 'समग्र उपन्यास', (काली आँधी), पृ० 414

## पंकज मित्र की कहानियों में समकालीन संदर्भ

किरणबाला सिंह एवं  
डॉ० कृष्णकुमार गुप्ता

नई पीढ़ी के कहानीकारों में पंकज मित्र आज राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित हैं। ये लगभग पंद्रह-सोलह वर्षों से आकाशवाणी हजारीबाग में कार्यरत हैं। देश-भर की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं, यथा— इंडिया टुडे, हंस, वागर्थ, नया ज्ञानोदय, तद्भव के अतिरिक्त अमेरिका से प्रकाशित पत्रिका 'अन्यथा' में इनकी कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इन्हें कई पुरस्कार मिल चुके हैं और कहानियों के दो संकलन— 'क्विज मास्टर' (आधार प्रकाशन, हरियाणा) एवं 'हुड़कलुल्लु' (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली) से प्रकाशित हो चुके हैं। समकालीन कहानीकारों में इनका स्थान विशिष्ट है, क्योंकि इन्होंने न सिर्फ अपनी खास भाँजा और मुहावरे ईजाद किए हैं, बल्कि कथ्य और चरित्र की प्रचलित रूढ़ियों को तोड़कर एक नए ढंग से उनकी प्रस्तुति की है।

'क्विज मास्टर' पंकज जी का प्रथम संग्रह है। इनमें जो कहानियाँ संकलित हैं, उनका आधार कस्बाई जीवन है। इस कस्बाई यथार्थ का विस्तार होता है वैश्वीकृत यथार्थ में। इसकी प्रतिनिधि कहानी है 'क्विज मास्टर'। आज के जीवन के विद्रूप पक्षों को इस कहानी में बड़े सटीक और ब्योरे के रूप में प्रस्तुत किया गया है। छात्रों के बीच क्विज प्रतियोगिताएँ कराने वाला एक बुद्धिजीवी का आंतरिक संसार कितना विद्रूप और मार्मिक है, इसी का चित्रण इस कहानी में है। उद्धरण प्रस्तुत है—'पर अब वह न तो शयोर था, न कॉन्फिडेंट, न पक्का और उसके वजूद को एक छोटे शहर के क्विज मास्टर के रूप में लॉक कर दिया गया था।'<sup>1</sup>

यह नियति है एक बुद्धिजीवी की। इस चरम उपभोक्तावाद के दौर में जब योग्यता, शोहरत आदि के ऊपर पैसा और उपभोक्ता वस्तुएँ हावी हो जाती हैं, यहाँ तक कि पति-पत्नी के अंतरंग संबंध पर भी और यह प्रखर बुद्धिजीवी समय के साथ खुद भी टूट-फूट का शिकार हो जाता है। दरअसल, इस कहानी का मुख्य पात्र क्विज मास्टर आज के बाजार और उपभोक्तावाद की तिकड़मों का शिकार हो गया है और इस कुचक्र से निकलने का उसके पास कोई रास्ता नहीं है, पड़ोस के शर्मा जी से लेकर खुद क्विज मास्टर की पत्नी, सब इसी कुचक्र के शिकार हैं और उसे भी इसमें शामिल करना चाहते हैं। इस कुचक्र का संचालक है नया संचार-माध्यम। इस संग्रह की 'पड़ताल' शीर्षक कहानी इसी संचार-माध्यम के द्वारा मानवीय संबंध एवं परिवार की संरचना में मचाई गई तोड़-फोड़ पर आधारित है। घर में टेलीविजन आता है और घर के मालिक किशोरीबाबू कबाड़ में डाल दिए जाते हैं, जिन बच्चों को पाल-पोसकर उन्होंने लायक बनाया, वही बच्चे टी०वी० आ जाने पर उनके प्रति संवेदनहीन हो जाते हैं। टी०वी० यहाँ वस्तु नहीं है, वह एक विचार बन जाता है, ऐसा विचार जो मूल्यों,

आदर्शों और सहज मानवीय संबंध-चेतना की धज्जियाँ उड़ता है। किशोरीबाबू के बीमार पड़ने के बाद का ब्योरा उल्लेखनीय है—

‘कुछ सेवा-सुश्रूषा की गई, लेकिन आखिर कबतक लोग लगे रहें। आजकल सीरियल वगैरह का समय ऐसा नौ बजे के बाद कर दिया गया है कि रात में नौ बजे के बाद कोई काम ही नहीं हो पाता।’<sup>2</sup>

ध्यान देने की बात है कि यह कहानी उस दौर की है, जब टी०वी० चैनल का इतने आक्रामक ढंग से आम जीवन पर हमला नहीं हुआ था, जितना आज के दौर में हुआ है। पंकज जी के हाल के संग्रह ‘हुड़कलुल्लु’ में एक कहानी संकलित है टी०वी० न्यूज चैनल की कार्यशैली और कार्यक्रम बनाने की अंदरूनी बातों पर। इसमें पंकज जिस यथार्थ का चित्रण करते हैं, वह ‘पड़ताल’ कहानी के यथार्थ से ज़्यादा भयावह और वीभत्स है। इस प्रकार पंकज आज के यथार्थ को उसकी पूरी विद्रूपता के साथ चित्रित करते हैं। आधुनिक समय की विसंगतियों और विद्रूपता को ये भांजा के सांकेतिक प्रयोगों, व्यंग्यात्मकता और सूक्ष्म प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करते हैं, जैसे ‘क्विजमास्टर’ में संकलित ‘बोनसाई’ कहानी के बोनसाई पौधे।

इस संग्रह की एक अन्य उल्लेखनीय कहानी है ‘अपेंडिसायटिस’। यह आरक्षण-विरोधी झगड़े की पृष्ठभूमि पर लिखी गई है मगर कहानी की केंद्रीय थीम सवर्ण मानसिकता है, जो आभारी होने के बावजूद बदलती नहीं। यह जाति-विमर्श पर लिखी गई एक अलग ढंग की कहानी है। कहानी का यह सवर्ण पात्र आरक्षण के दायरे में आनेवाले लड़के से कहता है—‘डॉक्टर बनोगे तो पेट में कैंची छोड़ोगे, इंजीनियर बनोगे तो पुल गिरा दोगे, दिमगवा कहाँ से लाओगे, ऊ भी सरकार थोड़े देगी।’<sup>3</sup> और यही सवर्ण पात्र एक दिन जब अपेंडिक्स के भयानक दर्द से मरने के करीब हो जाता है तो आरक्षित वर्ग से आनेवाला डॉक्टर ही उसका सफलतापूर्वक आपरेशन करता है। उसका नाम है डी० राउत। जब लड़के को होश आता है तो वह नैरेटर से फुसफुसाकर जो प्रश्न पूछता है, उससे उसकी सवर्ण मानसिकता उजागर हो जाती है—

‘सुनिए! ई राउत का होता है?’<sup>4</sup>

‘एक अधूरी दास्तान’ ऐसी प्रेमकहानी है, जिसमें पति और ससुराल वालों के तानों से तंग आकर एक निःसंतान औरत अपने पुराने प्रेमी के साथ बच्चा पाने के लिए यौन-संबंध बनाती है ताकि उन लोगों को संतोष भी हो और एक स्त्री के रूप में वह ससुराल वालों से प्रतिशोध भी ले, दूसरे पुरुष से उत्पन्न बच्चे को पति का कहकर। इसी प्रकार ‘अफ़साना प्रदूषण का’ घोर सांप्रदायिक दौर में दो मित्रों के बीच के अटूट स्नेह की कहानी है, जिनमें एक हिंदू है तो दूसरा मुसलमान। इस प्रकारसमकालीन भारतीय समाज की हर प्रकार की विसंगतियों का रेखांकन किया गया है। इनकी कहानियों का केंद्र कस्बाई जीवन है, मगर उनकी चिंता के दायरे में पूरे देश के संघर्षशील लोग हैं और तमाम राष्ट्रीय समस्याओं को वे कस्बे के मंच पर ले आते हैं।

इनके दूसरे कहानी-संग्रह ‘हुड़कलुल्लु’ को राजकमल प्रकाशन ने प्रकाशित किया है। इसकी प्रतिनिधि कहानी ‘हुड़कलुल्लु’ है, जो सर्वप्रथम ‘तद्भव’ में लघु उपन्यास के रूप



में प्रकाशित हुई थी। इस संकलन की कहानियों से यह मालूम पड़ता है कि पंकज के अनुभव- संसार का दायरा बहुत व्यापक है और ये यथार्थ की जटिलता को बड़ी साफ दृष्टि से देखते हैं। अजय वर्मा कहते हैं—

‘बाज़ार वित्तीय पूँजी बल्कि उससे भी बढ़कर चिटफंडी पूँजी ने मानवीय जीवन-बोध और संवेदना में भयंकर टूट-फूट उत्पन्न कर दी है और इसी को वैधता प्रदान करने के लिए उत्तर-आधुनिकता अथवा उत्तर-औपनिवेशिकता का नारा दिया जा रहा है। ये सारी हलचलें नए अमेरिकी साम्राज्यवाद के लिए रास्ता साफ़ करने के लिए हो रही हैं। नया बाज़ार, नया मीडिया, इस प्रसंग में निर्णायक भूमिका निभा रहे हैं।’<sup>5</sup>

संग्रह की पहली कहानी ‘आज, कल, परसों’ है, जो मीडिया की निर्ममता और अमानवीयता को दिखलाती है। कर्ज में डूबा किसान आत्महत्या करता है, खबरिया चैनल इसको रोचक और बिकने योग्य बनाने के लिए उस किसान का अपनी बहू के साथ यौन-संबंध की झूठी स्टोरी बनाता है और अंततः इस स्टोरी को एक बड़े सेक्स रैकेट के भंडाफोड़ के रूप में प्रस्तुत करता है। ‘बैल का स्वप्न’ कहानी एक ऐसे आदिवासी की है, जो अफसर बनने के बाद अपने सहकर्मियों से लेकर परिवार के लोगों तक से तिरस्कृत होता है, क्योंकि वह नए उपभोक्तावाद की दौड़ में शामिल नहीं होता। ‘फीमेल आई०डी०’ एवं ‘लकड़िया पीर और डिफ्टवुड’ प्रेम-कथाएँ हैं। बाज़ार और भूमंडलीकरण की तिकड़मों को उजागर करने वाली कहानी है ‘बेला का भू’ जिसमें मूल्यों, आदर्शों, परंपराओं और संस्कृति की बाज़ार की संस्कृति किस प्रकार धज्जियाँ उड़ाती है, इसके ब्योरे हैं। एक चिटफंडी कंपनी का मुलाजिम कहानी के नायक बेचूलाल से कहता है—‘गीता पढ़ी तुमने? कोई किसी का नहीं, सब अपना काम करने आए हैं।’<sup>6</sup> गीता का यह उपदेश कंपनी का वह मुलाजिम बेचूलाल को बाज़ार के प्रति समर्पण के लिए तैयार कराने हेतु देता है।

संग्रह की प्रतिनिधि कहानी है ‘हुड़कलुल्लु’। इसका नायक दोहरा दबाव झेल रहा है, एक ओर पिता का सामंती मिज़ाज, पुरानी सोच, दूसरी ओर चरम उपभोक्तावाद और पूँजी की होड़ का हमला। वह अंततः इन दोनों में से किसी को अंगीकार नहीं कर पाता। यह लंबी कहानी है और इसमें आज के जीवन की तमाम विसंगतियों, सत्ता, शासन और समाज के हर क्षेत्र में, यहाँ तक कि कला-साहित्य के क्षेत्र में भी फैले भ्रष्टाचार और कुत्सित मनोवृत्ति का अंकन पंकज ने इसमें किया है। पुलिस कप्तान चमनबाबू जैसे लेखक, नाटकी संस्था चलाने वाला कलाकार हो या स्थानीय पत्रकार ये सब आज के विद्रूप और विडंबनाग्रस्त जीवन के विविध पक्षों से परिचय कराते हैं।

पंकज की कहानियों का शिल्प नया है। अजय वर्मा कहते हैं—

‘कथावस्तु केंद्र से परिधि और परिधि से केंद्र में आवाजाही करती है। इसमें सघनता खोजना बेमानी है। भाषा जीवन की गहरी पर्तों से जुड़ी हुई है। अंतर्विरोधों की विडंबनाओं को प्रस्तुत करने के लिए पंकज प्रायः संकेतों का सहारा लेते हैं।’<sup>7</sup> यह गौरतलब है कि पंकज अपनी अधिकांश कहानियों में स्थानीय बोली और उसके मुहावरे का पर्याप्त रूप में प्रयोग करते हैं, पर इसे आंचलिकता नहीं कहा जा सकता। यह कहानी के परिवेश को बढ़िया ढंग से प्रस्तुत करने के लिए है।

### संदर्भ

1. क्विज मास्टर और अन्य कहानियाँ, पंकज मित्र, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पृ० 24
2. वही, पृ० 64
3. वही, पृ० 39
4. वही, पृ० 43
5. आलोचना, सं० नामवरसिंह, जनवरी-मार्च 2009, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 92
6. हुड़कलुल्लु, पंकज मित्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ० 66
7. आलोचना, सं० नामवरसिंह, जन०-मार्च 2009, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 95

□ स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,  
विनोबा भावे विश्वविद्यालय  
हज़ारीबाग

## दुनिया में हिंदी

डॉ० संजयकुमार सिंह

रीडर, इतिहास विभाग

एम०एम०एच०कॉलेज, गाजियाबाद (उ०प्र०)

किसी भी राष्ट्र की संस्कृति और अस्मिता की पहचान उसकी अपनी भाषा से होती है। विश्व में वही राष्ट्र प्रतिष्ठा और सम्मान का पात्र होता है। जिसे अपनी भाषा, संस्कृति और संस्कारों पर गर्व होता है। हम अपनी भाषा के माध्यम से ही अपने साहित्य, संगीत तथा सभ्यता से परिचित हो सकते हैं। संसार की अनेक भाषाओं की जननी संस्कृत है और हिंदी इसी संस्कृत का तद्भव रूप है। अर्थात् संस्कृत भाषा अपभ्रंश की गलियों से गुजरती हुई आधुनिक हिंदी बनी। भाषा के रूप में हिंदी में न केवल संस्कृति से और यूरोपीय भाषा-परिवार से तथा पर्शियन भाषा से बल्कि भारतदेशीय भाषाओं से भी ऊर्जा का संचार होता रहा है और ये भाषाएँ हिंदी को सामर्थ्य प्रदान करती रही हैं, जो हिंदी की विशेषता है। साहित्याचार्य डा० शीलम् वेंकटेश्वर राव के अनुसार—‘हिंदी केवल भाषा नहीं, अपितु समस्त देश की संस्कृति और आत्मा भी है।’ हिंदी भारत के सर्वाधिक व्यक्तियों द्वारा बोली जानेवाली भाषा ही नहीं है वरन् विश्व के अनेक देशों में भी इसका व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ है।

प्रथम विश्व-हिंदी सम्मेलन (1975, नागपुर) के अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण में मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम ने कहा था— ‘हिंदी हमारी संस्कृति और धर्म की भाषा है। हिंदी हमारे उन्मुक्त चित्त की भाषा है। हिंदी एक ऐसी भाषा है जिसके द्वारा हम विश्व के एक बहुत बड़े जनसमुदाय से भावनात्मक रूप से जुड़े हुए हैं। हिंदी वह भाषा है, जिसे लेकर पिछले 150 वर्षों से हमने बाप-दादा की परंपरा को ज़िंदा रखा है।’

आज का समय भूमंडलीकरण और सूचना-संचार की क्रांति का समय है। नव-उदारवादी अर्थशास्त्र बाज़ार को प्रमुखता देते हुए राष्ट्रों, समाजों और अंतरराष्ट्रीय संगठनों की नीतियाँ निर्धारित कर रहा है। बाज़ार के प्रभाव से संस्कृति या भाषा भी अछूती नहीं रह गई है। अतएव, आज हिंदी का भूमंडलीकरण हो रहा है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों का व्यापार के लिए बड़े पैमाने पर भारत में पूँजीनिवेश, भारतीयों की विश्व के विविध देशों में पद-प्रतिष्ठा तथा विज्ञान व सामाजिक ज्ञान के क्षेत्र में उत्तरोत्तर सम्मानजनक स्थिति से विश्व-पटल पर भारत इक्कीसवीं सदी की महाशक्ति के रूप में उभर रहा है। इन बहुदेशीय कंपनियों को भारतीय भाषाओं से भले ही कोई लगाव न हो, तो भी बाज़ार की शक्ति द्वारा इन बहुदेशीय कंपनियों का भविष्य इन भाषाओं पर टिका है। गौरतलब है कि व्यापार की कार्यप्रणाली तभी गति पकड़ सकती है, जब लेन-देन का काम उपभोक्ता या ख़रीदार की भाषा में ही किया जाए। इस दृष्टि से हिंदी की स्थिति पूरी दुनिया

में महत्वपूर्ण है। ऐसे में वे अपने विज्ञापन हिंदी या भारतीय भाषाओं में देकर कामयाबी हासिल कर रही हैं। भूमंडलीकरण से 'विज्ञापन हिंदी' का विकास और संवर्धन तो हो रहा है, लेकिन हिंदी के एक नये स्वरूप की, जिसमें आप हिंदी बोल तो सकते हैं, किंतु लिखने-पढ़ने के लिए विदेशी भाषा अंग्रेजी का सहारा लेते हैं, जैसे कि पैप्सी का यह विज्ञापन- 'Dil Maange More' दिल माँगे मोर।

आज देश में किसी भी भाषा का साहित्यकार अपनी रचना को हिंदीभाषा में प्रकाशित कराना चाहता है या अपनी रचना का हिंदीभाषा में अनुवाद। इसका कारण, उसका हिंदी-प्रेम नहीं, हिंदी की उपयोगिता है। हिंदी ही उसे बड़ा तथा देशव्यापी पाठकवर्ग दे सकती है। इसी प्रकार पत्रकारिता के क्षेत्र में, हिंदी में प्रकाशित दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक तथा मासिक पत्र-पत्रिकाओं की संख्या अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में बहुत अधिक है। हिंदी की इसी व्यापकता के कारण आज दुनिया में हिंदी को देश की प्रधान भाषा, माना जाने लगा है और विदेशी विद्वान हिंदी का विविधा कारणों से अध्ययन कर रहे हैं।<sup>2</sup>

दुनिया के कोने-कोने में आज लगभग 2 करोड़ 20 लाख अनिवासी भारतीय और भारतवंशी विराजमान हैं। प्रवासी भारतीयों का बड़ा दल शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत सबसे पहले मारीशस, 1834 ई० में गया था, फिर 1845 ई० में त्रिनिदाद, 1860 ई० में दक्षिणी अफ्रीका, 1870 में गुयाना, 1873 ई० में सूरीनाम तथा 1879 ई० में फीजी पहुँचा था।<sup>3</sup> इन देशों में जानेवाले भारतीय मूलतः पश्चिमी बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश से गए थे और सामान्यतः अवधी तथा भोजपुरी बोलते थे। कुछ खड़ीबोली का भी प्रयोग करते थे। धीरे-धीरे उनकी शुद्ध अवधी या शुद्ध भोजपुरी का रूप बदलने लगा और हिंदी की एक नई विदेशी भाषिक शैली का विकास हुआ, जो कालांतर में इन प्रवासी भारतीयों की अस्मिता का प्रतीक बन गई। जिस भाषा में आदान-प्रदान की लचक जितनी अधिक होती है, वही विकास के नए स्तरों का स्पर्श कर पाती है। आज यदि संस्कृत प्रचलन में नहीं है तो इसका कारण है कि पाणिनीय व्याकरण द्वारा उसमें आदान प्रदान के सभी द्वार बंद कर दिए थे। अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा हिंदी के विकास और प्रसार का कारण यही है कि यहाँ विकार को विकास का पर्याय माना गया, और यह है भी; भाषा नवीन देशकाल और वातावरण में जाकर नवीन रूप लेने में यदि सक्षम हो, तभी वह बच सकती है और विकसित हो सकती है। साथ ही, अनेक नवीन मार्मिक शैलियाँ पनपीं, जिनके नए नामकरण भी कर दिए गए, क्योंकि वे भाषा बोली जानेवाली हिंदी से बहुत भिन्न थीं, इनमें स्थानीय भाषा का प्रभाव पर्याप्त दिखता था।

फीजी में बोली जानेवाली हिंदी को वहाँ के प्रवासी भारतीय 'फीजीबात' कहते हैं सूरीनाम की हिंदी को 'सरनामी हिंदी' या 'सरनामी' कहा जाता है तथा दक्षिण अफ्रीका की हिंदी को नैताली।<sup>4</sup> इन शैलियों का व्यवहार प्रवासी भारतीय अधिकांशतः घर में तथा औपचारिक बातचीत में करते हैं। इनमें साहित्यिक रचना बहुत कम होती है, पर साहित्यिक रचनाओं में इनका प्रभाव निश्चय ही देखा जा सकता है। साथ ही, इनका भाषिक स्वरूप वहाँ के हिंदी लोकगीतों में ही देखने को मिलता है।

विदेशों में हिंदी में मौलिक साहित्य-सृजन के क्षेत्र में मारिशस का स्थान सर्वोपरि है। पं० लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी 'रसपुंज' मारिशस के प्रथम कवि हैं। सोमदत्त बखोरी, मुनीश्वर

लाल चिंतामणि अन्य प्रमुख कवि हैं। आधुनिक हिंदी-कवियों में हेमराज सुंदर, राजवंती अजोधिया आदि नाम उल्लेखनीय हैं। समाज सुधार, स्वदेश-प्रेम, प्रकृति, भारत तथा भारतीय संस्कृति इनके प्रिय विषय हैं। उपन्यास और कथासाहित्य के क्षेत्र में अभिमन्यु अनंत, कृष्णबिहारी मिश्र, रामदेव धुरंधर, पूजानंद नेमा, दीपचंद बिहारी, भानुमति नागदान, नाटक के क्षेत्र में अभिमन्यु अनंत, अस्तनिद सदासिंह, महेश रामजियावन, निबंधकारों में पं० वासुदेव विष्णुदयाल, ठाकुरदत्त पांडे, मुनीश्वरलाल चिंतामणि, प्रह्लाद रामशरण ने उल्लेखनीय कार्य किया हैं। सांस्कृतिक आदान-प्रदान के अंतर्गत मारीशस की यात्रा कर उस यात्रा का एक संस्मरण (सागर में मोती) प्रस्तुत करते हुए श्री दयानंद चंदोला लिखते हैं— 'सरकारी भाषा अँग्रेजी है, किंतु वहाँ एक भी अखबार केवल अँग्रेजीभाषा का हो, ऐसा नहीं मिला। फ्रेंच एवं क्रियोल (फ्रेंच का अपभ्रंश) वहाँ की प्रमुख बोलचाल की भाषाएँ हैं, किंतु वे सरकारी भाषा नहीं हैं। घरों की भाषा भोजपुरी, तमिल, तेलुगु, उर्दू, मराठी और चीनी इत्यादि हैं। हिंदी अधिकांश लोग जानते हैं तथा स्कूलों में हिंदी अनिवार्य पढ़ाई जाती है, बोलचाल की हिंदी में उच्चारण का कुछ फर्क हो गया है जैसे 'गिरधारी' वहाँ की भाषा में 'गीरधौरी' हो गया है।<sup>5</sup>

सूरीनाम उन देशों में शिरोमणि है, जहाँ हिंदी भारतवंशी समाज के मस्तक पर अभिषिक्त रही है। जीत नाराइन 'सरनामी' के प्रसिद्ध कवि हैं, जिनकी 'दोस्ती की चाह' तीन भाषाओं में अनुदित पुस्तक राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित हुई। सूरीनाम में छह आकाशवाणी और चार दूरदर्शन केंद्र हैं, जहाँ संगीत, धार्मिक प्रचार, चर्चा, साक्षात्कार, सूचनाएँ, विज्ञापन और देश-विदेश के समाचार हिंदी में दिए जाते हैं। भारत के पड़ोसी देशों में पाकिस्तान, नेपाल, बंगलादेश व बर्मा में हिंदीभाषा बोलने और समझनेवालों की संख्या पर्याप्त है। पाकिस्तान की राजभाषा उर्दू तो भाषाविज्ञान की दृष्टि से खड़ीबोली की ही अरबी-प्रधान शैली है। नेपाल में हिंदी पूरे देश के 53 प्रतिशत नेपालियों की मातृभाषा है।

यूरोप में हिंदीभाषा के अध्ययन की परंपरा सबसे प्राचीन तथा संपन्न है। हॉलैंड, जर्मनी, फ्रांस और इंग्लैंड में हिंदीभाषा का अध्ययन संबंधी कार्य 18 वीं शदी में ही शुरू हो गया था तथा इन देशों ने हिंदीभाषा तथा उसके साहित्य-संबंधी महत्त्वपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किए। भारत सरकार के विदेश मंत्रालय के हिंदी-अनुभाग से प्राप्त आँकड़ों के अनुसार आज जर्मनी के दस, इटली के सात, फ्रांस के पाँच, इंग्लैंड, हॉलैंड, पोलैंड तथा हंगरी के तीन-तीन, बेल्जियम के दो तथा बल्गारिया, ऑस्ट्रिया, रोमानिया, युगोस्लाविया, नार्वे, फिनलैंड के एक-एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों में उच्चस्तर पर हिंदीभाषा का अध्ययन हो रहा है।

यूरोप के ही नहीं, रूस, अमेरिका, दक्षिण अमेरिका, आस्ट्रेलिया और एशियाई देशों के बहुत से विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई हो रही है। अमेरिका के शिकागो, कैलिफोर्निया, पैसिलीनिया, वाशिंगटन आदि में 24 विश्वविद्यालयों में हिंदी-अध्ययन की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त कनाडा, रूस, ब्रिटेन, जर्मनी, स्विटजरलैंड, नार्वे, इटली, पोलैंड, डेनमार्क, जापान, हंगरी, चीन आदि देशों के लगभग 150 विश्वविद्यालयों में शोध-स्तर तक हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है। विदेशों से अनेक हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ हैं। यूनेस्को की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व के लगभग 137 देशों में हिंदीभाषा विद्यमान है।

रेडियो पर हिंदी में कार्यक्रम अनेक देशों से प्रसारित हो रहे हैं। विदेश में अनेक हिंदी

पुस्तकें कई विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। गोदान का तो विश्व की लगभग सभी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।<sup>6</sup>

‘दुनिया में हिंदी’ विवेचन के अंत में और परिशिष्ट रूप में प्रसंगवश मैं विनम्रता के साथ दुनिया-भर में हिंदी के प्रसार के बावजूद अपने ही देश में हो रही इसकी दुर्दशा की ओर विद्‌जनों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ, क्योंकि तमाम उपलब्धियों के बावजूद आज हिंदी अपने घर में ही बेगानी होती जा रही है। भाषा में कितनी ही सामर्थ्य हो, कितनी ही क्षमता हो, जब तक उसका व्यापक प्रयोग नहीं होता, तब तक उस भाषा की संभावनाएँ पूरी तरह विकसित नहीं हो पातीं। हिंदी के रास्ते में एक तरफ़ स्थापित स्वार्थों का अवरोध है तो दूसरी तरफ़ हमारे तथाकथित अभिजात्यवर्ग की मानसिकता का अवरोध भी है। ‘अँग्रेज़ी’ अभिजात्य का मानक बन गई है।

अँग्रेज़ी, जिसे कुछ लोग भ्रमवश विश्वभाषा समझ बैठे हैं, वह ऐसी जड़, दुराग्रही, अवैज्ञानिक, अविकसित और अटपटी भाषा है, इसके दोष हमेशा ही बड़े-बड़े विद्वानों को चिंतित और परेशान करते रहे हैं— आर्थर मैकडोनल के शब्दों में—‘यूरोपीय लोग 2500 वर्ष बाद इस वैज्ञानिक युग में भी वही वर्ण-माला प्रयोग कर रहे हैं, जो हमारी भाषा की सभी ध्वनियों को व्यक्त करने में भी अक्षम है, यहाँ तक की हम उसी अव्यवस्थित वर्ण-क्रम से भी चिपके हुए हैं, जो यूनान के आदिवासियों ने 3000 साल पूर्व अपनाया था।’

इसी प्रकार सर आर्थर विलियम जोन्स कहते हैं कि ‘अँग्रेज़ी वर्णमाला और वर्तनी ऐसी बुरी तरह अधकचरी हैं कि प्रायः अत्यंत हास्यास्पद तक हो जाती है।’ रिचर्ड लैडरर महोदय ने तो झल्लाकर ‘क्रेजी इंग्लिश’ अर्थात् ‘पागलपन की भाषा अँग्रेज़ी’ नामक एक ग्रंथ ही लिख डाला, जिसे न्यूयार्क की प्रसिद्ध संस्था ‘साइमन एंड शुस्टर’ ने 1968 में प्रकाशित किया था। ये उद्धरण और टिप्पणियाँ किसी भी प्रकार अँग्रेज़ी के वर्चस्व को किसी दुराग्रह के अंतर्गत अस्वीकार करने की भूमिका नहीं है, तात्पर्य केवल इतना है कि यदि इतनी अपरिपक्व वर्तनी और व्याकरण वाली भाषा ऐसा प्रसार कर सकती है तो पुष्ट वैज्ञानिक आधार पर विकसित हिंदी क्यों नहीं विश्व-संप्रेषण का माध्यम बन सकती? राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने 15 अगस्त 1947 को बी०बी०सी० लंदन को दिए गए एक संदेश में कहा था, ‘अँग्रेज़ी मोह से बड़ी कोई मूर्खता नहीं। दुनिया से कह दो कि गांधी अँग्रेज़ी नहीं जानता।’ पर स्वयं गांधी के देश में अँग्रेज़ी-मोह पराकाष्ठा की किस सीढ़ी पर पहुँच गया है, यह किसी से छिपा नहीं है।

तीसरे विश्व हिंदी सम्मेलन (1983, नई दिल्ली) के समय डा० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी जी ने एक गीत की रचना की थी, जिसको भारतीय साहित्य की शिरोमणि महीयसी महादेवी वर्मा ने सहज ही ‘विश्वहिंदी के बोधगीत’ का अलंकरण दिया था। हिंदी बोधगीत इस कथन से आरंभ होता है कि—‘हिंदी हम सबकी परिभाषा है, और समाप्त होता है इस आह्वान के साथ कि हिंदी को आज अपेक्षा है कि हम माँगते न्याय आज से कल से।

आपातकाल की विसंगतियों के बीच जब मॉरीशस में (1976) द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन हो रहा था तो हिंदी की सबसे सशक्त आवाज़ के धनी और 4 अक्टूबर 1977 को संयुक्तराष्ट्र संघ में सर्वप्रथम हिंदी में भाषण देकर हिंदी का गौरव बढ़ाने वाले आदरणीय अटलजी ने, जो कारागार में थे— ‘कैदी कविराय’ में लिखा—

बनने चली विश्वभाषा जो, अपने घर में दासी;  
सिंहासन पर अँग्रेजी है, लखकर दुनिया हाँसी;  
लखकर दुनिया हाँसी, हिंदीदाँ बनते चपरासी;  
अफसर सारे अँग्रेजीमय, अवधी या मदरासी;  
कह कैदी कविराय, विश्व की चिंता छोड़ो;  
पहले घर में अँग्रेजी के गढ़ को तोड़ो!

इस उद्धरण से मेरा कदापि यह अभिप्राय नहीं है कि हम विश्व में हिंदी के प्रचार-प्रसार की चिंता छोड़ दें या विश्व हिंदीसम्मेलनों को अप्रासंगिक मान लें। लेकिन यह सच है कि भारत में जब हिंदी सुदृढ़ होगी, प्रचलित और संवर्धित होगी, तभी हिंदी की वैश्विक छवि श्रीमंडित होगी।

अंत में, मैं बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के दीक्षांत भाषण में प्रसिद्ध विदुषी महीयसी महादेवी वर्मा के कहे गए शब्दों से अपनी बात समाप्त करता हूँ। उन्होंने कहा था— ‘आज हम अँग्रेजी की ओढ़ी हुई दीनता में जी रहे हैं, किंतु बाहर से महानता का दंभ भरते हैं।... इस दीनता को उतार फेंकना होगा। हमारी संस्कृति का समुद्र बहुत गहरा है। सूखा है तो हमारा हृदय। अपनी संस्कृति और अपनी भाषा के प्रति हमारे हृदय में यह संवेदना भरनी चाहिए। हिंदी से उपयुक्त कोई अन्य भाषा नहीं।’

#### संदर्भ

1. साहित्य अमृत, मासिक, अंक-11, नई दिल्ली, जून 2003, पृ० 30
2. राजभाषा भारती, अंक: 84, राजभाषा विभाग, गृहमंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली, जनवरी-मार्च 1999, पृ० 49
3. विमलेशर्काति वर्मा, हिंदी और उसकी उपभाषाएँ, प्रकाशन विभाग भारत सरकार नई दिल्ली, 1995, पृ० 317
4. विमलेशर्काति वर्मा, फीजी बात : हिंदी की विदेशी भाषिक शैली, वर्ष 36, अंक-2, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ० 34-45
5. ‘मारीशस में सात दिन’ संपादक हरिबाबू कंसल, अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद्, नई दिल्ली, 1985, पृ० 51
6. राजभाषा भारती, राजभाषा विभाग, गृहमंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली, अंक-123, अक्टूबर-दिसंबर 2008, पृ० 3

□ एम-1/302 गुलमोहर एन्क्लेव  
राकेश मार्ग, नेहरू नगर  
गाज़ियाबाद 201001

## भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी

श्रीमती वंदना सेमल्टी

इतिहास विभाग

एम०एम०एच०कॉलेज

गाजियाबाद (उ०प्र०)

विश्व के समस्त देशों में राष्ट्र की राष्ट्रीयता की पहचान उस राष्ट्र की भाषा से होती है। भाषा संस्कारों की जननी है। भाषा किसी भी समूह, संस्कृति, समाज तथा राष्ट्र के सम्मान का प्रतीक है। राष्ट्रभाषा केवल वार्तापूर्ति का एक माध्यम ही नहीं अपितु सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। केवल संप्रेषण का माध्यम या विचार-अभिव्यक्ति का काम ही नहीं बल्कि समाज और व्यक्ति को जोड़कर तद् द्वारा राष्ट्र-विकास हेतु सशक्त भूमिका का निर्माण भी राष्ट्रभाषा करती है। राष्ट्रभाषा की विशेषता यह है कि उसे बोलने के लिए शिक्षित होने की आवश्यकता नहीं। राष्ट्रभाषा में राष्ट्र को संगठित करने की अद्भुत शक्ति होती है। भारत जैसे बहुभाषी और विविध संस्कृति वाले राष्ट्र में सौहार्द व एकता बनाए रखना अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है तथा इस कार्य को हिंदी द्वारा भली-भाँति निभाने का ज्वलन्त उदाहरण हमें स्वाधीनता-आंदोलन के दौरान मिलता है।

हिंदी केवल एक भाषा ही नहीं, अपितु संस्कृति है। इसमें पिछली कई शताब्दियों के भारत की एक छवि परिलक्षित होती है। हिंदी हमारे जीवनमूल्यों, आचार-विचार, परंपरा व संस्कृति का दूसरा नाम है। इस बहुभाषी देश में भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की अपनी भाषाएँ हैं, जिनके महत्व को नकारा नहीं जा सकता, परंतु यह भी सत्य है कि हिंदी का स्थान सर्वप्रमुख व सर्वमहत्वपूर्ण है। गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर के शब्दों में— 'आधुनिक भारतीय भाषाओं के हार की मध्यमणि हिंदी भारत-भारती होकर विराजती रहे।' पंडित नेहरू ने भी कहा है— 'हिंदी एक सेतु है, जिसने विभिन्न भारतीय भाषाओं एवं संस्कृतियों में तालमेल स्थापित करके राष्ट्रीय एकता को मजबूत किया है।'

देश ही नहीं, विदेशों में भी प्रयोग में लायी जाने वाली हिंदीभाषा आज तेज़ी से बदलते हुए युग में बाज़ार, सूचना प्रौद्योगिकी, तकनीक, मीडिया तथा अंतरराष्ट्रीय जगत् से कहाँ तक सामंजस्य कर पाई है, यह विषय विचारणीय है। इस दृष्टि से वर्तमान वैश्वीकरण के दौर में हिंदी की दशा और दिशा का अवलोकन किया जाना नितान्त आवश्यक है।

वैश्वीकरण पूँजीवादी व्यवस्था का अत्यंत आधुनिक एवं विस्तृत रूप है। इस व्यवस्था की नीतियाँ आर्थिक क्षेत्र में ही सीमित नहीं हैं, अपितु सामाजिक, सांस्कृतिक और



साहित्यिक क्षेत्रों के साथ-साथ भाषा पर भी गहरा प्रभाव डाल रही हैं। वैश्वीकरण के दौर में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका है। भारत विश्व का सबसे बड़ा उभरता हुआ बाज़ार है और इस बाज़ार की माध्यम भाषा हिंदी है। इससे हिंदी का भूमंडलीकरण हो रहा है। स्वतन्त्रता के बाद व्यापार, विज्ञान तथा विविध क्षेत्रों में भारत के विकास ने विदेशी शक्तियों का ध्यान आकृष्ट किया है। भूमंडलीकरण ने भौतिक जगत् की दूरियों को मिटा दिया है। वैज्ञानिक उन्नति, औद्योगिक विकास, कंप्यूटर, फ़ैक्स, इंटरनेट और ईमेल के इस युग में पिछड़ा हुआ वह नहीं, जिसके पास संसाधनों का अभाव है, अपितु वह है जो संसाधनों का समुचित उपयोग न कर सके। प्राकृतिक संसाधनों की विपुलता, कृषि में आत्मनिर्भरता, प्रौद्योगिक उपलब्धियाँ, कुशल जनशक्ति, विस्तृत उपभोक्ता बाज़ार तथा उदारीकरण की प्रवृत्ति ने भारत को विश्व की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में ला खड़ा किया है।

यदि आवश्यकता आविष्कार की जननी है तो आविष्कार भी आवश्यकताओं को पैदा करते हैं। इस बात को आज के बाज़ारवाद ने सिद्ध कर दिया है। जहाँ तक हिंदी का संबंध है, इस भाषा में विश्व का सबसे बड़ा बाज़ार उपलब्ध है। हिंदी बाज़ार व व्यवहार के अनुकूल बनती जा रही है। भूमंडलीकरण के इस चुनौती-भरे युग में विज्ञापनों के माध्यम से अपने-अपने उत्पादों को बेचने की होड़-सी लगी है। बहुउद्देशीय कंपनियों को इस विशाल देश में अपने उत्पादों को बेचने की प्रबल संभावनाएँ हैं। इनका भविष्य भारतीय भाषाओं पर टिका है। ऐसे में ये कंपनियाँ अपने विज्ञापन हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में देकर सफलता प्राप्त कर रही हैं। इन्हें अपने उत्पादों को जनसामान्य तक पहुँचाने के लिए तथा आम उपभोक्ता की सोच और आवश्यकताओं को पहचानने के लिए हिंदी का सहारा लेना पड़ रहा है।

आज अपनी उत्पादन-सामग्री के प्रचार-प्रसार, पैकिंग, गुणवत्ता आदि के लिए हिंदी को अपनाया बहुराष्ट्रीय कंपनियों की विवशता है और उनकी यह विवशता हिंदी की शक्ति और सामर्थ्य की द्योतक है। आज ये कंपनियाँ अपने प्रतिनिधियों को भारत में पदस्थ करने के पूर्व उनके हिंदी-प्रशिक्षण को प्राथमिकता दे रही हैं। हालाँकि यह उनका हिंदीप्रेम नहीं, बल्कि व्यावसायिक आवश्यकता है, किंतु हिंदी की स्वीकार्यता तो है ही। वे जानते हैं कि बगैर हिंदी के न तो विस्तृत बाज़ार ही उपलब्ध हो सकता है और न ही आम आदमी तक पहुँचा जा सकता है।

हिंदी भारत ही नहीं, पूरे विश्व में एक विशाल समुदाय की भाषा है। इस विशाल समुदाय में एक वर्ग उन अप्रवासी भारतीयों का है, जो रोज़गार के उद्देश्य से विदेशों में बस गया है। इसे पूरी दुनिया बाज़ार के रूप में देख रही है और इसमें पैठ बनाना भी इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों का उद्देश्य है। विश्व के लगभग 137 देशों में हिंदीभाषा विद्यमान है। प्रवासी भारतीयों का बड़ा दल शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत लगभग 160 वर्ष पूर्व मारिशस, त्रिनिदाद, दक्षिणी अफ्रीका, गुयाना, सूरीनाम, तथा फीजी में जाकर बस गया।<sup>1</sup> आज भी ये प्रवासी भारतीय हिंदी को बोलचाल का माध्यम बनाए हुए हैं, साथ ही इन देशों के मूलनिवासी भी हिंदी बोलते और समझते हैं। भारत के पड़ोसी देशों में पाकिस्तान, नेपाल, बंगलादेश व बर्मा

में हिंदीभाषा बोलने और समझनेवालों की संख्या पर्याप्त है। यूरोप, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, अमेरिका और एशिया महाद्वीप के अनेक देशों में भारत की सहज-स्वाभाविक भाषा हिंदी का, पठन-पाठन शासकीय स्तर पर हो रहा है।

डॉ० जयंतीप्रसाद नौटियाल ने निरंतर बीस वर्ष तक भारत तथा विश्व में भाषा-संबंधी आँकड़ों का विश्लेषण करके यह सिद्ध किया है कि विश्व में हिंदी प्रयोग करनेवालों की संख्या चीनियों से भी अधिक है और हिंदी अब प्रथम स्थान पर है।<sup>2</sup> इस प्रकार भारत में ही नहीं, अपितु भारतीय मूल के नागरिक जहाँ भी हैं, वहाँ हिंदी संपर्कभाषा का दायित्व निभा रही है।

आज हिंदी का पठन-पाठन विश्व के अनेक देशों के विश्वविद्यालयों में हो रहा है। अमेरिका के शिकागो, कैलिफोर्निया, पैसिलवानिया, वाशिंगटन आदि 24 विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्ययन की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त कनाडा, रूस, ब्रिटेन, जर्मनी, स्विटजरलैंड, नार्वे, इटली, पोलैंड, डेनमार्क, जापान, हंगरी, चीन आदि देशों के लगभग 150 विश्वविद्यालयों में शोधस्तर तक हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है। विदेशों से अनेक हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ यथा-सर्वोदय, जापान भारती, ज्वालामुखी (जापान से) सचित्र चीन (चीन से), शांतिदूत, अप्रवासी टाइम्स (नार्वे से), पुरवाई (इंग्लैंड से) सौरभ, विश्वविवेक (अमेरिका से) आदि प्रकाशित हो रही हैं।

रेडियो पर हिंदी में कार्यक्रम अनेक देशों से प्रसारित हो रहे हैं जिनमें बी०बी०सी०, वायस ऑफ़ अमेरिका, जर्मनी के रेडियो कोलोन की हिंदीसेवा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अनेक हिंदी पुस्तकें जैसे निर्मला, रामचरितमानस, झूठा-सच, चित्रलेखा, मैला आँचल तथा रवींद्रनाथ की अनेक रचनाओं का कई विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। गोदान का तो विश्व की लगभग सभी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।<sup>3</sup> इतना ही नहीं, विदेशी मूल के अनेक विद्वान हिंदी में रचनाएँ कर रहे हैं और व्याकरण एवं शब्दकोश तैयार कर रहे हैं।

विदेशों में भारतीय डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक तथा श्रमिकों की भारी माँग है। निश्चय ही यह हिंदीभाषा के विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसके साथ ही इन देशों के साथ हमारे सांस्कृतिक एवं आर्थिक संबंध निरंतर विकसित हो रहे हैं, जिनके चलते रोजाना के कामकाज तथा मीडिया व मनोरंजन के क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग व विकास की असीम संभावनाएँ बढ़ रही हैं।

जब-जब वैज्ञानिक तकनीकी क्रांति होती है तो हम भाषा को लेकर सशंकित हो जाते हैं और भाषा की व्यावहारिकता पर प्रश्न उठने लगते हैं। दशकों पहले जब दूरदर्शन का जन्म अँग्रेजी कार्यक्रमों के साथ हुआ, तब हमारी चिंताएँ बढ़ीं। स्टार, सोनी, डिस्कवरी, कार्टून नेटवर्क आदि चैनल अँग्रेजी से शुरू हुए, परंतु देखते-ही-देखते उनके अधिकांश कार्यक्रम हिंदी में बदल गए। आज भारत में सर्वाधिक साहित्य तथा फ़िल्में हिंदीभाषा में ही हैं।

दूरसंचार के क्षेत्र में मोबाइल सेवा के आगमन से सुविधाएँ बढ़ गई हैं। विश्व की 80 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या अब मोबाइल नेटवर्क से जुड़ गई है। आरंभ में मोबाइल के

आगमन पर अँग्रेजी का वर्चस्व रहा, लेकिन धीरे-धीरे बाज़ार को दृष्टिगत रखते हुए बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं को संचार और संप्रेषण का माध्यम बनाना आरंभ किया। जैसे हिंदी में संक्षिप्त संदेश सेवा का प्रचलन बढ़ा है।

पिछले कुछ वर्षों से कंप्यूटर-इंटरनेट शिक्षा, विकास और मनोरंजन के क्षेत्र में एक प्रभावशाली साधन के रूप में उभरकर सामने आया है। भारत जैसे विशाल देश में इस सशक्त साधन की अपनी उपयोगिता है, क्योंकि कोई भी राष्ट्र विश्वस्तर पर हो रहे तकनीकी और वैज्ञानिक परिवर्तनों से अछूता नहीं रह सकता। कंप्यूटर और इंटरनेट के क्षेत्र में हिंदी की स्थिति बेहतर हो रही है। देखते-ही-देखते अनेकों फॉन्ट विकसित हो गए हैं। आज संसार में कम्प्यूटर टाइपिंग के सर्वाधिक फॉन्ट हिंदी में ही हैं। भले ही यह देवनागरी लिपि की जटिलताओं के कारण हो और इसमें 'की-बोर्ड' की विसंगति के लिए 'यूनिकोड' जैसी फॉन्ट की व्यवस्था की जा रही है किंतु यह हिंदी के प्रति हार्डटेक बिरादरी की सतर्कता और सॉफ्टवेयर इंजीनियरों की तत्परता का ही परिणाम है कि हिंदी ने इस क्षेत्र में भी कदम जमा लिया है।

कंप्यूटर तकनीकी के अग्रणी बिल गेट्स ने स्वयं हिंदी को कंप्यूटर के लिए सर्वश्रेष्ठ भाषा माना है, क्योंकि हिंदी की लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक है। कंप्यूटर का प्रयोग हिंदी में वर्ड प्रोसेसिंग, डाटा प्रोसेसिंग, टेली-कॉन्फ्रेंसिंग, टेलेक्स संदेशों के आदान-प्रदान तथा इलैक्ट्रॉनिक पत्र-व्यवहार के लिए किया जाता है। कंप्यूटर पर द्विभाषिक शब्द के लिए कई पैकेज हैं। जैसे- सुलिपि, आकृति, लीला, हिंदी-प्रबोध, श्रीलिपि, सुविडो, गुरु आदि। इसके अतिरिक्त लेखक, हिंदीवाणी, देशिका, शब्द-बोध, अनुसारका आदि भी हिंदी में काम करने के सॉफ्टवेयर हैं। 'हिंदी वर्ड-2000', माइक्रोसॉफ्ट कॉर्पोरेशन द्वारा जारी किया गया अपना पहला हिंदी सॉफ्टवेयर था। इंटरनेट पर वर्डवाला डॉटकॉम, नेट जाल डॉटकॉम आदि से हिंदी व इंटरनेट का जुड़ाव गहरा हो गया है। 'नेट दैनिक डॉटकॉम' तथा 'कंप्यूटर संचार सूचना' जैसे हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ इंटरनेट पर भी उपलब्ध हैं। 'अनुभूति' तथा 'अभिव्यक्ति डॉटकॉम' विदेशी भारतीयों द्वारा आरंभ किए गए हैं।<sup>4</sup>

मीडिया के क्षेत्र में भी हिंदी का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। मीडिया एक ऐसा माध्यम है, जिसका मुख्य कार्य संप्रेषण है। संप्रेषण के लिए एक जनभाषा आवश्यक है ताकि मीडिया अपनी बातों को जनसाधारण तक पहुँचा सके। इसीलिए, आजकल हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ, हिंदी न्यूज चैनल बड़ी संख्या में लोकप्रिय हो रहे हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्यातिप्राप्त भारतीय जनसंचार संस्थान आज मीडिया के क्षेत्र में विश्वस्तरीय पत्रकारों को जन्म दे रहा है।

वैश्वीकरण के इस दौर में हिंदीभाषा को रोजगारपरक बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं। हिंदीभाषा के विकास, प्रचार-प्रसार एवं सुधार के लिए सरकार, गैरसरकारी संगठनों तथा विश्वविद्यालयों के प्रयास उल्लेखनीय हैं। निरंतर संगोष्ठियाँ तथा परिचर्चाएँ हो रही हैं। वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया में संपूर्ण विश्व एक परिवार के रूप में निकट आया है। समय-समय पर होने वाले विश्व हिंदीसम्मेलन अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के बढ़ते महत्त्व के

परिचायक हैं।

हिंदीभाषा हमेशा से उदारहृदया रही है। इसमें अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रचुर समावेश हुआ है। अन्य भाषाओं को आत्मसात करने का यह गुण ही हिंदीभाषा की जीवंतता की प्राणवायु है। यदि वर्तमान हिंदी के स्वरूप पर ध्यान दें तो हम पाएँगे की हिंदी में अनेक शब्द ऐसे हैं, जो अन्य भाषाओं से आए हैं तथा जो हिंदी में पूर्णतः रच-बस गए हैं। उदाहरणार्थ—हलवा, चादर, तौलिया, कुर्ता, स्कूटर, कार, बस, हवेली, कागज़, पर्दा, सब्ज़ी, मानसून, कुली, कुर्सी, महल, अचार आदि। वास्तव में भाषा का सहज प्रवाह भाषा के सौंदर्य व स्वीकार्यता को बढ़ाता है तथा भाषा को समृद्ध करता है।

वैश्वीकरण के इस दौर में जहाँ हिंदी ने प्रगति की दिशा में कदम बढ़ाए हैं, वहीं दूसरी ओर अनेक वास्तविकताएँ ऐसी हैं, जिनकी अनदेखी नहीं की जा सकती। विश्व के मंच पर भले ही हिंदी को विशेष महत्त्व मिल रहा हो, परंतु इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि भारत में हिंदी को नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। वैश्वीकरण ने जहाँ हिंदीभाषा को कई नए आयाम दिए हैं, वहीं इसकी वजह से हिंदीभाषा के सम्मुख अनेक गूढ़ प्रश्न खड़े हैं।

आज बाज़ार की माँग तथा आवश्यकतानुरूप हिंदीभाषा को केवल लाभ के सिद्धांत तक सीमित रखा जा रहा है। हिंदी-विज्ञापनों में उसका व्याकरणिक ढाँचा बिगड़ रहा है। इसके बदलते स्वरूप की विडम्बना यह है कि इसमें हम हिंदी में वार्तालाप करनेयोग्य क्षमता तो रखते हैं किंतु हिंदी पढ़ने-लिखने का ज्ञान नहीं है। आज की नई पीढ़ी किसी शब्द को हिंदीभाषा में उच्चारित करने के लिए अँग्रेज़ी के रोमन अक्षरों का प्रयोग करती है। जैसे 'आम' के लिए 'Aam' ऐसा इसलिए है, क्योंकि लोगों में भाषा तथा वर्णमाला के ज्ञान का अभाव है, साथ ही आधुनिक दौर में फैशन के तौर पर ऐसा किया जा रहा है। इस तरीके द्वारा विदेशी मूल के नागरिक हिंदी का प्रयोग करें तो उचित है, परंतु यदि स्वयं भारतीय अपनी भाषा को पढ़ने-लिखने व समझने हेतु विदेशी भाषा का सहारा लें तो उचित नहीं होगा।

देश में दिनों-दिन बढ़ती जा रही पब्लिक स्कूलों की संख्या यह दर्शाती है कि आज अभिभावकों में बच्चों को अँग्रेज़ी माध्यम से शिक्षा दिलाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। आज अगर टूटी-फूटी अँग्रेज़ी बोलना पिछड़ेपन का प्रतीक है तो लड़खड़ाती हुई हिंदी बोलना आधुनिकता का परिचायक है। पश्चिमी देशों के मीडिया की इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आज का हिंदी मीडिया जब अँग्रेज़ी में हेडलाइन लगाता है तो हिंदी की वर्तमान स्थिति के बारे में वस्तुस्थिति स्पष्ट हो जाती है।

संप्रेषण के सशक्त माध्यम मीडिया को हिंदी के प्रचार और प्रसार में सकारात्मक भूमिका का निर्वहन करना चाहिए। उसे अहिंदीभाषी लोगों की निराधार आशंकाओं का निराकरण कर उनमें हिंदी के प्रति विश्वास जगाना होगा, साथ ही सनसनीपूर्ण व उत्तेजक बयानों से बचना होगा। हिंदी के विकास में अन्य भाषाओं के सहयोग की नितांत आवश्यकता है, क्योंकि सारी भारतीय भाषाएँ आपस में भावनात्मक रूप से जुड़ी हुई हैं।

हिंदी के कामकाजी स्वरूप को उभारना भी आवश्यक है। भाषा का व्यावहारिक स्वरूप ही भाषा के प्रयोजन को सिद्ध कर सकता है। साथ ही विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए हमें जापान, जर्मनी, फ्रांस आदि से शिक्षा लेनी चाहिए और अनुसंधानपरक साहित्य हिंदी में भी उपलब्ध होना चाहिए। भारतीय प्रौद्योगिकी को भी इस दिशा में ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है। हिंदी में अपेक्षाओं और उपलब्धियों का मार्ग बराबर कंटकाकीर्ण रहा। भाषा में कितनी ही सामर्थ्य हो, कितनी ही क्षमता हो, जब तक उसका व्यापक प्रयोग नहीं होता, उस भाषा की संभावनाएँ पूरी तरह विकसित नहीं हो पातीं। हिंदी के रास्ते में एक तरफ़ स्थापित स्वार्थों का अवरोध है तो दूसरी तरफ़ हमारे तथाकथित अभिजात्य वर्ग की मानसिकता का अवरोध भी है। ..... 'अँग्रेजी' अभिजात्यवर्ग का मानक बन गई है। हिंदी केवल आम लोगों के साथ बातचीत करने की सुविधा की भाषा है और यह हमारे देश के लिए त्रासदी है।<sup>5</sup>

किसी भी विदेशी भाषा को पढ़ना, पढ़ाना या अपनाना अच्छी बात है, परंतु हमें यह स्वीकारना होगा कि देश का जागरण और समग्र विकास केवल हिंदीभाषा के माध्यम से ही हो सकता है। फ़ादर कॉमिल बुल्के का कथन अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है— 'अपनी भाषा की जड़ें मनुष्य में बहुत गहरी होती हैं। अपनी भाषा के माध्यम से मनुष्य जैसा ज्ञान प्राप्त कर सकता है, वैसा अन्य भाषा के माध्यम से नहीं।'

वैश्वीकरण के इस दौर में हिंदीभाषा को गति देनी है तो हमें अपनी मानसिकता को बदलना होगा और हिंदी को रोजगारपरक एवं प्रगतिशील बनाने के प्रयास करने होंगे। ऐसा होने पर निःसंदेह हिंदीभाषा का भविष्य वैश्वीकरण के दौर में उज्ज्वल होगा। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के शब्द अपने में एक संदेश लिए हुए हैं— 'हिंदी राष्ट्रीयता के मूल को सींचती है और दृढ़ करती है। देश का कोई भी सच्चा प्रेमी हिंदी का तिरस्कार नहीं कर सकता।'

### संदर्भ

1. विमलेशकांति वर्मा, हिंदी और उसकी उपभाषाएँ, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1995 पृ० 317
2. दैनिक हिंदुस्तान, 25 अप्रैल 2005, नई दिल्ली
3. राजभाषा भारती, राजभाषा विभाग, गृहमंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली, अंक: 123, अक्टूबर-दिसंबर 2008, पृ०-3
4. वही, पृ० 4
5. डा० एल०एम० सिंघवी, साक्षात्कार, साहित्य अमृत, अंक-2 सितंबर 1999 पृ० 40

□ टी एफ-7, प्रेरणा अपार्टमेंट्स  
गांधी नगर  
गाजियाबाद 201001

## हिंदी में दलित-साहित्य : आस्वाद के धरातल पर

डॉ० सुरेंद्रकुमार मीणा

पी०डी०एफ०

हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

दलित-साहित्य मराठी साहित्य का विशिष्ट और सशक्त आविष्कार है। मराठी दलित साहित्य ने ही दलित-साहित्य को समग्र भारतीय साहित्य में प्रचारित-प्रसारित किया और साहित्य को विशिष्ट एहसास भी दिया। 'दलित' याने दला गया, दमित, उपेक्षित, सवर्ण समाज द्वारा अस्वीकृत, धिक्कारित, अछूत समाज है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज में घटित होने वाली अच्छी-बुरी सारी घटनाओं को साहित्य के द्वारा समाज के सामने रखा जाता है। वे घटनाएँ समाज के सामने साहित्य के माध्यम से भले ही देर से आ पाती हों, पर जब समाज के सामने आती हैं, तो उनसे समाज प्रभावित अवश्य होता है। साहित्य 'सामाजिक यथार्थ' को इस प्रकार चित्रित करता है कि कुरूप, शोषक, सड़ी-गली विसंगतिग्रस्त शक्तियों का पर्दाफाश हो और नई सामाजिक शक्तियों के संघर्षों, युयुत्सा और आस्था को बल मिले।<sup>1</sup>

साहित्य का क्षेत्र विस्तृत होता है, पर उसका मूल केवल मानव-जाति के साथ हो रहे अन्याय, अत्याचार, शोषण आदि को समाज के सामने रखना होता है। साहित्य समाज का एक आवश्यक भाग होने के कारण कलाकार की चेतना से जुड़कर समाज को हर पल कुछ नया देने का प्रयास करता है। साहित्य कलाओं में सबसे बड़ी कला माना गया है और इसलिए— 'मानव-जीवन से गहरे स्तर पर जुड़े होने के नाते कला के सौंदर्य मूल्य को जीवन-मूल्यों से अलग नहीं किया जा सकता। श्रम मानव-जीवन का सबसे बड़ा स्रोत है और मानव-जीवन व्यापक अर्थों में जिजीविषा-सृष्टि का सबसे बड़ा मूल्य है। इसलिए श्रम और सौंदर्य मूल्यों को एक-दूसरे से जोड़कर देखने की जरूरत है।'<sup>2</sup>

जिस समय समाज में जैसा घटित होता है, उसका वैसा ही रूप, कलाकार की भावनाओं और संवेदनाओं में घुलकर कला के रूप में समाज के सामने आता है। भारतीय संस्कृति में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जो चार वर्ण मिलते हैं, उनका एक-दूसरे से घनिष्ठता का तालमेल है। वह वास्तविकता भी है कि इनमें से किसी एक वर्ण का भी दूसरे से बिना तालमेल के काम नहीं चल सकता, पर फिर भी इनमें संघर्ष हमेशा चलता रहता है। विशेष रूप में दलित और शोषित वर्ग जब-जब भी विशेष कहे जाने वाले समुदाय की ओर से घोर उपेक्षा का शिकार हुआ, तब-तब उन दबे-पिसे लोगों की बस्ती, रोली या कबीले के आस-पास के परिवेश में उनकी कसक, पीड़ा और दर्द-भरी गूँज की आवृत्ति किसी-न-किसी रूप में अवश्य ही अभिव्यक्त हुई है।<sup>3</sup>

ऊपर जिन चार वर्णों की चर्चा की गयी है, उनमें से आरंभ के तीन वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) किसी न किसी रूप में सत्ता के जुड़े रहे। ब्राह्मणवर्ण धर्म से जुड़ा था, क्षत्रिय शासन-व्यवस्था से और वैश्य व्यापार से। इन तीनों वर्णों में अच्छा आपसी तालमेल रहा। मगर जो चौथा वर्ण शूद्र था, वह इन तीनों ही वर्णों की उपेक्षा का शिकार रहा। हालाँकि सामाजिक व्यवस्था के विकास में इसी वर्ण का सहयोग सबसे अधिक रहा और यह भी एक सच्चाई ही है कि समाज को सबसे अधिक आवश्यकता इसी शूद्र वर्ण की रही है, पर इसके कार्यों को और सहयोग को कभी भी महत्त्व नहीं दिया गया। यह बात तो रही 'प्राचीन भारत की वर्ण-व्यवस्था की, जो आज भी हमारी नसों में घुली-मिली है। पर फिर भी नये समीक्षक वर्तमान में समाज को दो वर्ग तक ही सीमित रखते हैं। एक पूँजीपति वर्ग और दूसरा श्रमजीवी वर्ग। इसमें जो पूँजीपति वर्ग है, उसमें ऊपर बताए गए आरंभ के तीन वर्ण आ जाते हैं और चौथा वर्ण श्रमजीवी वर्ग में आता है। पूँजीपति गरीब जनसमुदाय को जोंक की तरह चूसता रहता है, कभी खून गायब पर घाव का नाम तक नहीं।' 4 मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि मानव-जाति के एक लंबे विकास-क्रम के बाद भी शूद्रवर्ण आज भी उसी अवस्था में है, जैसा अपने आरंभ में रहा होगा।

प्रश्न है हिंदी का दलित-साहित्य। एक बात और स्पष्ट रूप से हमारे सामने आती है कि आरंभ काल में दलितों का शारीरिक शोषण एवं उनका अपमान तो हो ही रहा था, शैक्षिक एवं मानसिक रूप से भी उनका शोषण हो रहा था। शिक्षा एवं ज्ञान की कमी के कारण साहित्य लिखने का तो प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि साहित्य लिखनेवाला बुद्धिजीवी वर्ग सत्ता एवं राजदरबार से जुड़ा था। अतः उसके पास दलितों को देखने की दृष्टि तो थी, मगर लिखने के लिए दरबार की चर्चा एवं राजे-महाराजे के गुणगान करते के अलावा और कुछ लिखने का समय नहीं था। इस कारण एक लंबे समय तक दलितवर्ग इस उपेक्षा का शिकार भी होता रहा। हाँ, कभी-कभी उन दलितों में से कुछ एक विद्वान अवश्य निकल आते थे, जो अपनी जाति, अपने वर्ण के प्रति चिंतित थे; पर ऐसे विद्वानों की संख्या बहुत कम है। बाकी का पूरा का पूरा वर्ण तीन वर्णों के पैरोंतले दबा रहा।

दलितवर्ग अशिक्षित, शोषित और उपेक्षित होने के बाद भी अपने कर्म के प्रति ईमानदार अवश्य होता आया है। 'दलित जनसाधारण के पास ईमान है, सच्चाई है, शौर्य-धैर्य है और सबसे बड़ी बात है, निरंतर कर्मशील रहने की शक्ति व साहस। इसीलिए दलित जनसाधारण रेल की पटरियाँ बिछा सकता है, समुद्र को बाँध सकता है, अत्याचारियों के वैभव को उजाड़कर उसके हौंसले पस्त कर सकता है, रेगिस्तान को हरा-भरा बना सकता है' 5 एक इतना मेहनतकश वर्ग उपेक्षा का शिकार रहा, जिसका हर तरह से शोषण हुआ और उसने कुछ कहा भी नहीं, जो मिला स्वयं स्वीकार कर लिया, पर आश्चर्य कि किसी संपन्नवर्ग की दृष्टि इस ओर कभी नहीं गयी।

जब दलित-साहित्य की चर्चा चलती है, तो एक प्रश्न उठता है कि आखिर दलित-साहित्य क्या होता है? अच्छा साहित्य भी दलित होता है। मैंने तो दलितवर्ग शब्द जरूर किसी पुस्तक में पढ़ा है मगर 'दलित-साहित्य' शब्द आज पहली बार सुन रहा हूँ। दलित साहित्य वह साहित्य है, जिसमें दलितवर्ग की समस्याओं को उठाया गया हो।

हमारे देश में दलित-साहित्य लेखन की परंपरा कब शुरू हुई वह भी हिंदीभाषी क्षेत्र में, यह ठीक-ठीक कहना मुश्किल है। हाँ, मराठी में दलित-साहित्य का इतिहास लगभग-सात सौ साल पुराना है, जिसने लंबा सफर कई परिस्थितियों के बीच तय किया है। परंतु मोहनदास नैमिशराय के अनुसार— 'मराठी साहित्य ने भी उनको एक अर्थ में 'अस्पृश्य' ही माना, क्योंकि दया के कारण कितना ही प्रेम क्यों न व्यक्त किया गया हो, फिर भी मराठी साहित्य में दलितों के जीवन का, उनकी व्यथा, वेदनाओं का, उनकी आशा-आकांक्षा का यथार्थ चित्रण हुआ ही नहीं।' <sup>6</sup>

जब हिंदी में दलित-साहित्य की बात आती है, तो जहाँ तक मेरा मानना है कि दलित वर्ग पर तो साहित्य शताब्दियों से लिखा जाता रहा है, पर उसमें शब्दों का परिवर्तन अवश्य आया है। अगर हम मध्ययुग के साहित्य की ही बात कहें तो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि मध्ययुग में भी विद्वान संत-महात्मा दलितों की समस्या को लेकर चिंतित थे और उन्होंने उन्हें साहित्य में भी स्थान दिया। उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के बीच मैत्री भी करायी। इसका सबसे अच्छा उदाहरण है, गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' जिसमें राम सभी वर्गों को लेकर चलते हैं।

कबीर ने भी मानवता का संदेश देकर अस्पृश्यता का भेद भाव ही समाप्त कर दिया। उनका मानना तो यही है कि सारी मानव-जाति एक है। यही कहना रैदास जी का भी है। उन्होंने जात-पात के भेदभाव पर प्रहार करते हुए लिखा है—

जात-पात में जात है ज्यों कल्लन में पात।

रविदास मानुष न जुड़ सके जो लो जात न जात।

मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि हिंदी का दलित-साहित्य पुराना है। हाँ, उसमें शब्दों का हेर-फेर अवश्य होता रहता है। कबीर, तुलसी के बाद भी यह साहित्य लिखा जाता रहा। 1861 में ज्योतिबा फुले की दलितों पर एक पुस्तक प्रकाशित हुई।

उपन्यास-सम्राट् प्रेमचंद ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्र से जुड़े हुए थे। अतः वे दोनों ही क्षेत्र में शोषण, छुआछूत आदि का रुख देख रहे थे और उसे अपने उपन्यासों में स्थान दे रहे थे। 'गोदान' इसका एक उदाहरण है। इस तरह शोषण और श्रम का अच्छा वर्णन निराला ने अपनी कविता 'वह तोड़ती पत्थर' में भी किया है। सन् 1936 में प्रेमचंद का निधन हो गया। उनके बाद हिंदी में उन जैसा उपन्यासकार दूसरा नहीं आया। यद्यपि दलितों की समस्याओं को बाद में अन्य कई उपन्यासकारों, कहानीकारों, कवियों ने उठाया, जिनमें छुआछूत, वर्गभेद आदि की समस्याएँ प्रमुख हैं। वे प्रमुख उपन्यास जिनमें दलितवर्ग की पीड़ा का ईमानदारी के साथ चित्रण किया गया है निम्न है— 'रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ', उदयशंकर भट्ट का 'सागर लहरें और मनुष्य', अमृतराय का 'बीज', फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल', यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' का 'पत्थर के आँसू', अमृतलाल नागर का 'नाच्यो बहुत गोपाल', जगदीशचंद्र का 'धरती धन का अपना', दयाशंकर मिश्र का 'छोटी बहू', मन्नू भंडारी का 'महाभोज', भीष्म साहनी का 'बसंती', गिरिराज किशोर का 'यथा प्रस्तावित', भगवतशरण उपाध्याय का 'खून के छीटे', राहुल सांकृत्यायन का 'सिंह सेनापति'। इसके अलावा भी कई उपन्यास हैं, जिनमें दलितों की मूल समस्या को उठाया गया है।

इसी तरह प्रगतिवादी कवि भी हैं, जिन्होंने दलितों के जीवन और समस्याओं का



चित्रण किया है। धूमिल, मुक्तिबोध, नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल आदि ऐसे ही कवि हैं। कवियों एवं साहित्यकारों की एक नई पीढ़ी भी दलितों पर काम कर रही है।

डॉ० भीमराव अंबेडकर को कौन नहीं जानता? सभी जानते हैं और यह भी जानते हैं कि बाबासाहब दलितों के मसीहा हैं। उनका जन्म स्वयं एक दलित परिवार में हुआ था, इसलिए उन्होंने दलितों के उद्धार के लिए कई काम किए। अस्पृश्यता के बारे में वे लिखते हैं 'अस्पृश्यता का जन्म बौद्धधर्म और ब्राह्मणवाद के संघर्ष से हुआ है इसी संघर्ष से भारत का इतिहास भरा पड़ा है।' <sup>7</sup> यह जातिवाद और छुआछूत गाँवों में तो और अधिक है। डॉ० रामगोपालसिंह के अनुसार— 'गाँवों में दलितों का जीवन पशुवत् होता है। वे दिनभर अपने मालिकों के खेत पर काम करते हैं और शाम को खाना खाकर सो जाते हैं। उनसे उत्पन्न होनेवाले बच्चे भी पीढ़ी-दर पीढ़ी, इसी क्रम को दुहराते रहते हैं। उन्हें समय नहीं मिलता कि वे शिक्षा प्राप्त कर सकें और न ही इतनी मजदूरी मिलती है कि अपने बच्चों को बिना काम के खिला सकें और उन्हें पढ़ने के लिए स्कूल भेज सकें, जिससे वे संस्कृति साहित्य और कला के ज्ञान से तो वंचित रहते हैं साथ ही अपने अधिकारों के प्रति जागरूक भी नहीं हो पाते और न ही अपने साथ होनेवाले अन्याय एवं अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष कर पाते हैं।'<sup>8</sup> दलित-साहित्य वास्तव में दलितों की उस क्षेत्र की समस्याओं को उठाता है, जहाँ सामान्यतया किसी की दृष्टि नहीं पहुँच पाती।

इस प्रकार दलित-साहित्य, समाज में अन्याय, शोषण, अत्याचार आदि से पिसे दलित-वर्ग में एक नई चेतना भरता है, उन्हें उनके अधिकारों के प्रति संघर्ष करने की प्रेरणा देता है। दलित-साहित्य दलितों को यह याद कराने का प्रयास करता है कि उसने जो संघर्ष किया है, वह अपने पूरे वर्ग को शोषण, अत्याचार एवं अन्याय से मुक्ति का संघर्ष है। हिंदी का दलित-साहित्य दलितों की समस्याओं से भरा पड़ा है। आज जरूरत है तो सिर्फ उसे साहित्य से निकालकर दलितों की मुक्ति के लिए व्यवहार में लाने की।

#### संदर्भ

1. डॉ० रामदरश मिश्र, हिंदीकविता, तीन दशक, पृ० 79
2. डॉ० अजय तिवारी, प्रगतिशील कविता के सौंदर्यमूल्य, पृ० 69
3. आजकल, अक्टूबर, 1992, अंक, मोहनदास नैमिशराय का लेख, दलित-साहित्य : सीमाएँ एवं संभावनाएँ, पृ० 13
4. शिवबालक राम, साहित्यिक निबंध, पृ० 147
5. आजकल, अप्रैल, 1991 अंक, पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी का लेख, लोकशक्ति की कविता : दलित-कविता, पृ० 9
6. आजकल, अक्टूबर, 1992, मोहनदास नैमिशराय का लेख, दलित-कविता : सीमाएँ एवं संभावनाएँ, पृ० 13
7. डॉ० भीमराव अंबेडकर, अस्पृश्य मूलचे कोण, पृ० 152
8. डॉ० रामगोपाल सिंह, भीमराव अंबेडकर के सामाजिक विचार, पृ० 120

□ 53/3 वीर तेजाजी रोड ( वी०टी० )  
राईन इंटर नेशनल स्कूल के पास,  
मानसरोवर, जयपुर ( राज० ) 302020  
मो० 09887260304

## राष्ट्रीय चेतना में भारतेंदु का योगदान

अशोककुमार मीणा

प्रवक्ता हिंदी, राजकीय महाविद्यालय, लालसोट (दौसा)

वर्तमान में टी०आर०एफ०

हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

रागात्मकता मनुष्य का ही नहीं, प्राणि-मात्र की जन्मजात विशिष्टता है। मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के उपरांत यह रागात्मकता प्रायः आनंदातिरेक की अवस्था में सक्रिय होती है और मनुष्य में संवेदनशीलता, मानवता, सहानुभूति, सहअस्तित्व आदि गुणों का समन्वय करती है। इस रागात्मकता के प्रेरक और उत्सर्जक अनेक स्रोत हैं, जिनमें साहित्य का विशिष्ट स्थान है। उल्लेखनीय है कि आम आदमी की तरह साहित्यकार भी एक सामान्य सामाजिक प्राणी होता है, परंतु उसकी संवेदनशीलता, अनुभूति तथा अभिव्यक्ति-कौशल आम आदमी की अपेक्षा कहीं अधिक सशक्त और प्रभावी होता है। जिन संदर्भों को आम आदमी सहज भाव से देखकर भूल जाता है, वहीं साहित्यकार उन्हीं संदर्भों को, जब अपनी अनुभूति से सजाकर प्रस्तुत करता है, तब वे अभिनव स्वरूप धारण कर लेते हैं और पाठक या श्रोता उनसे चमत्कृत हो उठते हैं।

हिंदी-साहित्य में ऐसी मर्मस्पर्शी रचनाओं के सर्जक कवियों एवं लेखकों की एक विस्तृत परंपरा मिलती है, जिनकी रचनाएँ पाठकों के अंतस्तल को छू लेती हैं, परंतु इन मनीषियों के मध्य मात्र 35 वर्ष से भी कम आयु प्राप्त कर आधुनिक हिंदी साहित्य को एक सार्थक दिशा प्रदान करनेवाले भारतेंदु अपना अन्यतम स्थान रखते हैं।

‘भारतेंदु का जन्म 1850 ई० में इतिहास-प्रसिद्ध सेठ अमीचंद के वंश में हुआ। इनके पिता बाबू गोपालचंद्र (उपनाम गिरधरदास) ब्रजभाषा के प्रतिभासंपन्न श्रेष्ठ रचनाकार थे। भारतेंदुबाबू के मामा और नाना फ़ारसी के विद्वान् थे, गुरु इनके राजा शिवप्रसाद सिंह थे।’ भारतेंदु की उपलब्धियों के मूल में इनकी तत्त्वान्वेषिणी और दूरदर्शी दृष्टि की महती भूमिका रही है। उन्होंने समकालीन जनता के विविध वर्गों को प्रबोधित करने के लिए अलग-अलग पथों का निर्धारण किया। इसके लिए उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं को सर्वश्रेष्ठ माध्यम माना। अतः अपने समस्त साहित्यकार सहयोगियों से उन्होंने येन-केन-प्रकारेण एक-एक साहित्यिक पत्र प्रकाशित करने का आग्रह किया। इनकी मित्र-मंडली ने इस आग्रह को गंभीरता से लिया। फलतः भारतेंदु की अपेक्षित गतिविधियाँ वाराणसी तक ही सीमित नहीं रहीं, बल्कि इनका प्रचार-प्रसार कानपुर, मिर्जापुर, इलाहाबाद आदि नगरों में भी दिखाई देता है। उल्लेखनीय है

कि भारतेंदु ने स्वयं साहित्यकारों के लिए 'कविवचन सुधा'? पढ़े-लिखे (शिक्षित) लोगों के लिए 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन' (बाद में हरिश्चंद्र चंद्रिका) एवं नारीवर्ग के लिए 'बालबोधिनी' नामक पत्र-पत्रिकाओं का साथ-साथ संपादन किया। 'कविवचन सुधा' में स्वदेशी व्यवहार का आह्वान करने के लिए निकाला गया प्रतिज्ञा-पत्र भी उल्लेखनीय है 'स्वदेशी की भावना और राष्ट्र की धर्मनिरपेक्ष परिकल्पना में भारतेंदु का चिंतन अग्रगामी कहा जाएगा। वे आधुनिक संविधान को बहुत पहले से पूर्वाभाषित करते दिखाई देते हैं।' <sup>2</sup>

आम जनता तक पहुँचने के लिए इन्होंने नाटक को माध्यम बनाया। इनके समय में नाटक बहुत लोकप्रिय था। इन्होंने 'नाटक' नामक निबंध लिखकर अपने समकालीन साहित्यकारों का मार्गदर्शन किया। आधुनिक साहित्य की अन्य प्रमुख गद्य-विधाओं का आरंभ भी इन्होंने ही किया और साहित्य को जनता से जोड़ने का निरंतर प्रयास भी किया है।

भारतेंदु का मूल्यांकन करनेवाले विद्वानों के दो वर्ग बन गए हैं जहाँ एक वर्ग इन्हें देशभक्त मानता है वहीं दूसरा वर्ग उन्हें राजभक्त समझता है। वस्तुतः ये दोनों ही दृष्टिकोण अतिवादी हैं। भारतेंदु जब लेखनकार्य कर रहे थे, तब इनके समक्ष अनेक चुनौतियाँ थीं। जहाँ वे रीतिकाल की घोर शृंगारवादी रचनाओं के उत्तराधिकारी थे, वहीं उनका समकालीन हिंदू-समाज अनेक कुरीतियों से त्रस्त था। इसके साथ ही सन् 1857 की क्रांति की असफलता की वेदना तो थी ही, क्रांतिकारियों का क्रूरता के साथ किए जानेवाले दमन का दर्द भी था। जनता भयाक्रांत थी। ऐसे में देशप्रेम की अलख जगाना जीवट का कार्य था, परंतु भारतेंदु ने इस कार्य को भली-भाँति किया और पूरी तरह सफल भी रहे। ये बड़ी कुशलता के साथ अपनी बात कह जाते हैं। राजभक्ति के आवरण में लपेटा हुआ देशभक्ति का संदेश इनके साहित्य में मुखरित हुआ, राजभक्ति को अवलंबन बनाकर देशभक्ति और राष्ट्रीयता को प्रसारित करना ही मूल लक्ष्य रहा। 'वास्तव में अनेक रचनाओं से तो ऐसा लगता है कि जनता में नवचेतना फैलाने के लिए ही राजभक्ति की आड़ ली गई थी।' <sup>3</sup>

अँग्रेज राज सुख-साज, सजें अति भारी।  
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख़वारी।  
ताहु पै महँगी काल रोग विस्तारी।  
दिन-दिन दूनो दुख ईस देत हा हा री।  
सबके ऊपर टिक्कस की आफ़त आई।  
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई। <sup>4</sup>

जो शोषण पहेली बना हुआ था वह अब खुलकर सामने आने लगा। अँग्रेजों की तथाकथित सदाशयता की कलाई खुल गई तथा उनका नग्न कंकाल अर्थ-दस्यु रूप में प्रकट हो गया—

भीतर-भीतर सब रस चूसै। हँस-हँसकर तन-मन-धन मूसै  
जाहिर बातन में अति तेज़। क्यों सखि साजन? नहिँ अँगरेज़। <sup>5</sup>  
अँग्रेज़ी सभ्यता पर भारतेंदु की यह मुकरी उल्लेखनीय है—

सब गुरजन को बुरो बतावै, अपनी खिचड़ी आप पकावै।  
भीतर तत्व, न झूठी तेजी, क्यों सखि सज्जन नहिं अँग्रेजी।<sup>6</sup>  
शिक्षा और बेकारी पर—

तीन बुलाएँ तेरह आवैं, निज-निज बिपदा रोई सुनावै।  
आँखों फूटै भरा न पेट, क्यों सखि सज्जन नहिं ग्रेजुएट।<sup>7</sup>  
सरकारी अमलों पर—

मतलब की ही बोलैं बात, राखैं सदा काम की घात।  
डोलै पटनै सुंदर समला, क्यों सखि सज्जन, नहिं सखि अमला।<sup>8</sup>  
भारतवर्ष की प्रातःस्मरणीय पुलिस पर—

रूप दिखावत सरबस लूटै, फंदे में जो पड़े न छूटै।  
कपट कटारि हिय में हूलिस, यों सखि सज्जन, नहिं सखि पुलिस।<sup>9</sup>

राष्ट्रीय चेतना जगाने के लिए भारतेंदु ने भारत के शौर्यपूर्ण तथा गौरवशाली इतिहास से अनेक चरित्र और प्रसंग लेकर अपने उद्देश्य की सिद्धि की। भारतेंदु ने संपूर्ण देश को एक मानकर भारत का स्तवन किया। जनसाधारण में अँग्रेज शासकों की नीतियों के विरुद्ध उपजे क्रोध, क्षोभ, आक्रोश और असंतोष में ही भारतेंदु की स्वाधीनता-चेतना के बीज निहित हैं, 'भारतेंदु हरिश्चंद्र की कविता में देशभक्ति, लोकहित, समाज-सुधार एवं अपनी मातृभाषा के उद्धार की भावनाओं का समावेश है।' <sup>10</sup> इन्होंने इतिहास के गौरवपूर्ण स्मारकों के नाम लेकर ही राष्ट्र के प्रति गर्व जगाने का प्रयत्न किया—

हाय पंचनद हा पानीपत।  
अजहुँ रहे तुम धरनि बिराजत।  
हाय चितौर निलज तू भारी।  
अजहुँ खरो भारतहि मँझारी।<sup>11</sup>

निज भाषा के संबंध में भारतेंदु ने काशी में हिंदीवर्धिनी सभा के जून 1877 में आयोजित कार्यक्रम में अपने विचार यों व्यक्त किए—

निज भाषा की उन्नति अहैं, सब उन्नति को मूल।  
बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को मूल।  
अँग्रेजी पढ़ि के जदपि, सब गुण होत प्रवीण।  
पै निज भाषा ज्ञान बिन, रहत हीन के हीन।<sup>12</sup>

इसके साथ ही भारतेंदु ने अपने नाटकों, प्रहसनों द्वारा अनेक विसंगतियों की अनावृत किया है। इसमें इनके नाटक 'भारत-दुर्दशा' का नाम सर्वोपरि है, जिसे संसार के प्रहसनों में से एक माना जाता है। इनके नाटक सामंती और साम्राज्यवादी दोनों व्यवस्थाओं में फैली कुव्यवस्था पर विरोध जताकर अँग्रेजी राज्य और उसकी अन्यायपूर्ण नीतियों पर करारे प्रहार करते हैं— 'भारत-दुर्दशा' और 'अंधेर नगरी' जैसे नाटकों में अँग्रेजों और चाटुकारों और समर्थकों के विरुद्ध जिस प्रकार का व्यंग्य और चुटीले संवाद भारतेंदु ने लिखे हैं, वही उनकी प्रगतिशील चेतना का प्रमाण है।' <sup>13</sup> इसी क्रम में भारतेंदु ने आम जनता के बीच जाकर

व्याख्यानों के माध्यम से भी अलख जगाने का प्रयास किया। इस प्रकार भारतेंदु ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय जनजागृति का प्रसार करने का भागीरथ प्रयास किया। हिंदी के ऐतिहासिक नाटक की एक लंबी परंपरा को समाप्त करके नाटकों को समकालीन विषयों और युगचेतना से जोड़ने का श्रेय डॉ॰ रामविलास शर्मा भारतेंदु को ही देते हैं, 'भारत दुर्दशा' का विषय पूर्णतया भारत केंद्रित है। पहले अंक में योगी का यह गान— 'रोअहु सब मिलि के आवहु भारत भाई। हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।' <sup>14</sup> भारतेंदु हरिश्चंद्र एक ऐसा महान् व्यक्तित्व था, जिसकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने जीवन और जगत के प्रायः सभी पक्षों का स्पर्श किया। इनका उद्देश्य व्यापक था, जिसमें लोक, समाज, देश तथा साहित्य की सच्ची सेवा के संकल्प निहित थे। प्रत्येक क्षेत्र में हम इनकी तेजस्विता, रसिकता, सरलता तथा तन्मयता के दर्शन करते हैं। मनुष्यत्व, सत्यप्रियता, शील, उदारता आदि अपने विशिष्ट गुणों के कारण भारतेंदु केवल हिंदीभाषा और साहित्य के ही नहीं वरन् संपूर्ण भारतीयता के सच्चे तपस्वी माने जा सकते हैं। ये सच्चे अर्थों में आधुनिककाल में राष्ट्रीय चेतना जगानेवाले अग्रदूत थे।

#### संदर्भ

1. भारतेंदुयुग और हिंदीभाषा की विकास-परंपरा, डॉ॰ रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1973, पृ० 103
2. इतिहास और आलोचक-दृष्टि, डॉ॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 42
3. भारतेंदुयुग, डॉ॰ रामविलास शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 1956 पृ० 14
4. भारतेंदु हरिश्चंद्र ग्रंथावली भाग-1, सं० ओमप्रकाश सिंह, प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, पृ० 103
5. दिशा और दृष्टि, डॉ॰ चंद्रभान रावत, शीतल प्रकाशन मंदिर, मथुरा, 1966, पृ० 456,
6. भारतेंदुयुग और हिंदीभाषा की विकास-परंपरा, डॉ॰ रामविलास शर्मा, पृ० 103
7. वही, पृ० 103
8. वही, पृ० 103
9. वही, पृ० 103
10. भारतेंदुयुगीन साहित्य में राष्ट्रीय भावना, डॉ॰ पुष्पा थरेजा, राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1978, पृ० 68
11. भारतेंदु ग्रंथावली भाग-1, सं० ओमप्रकाश, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2008, पृ० 133
12. (1) हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, संवत् 2058 विक्रमी, पृ० 263  
(2) राजस्थान पत्रिका जयपुर हिंदी दिवस विशेष, 14 सितंबर, 2010 पृ० 14
13. 'हिंदी नवजागरण के अग्रदूत भारतेंदु या शिवप्रसाद सितारे हिंद', दीनबंधु तिवारी, सृजन-संवाद (पत्रिका) सं० बृजेश, 21वीं सदी शृंखलांक-1 ई-64, साउथ सिटी, लखनऊ, पृ० 112
14. भारतेंदु ग्रंथावली भाग-1 सं० ओमप्रकाश सिंह, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2008, पृ० 113.

□ ईमेल : ashman714@gmail.com

9414607509

## तत्कालीन राजनीतिक चिंतन और डॉ० राधाकृष्णन की राजनीतिक सोच

डॉ० विष्णुचंद्र त्रिपाठी, विभागाध्यक्ष, राजनीतिशास्त्र विभाग,  
आर०एस०के०डी० (पी०जी०) कालेज, जौनपुर  
फा० वैलेरियन स्टैनी डिसूजा, शोध-छात्र, राजनीतिशास्त्र विभाग  
आर०एस०के०डी० (पी०जी०) कालेज, जौनपुर

यह सर्वविदित है कि अब अपने आपमें बंद समाजों का अस्तित्व नहीं है। हम जिस नई व्यवस्था की खोज कर रहे हैं, वह न तो राष्ट्रीय है और न ही महाद्वीपीय। यह न तो पूर्वी है और न पश्चिमी। यह सार्वभौमिक है। हमें ऐसी दृष्टि विकसित करनी चाहिए और यह समझना चाहिए कि हमारा राष्ट्र, कई राष्ट्रों में से एक है और इनमें से हर एक विश्व की संपन्नता और विविधता में अपना खास योगदान करता है। कोई जाति या राष्ट्र-भर ही मानवता नहीं है, बल्कि मानवता तो पूरी मनुष्य-जाति है।

मनुष्य में अपने संभव को बदलने की जो क्षमता है, उसमें आज समूह के उस पर आधिपत्य के कारण पहले से कहीं ज्यादा रुकावटें हैं। आधुनिक मानव भीड़ में इस हद तक खो गया है कि उसका खोना एक रोगग्रस्तता है। हम जिस रोग से पीड़ित हैं, वह रोग परिवर्तन के भय का है, स्वतंत्र चिंतन के लिए कोई समय नहीं है। हम उन विचारों को ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लेते हैं, जो समाज हमें देता है। हमारी राष्ट्रीयता, हमारी जाति, हमारा संघ, हमारी राजनीतिक प्रतिबद्धता जो कुछ निर्देशित करते हैं, उसे आलोचना के परे माना जाता है। इस प्रवृत्ति से सच्चाई को उतना ही नुकसान पहुँचता है, जितना कि हमारी बौद्धिक सत्यनिष्ठा को। स्वीकार के ऐसे तरीकों का प्रतिरोध करके ही हम दास-प्रथा, उत्पीड़न और दूसरे अमानवीय रूपों को खत्म कर सकते हैं। अपनी सजगता और दूसरे मनुष्यों की हित-चिंता को धीमा नहीं पड़ने देना चाहिए। सभी संस्थापित संस्थाओं और संघों में अविवेकी दृष्टि समान रूप से व्याप्त है। एकरूपता, विश्रुंखलता से अधिक भयानक होती है। संदेह और जिज्ञासा व्यक्ति के विकास में स्थिर विचारों की अपेक्षा अधिक सहायक होते हैं। हमें एकता को विचारों को दबाकर नहीं, विचारों के माध्यम से खोजना चाहिए। अधिकारीवर्ग के और धुआँधार प्रचार के दबाव में हमारे लिए जीवन की समस्याओं के प्रति विचारशील दृष्टिकोण विकसित करना कठिन है।

पूर्णता की प्रवृत्ति मानव-स्वभाव में निहित है। हम स्वभावतः मूल्य या अर्थ की एक उच्चतर मात्रा तक अपने को उठाना चाहते हैं। लोगों को विचारहीनता से जगाकर मानवता की एक नई चेतना तक ले जाना चाहिए।

डॉ० राधाकृष्णन् ने जब मद्रास के क्रिश्चियन कालेज में प्रवेश किया, यहाँ पर आते ही इनका घनिष्ठतम संपर्क मिशनरियों के साथ हो गया और यहीं पर उन्होंने 'न्यू टेस्टामेंट' (बाइबिल का एक भाग) का गहरा अध्ययन भी किया, किंतु स्मरणीय है कि ईसाई पादरी के मुख से हिंदूधर्म की आलोचना-प्रत्यालोचना सुनकर ये बहुत क्षुब्ध रहा करते थे और जैसे-जैसे हिंदूधर्म की आलोचना की जाती थी, वैसे-वैसे इनके हृदय में हिंदूधर्म के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति की भावना बलवती होती जाती थी। ईश्वर की अनुकंपा से उसी समय इन्हें हिंदू योगी स्वामी विवेकानंद के वेदांत-दर्शन से भी परिचय हो गया, जिसके परिणामस्वरूप हिंदूधर्म के प्रति इनकी निष्ठा और अधिक बढ़ती गई। इस संबंध में इन्होंने लिखा है-

'स्वामी विवेकानंद के अद्भुत साहस और उनकी वाग्मिता ने हिंदूधर्म के प्रति मेरे उस अभियान को जाग्रत किया, जिस पर ईसाई मिशनरियों के द्वारा अब तक बराबर आघात किया जाता रहा था।'<sup>1</sup>

तत्कालीन राजनीतिक चिंतन में विवेकानंद का चिंतन और दर्शन उल्लेखनीय है। एक राजनीतिक चिंतक के रूप में स्वामी विवेकानंद का व्यक्तित्व प्रभावशाली है, जिसका प्रभाव डॉ० राधाकृष्णन् के चिंतन पर भी पड़ा। स्वामी विवेकानंद के राजनीतिक चिंतन का विवरण कुछ इस प्रकार है-

संन्यासी स्वामी विवेकानंद में राजनीतिक दार्शनिकता अथवा राजनीतिज्ञता जैसी कोई बात नहीं थी। राजनीति में उनका कोई विश्वास नहीं था और न ही उन्होंने उस प्रकार के किसी क्रियाकलाप में भाग ही लिया। विभिन्न स्थलों पर उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि- 'मैं न राजनीतिज्ञ हूँ, न राजनीतिक आंदोलन मचानेवालों में से हूँ। मैं केवल आत्मसत्त्व की चिंता करता हूँ, जब वह ठीक होगा, तो सब काम अपने-आप ठीक हो जाएँगे।'<sup>2</sup>

जब कतिपय राजनीतिक एवं स्वार्थी तत्त्वों ने उनके कार्यकलापों को राजनीतिक जामा पहनाना चाहा, तो उन्होंने इसका विरोध किया और ऐसा करनेवालों को चेतावनी भी दी, पर इस सबके बावजूद, हम इस तथ्य से इंकार नहीं कर सकते कि उनके भाषण और विचारों में राजनीति का जो दर्शन मिलता है, वह उन्हें बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों और राजनीतिक चिंतकों से भी कहीं आगे ले जाता है। यत्र-तत्र उन्होंने प्रसंगवश राजनीतिक दर्शन से संबंधित जो भी उल्लेख किए अथवा जो भी राजनीतिक विचार प्रस्तुत किए, उनसे यही ध्वनि निकलती है कि वे महात्मा गांधी की भाँति ही राजनीति का आध्यात्मिकरण करना चाहते थे। देशवासियों को शक्ति, निभर्यता और कर्म की जो प्रेरणा उन्होंने दी, वह प्रच्छन्न रूप से भारतीय राष्ट्रवाद को जगाने और आगे बढ़ाने में बड़ी सहायक हुई। व्यक्ति के गौरव, चिंतन की स्वतंत्रता, नारी के जागरण, दलितों के उद्धार, विश्वबंधुत्व आदि पर उन्होंने जो विचार प्रकट किए हैं, वे प्रस्थापित करते हैं कि विवेकानंद एक राजनीतिक विचारक के रूप में लोककल्याणकारी राजनीति के समर्थक थे और गांधी के समान ही राजनीति को धर्म तथा सार्वदेशिकता के धरातल पर खड़ा करना चाहते थे।

विवेकानंद धर्म को राष्ट्रीय जीवन रूपी संगीत का स्थाई स्वर मानते थे। राष्ट्रीयता के आध्यात्मिक पक्ष में उनका अडिग विश्वास था। भारतीय राष्ट्रवाद के एक आध्यात्मिक अथवा धार्मिक ब नींव का निर्माण करने के लिए विवेकानंद ने किसी भी अन्य

समाजसुधारक अथवा राजनीतिक चिंतक की अपेक्षा अधिक कार्य किया। आगे चलकर उसी सिद्धांत का विपिनचंद्र पाल तथा अरविंद ने समर्थन और पक्ष-पोषण किया। विवेकानंद ने धर्म और संस्कृति की दुहाई देकर भारतीयों में अपने गौरवमय अतीत के प्रति एक प्यार जगा दिया, उनमें स्वाभिमान की अग्नि प्रज्वलित कर दी।

‘विश्व के सम्मुख भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता की श्रेष्ठता और सर्वोपरिता की साहसी घोषणा करने से उन हिंदुओं में नवीन प्रेरणा और शक्ति का संचार हुआ, जो योरोपीय संस्कृति एवं सभ्यता के सम्मुख अपने को हेय समझते थे। इससे भारतीयों के मन में आत्मगौरव का एक सशक्त भाव उदित हुआ, जिससे राष्ट्रीय पुनरुत्थान के मार्ग के प्रशस्त होने में निर्दिष्ट सहायता प्राप्त हुई।’<sup>3</sup>

विवेकानंद के हृदय में देश के लिए असीम प्रेम था, किंतु तत्कालीन परिस्थितियों में वे खुलकर न तो राजनीतिक मुक्ति का समर्थन करने और न राष्ट्रवाद के सिद्धांत को अभिव्यक्त करने के पक्ष में थे। ‘उन दिनों ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्ति भारत में दृढ़ता से जमी हुई थी। यदि विवेकानंद खुलकर राजनीतिक स्वायत्तता का समर्थन करते तो उन्हें निश्चय ही कारागार में डाल दिया गया होता, इसका परिणाम यह होता कि उनकी शक्ति व्यर्थ में नष्ट होती और देशवासियों के धार्मिक तथा नैतिक पुनरुत्थान का जो काम उन्हें सबसे अधिक प्रिय थे, उसमें विघ्न पड़ता। किंतु यद्यपि विवेकानंद ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के मुकाबले में भारतीय राष्ट्रवाद के विरोधी सिद्धांत का समर्थन नहीं किया, तो भी देश की दरिद्र और पद-दलित जनता की मुक्ति के कार्य में उनकी गहरी रुचि और लगन थी।’<sup>4</sup>

विवेकानंद ने, प्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक आंदोलन अथवा राजनीतिक सिद्धांत प्रतिपादन में लिप्त न होते हुए भी, अपने विभिन्न प्रयत्नों से संपूर्ण देश में राष्ट्रीयता की वह नींव रख दी, जिस पर देश धैर्यपूर्वक आगे बढ़ा और वह पराधीनता के बंधन से मुक्त हो सका। विवेकानंद ने भी राजनीति को सत्य और अहिंसा पर आधारित किया, जो कि सच्चे धर्म के मूल तत्त्व हैं। देश में एक नैतिक चेतना का संचार करके वास्तविक अर्थों में उन्होंने सोते हुए भारत को जगा दिया। उनके इस संदेश को विपिनचंद्र पाल, तिलक और अरविंद जैसे महापुरुषों ने ग्रहण करके उससे अभिनव राष्ट्रवाद के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

राजनीतिक चिंतन के क्षेत्र में विवेकानंद का दूसरा महत्वपूर्ण अनुदान उनकी स्वतंत्रताविषयक अवधारणा है। उनकी वाणी और कर्मों में उनकी स्वातंत्र्यप्रियता सदैव गूँजती रही। उन्होंने कहा— ‘जीवन, सुख और समृद्धि की एकमात्र शर्त चिंतन और कार्य में स्वतंत्रता है, जिस क्षेत्र में यह नहीं है, उस क्षेत्र में मनुष्य-जाति और राष्ट्र का पतन होगा।’<sup>5</sup>

नेहरू जी ने स्वतंत्रता के प्रति उनके गहन प्रेम को व्यक्त करते हुए लिखा है— ‘वे राजनीति से अलग रहे, उन्हें अपने वक्त के राजनीतिज्ञ नापसंद थे, लेकिन उन्होंने आजादी, बराबरी और जनता को उठाने की ज़रूरत पर बार-बार बल दिया। सिर्फ़ सोच-विचार और काम-काज की आजादी ही ज़िंदगी, तरक्की और खुशहाली की शर्त है।’<sup>6</sup>

स्वतंत्रता को विवेकानंद ने मनुष्य का प्राकृतिक आधार माना और कामना की कि समाज के सभी सदस्यों को यह अवसर समान रूप से प्राप्त होना चाहिए। संपत्ति, ज्ञान और शिक्षण के अर्जन में किसी भी प्रकार का बंधन नहीं होना चाहिए। विवेकानंद का राजनीतिक



चिंतन के क्षेत्र में तीसरा महत्वपूर्ण योगदान उनका शक्ति एवं निर्भीकता का सिद्धांत था, जिसे— 'राजनीतिशास्त्र की पदावली में हम प्रतिरोध का सिद्धांत (Theory of Resistance) कह सकते हैं।' <sup>7</sup>

उपर्युक्त सिद्धांत द्वारा विवेकानंद ने अप्रत्यक्ष रूप से यह संदेश दिया कि भारतवासी शक्ति, निर्भीकता और आत्मबल के आधार पर ही विदेशी सत्ता से लोहा ले सकते हैं और अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने कहा था— 'मैं कायरता को घृणा की दृष्टि से देखता हूँ। कायर तथा राजनीतिक मूर्खता के साथ मैं अपना संबंध नहीं रखना चाहता।' <sup>8</sup>

विवेकानंद के तेजोमय जीवन और चिंतन के इस संक्षिप्त मंथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने देश में जनजागरण का मंत्र फूँका और देशवासियों को शक्ति तथा निर्भीकता के मार्ग पर आगे बढ़ाया। भारतीय राष्ट्रवाद के सिद्धांत की नींव उन्होंने मजबूती से रख दी तथा दंडित वर्ग को ऊपर उठाने का सराहनीय प्रयास किया।

राष्ट्रीयता के उदय में बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, विपिनचंद्र पाल और अरविंद घोष का नेतृत्व एक अत्यंत महत्वपूर्ण कारण था। ये नेता अटूट देशभक्त और ब्रिटिश शासन के कट्टर शत्रु थे। उन्होंने धर्म और राष्ट्रीयता में तादात्म्य स्थापित किया। इनमें से अधिकांश गंभीर रूप से धार्मिक थे और मुख्यतः प्राचीन हिंदूधर्म से प्रेरणा लेते थे। वे पश्चिमी शिक्षा और संस्कृति को भारतीयों को मानसिक रूप से गुलाम बनाने का दोषी ठहराते थे तथा प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर भारत का पुनर्निर्माण करना चाहते थे। उनके मत में वेदों और गीता के सिद्धांतों से ही व्यक्ति तथा राष्ट्र की मुक्ति हो सकती थी। वे विदेशी नौकरशाही को घृणा की दृष्टि से देखते थे तथा उनकी दासता को सहन करना एक सच्चे देशभक्त के लिए शर्मनाक समझते थे। <sup>9</sup> इन नेताओं ने भिक्षावृत्ति का मार्ग त्यागकर आंदोलन का मार्ग अपनाने पर जोर दिया और महाराष्ट्र, पंजाब, बंगाल तथा अन्य क्षेत्रों में जागृति की अपूर्व लहर उत्पन्न कर दी।<sup>10</sup>

तिलक देशभक्तों के शिरोमणि और महाराष्ट्र में नवचेतना के संस्थापक थे। वे एक उच्चकोटि के विद्वान थे तथा हिंदूधर्म में उनकी गहरी आस्था थी। वे पश्चिमी संस्कृति के आलोचक तथा वेदों और गीता के बड़े प्रशंसक थे। महाराष्ट्र में कई जनसंपर्क-कार्यों एवं बंगाल-विभाजन से उत्पन्न रोष के कारण तिलक की विचारधारा को पूर्ण समर्थन मिला और वे उग्रवाद के एक प्रमुख नेता बन गए। तिलक ने उग्रवाद के समर्थन में वृद्धि करने के लिए अपना पूरा समय तथा शक्ति लगा दी। सन् 1907 ई० में सूरत में काँग्रेस में अध्यक्ष पद को लेकर उदारवादियों तथा उग्रवादियों में तनाव उत्पन्न हो गया और 27 दिसंबर, 1907 ई० को काँग्रेस दो भागों में विभाजित हो गई। इस विभाजन के लिए तिलक को उत्तरदायी ठहराया गया। <sup>11</sup> तिलक का लक्ष्य भी उदारवादियों की तरह ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत 'स्वराज्य' प्राप्त करना था, लेकिन इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साधनों-संबंधी ही अंतर था। उदारवादी साधनों में परिवर्तन के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थे। अतः 1908 में संविधान में संशोधन कर काँग्रेस को पुनः उसी स्थिति से प्रारंभ किया गया, जो 1885 ई० में थी। इन उदारवादियों ने तिलक को देशद्रोही कहा, उधर ब्रिटिश सरकार ने 'केसरी' में प्रकाशित कुछ लेखों को मिसेज तथा मिस कैनेडी की हत्या के लिए उत्तरदायी ठहराकर उन्हें राजद्रोह के लिए 6 वर्ष की सजा दी।

उन्होंने अपने साप्ताहिक पत्रों 'केशरी' तथा 'मराठा' द्वारा जनता में राष्ट्रवाद की भावना का प्रसार किया। उन्होंने भारतीय संस्कृति के गौरव को नष्ट करने के लिए ब्रिटिश शासन को उत्तरदायी ठहराया। देश को स्वतंत्र करना अपना धार्मिक कर्तव्य माना। उन्होंने घोषणा की कि, 'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा।'<sup>12</sup>

बालगंगाधर तिलक काँग्रेस के उग्रवादी नेता, कर्मठ और साहसी सेनानी थे, जिन्होंने अपनी अनवरत साधना और बलिदान के द्वारा भारतीय स्वाधीनता के भव्य भवन की नींव डालने में महती भूमिका निभाई है। सन् 1989 में काँग्रेस में अपने प्रवेश के बाद से ही एक राजनीतिक नेता के रूप में काँग्रेस के कार्य-कलापों में तिलक जी ने उल्लेखनीय भूमिका अदा की है। उदारवादियों की नीतियों से संतुष्ट तिलक ने अपनी शक्ति महाराष्ट्र के आंदोलन को सुसंगठित करने में लगाई और भारतीय नवयुवकों में यह भाव भरने की चेष्टा की कि देश अपनी स्वतंत्रता किसी की दया के बल पर नहीं, बल्कि अपनी सामर्थ्य के बल पर अर्जित करे। 'अपने 'केशरी' तथा 'मराठा' नामक दो पत्र तथा शिवाजी और गणपति उत्सवों द्वारा उन्होंने जनता के देशभक्ति की भावना फूँक दी तथा उसमें अपने राजनीतिक अधिकारी के लिए संघर्ष करने की प्रवृत्ति उत्पन्न की।'<sup>13</sup>

सन् 1905 में बंगभंग के समय तिलक का राजनीतिक कार्यक्षेत्र महाराष्ट्र से बढ़कर संपूर्ण भारत हो गया। 'केशरी' के माध्यम से उन्होंने स्वदेशी बहिष्कार और स्वराज्य का संदेश जन-जन तक पहुँचाया। लाल-बाल-पाल ने देश में वस्तुतः एक संगठित उग्रवादी और राष्ट्रवादी दल को राष्ट्रीय रंगमंच पर ला खड़ा किया। काँग्रेस के उदारवादी नेता तिलक के उग्र और यथार्थवादी विचारों से सहमत नहीं हो सके।

तिलक के राजनीति में पुनः प्रवेश से अधिकारीगण बड़े चिंतित थे और वे उनकी गतिविधियों का सूक्ष्म अध्ययन कर रहे थे। गुप्तचर विभाग के एक सदस्य ने लिखा था: 'तिलक संभवतः पहले नरम नीतियों पर चलने का दिखावा करेंगे। परंतु जैसे ही वह अपनी स्थिति को मजबूत अनुभव करेंगे, वे पुनः काँग्रेस के अंदर जितना भी हठी, अधीर तथा सरकार-विरोधीवर्ग है, उसका नेतृत्व ग्रहण करने के लिए आगे आ जाएँगे। श्रीमती बेसेन्ट की प्रेरणा से सन् 1915 ई० की काँग्रेस ने एक प्रस्ताव पास करके अपने द्वार गरम दल वालों के लिए खोल दिए थे। इसके फलस्वरूप सरकार को सही तौर से भय था कि यदि काँग्रेस पर पुनः गरम दल वालों का कब्जा हो गया तो वे शीघ्र ही एक आंदोलन छेड़ देंगे और 'गरम दल वालों द्वारा अतीत में चलाए गए आंदोलन की भाँति उस आंदोलन में भी अनिवार्य रूप से नौजवान तथा उनके समर्थक अपराधपूर्ण उग्र कृत्यों पर उतर आएँगे।' सरकार को सूचित किया गया कि 'फिलहाल गरम दल वालों की गैरकानूनी हथियारों का उपयोग करने की कोई योजना प्रतीत नहीं होती, परंतु एक बार जब तिलक तथा उनके गरमदलीय मित्रों का प्रभाव काँग्रेस पर स्थापित हो जाएगा, तब इस बात की गारंटी नहीं होगी कि ऐसे हथियारों का प्रयोग नहीं किया जाएगा। होमरूल आंदोलन अभी शुरू नहीं हुआ था, किंतु सी०आई०डी० ने तिलक तथा उनके प्रमुख शिष्यों का पीछा करना तथा उनके बारे में पूछताछ करना आरंभ कर दिया था।

सन् 1916 के मध्य में तिलक ने एक लंबा दौरा शुरू किया, ताकि वह जनता को होमरूल के बारे में बता सकें और लोगों को होमरूल लीग का सदस्य बनने के लिए प्रेरित

कर सकें। वह केवल दो ही स्थानों का दौरा कर पाए थे कि बंबई सरकार व्यग्र हो उठी और उसने इस प्रश्न पर क़ानूनी सलाह ली कि यदि उनके विरुद्ध मुक़दमा चलाया गया तो वह सफल हो सकेगा या नहीं। लीगल रिमेम्ब्रेन्सर ने लिखा— 'यह स्पष्ट है कि यदि भाषणों को समग्र रूप से पढ़ा जाय तो भाषणकर्ता का वास्तविक उद्देश्य सरकार को बदनाम करना तथा उसका मज़ाक उड़ाना और अशांति तथा असंतोष की भावनाएँ पैदा करना है। अतएव वे चाहे जिस प्रकार के होमरूल की वकालत करें और उसे प्राप्त करने के लिए चाहे जिस तरीके को अपनाने का प्रस्ताव करें, उनके व्याख्यान राजद्रोहात्मक हैं। उन पर मुक़दमा चलाया गया और मैजिस्ट्रेट ने अपने फैसले में लिखा : 'इन भाषणों से मेरी यह धारणा बँधी है कि तिलक अपने श्रोताओं में सरकार के प्रति राजद्रोहात्मक भावनाएँ उत्पन्न करना चाहते हैं, ताकि लोग उनकी होमरूल लीग में सम्मिलित हों और देश का शासन बदलने के उनके आंदोलन में सहयोग दें। मैजिस्ट्रेट ने तिलक को आदेश दिया कि 20,000 रुपये की जमानत दाखिल करें तथा एक साल तक अच्छे आचरण के लिए 10-10 हजार रुपये के दो मुचलके दें।

सन् 1897 में उनकी पहली सज़ा तथा सन् 1908 में उनकी दूसरी सज़ा के बाद भारत में काफ़ी परिवर्तन आ चुका था, जिनसे अँग्रेज़ अवगत थे और न्यायपालिका के उच्च अधिकारियों में एक प्रवृत्ति दिखाई पड़ने लगी थी कि वे राजद्रोह के क़ानून की उस रूप में व्याख्या न करें, जिस रूप में कार्यपालिका करती थी। बंबई हाईकोर्ट ने इस मामले में फैसला दिया कि तिलक पर कोई अभियोग साबित नहीं होता और उसने मैजिस्ट्रेट के आदेश को रद्द कर दिया। अब तिलक को सरकार की आलोचना करने के लिए एक नया हथियार मिल गया और वह अपने भाषणों में प्रायः हाईकोर्ट के फैसले की चर्चा करने लगे और लोगों को बताने लगे कि होमरूल के लिए आंदोलन करना पूरी तरह से वैध है।

### संदर्भ

1. स्वतंत्र भारत के द्वितीय राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन, परमेश्वरप्रसाद सिंह, पृ० 1
2. स्वामी विवेकानंद पत्रावली, प्रथम भाग, पृ० 183
3. बी०एन० लूनिया, भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का विकास, पृ० 527
4. V.P. Varma : The life of Swami Vivekanand, Vol. II. P. 753
5. मनमोहन गांगुली, स्वामी विवेकानंद : एक अध्ययन, पृ० 60 (ताराचंद के भारतीय स्वतंत्रता-आंदोलन का इतिहास के पृ० 361 से उद्धृत।)
6. जवाहरलाल नेहरू, हिंदुस्तान की कहानी, पृ० 760
7. विश्वनाथप्रसाद शर्मा, पृ० 103
8. स्वामी विवेकानंद पत्रावली, प्रथम भाग, पृ० 351
9. जेम्स, मोरिस, दि गवर्नमेन्ट एंड पॉलिटिक्स ऑफ़ इंडिया, पृ० 29
10. पुखराज जैन, राष्ट्रीय आंदोलन और भारतीय शासन, पृ० 31
11. शिवकुमार गुप्त, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ० 306
12. वी० चिरोल, इंडियन अनरेस्ट, पृ० 44
13. विश्वनाथप्रसाद शर्मा, पृ० 178

## नई कविता के प्रतिमान

बीना सिंह, शोध-छात्रा  
डॉ० कैलाशनाथ सिंह, शोध-निर्देशक  
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग  
गांधी स्मारक स्नातकोत्तर महाविद्यालय,  
समोधपुर, जौनपुर (उ०प्र०)

सन् 1953 से सन् 1960 तक की कविता नई कविता है। नई कविता आधुनिकता की वर्जनाओं और कुंठाओं की अपेक्षा मुक्त यथार्थ का समर्थन करती है। मुक्त यथार्थ से साक्षात्कार के लिए वह विवेक को मुख्य आधार बनाती है। इसके अलावा नई कविता क्षण के दायित्व और नितांत समसामयिकता के दायित्व को स्वीकार करती है। जीवन के प्रवाह में संदर्भयुक्त अभिव्यक्ति नई कविता का भावबोध है। नई कविता ने काव्यमूल्यों और जीवन मूल्यों में जीवन के प्रति निष्ठा, अनुभूति की सच्चाई, क्षण के महत्त्व और लोकसंपृक्ति पर जोर दिया है। उसने स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश को सही अर्थों में भोगा, जिया और व्यक्त करने का प्रयास किया है। इनके माध्यम से उसे जो अनुभूतियाँ प्राप्त हुईं, उन्हें बौद्धिक दृष्टि से परखा और रूपायित किया है।

नई कविता में अज्ञेय, मुक्तिबोध, भवानीप्रसाद मिश्र, शमशेर, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, बालकृष्ण राव, विजयदेवनारायण शाही, कुँवरनारायण, लक्ष्मीकांत वर्मा, जगदीश गुप्त, विपिन अग्रवाल, अनंतकुमार 'पाषाण', धर्मवीर भारती, अजितकुमार, कीर्ति चौधरी 'मलय', श्रीकांत वर्मा आदि की गणना मूर्धन्य कवियों में की जा सकती है। नई कविता के काव्यशास्त्रा में लक्ष्मीकांत वर्मा ने 'लघुमानववाद' और जगदीश गुप्त ने 'अर्थ की लय' को जोड़ दिया है। वर्मा का 'लघुमानववाद' लघुता पर आधारित है। जगदीश गुप्त ने बताया कि नई कविता में संगीतात्मकता के स्थान पर 'अर्थ की लय' रहती है। लय निश्चित रूप से गति से उत्पन्न होती है। यदि गति में निश्चित स्थान पर विराम लगता है तभी लय पैदा होती है। जगदीश गुप्त ने इसके लिए 'अर्थ की लय' से हीन पद्य तथा 'अर्थ की लय' से युक्त पद्य दोनों के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। पीड़ा, क्रोध, आधुनिक भावबोध, क्षणानुभूतियों की अभिव्यक्ति, अनुभूति की प्रामाणिकता, यथार्थ से संपृक्ति, व्यंग्य, आत्मान्वेषण और शिल्पाभिव्यंजना आदि नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं।

आधुनिक समीक्षा का प्रारंभ किस समय से किस रचना से हुआ, यह निश्चित नहीं है, लेकिन टी०एस० इलियट को 'द सेक्रेड वुड', मिडलटन मरे की 'द प्राब्लम आफ़ स्टाइल' और आई०ए० रिचर्ड्स की प्रिंसिपल्स आफ़ लिटरेरी क्रिटिसिष्म' में इसका रूप स्पष्ट होने लगा

था। नई समीक्षा के प्रादुर्भाव का युग वैज्ञानिक विकास और औद्योगीकरण की तीव्र प्रगति का युग था। आधुनिक सभ्यता के इस युग में काव्य की उपयोगिता प्रमाणित करना कठिन हो गया था। विज्ञान द्वारा प्रस्तुत सत्य एवं ग्राह्य सत्य की तुलना में कविता द्वारा प्रस्तुत सैद्धांतिक एवं अप्रमाणित सत्य के लिए यह कहना कि कविता हमें सृष्टि के रहस्यों को समझने की अंतर्दृष्टि प्रदान करती है, उपहासास्पद ही हो सकता है; परंतु साथ ही वैज्ञानिक प्रगति ने मानवता के सामने एक सांस्कृतिक संकट उत्पन्न कर दिया था।

आधुनिक समीक्षकों ने अपने समय में इस महत्वपूर्ण दायित्व को वहन करने का प्रयास किया। एक ओर तो स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियों का विरोध करते हुए इन समीक्षकों ने उस सबका तिरस्कार किया, जो अव्यवस्थित, पलायनवादी, दुरूह, क्षीण और इन सबके साथ भावुक भी था। आधुनिक समीक्षा में कृतियों को समझने के लिए साहित्य की पृष्ठभूमि और ऐतिहासिक, सामाजिक वातावरण को अतिरिक्त बल देने का भी विरोध किया गया और कृतियों से हटकर कृतिकार पर ध्यान देने का भी विरोध हुआ।

आधुनिक समीक्षा को कोरा रूपवाद या कलावाद समझने के भ्रम से बचाने के लिए, अधिकांश समीक्षकों ने एक बार सामान्यतः यह स्वीकार कर लेने के बाद कि साहित्यिक कृति एक स्वतंत्रा स्वायत्त रचना है, इस स्वायत्तता को कलावादियों के द्वारा प्रतिपादित स्वायत्तता से भिन्न प्रतिपादित करने का प्रयास किया। इन समीक्षकों ने साहित्य के संदर्भ में मूल्य की जो व्याख्याएँ की हैं, यद्यपि वे एक-दूसरे की पर्याय नहीं हैं, किंतु मानव और सभ्यता के संबंध में उन सभी के मन में गहरी चिंता है। जब वे अपनी व्याख्याओं में रूपवादी दिखायी पड़ते हैं, तब भी उनका लक्ष्य, कथा और रूप के बीच संबंध की पहचान करना होता है। विशेषकर इस दृष्टि से कि उसमें सत्य को किस रूप में स्वीकार किया गया है।

समीक्षकों के मूल्यों में नया मोड़ नई कविता के आंदोलन के साथ आरंभ होता है। विकास की दृष्टि से नई कविता ने मुख्यतः दो स्थितियों को पार किया। पहले उसे प्रयोगवादी नाम से पुकारा गया और अब उसी को ही नई कविता का नाम दिया गया। प्रयोगवादी काल में मूल्यों की बात करने पर कहा गया कि चिर-अन्वेषण ही हमारी नियति है और अब नई कविता की मूल्यगत सार्थकता नई मर्यादा और नए मूल्य हैं।

आज मानव जीवन के उस नैतिक आधार की खोज में है, जो सामूहिकता की सापेक्षता में व्यक्तिगत मूल्यों और उपेक्षित मानव-विशिष्टता की क्रियाशीलता को एक नई निष्ठा और शक्ति प्रदान कर सके। वर्तमान के परिपेक्ष्य में यह आवश्यक भी हो गया है कि वर्तमान विचारधारा आज की विसंगतियों में खंडित और टूट-टूटकर बिखरने की सीमा तक पहुँच चुके मूल मानव को संबल प्रदान कर सके।

वर्तमान में जिन जीवनमूल्यों के लिए मानव-चेतना अधिक सचेष्टता के साथ प्रयासरत है, वह है मानव-विशिष्टता जो इतिहास की इतनी लंबी यात्रा के बाद भी अपने बल और स्वर के साथ अपने अस्तित्व को बचाए रखने का साहस कर रही है। वर्तमान के इस साहस का मूल्य इसलिए भी है कि यह यथार्थ की स्वीकृति से उपजा हुआ सत्य है, जिससे इंकार नहीं किया जा सकता। यह आत्मविश्वास ही इस बात की प्रेरणा देता है कि हम प्रत्येक स्थापित सत्य के प्रति भी विवेक और देशकाल की सापेक्षता की दृष्टि विकसित करके उसे

पुनर्स्थापित करने को प्रयासरत रहें। मानव धर्म से लेकर परंपरा और रूढ़ि तक को आँख मूँदकर मान लेने के बाद अपने अनुभव के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि इन सबसे अधिक विश्वसनीय उसका तर्क है, उसका स्वविवेक और विश्लेषण शक्ति है, क्योंकि उसके द्वारा प्राप्त उपलब्धि में क्रियाशील चेतना, सतत सहयोग और सचेष्ट उन्मुक्तता का आधार मिलता है, जिसके बिना न तो दृष्टि मिल पाती है और न ही आत्म संतुष्टि। कल्पना को समसामयिकता यथार्थ से अधिक महत्त्व नहीं दे पाने की अपनी असमर्थता का अनुभव करते हैं क्योंकि आज हम जीवन और उसके परिवेश से पलायन करना अथवा प्रति अनाशक्त होना कायरता मानते हैं। विवेकपूर्ण जीवन-दर्शन सदैव मानवीय उत्तरदायित्व से परिचालित होकर उसकी सतत् क्रियाशीलता का कारक होता है और जब हम विवेक के साथ-साथ क्रियाशील मानवीय दायित्व की बात करते हैं तो क्रियाशीलता की प्रकृति स्वीकार करने के साथ-साथ समसामयिकता को स्वतः जीवन के अस्तित्व के साथ संबद्ध कर देते हैं। वर्तमान में जीने में ही विवेक का महत्त्व है। भविष्यवादी के समक्ष न तो विवेक महत्त्वपूर्ण है, न समसामयिकता। आदर्शवादी तो विवेक से कोसों दूर भागकर अपनी समस्त चेतना रूढ़ि को समर्पित कर देता है। नियतिवादी भी न तो विवेक के महत्त्व को समझ सकता है और न ही समसामयिक के उस आयाम को पकड़ सकता है, जिसमें ऐतिहासिक दायित्व और देशकाल का आग्रह हमें यथार्थ के साक्षात्कार का आत्मबल और संयम दोनों ही प्रदान करता है।

वर्तमान युग के संदर्भ में देश और परिस्थिति द्वारा निर्धारित काल का विभाजित अति अल्प अंश 'क्षण' भी मानव के लिए अति महत्त्वपूर्ण तत्त्व बनकर उभरा है। जीवन में इन क्षणों का अपना महत्त्व है। समय के विस्तार में न तो ये तत्त्व खो सकते हैं और न ही इनका विघटन होना वर्तमान जीवन में संभव है। जब मानव जीवन के इन क्षणों के प्रति अपना उत्तरदायित्व निभाने में असमर्थ रहता है, वह यथार्थ की गतिशीलता के प्रति भी अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं कर सकता, क्योंकि यथार्थ की गतिशीलता इस बात की माँग करती है कि मानव-जीवन की संवेदना उसकी सापेक्षता में ही विकसित हो और यह विकास अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ इस बात को स्थापित करने में अपना सहयोग दे कि मूल्यों की दृष्टि से केवल उसी का महत्त्व नहीं है, जो व्यापकता के समर्थन में केवल विस्तार लाए वरन् उसका भी महत्त्व है, जो विस्तृत न होते हुए भी गहराइयों के आयाम से उभरा हो।

वर्तमान का भाव-बोध किसी भी दर्शन-चिंतन के आधार पर यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है कि कोई भी व्यवस्था बिना 'लघुता' के अस्तित्व को स्वीकार किए समझी जा सकती है अथवा कोई भी आकार बिना विविधता का समर्थन किए अंकित किया जा सकता है, अथवा कोई भी संस्कार विवेक से अधिक महत्त्वपूर्ण हो सकता है अथवा कोई भी महानता मानव-मुक्ति और मानव-नियति के लिए अनिवार्य है। मुक्ति का रूप विविधता में प्रस्फुटित होता है, उसकी अभिव्यक्ति माला के सूत्र में नहीं, स्वतंत्र उन्मुक्त जीवन में होती है। 'लघुता' की सामर्थ्य के साथ जिस मुक्ति की स्थापना का आज के समसामयिक दायित्व से संबंध है, उसका प्रथम स्वर ही विविधता को स्वीकार करके चलता है। मुक्ति की कोई कल्पना बिना उस वैविध्य के संभव नहीं है।

## समाजवादी चेतना की औपन्यासिक अभिव्यक्ति :

बलचनमा

डॉ० मजीद शेख

मनुष्य जगत् में सुख-दुख की अनुभूतियों के साथ पैदा होता है। उसका प्रत्येक कार्य प्राप्त या निवारण में से किसी एक भावना से प्रेरित होकर किया जाता है। प्रत्येक मनुष्य सुख प्राप्त करना चाहता है। इच्छानुकूल वातावरण का मिलना भी सुख का कारण बनता है तथा इच्छा के प्रतिकूल वातावरण में दुख या पीड़ा होती है। इच्छा और प्रवृत्ति संस्कारगत होती है अपितु संस्कार बनाने या सुधारने का कार्य साहित्य के माध्यम से होता है। वर्तमान पीढ़ी साहित्य में सुरक्षित अतीत के अनुभवों से लाभ उठाकर अपने वर्तमान जीवन को सुखमय और शांतिपूर्ण बनाने का प्रयास करती है।

आधुनिक युग चिंतन की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन युग में चिंतकों के चिंतन का प्रमुख आधार मुख्य रूप से आध्यात्मिक रहा है। आधुनिककाल में युद्धों की विभीषिकाएँ, जनआंदोलनों के बाहुल्य, आर्थिक विषमता, निर्धनता व मध्यवर्ग की संकटकालीन स्थिति, धार्मिक, सामाजिक व नैतिक रूढ़िवादिता की बेड़ियों में ग्रस्त मानव-जीवन ने विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों एवं राजनीतिज्ञों को जीवनदर्शनपरक चिंतन के लिए विवश किया। जीवन के आध्यात्मिक विषयों के साथ ही साथ भौतिक भी विराट रूप में विद्वानों के चिंतन का विषय बना।

हिंदी-साहित्य में हम देखते हैं कि काव्य के क्षेत्र में साम्यवाद से अनुप्राणित होकर जिस प्रकार प्रगतिवादी काव्यधारा विकसित हुई, ठीक उसी प्रकार उपन्यास के क्षेत्र में भी प्रगतिवादी उपन्यास लिखे गए। इस धारा के उपन्यास-लेखक साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित और प्रेरित रहे हैं। ये लेखक साहित्य की उपयोगिता को सर्वोपरि स्थान देते हैं। साहित्य के माध्यम से सर्वसामान्य पाठकों के मन में प्रस्थापित व्यवस्था के प्रति वे चिढ़ का निर्माण करना चाहते हैं। इनकी कथावस्तु के केंद्र में, प्रमुख रूप से, मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग ही रहता है, और इस धारा के अंतर्गत लेखन करनेवालों में नागार्जुन का स्थान अग्रिम है।

हिंदी के आधुनिक 'कबीर', मैथिली में 'यात्री', लेखकों, मित्रों तथा राजनीतिक कार्यकर्ताओं में 'नागाबाबा' और संस्कृत के 'चाणक्य' आदि नामों से 'नागार्जुन' प्रसिद्ध हैं। किंतु इनका वास्तविक नाम वैद्यनाथ मिश्र था। सन् 1937 ई० में बौद्धधर्म स्वीकार करने के बाद अपना नाम 'नागार्जुन' रखा, और इसी नाम से साहित्यसेवा में रत रहे।

नागार्जुन का जन्म निम्न मध्यवर्गीय प्रसिद्ध मैथिल ब्राह्मणों के संस्कृत पंडित घराने में अपने ननिहाल के ग्राम सतलखा, पोस्ट मधुबनी, जिला दरभंगा में जून 1911 ई० में ज्येष्ठ

मास की पूर्णिमा को हुआ था। इनका पैतृक गाँव दरभंगा शहर से दस-पंद्रह मील पूरब में 'तरौनी' है। इनके जन्म से पूर्व चार भाई-बहनों का शैशवकाल में ही निधन हुआ था, इसलिए इनके पिता ने वैद्यनाथधाम में एक माह रहकर अनुष्ठान किया था। फलस्वरूप नागार्जुन का जन्म हुआ, ऐसा माना गया, और इस नवशिशु को दीर्घायु देखने के उद्देश्य से वैद्यनाथधाम पर ही माँ-बाप ने बच्चे का नाम वैद्यनाथ मिश्र रखा था।

नागार्जुन के पिता का नाम गोकुल मिश्र तथा माता का नाम उमादेवी था। उनके पिता घुमक्कड़ स्वभाव के लापरवाह, रूढ़िवादी और फक्कड़ व्यक्ति थे। उनकी माता सरलहृदया, ईमानदार, परिश्रमी एवं दृढ़चरित्र महिला थीं। जब नागार्जुन चार वर्ष के थे, तभी उनकी माता का निधन हुआ था। माँ के प्रति पिता के कठोर व्यवहार से नागार्जुन के हृदय पर बड़ा आघात पहुँचा था। पिता की यायावरी प्रवृत्ति और परिवार के प्रति दायित्वहीनता उन्हें एक जगह टिकने नहीं देती थी। पिता की इस प्रवृत्ति का बालक नागार्जुन पर भी प्रभाव पड़ा, जिसके परिणाम स्वरूप उन्होंने भी घुमक्कड़ी जीवन अपनाया और उनमें विद्रोही प्रवृत्ति भी बढ़ती गई।

नागार्जुन ने संस्कृत पाठशाला में प्राचीन पद्धति से शिक्षा ग्रहण की। उन्हें अँग्रेजी स्कूल में न पढ़ा सकने की विवशता उनके पिताजी को बारबार सालती रहती थी। 'तरौनी' से प्रथम परीक्षा पास करने के बाद उनका गाँव छूट गया। 'गनौली' के संस्कृत विद्यालय में रहकर व्याकरण मध्यमा करने में उन्होंने दो वर्ष व्यतीत किए। इसके बाद एक वर्ष 'पछगाछिया' (सहरसा) में, बाद में चार वर्ष 'काशी' में वे पढ़ते रहे और संस्कृत में आचार्य परीक्षा पास की; और इसके बाद वे एक वर्ष 'कलकत्ता' में पढ़े।

उन्नीस वर्ष की आयु में ही उनका विवाह अपराजिता देवी से हुआ था। उनके हृदय में अपनी पत्नी के प्रति हमेशा सहानुभूति का भाव रहा है; किंतु अपनी घुमक्कड़ी वृत्ति के कारण वे उन्हें यथोचित स्नेह नहीं दे पाए। वे लगातार तीन-चार माह से अधिक अपनी पत्नी के सान्निध्य में कभी नहीं रहे। सन् 1934 ई० में उन्होंने जो घर छोड़ा तो सन् 1941 ई० तक वापस घर नहीं आए। घर के प्रति इस प्रकार की विरक्ति का नागार्जुन के संदर्भ में एक विशेष कारण रहा है। कृष्णा सोबती को दिए गए एक साक्षात्कार में नागार्जुन ने अपनी इस विरक्ति का कारण बताया है कि पिता उनकी भाभी पर आसक्त थे। पिता को रूप की इतनी ललक थी कि वे विधवा भाभी को न छोड़ सके। उनके शब्दों में— 'यह घटना मेरी विरक्ति का मूल कारण थी। मौक़ा लगते ही घर से भाग निकला।' <sup>1</sup>

सन् 1941 ई० में उन्होंने पुनः गृहस्थी में प्रवेश किया। तत्कालीन रूढ़िग्रस्त ब्राह्मणों ने उनका बड़ा विरोध किया था, किंतु युवकवर्ग ने उनके गृहस्थाश्रम में आने का स्वागत किया था। अब परिवार के पोषण की समस्या थी, चूँकि उन्हें चार पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। उपेक्षावृत्ति एवं धनाभाव के कारण उनकी संतानें उच्चशिक्षा से वंचित रहीं। किंतु वे गृहस्थी में प्रवेश करने के बाद साहित्यसृजन में तल्लीन रहे। उनके जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव डालनेवाले दो व्यक्ति हैं— महापंडित राहुल सांकृत्यायन और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला। फिर भी वे भारतीय किसानों के नेता स्वामी सहजानंद, फारवर्ड ब्लाक के नेताजी सुभाषचंद्र बोस, प्रेमचंद, मैथिलीशरण गुप्त आदि के संपर्क में भी आए थे, तथापि इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अमिट छाप डालनेवाले दो ही व्यक्ति हैं राहुल जी और निराला जी।



राहुल सांकृत्यायन से प्रेरित होकर जहाँ नागार्जुन ने राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश किया, वहीं निराला जी से प्रेरित होकर उन्होंने साहित्यिक क्षेत्र में कलम सँभाली। इसीलिए नागार्जुन राजनीतिक दृष्टि से पूर्णतया साम्यवादी विचारधारा की ओर आकर्षित हुए तो साहित्यिक दृष्टि से वे जनवादी विचारधारा को लेकर चले, जिसमें यथार्थ के सुदृढ़ धरातल पर मानव-जीवन के चित्र अंकित किए गए हैं।

उनके उपन्यास-साहित्य की कथाभूमि ग्राम है। उन्होंने अपने उपन्यासों में गाँव के निम्नवर्गीय पात्रों को स्थान दिया है तो उनका शोषण करनेवाली ताकतों का यथार्थ चित्रण भी इस पद्धति से किया है कि उनके मुखौटे पाठक के सामने खुद-ब-खुद खुल जाते हैं। हिंदी के प्रगतिशील कथाकारों में नागार्जुन का स्थान सर्वोपरि है, चूँकि उन्होंने जनता के इस संघर्ष को अपने देश की मिट्टी से जोड़ने का प्रयत्न किया। सामान्य जनता के दुख-दर्द की प्रभावशाली भाषा में अभिव्यक्ति की।

उपन्यास-सम्राट मुंशी प्रेमचंद जिस सामाजिक यथार्थ को लेकर चले थे, उसी परंपरा को आगे बढ़ाने का कार्य नागार्जुन ने किया है। प्रेमचंद के उपन्यास सामाजिक यथार्थ की देन है, तो नागार्जुन के उपन्यास समाजवादी यथार्थ की परंपरा में आते हैं। 'बलचनमा' में एक ऐसे पात्र को नागार्जुन ने नायक बनाया है, जो उपेक्षित तो है, लेकिन लाचार कतई नहीं है। वह हिंदी साहित्य में होरी से आगे की सृष्टि है। डॉ० बच्चनसिंह के शब्दों में 'बलचनमा की कथा वहाँ से शुरू होती है, जहाँ से गोदान की समाप्त होती है। गोदान में होरी खेतिहर से मजदूर बन जाता है। बलचनमा एक प्रकार से मजदूर ही है, जो दो आने प्रतिमास के हिसाब से जमींदार के यहाँ भैंस चराने का काम करता है। उसका दस विस्वांसी खेत जमींदार ले लेता है। फूलबाबू के संपर्क में आने और पटना जाने पर उसकी वर्गचेतना जाग्रत होती है। कुछ देर के लिए काँग्रेस के प्रति श्रद्धा होती है, किंतु सुराजियों के वर्गचरित्र के कारण गांधीवाद से उसका मोहभंग हो जाता है। वह महसूस करता है कि बुर्जुआ वर्ग द्वारा लाया गया स्वराज्य किसानों मजदूरों का स्वराज्य नहीं होगा। प्रेमचंद ने बारबार इस प्रकार की आशंका व्यक्त की है। वह किसान आंदोलन में शामिल हो जाता है।' <sup>2</sup>

नागार्जुन की औपन्यासिक कृतियाँ निम्नलिखित हैं— रतिनाथ की चाची (1948 ई०), बलचनमा (1952 ई०), नई पौध (1953 ई०), बाबा बटेसरनाथ (1954 ई०), वरुण के बेटे (1957 ई०), दुःखमोचन (1957 ई०), कुंभीपाक (1960 ई०), चेहरे नये पुराने (1962 ई०) उग्रतारा (1963 ई०), हीरक जयंती (1963 ई०), इमरतिया (1968 ई०) (बाद में इमरतिया जमनिया के बाबा नाम से छपा), पारो (1975 ई०) आदि। उनके सभी उपन्यासों में मिथिला के माटी-पानी, फूल-पौधे, मौसम का रंगीन और जीवंत परिदृश्य मिलता है। इसी कारण कुछ लोग उन्हें आंचलिक उपन्यासकार कहते हैं। चूँकि फणीश्वरनाथ रेणु की तरह उनके उपन्यासों के नायक किसी अंचल विशेष के नहीं हैं, इसलिए उन्हें आंचलिक उपन्यासकार कहना उचित नहीं है।

बीसवीं सदी के सामाजिक उपन्यासों में नागार्जुन एक युग का नाम बनकर हमारे सामने आते हैं, इस युग की पहचान है उनके उपन्यासों का समाजवादी यथार्थवाद। मूलतः उनके उपन्यास समाज की तत्कालिक संवेदना का इतिहास हैं, जिनमें उनकी एक-एक धड़कन

शब्दबद्ध है। उन्होंने सीधी-सादी बात इतनी सरलता से कही है कि वह जनमानस के यथार्थ को छूकर उथलपुथल मचा देती है। नागार्जुन ऐसा चेहरा है, जो भीड़ में चमकता-उभरता है तथा सादगी का बोध कराता है।

‘बलचनमा’ आत्मकथात्मक शैली में लिखा हुआ नागार्जुन का बहुचर्चित उपन्यास है। इसमें निम्नवर्गीय एक कृषक के पुत्र की यातनापूर्ण और अभावग्रस्त जीवनगाथा है। बचपन में ही पिता की मृत्यु होने के कारण उसे जमींदार के यहाँ नौकरी करनी पड़ती है और जमींदार के अमानवीय अत्याचार को भी झेलना पड़ता है। एक किसान के जीवन में जितने अभाव और पीड़ाएँ होती हैं, उन सबसे उसे गुजरना पड़ा था। बलचनमा को सामाजिक विषमता को झेलना भी पड़ा और जितना संभव हो सकता था, उसका विरोध भी करना पड़ा।

बलचनमा के स्मृतिपटल पर जीवित पहली घटना उसके बाप की अमानवीय यातना से जुड़ी है ‘मालिक के दरवाजे पर मेरे बाप को एक खंभेली के सहारे कसकर बाँध दिया गया है। जाँघ, चूतर, पीठ और बाँह सभी पर बाँस की हरी केली के निशान उभर आए हैं। चोट से कहीं-कहीं खाल उधड़ गई है और आँखों से बहते आँसुओं के टंघार गाल और छाती पर से सूखते नीचे चले गए हैं... चेहरा काला पड़ गया है। होंठ सूख रहे हैं।’<sup>3</sup>

‘बलचनमा’ उपन्यास की कथा मिथिला के दरभंगा ज़िले के ग्रामीण अंचल पर आधारित है। इसके कथानक में सन् 1937 ई० तक की परिस्थितियों तथा प्रगतिशील तत्त्वों का चित्रण है। लेखक की दृष्टि इस उपन्यास में एक व्यापक आयाम को लेकर चलती है। दरभंगा ज़िले की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों का उसमें चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में बलचनमा की कथा मुख्य है और अन्य कथाएँ इसके इर्दगिर्द चक्कर काटती हैं। एक ओर इसमें ज़मींदारों के शोषण की कथा है, जिसमें महेन बाबू का रेबनी के साथ बलात्कार और माँ को पीटना आदि है, तो दूसरी ओर जन-आंदोलन की कथा है, जिसमें एक ओर फूलबाबू हैं तो दूसरी ओर राधाबाबू।

उपन्यास का नायक बलचनमा है। जब वह चौदह वर्ष का था, तब आम चुराने के कारण मालिक द्वारा की गई पिटाई में उसके पिता की मृत्यु हुई थी। उसके परिवार में माँ, दादी और छोटी बहन रेबनी थी। वह छोटी मलिकाइन के यहाँ भैंस चराने का काम करता है। मलिकाइन के घर उसे सूखा या बासी पकवान, सड़ा आम, फटे दूध का बदबूदार छेना या जूठन की बची हुई कड़वी तरकारी आदि चीज़ें खाने के लिए मिलती थीं। इसके साथ ही उसे मलिकाइन द्वारा दी गई गालियाँ भी सुननी पड़ती थीं, ‘बलचनमा, ऐसी अच्छी चीज़ें तेरे बाप-दादे ने भी नहीं खाई होंगी।’<sup>4</sup> मझले मालिक की नज़र उसके उस थोड़े से खेत पर थी। उसमें मडुवा उपजाकर तीन-चार माह का खर्च वे निकालते थे। मालिक ने बलचनमा की दादी और माँ को बुलवाकर ज़मीन का प्रस्ताव रखा। मालिक दो के बदले चार कट्टा ज़मीन देने को तैयार हुआ, किंतु दादी ने इसका विरोध किया। आखिर में माँ को ज़बरदस्ती तैयार किया गया। मालिक ने ज़मीन तो छीन ली, किंतु बदले में कुछ भी नहीं दिया, ‘मुझे याद नहीं है कि माँ को जबरन कैसे राज़ी किया गया, लेकिन मझले मालिक का कलमबाग आखिर चौकोर हो ही गया।’<sup>5</sup>

सत्रह-अठारह वर्ष की आयु में बलचनमा मलिकाइन के भतीजे फूलबाबू के साथ

पटना जाता है। वहाँ जाकर उसने बदली स्थिति का अनुभव किया। फूलबाबू ने उसके सही ढंग से बाल कटवाए और निकर तथा आधी बाँह की कमीज़ दिलवाई। वह समय स्वराज्य का जोर था, काँग्रेसी लोग नमक बना-बनाकर जेल में जा रहे थे। फूलबाबू जब नमक-आंदोलन में गिरफ्तार हो गए और लौटने पर जब गांधीवादी पद्धति से जीवन व्यतीत करने लगे तो उन्हें नौकर की ज़रूरत न रही और बलचनमा घर लौट आया। उसकी बुद्धि अब विकसित हुई थी, वह अपना गौना कर लेता है। इसके बाद वह अपनी बहन रेबनी का भी गौना करता है।

माँ के साथ एक दिन रेबनी भी छोटे मालिक के घर आटा पीसने जाती है। मालिक वहाँ उसके साथ बलात्कार करना चाहता है। रेबनी से मालिक ने कहा—‘पगली कहीं की! आखिर हुआ है क्या, तुझे मैंने तो यों ही जरा छू दिया था और तू करनपिसाची खेलने लगी! तेरी जितनी उमर में ही तेरी माँ का गौना हुआ था। और इसी तरह पचीसों बार मैंने उसका हाथ पकड़ा होगा।’<sup>6</sup> रेबनी मालिक की वासना का शिकार नहीं बनती, अपितु वह स्वयं की रक्षा करती है। मालिक चिढ़ता है और बलचनमा की माँ की पिटाई करता है, किंतु वह भी अपनी बेटे के शील की रक्षा करती है। बलचनमा अब मालिकों के अत्याचार के खिलाफ ज़िदगी-भर लड़ने की कसम खाता है, उस राक्षस को ललकारते हुए वह कहता है, ‘बेशक! मैं ग़रीब हूँ। तेरे पास अपार संपदा है, कुल है, खानदान है, बापदादे का नाम है, अड़ोस-पड़ोस की पहचान है, जिलाजवार में मान है और मेरे पास कुछ नहीं है। मगर आखिरी दम तक मैं तेरे खिलाफ डटा रहूँगा। अपनी सारी ताकत को तेरे विरोध में लगा दूँगा। माँ और बहन को जहर दे दूँगा, लेकिन उन्हें तू अपनी रखेली बनाने का सपना कभी पूरा न कर सकेगा...!’<sup>7</sup>

उसी वर्ष बड़े जोर का भूचाल आया था। काँग्रेस ने रिलीफ़ फंड खोला और कुएँ खुदवाने के लिए लाखों की रकम बाँटी गई। काँग्रेसी नेता फूलबाबू द्वारा भूचाल-पीड़ितों को सहायता कोष में से अपने रिश्तेदारों को रुपया देना तथा अनपढ़ ग़रीबों से पाँच देकर पंद्रह पर अँगूठे का निशान लगवाने के कारण बलचनमा की श्रद्धा उन पर से उठ जाती है, ‘फूलबाबू पर इसके बाद मुझे और असर्धा हो गई। काँग्रेस के बारे में सोचने लगा कि स्वराज मिलने पर बाबूभैया लोग आपस में ही दही-मछली बाँट लेंगे, जो लोग आज मालिक बने बैठे हैं, आगे भी तर माल वही उड़ावेंगे। हम लोगों के हिस्से सीठी ही सीठी पड़ेंगी।’<sup>8</sup>

राधाबाबू पहले काँग्रेसी थे, बाद में समाजवादी हो जाते हैं। उन्हीं के प्रभाव से बलचनमा भी समाजवादी बन जाता है। कुछ दिन वह राधाबाबू के बरहमपुरा के आश्रम में रहता है, और फिर एक अच्छा कार्यकर्ता बन जाता है।

मालिक लोग सूद-दर-सूद में किसानों को काफ़ी लूटते थे। इसके परिणामस्वरूप किसान-आंदोलन छेड़ा गया। अगले अगहन में फसल की जोर छीना-झपटी हुई, उसमें एक किसान की लाश गिरी थी। गाँव-गाँव किसान सभाएँ स्थापित हो रही थीं। बलचनमा ने अपने मुहल्ले में दस आदमियों को मेंबर बनाया। बलचनमा के मालिकों ने इसे अपने विरुद्ध आंदोलन समझा। जमींदार के आदमियों ने उसे इतना पीटा कि वह बेहोश हो गया। आक्रांताओं की लाठी से ज़मीन पर लुढ़कते-लुढ़कते भी बलचनमा सोचता रहता है कि ‘धरती किसकी, जोते-बोये उसकी। किसान की आज़ादी आसमान से उतरकर नहीं आएगी, वह परगट होगी नीचे जुती धरती के भुरभुरे ढेलों को फोड़कर बूढ़ा सीसम अब भी झुककर मेरा कपार चूम

रहा है।’<sup>9</sup> यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि बलचनमा का जमीन पर गिरना यानी उसकी पराजित मनोवृत्ति या मृत्यु का द्योतक नहीं है, अपितु उसमें निरंतर संघर्ष का एहसास यहाँ पर भी कायम है। डॉ० यश गुलाटी के शब्दों में— ‘बलचनमा का पृथ्वी पर गिर जाना उसकी मृत्यु का संकेत नहीं है। उपन्यास का कथावाचक वह स्वयं है, जिससे ज़ाहिर है कि वह न केवल जीवित ही बच निकला है, विकल्प की अवश्यंभाविता पर उसकी आस्था और सामूहिक संघर्ष के प्रति उसके संकल्प में भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। यह कहने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए कि संघर्ष की निरंतरता के एहसास के साथ रचना की वह समाप्ति रचनाकार की वास्तविकता की बेहतर पहचान की द्योतक है।’<sup>10</sup>

‘बलचनमा’ उपन्यास में नागार्जुन ने शोषकों के विरुद्ध आक्रोश और विक्षोभ का ज्वालामुखी धधकता हुआ दर्शाया है। शोषण की सीमा को लाँघकर निम्नवर्ग जब जाग्रत अवस्था में आता है, तो उसमें एक अजीबोगरीब आंतरिक शक्ति का उदय हो जाता है। उस शक्ति के रहते उसमें अपने को पहचानने और जानने की क्षमता पैदा हो जाती है और सदियों से चली आ रही दासता की पैरों में पड़ी बेड़ियों को तोड़ने की ताकत अपने अंदर महसूस कर पाता है। गुलामी और भय के मुँह पर लगे ताले जब खुलते हैं, तो अंदर से निकलने वाली आवाज़ और ग्लानि उगलती हुई क्रांतिकारी ओजस्वी स्वरों का रूप धारण कर शोषण को पूर्णतः उखाड़ फेंकने की सक्षमता अपने अंदर पाती है। अर्थात् स्वतंत्रता एवं जमींदारी-उन्मूलन के पश्चात् ग्राम की स्थिति में एक विशेष अंतर दिखाई देने लगता है। जो कृषकवर्ग जमींदारों एवं सेठ-साहूकारों से भयत्रस्त एवं संतप्त था, वही एकजुट होकर उनका खुलकर विरोध करने लगता है। इस उपन्यास के माध्यम से जनसामान्य में जागृति-निर्माण करने का मुख्य उद्देश्य लेखक का रहा है, किंतु इसमें भारतीय किसानों पर होनेवाले अमानुषिक अत्याचारों की अभिव्यक्ति और उससे उत्पन्न होनेवाले वर्गसंघर्ष की अभिव्यक्ति होने के कारण कम्युनिस्ट पार्टी की अपेक्षा भारतीय समाजवादी दल के सिद्धांतों की अभिव्यक्ति मिलती है। वर्गसंघर्ष होने के कारण मार्क्सवाद इस उपन्यास का आधार रहा है, किंतु समाजवादी चेतना का भारतीय रूप ही अभिव्यक्त हुआ है। यह मानना ग़लत है कि ‘बलचनमा’ में मार्क्स के सिद्धांतों के प्रचार की गंध मिलती है। प्रचार के पूर्वाग्रह से रहित यह शुद्ध समाजवादी चेतना का उपन्यास है।

अंत में हम इतना ही कह सकते हैं कि नागार्जुन ने ‘बलचनमा’ उपन्यास में जिस समस्या को लेकर अंदेशा प्रकट किया था, वही समस्या आज भी बरकरार है, मात्र उसका संदर्भ बदला है। अंग्रेज तो यहाँ से चले गए, परंतु उनके पथ पर अग्रेषित यहाँ का शासकवर्ग उसी मानसिकता का अनुपालन कर रहा है। आम आदमी के जीवन में जो परिवर्तन अपेक्षित था, वह न हो पाना हमारी अक्षमता को उजागर करता है। किंतु यदि भविष्य में भी इसी पद्धति से अमीरी और गरीबी की खाई बढ़ते गईं तो ये हमारे लिए अच्छा संकेत नहीं हैं। दुष्यंत जी के शब्दों में कहना चाहूँ तो—

मूरत सँवारने में बिगड़ती चली गई,  
पहले से हो गया है जहाँ और भी ख़राब।  
रौशन हुए चिराग़ तो आँखें नहीं रहीं,  
अंधों को रोशनी का गुमाँ और भी ख़राब।<sup>11</sup>

### संदर्भ

1. डॉ० सुरेंद्रकुमार यादव, नागार्जुन का उपन्यास-साहित्य-समसामयिक संदर्भ, पृ० 13
2. डॉ० बच्चनसिंह, आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 349
3. नागार्जुन, बलचनमा, पृ० 5
4. वही, पृ० 9
5. वही, पृ० 16
6. वही, पृ० 67
7. वही, पृ० 74
8. वही, पृ० 140
9. वही, पृ० 172
10. डॉ० यश गुलाटी, प्रतिनिधि हिंदी-उपन्यास, पृ० 165
11. दुष्यंतकुमार, साये में धूप, पृ० 48

□ असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग  
स्नातक एवं स्नातकोत्तर प्रतिष्ठान महाविद्यालय, पैठण,  
ज़िला औरंगाबाद 431107  
( मराठवाड़ा महाराष्ट्र )  
मो० : 09765944586  
ईमेल: majidmshaikh@gmail.com

## आप रसखान को हिंदू मानते हैं या मुसलमान?

अभिषेक शर्मा

सांप्रदायिक मतभेदों और नफरतों का सिलसिला भारत जैसे बहुसांस्कृतिक राष्ट्र के लिए कोई नई बात नहीं है, किंतु हर बार इन मतभेदों और नफरतों का नए ढंग से उत्पन्न होना चिंताजनक अवश्य है। पता नहीं क्यों, भारत में यह समस्या निरंतर गंभीर होती जा रही है। भारत के अनेक धार्मिक स्थल आज इसी सांप्रदायिकता की चपेट में आकर अपना विश्वास खोते जा रहे हैं। 6 दिसंबर (अयोध्या प्रसंग) की घटना इस समस्या के लिए एक पर्याप्त उदाहरण है। अनेक ऐतिहासिक कारणों के फलस्वरूप जो विवाद दबा हुआ था, वह अचानक 6 दिसंबर को एक भयानक विस्फोट के रूप में उभर आया। फलतः इस हिंसा और खून-खराबे का दृश्य देखकर अनेक भारतीय साहित्यकार और संवेदनशील नागरिक आंदोलित हो उठे। 6 दिसंबर की इस अमानवीय घटना को देखकर प्रसिद्ध शायर कैफ़ी आज़मी ने लिखा है—

राम बनवास से लौटकर जब घर में आए  
याद जंगल बहुत आया जो नगर में आए  
धर्म क्या उनका है, क्या जात है यह जानता कौन  
घर न जलाता जो उन्हें रात में पहचानता कौन?  
पाँव सरयू में अभी राम ने धोए भी न थे  
कि नज़र आए वहाँ खून के गहरे धब्बे  
पाँव धोए बिना सरयू के किनारे से उठे  
राम ये कहते हुए अपने दुआरे से उठे  
राजधानी की फ़िजा आई नहीं रास मुझे  
छः दिसंबर को मिला दूसरा बनवास मुझे।<sup>1</sup>

भारत में छह दिसंबर जैसी घटनाएँ प्रतिवर्ष घटित होती हैं, किंतु इन घटनाओं का अभी तक कोई व्यवस्थित समाधान भारतीय राजनयिकों ने नहीं ढूँढा है। 'राही' इन घटनाओं से चिंतित और पीड़ित रचनाकार हैं। यद्यपि राही के जीवनकाल में ऐसी घटनाएँ (छः दिसंबर जैसी) नहीं घटित हुई थीं, किंतु आज़ादी की आड़ में हिंदू-मुस्लिम संप्रदायों के बीच दंगों-फ़सादों का जो सिलसिला जारी रहा, उसने कहीं-न-कहीं 'राही' को बहुत गहरे झकझोर दिया था। 'राही' आद्यंत आम जनता को सांप्रदायिक दंगों की विभीषिका से रू-ब-रू करानेवाले रचनाकार हैं। 'राही' की रचनाओं में जिस आधुनिक भारत का चित्र खींचा गया है, वह मध्यकालीन भारत से कई गुना अधिक दयनीय है। 'राही' को पढ़ते हुए पाठकों को सहज ही गालिब, सूर, कबीर, तुलसी, जायसी, रहीम और रसखान की याद आ जाती है। आज हम

अपनी अल्पविकसित भावनाओं और तथाकथित राजनयिकों के झाँसे में आकर राष्ट्र की सांप्रदायिक एकता को भूल जाते हैं। फलतः राष्ट्र समय-समय पर सांप्रदायिक भावनाओं की ज्वलनशील पतंग की भाँति घूमते-फिरते रहते हैं। 'राही' का यही घूमना-फिरना भारत की सांप्रदायवादी शक्तियों को रास नहीं आता है। 'राही' का साहित्य राष्ट्रीयता की चेतना से ओतप्रोत साहित्य है। निःसंदेह 'राही' एक स्वतंत्रचेता व्यक्ति थे। उनके व्यक्तित्व में गाँव और शहर का अद्भुत समन्वय है। यही कारण है कि उनकी प्रारंभिक रचना 'आधा गाँव' से गंगा-जमुनी संस्कृति एवं ग्रामीण और शहरी परिवेश का द्वंद्व और जो एकता प्रस्फुटित हुई उसकी धार और उसका प्रवाह उनकी अंतिम रचनाओं तक निरंतर बना रहा। 'राही' ने अपने 'टोपी शुक्ला' उपन्यास की रचना 'आधा गाँव' (1966 ई०) की रचना के दो वर्ष बाद की।

वैसे तो 'टोपी शुक्ला' (1968 ई०) नाम से यह उपन्यास हास्य-व्यंग्यात्मक ही प्रतीत होता है, किंतु वास्तविकता कुछ दूसरी है। 'टोपी शुक्ला' की रचना से पूर्व इसकी 'भूमिका' में भारतीय पाठकों को इसकी प्रकृति से परिचित कराते हुए 'राही' जी ने लिखा है—'मुझे यह उपन्यास लिखकर कोई ख़ास खुशी नहीं हुई, क्योंकि आत्महत्या सभ्यता की हार है। परंतु टोपी से सामने कोई और रास्ता नहीं था। यह टोपी मैं भी हूँ और मेरे ही जैसे और बहुत से लोग भी हैं।'<sup>2</sup> 'राही' ने इस उपन्यास की 'भूमिका' के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में दो महत्वपूर्ण बातें कही हैं। एक तो यह कि 'रचना के उपरान्त उन्हें कोई प्रसन्नता नहीं हुई और दूसरा यह कि—'आधा गाँव में बेशुमार गलियाँ थीं। मौलाना 'टोपी शुक्ला' में एक गाली भी नहीं है। परंतु शायद यह पूरा उपन्यास एक गंदी गाली है और मैं यह गाली डंके की चोट पर बक रहा हूँ यह पूरा उपन्यास अश्लील है— जीवन की तरह।'<sup>3</sup> उपन्यास की भूमिका के पूर्वार्द्ध से यह ध्वनित होता है कि लेखक जिस राष्ट्र के निर्माण के लिए संघर्षरत है, उसमें अभी तक उसे कोई सफलता नहीं मिली, और लेखक की असफलता का यह दौर 'आधा गाँव' से जारी है। संभवतः इसलिए 'राही' जी को 'टोपी शुक्ला' तक आते-आते यह कहना पड़ा कि 'मुझे यह उपन्यास लिखकर कोई ख़ास खुशी नहीं हुई, क्योंकि आत्महत्या सभ्यता की हार है।' जबकि उपन्यास का अंतिम अंश यह संदेश देता है कि सांप्रदायिक राष्ट्र के नागरिकों का जीवन भी सांप्रदायिक और संकुचित होता है। फलतः इस संदर्भ में 'राही' का यह मानना है कि जो सांप्रदायिक है, वह सामाजिक नहीं हो सकता है और जो सामाजिक नहीं है, उसके राष्ट्रीय होने का प्रश्न ही नहीं उठता है। यह समूची मानव-जाति की विडंबना है कि वह समाज में रहकर भी समाज से बहिष्कृत है, वह भारतीय होकर भी गैर भारतीय है, और शायद इसीलिए उसका जीवन अश्लील (असामाजिक) है। 'टोपी शुक्ला' नामक उपन्यास में इसी मानव-जीवन की अश्लीलता का चित्रण है, और अश्लीलता के इस वीभत्स चित्रण के बाद लेखक यह कहता है कि—'यह उपन्यास अश्लील है—जीवन की तरह।' या फिर 'मुझे यह उपन्यास लिखकर कोई ख़ास खुशी नहीं हुई।'

उपन्यास में 'टोपी' का अभाव और 'टोपी' की हार, 'राही' का अभाव और 'राही' की अपनी हार है। 'टोपी' के अभावों और असमानताओं से तादात्य स्थापित करके 'राही' भारतीय गैर सांप्रदायिक रचनाकारों की उस पंक्ति में खड़े हो जाते हैं, जिसमें कबीर एक प्रमुख बिंदु के रूप में स्थापित हैं। संभवतः मेरी जानकारी में अभी तक अपने पात्रों से इतनी निकटता प्रेमचंद, रेणु और श्रीलाल शुक्ल के अलावा 'राही' स्थापित कर पाए हैं। टोपी शुक्ला उपन्यास

की भूमिका में राही जी लिखते हैं कि—‘हम लोगों (शेष भारत) में और टोपी में केवल एक अंतर है। हम लोग कहीं-न कहीं किसी-न-किसी अवसर पर ‘कंप्रोमाइज’ कर लेते हैं और इसलिए हम जी रहे हैं। टोपी कोई देवता या पैगंबर नहीं था, किंतु उसने ‘कंप्रोमाइज’ नहीं किया और इसीलिए उसने आत्महत्या कर ली।’<sup>4</sup> प्रस्तुत अनुच्छेद में जिस समझौतापरस्त भारत और भारतीयों की अवसरवादी नीतियों का खुलासा किया गया है, वह अत्यंत दुखद ही नहीं, अत्यंत चिंताजनक भी है। यह स्थिति तब और भी बिगड़ जाती है, जब भारतीय राजनयिक सब-कुछ देखते हुए भी अपनी आँखों पर पर्दा डालकर अपने स्वार्थों के लिए राष्ट्र के नागरिकों को छलते-कपटते रहते हैं। भारतीय राजनयिकों की इन्हीं मनोदशाओं का चित्रण करते हुए प्रसिद्ध कवि चंद्रसेन ‘विराट’ लिखते हैं कि—

पहले अपना तो भर लें, फिर तेरा भी पेट भरेंगे हम,  
रख धैर्य हमारे देश, शीघ्र कुछ तेरे लिए करेंगे हम।  
पद पर आए हैं अभी-अभी, पहले निज जड़ें जमा तो लें,  
अपनी अंटी से खर्च किया, पहले तो इसे चरेंगे हम। रख धैर्य....  
पहले वालों ने तुझे बहुत नोचा है और खसोटा है,  
कुछ अपना भी तो हक बनता, कुछ अपना भी तो कोटा है।  
पहले निज का दुख-दर्द हरे, फिर तेरा दर्द हरेंगे हम। रख धैर्य...  
सत्तावन वर्षों तक तूने आश्वासन ही तो खाए हैं,  
जो थे गरीब वे हैं गरीब, कुछ ख़ास ख़ास बन पाए हैं।  
तुझ पर पुष्प नहीं, आँसू ही बनकर सदा झरेंगे हम।  
रख धैर्य हमारे देश शीघ्र कुछ तेरे लिए करेंगे हम।<sup>5</sup>

राही मासूम रजा का टोपी शुक्ला भारतीय सांप्रदायिक विसंगतियों का एक प्रतिनिधि उपन्यास है। सांप्रदायिक तनाव भारत की एक राष्ट्रीय समस्या है और भारतीय राजनयिकों के लिए एक आवश्यक समस्या, क्योंकि वोट बैंक इसी से मजबूत होगा। यही कारण है कि जब-जब हिंदू-मुस्लिम दंगे भड़के हैं, तब-तब भारतीय राजनयिकों की पोशाकें दागदार हुई हैं। भारत में हिंदू-मुस्लिम तनावों और उसमें राजनयिकों की भूमिका पर विचार करते हुए महाप्राण ‘निराला’ ने लिखा कि—‘सदियों से यह व्यवहार कुछ ऐसा चला आ रहा है कि दोनों के विचारों में जहाँ साम्य है, वहाँ तक पहुँचकर दोनों में मैत्री की चेष्टा ही नहीं की गयी।’<sup>6</sup> राही का ‘टोपी शुक्ला’ उपन्यास एक ऐसा ही उपन्यास है, जहाँ एक जिमेदार मध्यस्थ का अभाव है। अर्थात् एक ऐसा मध्यस्थ, जो ‘टोपी’ और ‘इप्फन’ की मित्रता को प्रोत्साहित कर सके, जो ‘टोपी’ की रोज़ी-रोटी के लिए उसे एक नौकरी ही दिलवा सके। ‘राही’ का ‘टोपी’ तो अंततः भारतीय सांप्रदायिकता की भेंट चढ़ जाता है।

‘टोपी शुक्ला’ उपन्यास सिर्फ़ उपन्यास ही नहीं है, क्योंकि इसके स्वरूप से जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, कहानी और न जाने कितनी साहित्यिक विधाएँ लिपटी हुई हैं। फिर भी तमाम विधागत छुआछूत के बाद भी यह कृति अपने-आपको उपन्यास कहलाने में सफल हो गयी है। राही मासूम रजा का ‘टोपी शुक्ला’ उपन्यास दो प्रमुख भारतीय संस्कृतियों के टकराव और बिखराव का उपन्यास है। अपने अनेक प्रसंगों के साथ इस उपन्यास ने स्वतंत्र भारत की



परतंत्र मानसिकता को चित्रित करने में एक महत्वपूर्ण सफलता निभाई है। 'टोपी शुक्ला' एक बहुसंदर्भी उपन्यास है, जिसमें पारिवारिक स्तर पर बाल-शोषण, मुस्लिमवर्ग के प्रति अन्य वर्गों की ग़लत धारणा, सांप्रदायिक कट्टरता, मित्र की महत्ता, भारत की खोखली शिक्षा-व्यवस्था और भारतीय विश्वविद्यालयों की आंतरिक दयनीयता एवं निकम्मेपन का सजीव चित्रण किया गया है। अपने इस उपन्यास में 'राही' जी यह भी सिद्ध करने में सफल हो गए हैं कि बच्चों में हिंदू-मुस्लिम, ऊँच-नीच जैसी भावनाओं का बीज उसके परिवार वाले बोते हैं और कालांतर में यही वृक्ष नफ़रत रूपी शाखाओं के साथ एक विशालकाय 'वटवृक्ष' बन जाता है। बच्चों का यह नफ़रत और हिंसा-भरा दृष्टिकोण राष्ट्र को कितना नुकसान पहुँचाता है, इस पर विचार करते हुए 'राही जी' ने 'टोपी' के माध्यम से लिखा कि 'टोपी ने कहा, 'का ईहो लोग मियाँ हैं?'

हाँ। इप्फन के पिता मुसकराए। 'हम लोग मियाँ हैं।'

'तब हम हिआँ कुछ खा ओ ना सकते।'

'क्यों?' सवाल इप्फन ने किया।

'हम लोग मियाँ लोगन का छुआ न खाते।'

'मगर क्यों नहीं खाते?'

'मियाँ लोग बहुत बुरे होवें।' 7

टोपी शुक्ला उपन्यास में ऐसे तमाम मौलिक और सजीव प्रसंगों की उद्भावना की गयी है जिन पर 'राही' से पहले किसी साहित्यकार का ध्यान शायद ही गया हो। 'राही' के विचार से 'मुसलमान' होना एक अभिशाप है और 'हिंदुस्तानी मुसलमान' होना उससे भी बड़ा अभिशाप है। 'टोपी शुक्ला' की पीड़ा और उसकी विसंगतियाँ अखिल भारतीय हैं। अभी तक हम लोग भेद-भाव का व्यवहार पराये बच्चों के साथ ही देखते आए हैं, किंतु उपन्यास का प्रमुख पात्र 'टोपी' .....के प्रति की गई अमानवीयता का एक दृश्य—'जो चीज़ आती वह पहले मुन्नीबाबू को मिलती। कपड़े मुन्नीबाबू के बनते और टोपी को उसकी उतरन पहननी पड़ती। सुभद्रादेवी तो उसे अपने पास फटकने भी नहीं देती थीं। वह शायद डरती थीं कि अगर उन्होंने टोपी को छू भी लिया तो उनके चंपई रंग पर दाग पड़ जाएगा। अपने बलभद्र का भी जी चाहता कि कोई उसे भी इसी तरह प्यार से कहानियाँ सुनाए। परंतु उसके चारों ओर तो गहरा सन्नाटा था। जब भी वह किसी चीज़ के लिए ज़िद करता, डाँट दिया जाता कि कैसा बच्चा है कि बड़े भाई का दाज करता है।' 8 आज राष्ट्र बालोत्थान का नारा लगा रहा है, तरह-तरह की बालोपयोगी योजनाएँ चला रहा है, किंतु ये योजनाएँ पूर्णतः असफल हैं। आज भी बच्चे अपनी पारिवारिक उपेक्षा या फिर आर्थिक कारणों से घर छोड़ने के लिए मजबूर हैं। आज राष्ट्र जिस व्यापक 'बाल-शोषण' से जूझ रहा है, उसकी तरफ़ राही जी ने स्वतंत्रता के 21 वर्ष बाद ही संकेत कर दिया था। 'टोपी' जैसे मासूम बच्चे से उसके परिवारवालों को भरपूर नफ़रत है, वे उसके रूप-रंग, उसकी वेशभूषा, उसकी चाल-चलन और उसकी भाषा से भी घृणा करते हैं। ऐसा लगता है जैसे वे 'टोपी' को पहचानते ही नहीं। 'टोपी' अपने ही घर में किसी दूसरे घर का व्यक्ति प्रतीत होता है। 'टोपी' के प्रति परिवार वालों के घृणा-भाव को रेखांकित करते हुए राही जी लिखते हैं। कि—'उस दिन दादी जी को दो बातों पर गुस्सा

आया। पहली बात तो यह थी कि उसका पोता 'ज़रूर' को 'ज़रूर' बोल रहा था। (टोपी उन्हें चिढ़ाने के लिए उनके जीवन भर यही करता रहा) और दूसरी बात यह कि उसने प्रभु का मज़ाक उड़ाया था। उन्होंने ताने की कमान चढ़ाकर रामदुलारी का कलेजा छलनी कर दिया। उस दिन रामदुलारी ने टोपी को जी भरके ठोंका। टोपी घर से भाग गया।<sup>9</sup>

यह बहुत ही विचारणीय बिंदु है कि जिस राष्ट्र की आधारशिला वहाँ के भावी युवावर्ग पर टिकी हो और उस राष्ट्र के नागरिक का बचपन अभावग्रस्त एवं टुकते-पिटते बीत रहा हो, तो नागरिकों में राष्ट्रीयता और सहृदयता कैसे आएगी? अपने प्रति किया गया उपेक्षापूर्ण व्यवहार और अनावश्यक पिटाई से 'टोपी' बहुत दुखी हुआ। फलतः 6 वर्ष की आयु में ही उसने घर से भागने का गंभीर निर्णय ले लिया। टोपी के इस निर्णय के संदर्भ में 'राही' जी लिखते हैं कि—'खैर! तो हुआ यह कि जब उस दिन रामदुलारी ने टोपी को बहुत पीटा तो टोपी तमाम ऊँच-नीच पर विचार करने के बाद घर से भाग खड़ा हुआ और अगर वह घर से न भागता तो शायद मैं यह जीवनी न लिखता।<sup>10</sup> घर से भागने बाद टोपी की भेंट इफ्फन से होती है। इफ्फन किसी से झगड़ रहा था, सो टोपी ने भी सहयोग कर दिया। चोटें बहुत आईं। हाथ-पैर फूट गए, किंतु कुरते का फटना टोपी के लिए हाथ-पैर की चोटों से अधिक महत्त्वपूर्ण था। 'टोपी' उतरना पहनता था, इसलिए उसे कपड़े की कीमत मालूम थी। झगड़ा ख़त्म होने के बाद इफ्फन ने टोपी से पूछा कि—

'बहुत चोट लगी है क्या?'

'नहीं।' टोपी ने कहा। 'ई ना देख रहो कि कुरता फट गया है।'

'चलो, मैं तुम्हें दूसरा कुरता पिन्हा दूँ।'

'ई तूँ कय्यसे बोल रहो?'

'मैं इसी तरह बोलता हूँ।'<sup>11</sup>

एक समय मध्यकाल में भी 'तुलसीदास' ने विघटित मानवता को देखते हुए एक नैतिक जिम्मेदारी से युक्त मित्र की नूतन परिभाषा प्रस्तुत की थी— 'तुलसी' के अनुसार वफ़ादार मित्र को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी।

निज दुख गिरि-सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरू समाना।

जिन्ह के असि मति सहज न आईं। ते सठ कत हठि करत मितार्ई।

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा।<sup>12</sup>

'राही' ने भी तुलसी की मित्र-विषयक अवधारणा की समीक्षा की। 'राही' ने 'टोपी' और 'इफ्फन' के द्वारा जिस 'गंगा-जमुनी संस्कृति' की मित्रता दर्शाई है, वह हमारे भारतीय साहित्य के इतिहास में लगभग-लगभग अप्राप्य है। इफ्फन से मित्रता 'टोपी' के लिए कितनी महत्त्वपूर्ण थी, इस पर चर्चा करते हुए 'राही' ने लिखा कि—'टोपी ने इस अक्टूबर सन् पैतालीस को कसम खाई कि अब वह किसी ऐसे लड़के से दोस्ती नहीं करेगा, जिसका बाप ऐसी नैकरी करता हो, जिसमें बदली होती रहती है। दस अक्टूबर सन् पैतालीस का यूँ तो कोई महत्त्व नहीं, परंतु टोपी के आत्म-इतिहास में इस तारीख का बहुत महत्त्व है, क्योंकि इसी तारीख को इफ्फन के पिता बदली पर मुरादबाद चले गए। इफ्फन की दादी के मरने के थोड़े

ही दिनों बाद यह तबादला हुआ था, इसलिए टोपी और अकेला हो गया, क्योंकि दूसरे कलेक्टर ठाकुर हरिनाम सिंह के तीन लड़कों में से कोई उसका दोस्त न बन सका।<sup>13</sup>

मूलतः 'टोपी' का बचपन ही उसके सांप्रदायिक संस्कारों के लिए जिम्मेदार है, जिसका मूल स्रोत उसके अपने ही माता-पिता और परिवार वाले हैं। 'इप्फन' से दोस्ती करने के बाद 'टोपी' मुस्लिम संस्कृति के करीब आता है। यद्यपि पारिवारिक उपेक्षा और बार-बार फ़ेल होने के कारण वह कुछ समय तक संघी बना रहता है, किंतु जैसे-जैसे वह संघ की हक़ीक़तों से रू-ब-रू होता गया, वैसे-वैसे वह संघ से अपना अलगाव बढ़ाता गया। इस उपन्यास में टोपी का शोषण, 'टोपी' की पीड़ा और टोपी के भटकाव का स्वरूप अखिल भारतीय है। उपन्यास में टोपी के नायकत्व की प्रबल दावेदारी करते हुए 'राही' जी कहते हैं कि—'यह जो मैं बार-बार इप्फन की बात करने लगता हूँ तो इससे आप यह न समझिए कि यह कहानी केवल टोपी और इप्फन दोनों की है। जी नहीं, यह कहानी केवल टोपी की है। परंतु बार-बार इप्फन की आत्मा में झाँकना ज़रूरी है, क्योंकि देश में जो परिवर्तन हो रहा है, उसे केवल टोपी की खिड़की से नहीं देखा जा सकता। इप्फन भी टोपी ही का ही एक रूप है। इस टोपी के बेशुमार रूप हैं। बंगाल, पंजाब, उत्तर प्रदेश, आंध्र, असम... सारे देश में यह टोपी अपनी समस्याओं को लिए विचारधाराओं, फलसफ़ों, राजनीतिज्ञों के दरवाज़े खटखटाता रहा है, परंतु कोई इसे सहारा नहीं देता।<sup>14</sup>

अलीगढ़ में अपने शोध के दौरान 'टोपी' एक लंबे अंतराल के बाद पुनः 'इप्फन' से मिलता है। 'इप्फन' के परिवार में 'इप्फन' और उसके परिवारवालों से अगाध प्रेम था किंतु वर्तमान समय की सांप्रदायिक ताक़तों को टोपी का यह मानवीय प्रेम रास नहीं आ रहा था। फलतः हिंदू धर्मावलंबी तो उसे नापसंद ही करते और जहाँ तक मुस्लिम संप्रदाय की बात है, तो वे भी लोग 'टोपी' को अपना मानने के लिए तैयार नहीं थे। 'टोपी' का व्यक्तित्व इतना व्यापक था कि वह हिंदू-मुसलमान संप्रदायों के खाँचे में अट ही नहीं पाया। 'टोपी' के ग़ैर-सांप्रदायिक व्यक्तित्व को कितना बड़ा दंड इस राष्ट्र ने दिया है, इस पर विचार करते हुए प्रस्तुत है 'सनातन धर्म डिगरी कालेज' बहराइच के इंटरव्यू का एक दृश्य 'आप रसखान को हिंदू मानते हैं या मुसलमान' सवाल हुआ।

'मैं तो जायसी को भी हिंदू मानता हूँ।' टोपी ने कहा, और ग़ालिब और मीर को भी।  
'अपने विचार पर प्रकाश डालिए।'<sup>15</sup>

'ग़ालिब बुतों की पूजा करते थे। पूरा उर्दू-काव्य ही बुतों की पूजा करता है। मीर ने तो तिलक तक लगा लिया था। कशका खींचा दौर में बैठा कबका तर्क इस्लाम किया। कभी गो० तुलसीदास ने ऐसे ही कलियुगी गुरुओं को सांप्रदायिकता और अमानवीयता की चर्चा करते हुए 'रामचरितमानस' में लिखा था कि— 'हरइ शिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई।'<sup>16</sup> तथाकथित शिक्षा मफ़ियाओं द्वारा 'टोपी शुक्ला' से यह प्रश्न करना कि 'रसखान हिंदू थे या मुसलमान।' भारतीय शिक्षा व्यवस्था की ग़ैरसांप्रदायिक नीतियों पर एक तमाचा है। ऐसे प्रश्न आज भारतीय शिक्षा-व्यवस्था की हक़ीक़तों को उजागर करते हैं। आज भारत सांप्रदायिक विचारधाराओं की चपेट में है। राष्ट्र के लिए यह दुर्भाग्यपूर्ण समय है, क्योंकि वर्तमान समय में कोई भी विचार अपने व्यापक रूप में 'विचारधारा' के करीब आने में असमर्थ है। आज विचारधारा को कोई

व्यापक जनसमर्थन नहीं मिल पा रहा है, क्योंकि उसका परिवेश संकुचित है, उसकी सोच किसी विशिष्ट सांप्रदायिक नियमों में बद्ध है। राही विचारधाराओं की इसी सांप्रदायिकता से त्रस्त रचनाकार हैं। इंटरव्यू देने के बाद 'टोपी' अलीगढ़ पहुँचता है। अलीगढ़ पहुँचने पर 'सकीना' ने 'टोपी' से पूछा कि 'इंटरव्यू कैसा हुआ?' इस प्रश्न पर 'राही जी' ने टोपी के माध्यम से 'सकीना' को जो जवाब दिया है, उससे पाठक भारत में सांप्रदायिक भेदभाव की ज्वलनशीलता का अंदाज़ा लगा सकते हैं। 'टोपी' सकीना को उसके प्रश्न का उत्तर देते हुए कहता है कि 'जिस देश की यूनिवर्सिटी में यह सोचा जा रहा हो कि ग़ालिब सुन्नी थे या शिया और रसखान हिंदू थे या मुसलमान, उस देश में पढ़ाने का काम नहीं करूँगा।' <sup>17</sup>

'टोपी' इधर अपनी नौकरी के लिए संघर्षरत था कि उधर इफ्फन को जम्मू के किसी कालेज में एक और नौकरी मिल गई। टोपी इफ्फन सकीना और शबनम को छोड़ना नहीं चाहता था (और छोड़ भी नहीं सकता था) मगर जीवन की सारी भाग-दौड़ तो पेट के लिए ही की जाती है। सो 'टोपी' ने 'इफ्फन' और उसके परिवारवालों को जम्मू के लिए विदा किया। 'इफ्फन' के जम्मू चले जाने के बाद 'टोपी' के अकेलेपन का जो चित्रण 'राही' ने किया है, वह दो परस्पर विरोधी संस्कृतियों के बीच अभूतपूर्व ऊर्जा पैदा करता है। यह 'इफ्फन' और 'टोपी' का ही प्रेम नहीं है, यह प्रेम हिंदू और मुसलमान भाइयों का भी प्रेम है। 'इफ्फन' की अनुपस्थिति में 'टोपी' कितना अकेला है, इस पर राही ने बड़ा मार्मिक अनुच्छेद लिखा है—परंतु अधूरापन और तनहाई शायद इस युग के टोपियों की तक्रदीर है। यदि वह हज़ार-पंद्रह सौ बरस पहले पैदा हुआ होता, तो उसकी कहानी कुछ और होती। वह अब तक कब का किसी और की लड़ाई लड़ता हुआ मारा जा चुका होता और तब शायद मैं इतने बहुत से लोगों की बातें न करता। मेरी परेशानी यह है कि यह किसी बड़े आदमी की जीवनी नहीं है। यह एक छोटे आदमी की जीवनी-कथा है। मेरा हीरो कोई राजकपूर या दिलीपकुमार नहीं है, इसीलिए उसे अपना अधूरापन सताता रहता है और इसलिए 'इफ्फन' सकीना और शबनम के जाने के बाद वह केवल एक बदन रह गया। एक ख़ाली मकान। एक ऐसा मकान, जो ख़ाली तो था, परंतु जो किराये के लिए ख़ाली नहीं था। <sup>18</sup>

टोपी शुक्ला उपन्यास के अंत में राही जी ने टोपी को आत्महत्या करते हुए दिखाकर पाठकों की सहानुभूति को उन तमाम ग़ैरसांप्रदायिक व्यक्तियों के प्रति जोड़ दिया है, जो जीवन-भर हिंदू-मुस्लिम जनता के भेद-विभेदों से ऊपर उठकर सच्ची मानवता और भाईचारे की तलाश में अपना जीवन गुज़ार देते हैं। 'राही' के इस उपन्यास की अंतर्वस्तु पर विचार करते हुए प्रसिद्ध ललित निबंधकार विवेकी राय जी लिखते हैं कि 'पता नहीं क्यों टोपी शुक्ला की आत्महत्या में डॉ॰ राही सभ्यता की हार देख रहे हैं। हमें लगता है कि यह मानवता की विजय है। कोटि-कोटि पागलों के बीच एक सही दिमाग़ वाला इंसान तो पैदा दीखा।' <sup>19</sup>

राही की संतुलित सोच ने टोपी शुक्ला नामक उपन्यास में टोपी इफ्फन और सकीना के माध्यम से जिन तटस्थ और ग़ैरसांप्रदायिक पात्रों का सृजन किया है, वह भारतीय उपन्यास साहित्य के लिए अनुकरणीय बात है। 'राही' की यह मौलिक उद्भावना आज भी राष्ट्र के नागरिकों को अपनी ओर आकर्षित कर रही है। फलतः यह 'राही' के ही धैर्य की बात है कि न तो टोपी अपने व्यक्तित्व में बदलाव करता है (भले ही उसे जीते-जी कोई नौकरी नहीं

मिली) और न ही 'इप्फन' भारत को छोड़कर पाकिस्तान जाता है। शायद टोपी और इप्फन की इसी प्रबल भावना से प्रेरित होकर शायर मुनव्वर राना ने लिखा होगा कि—  
 पैदा यहीं हुआ था, यहीं पर मरूँगा मैं।  
 वो लोग और थे जो कराची चले गए।'<sup>20</sup>

### संदर्भ

1. कैफ़ी आज़मी की कविता दूसरा वनवास से, अभिनव कदम अंक-7 (संयुक्तांक) नवंबर 2001 अक्टूबर 2002 संपादक चंद्रदेव राय, जयप्रकाश धूमकेतु (कविता का संदर्भ पत्रिका के उक्त अंक के कवर पृष्ठ के पिछले भाग से)
2. टोपी शुक्ला, राही मासूम रजा, भूमिका पृ० 5, 2004 प्रकाशक: राजकमल प्रकाशन प्रा० लि० 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002
3. वही
4. वही
5. चंद्रसेन 'विराट' की कविता 'सत्तावन वर्षों तक तूने आश्वासन ही खाएँ हैं, दैनिक समाचार पत्र सन्मार्ग बुधवार 15 अगस्त 2007, कोलकाता संस्करण
6. रामविलास शर्मा के 'त्रिलोचन विषयक' आलेख से संकलित: त्रिलोचन के बारे में, सं० गोविंद प्रसाद पृ० 59, प्रथम संस्करण-1994, प्रकाशक वाणी प्रकाशन 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली
7. टोपी शुक्ला, राही मासूम रजा, पृ० 29
8. वही, पृ० 25
9. वही
10. वही, पृ० 26
11. वही, पृ० 27
12. रामचरितमानस, गो० तुलसीदास (किष्किधाकांड पृ० 448), मूल गुटका एक सौ पचीसवाँ संस्करण, गीताप्रेस, गोरखपुर (उ०प्र०)
13. टोपी शुक्ला, राही मासूम रजा, पृ० 43
14. वही, पृ० 57
15. वही, पृ० 131
16. रामचरितमानस, गो० तुलसीदास, उत्तरकांड पृ० 644
17. टोपी शुक्ला, राही मासूम रजा, पृ० 141
18. वही, पृ० 135-36
19. हिंदू-मसलिम समस्या एक सही दृष्टिकोण, विवेकी राय, संकलित : अभिनव कदम, अंक 6-7
20. अभिनव कदम (संयुक्तांक) पृ० 463, नवंबर 2001 अक्टूबर 2002 संपा० चंद्रदेव, जयप्रकाश धूमकेतु, संपर्क 223, प्रकाश निकुंज, पावर हाउस रोड, निजामुद्दीनपुरा, मऊनाथभंजन (उ०प्र०)
21. संपादकीय, मुनव्वर राना, शीर्षक वो लोग और थे, जो कराची चले गए। अमर उजाला, इलाहाबाद संस्करण (उ०प्र०) दिनांक 5/01/08 शनिवार।

□ शोध छात्र  
 हिंदी विभाग, हिंदी भवन  
 विश्व भारती, शांति निकेतन 731235

## पत्रकारिता : स्वरूप व क्षेत्र

डॉ० वंदना शर्मा

अध्यक्ष हिंदी विभाग, मुलतानीमल मोदी कालेज  
मोदीनगर (उ०प्र०)

साहित्य एवं समाज से प्रतिक्षण जुड़ा यह क्षेत्र मानव-मात्र के लिए अत्यंत उपयोगी है। हमारे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जीवन की सभी समस्याओं का समावेश पत्रकारिता में होता है। ये युग के अनुकूल विविध विषयों के प्रति नए विचार हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। पत्रकारिता का श्रीगणेश समाचार-जगत से हुआ। कहाँ क्या हो रहा है इसे जानने की अभिलाषा प्रत्येक व्यक्ति में होती है। समाचारों को ज्ञात करने की उत्सुकता मनुष्य के जीवन का एक अछूता अंग है, क्योंकि मानव एक सामाजिक जीवन व्यतीत करता है और ऐसा जीवन समष्टि के जीवन का ही एक अंश है।

समाचार-पत्रों का जन्म प्रमुख रूप से जनता को समाचार देने के लिए हुआ है। सामान्यतः पत्रकारिता समाचारों को लोगों तक पहुँचाने का नाम है। जैसे एक वैज्ञानिक कुछ नया खोजता है, लेकिन जब वह खोज दूसरों तक पहुँचती है, तब वह ख़बर बनती है और जो व्यक्ति ख़बर हासिल करता है, उसे बनाकर प्रकाशित करता है, वह पत्रकार कहलाता है।

‘पत्रकारिता सामयिक ज्ञान का व्यवसाय है। इस व्यवसाय में आवश्यक तथ्यों की प्राप्ति, सावधानीपूर्वक उसका मूल्यांकन तथा उचित प्रस्तुतिकरण होता है।’

वस्तुतः इतिहास की मूल तथ्यात्मकता को तभी समझा जा सकता है, जब हम उसे अनुभव करें। लेकिन यह अनुभूति तभी संभव है, जब अंतर्वस्तु के साथ हमारा सीधा संबंध बने। पत्रकारिता भी प्रतिक्षण लिखा जानेवाला ‘त्वरित इतिहास’ है। इतिहास की कर्मभूमि यथार्थ में होती है। समाज की क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ और घात व प्रतिघात ही इसकी रचना करते हैं। यही प्रक्रिया इतिहास और पत्रकारिता के बीच समन्वय स्थापित करती है। क्योंकि दोनों ही अपने समय की वास्तविकताओं और चुनौतियों से टकराती हैं और उनकी प्रतिक्रियाओं को सरल भी बनाती हैं।

यह सही है, प्रत्येक काल की अलग-अलग आवश्यकताएँ रहती हैं और उसी प्रकार उनके प्रतिउत्तर होते हैं। पत्रकारिता का मेरुदंड है उसकी सामयिक चुनौतियों को सही प्रकार से पहचानने और उन्हें तथ्यात्मक दृष्टि के साथ समाज को संप्रेषित करने की निरंतर क्षमता। पत्रकारिता की इस अंतर्निहित क्षमता और चारित्रिक गुण के कारण ही प्रेस को राज्य का चौथा स्तंभ कहा गया था। करीब दो-ढाई सदी पहले जब जनता के रूपांतरण का सिलसिला शुरू हुआ था, तब एक ऐसे माध्यम की आवश्यकता महसूस की गई, जो कि रूपांतरण की प्रक्रिया

पर नजर रख सके। यह देख सके कि राज्य के तीनों अंग-कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका-कितनी ईमानदारी के साथ इस नव उदित प्रक्रिया को उसकी रिक्तिक मंजिल तक पहुँचाते हैं। इसलिए प्रेस को लोकतंत्र का 'वाच-डॉग' या प्रहरी कहा जाता है। देखा जाए तो पत्रकारिता का काम केवल घटनाओं को इकट्ठा करना, उनका तार्किक प्रस्तुतिकरण और पाठकों तक उनका संप्रेषण ही नहीं है, बल्कि इसकी एक और बड़ी भूमिका है और वह है स्वयं का हस्तक्षेप। दूसरों शब्दों में हस्तक्षेप ठहराव के लिए होता है, यथास्थितिवाद के लिए किया जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि पत्रकारिता में बदलावधर्मिता भी समाप्त हुई है। इसी बदलावधर्मिता को 19वीं और 20वीं सदी के महान परिवर्तनकर्मियों ने समझा और जन, समाज और राष्ट्र की बहुआयामी प्रगति के लिए इसका प्रयोग किया। भारतीय परिदृश्य को ही लें। तिलक, गांधी, अंबेडकर, भगतसिंह, नेहरू, मौलाना आज़ाद, गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे अनगिनत परिवर्तन व हस्तक्षेपधर्मी और कम्युनिकेटर इसमें मिल जाएँगे, जिन्होंने अपने समय की चुनौतियों को समझा और पत्रकारिता के माध्यम से उपयुक्त रेस्पांस भी दिया। संभव है यह अतिशयोक्तिपूर्ण लगे या एक पत्रकार का दर्प दिखाई दे, लेकिन 19वीं और 20वीं सदी के मुक्ति-संघर्ष में पत्रकारिता ने निःसंदेह एक प्रतिबद्ध सहयात्री या फैलोट्रेवलर का रोल अदा किया है। पत्रकारिता चुनौतियों के साथ रही, उसे शिद्दत के साथ महसूस किया और उन्हें अपने समकालीन अस्तित्व का अभिन्न अंग बनाया। युग की चुनौतियों, उसके रेस्पांस, जन-आकांक्षाओं, राष्ट्र की महत्त्वकांक्षाओं, साम्राज्यों का उत्थान-पतन, मूर्ति-सृजन और भजन-जैसी घटनाओं और परिघटनाओं को अपने में समेटती हुई पत्रकारिता वर्तमान मुकाम पर पहुँची है। जिस प्रकार जीवन के विभिन्न रंग हैं, उसी प्रकार पत्रकारिता भी बहुरंगी है। किसी की रुचि राजनीति में ज्यादा है, तो किसी की कला में, किसी की साहित्य में तो किसी की खेल में, और किसी की आर्थिक मामलों में रुचि है तो किसी को औद्योगिक घरानों के उतार-चढ़ाव में, राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय ख़बरों में ज्यादा रुचि है; तो कोई छिद्रान्वेषी प्रवृत्ति का होता है और उसे लोगों के शयनकक्ष तक में झाँकने की इच्छा होती है, यानि जीवन का जितना विस्तार दिखाई देता है, उतना ही विस्तार पत्रकारिता का भी है।

इस प्रकार खोजी पत्रकारिता का अर्थ है छिपाई जानेवाली सूचनाओं, तथ्यों और राजनीतिक कथाओं को बेपरदा करना। इसलिए बॉवग्रीन ने कहा कि जिस तथ्य को कोई छिपाना चाहे अथवा जो अनुद्घटित हो, वैसे समाचार को प्रकाश में लाने का कार्य पत्रकारिता का है, जोखिम-भरी पत्रकारिता का विशेष महत्त्व इसलिए भी अधिक है, क्योंकि सत्ता और शासन के विरुद्ध कुछ भी लिखना बहुत कठिन होता है। कभी-कभी तो ऐसी रिपोर्टों का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि सत्ता तक में परिवर्तन आ जाता है। अमेरिका का 'वाटरगेट कांड' और भारत में 'बोफोर्स दलाली कांड' ऐसे ही कांड थे, जिनके कारण से दोनों जगहों पर सत्ता में परिवर्तन हुए। इलैक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा बेपरदा किया गया घोटाला 'तहलका' बहुत दिनों तक प्रचार में रहा। इन घोटालों में सत्ता में काबिज सरकारों की किरकिरी तो हुई ही है, पत्रकारों को भी उतना ही खामियाजा भुगतना पड़ा है। खोजी पत्रकारिता की जिम्मेदारी इतनी अहम होती है कि यदि वह अफवाहों, काल्पनिक प्रसंगों और अप्रमाणिक तथ्यों के चक्कर में पड़ जाए तो खोजी पत्रकारिता फ़ौरन पीत पत्रकारिता में तब्दील हो सकती है और पत्रकारों की

साख पर बट्टा लग सकता है।

अर्थ का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। बिना अर्थ के ज़िंदगी एक क़दम आगे नहीं चल पाती, लेकिन आम आदमी यह नहीं जान पाता कि रुपया कहाँ से आता है, कहाँ जाता है। मुद्रा क्यों लुढ़कती है? क्यों चढ़ती है? रुपये के मुकाबले डालर कितना महँगा और कितना सस्ता हुआ? पेट्रोल की कीमतें अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार के उतार-चढ़ाव में कैसे चढ़ती-उतरती हैं? किस कंपनी के कौनसे उत्पाद नए आए हैं? किस कंपनी ने अपनी कारों के दाम में कमी की है? गेहूँ के दाम क्यों उछलते हैं? तिलहन क्यों मँदा पड़ा है? सरकारों के अस्थिर होने पर विषयों की चर्चा प्रायः सभी अख़बारों में रोज़ाना होती है। ऐसे विषयों से संबंध रखने वाली आर्थिक पत्रकारिता है।

पहले पाठकों का काम सिर्फ़ अख़बारों से चल जाया करता था, लेकिन धीरे-धीरे उनकी समझ बढ़ने के साथ उनमें जागरूकता बढ़ती है परिणामस्वरूप जब वे किसी ख़बर की तह में जाना चाहते हैं, कई बार ऊपर से देखने में कई घटनाएँ बड़ी सीधी और सपाट लगती हैं लेकिन निहितार्थ काफ़ी गंभीर होते हैं। कभी-कभी उनके परिणाम इतने दूरगामी होते हैं। लेकिन व्याख्यात्मक पत्रकारिता के पास ही इसका हल है। वही ख़बरों के यथार्थ से पाठकों का परिचय कराती है। यही कारण है कि प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं में रेडियो तथा टेलीविज़न के कार्यक्रमों में व्याख्यात्मक पत्रकारिता के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। हाँ, सरकारी हाथों में चलने वाली पत्र-पत्रिकाओं या दूरदर्शन के स्थान पर निजी हाथों में चलने वाली पत्र-पत्रिकाओं और बड़े घरानों के टी०वी० में ज़्यादा खुलापन दिखाई देता है।

विकास पत्रकारिता का संबंध विकास से है, चाहे वह विकास उद्योग-धंधों का हो, सामाजिक हो या वैज्ञानिक हो, आर्थिक हो या प्राविधिक। यानि पत्रकारिता का संबंध केवल राजनीति से ही है, इस अवधारणा का अब खंडन हो चुका है कि केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों अपने पत्र-पत्रिकाएँ निकालती हैं, जैसे केंद्रीय सरकार की पत्रिका 'योजना' इसी प्रकार की पत्रिका है। इसी तरह प्रांतीय सरकारों के विभिन्न विभागों में हो रहे कार्यों का लेखा-जोखा संबंधित विभागों की पत्र-पत्रिकाओं में अक्सर छपता रहता है, लेकिन कमलापति त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक 'पत्रकारिता के सिद्धांत' में विकास पत्रकारिता के अंतर्गत भ्रष्टाचार और गबन के मामलों का ज़िक्र करते हुए लिखा है कि 'जहाँ जितना ही धन विकास के लिए उपलब्ध कराया जाता है, वहाँ उतना ही भ्रष्टाचार दिखाई पड़ता है।

पत्रकारिता का एक क्षेत्र है गाँव से संबंधित पत्रकारिता। देश के आज़ाद होने के बाद भी गाँवों में पर्याप्त मात्रा में सुधार नहीं हो पाया है। आज भी कितने ही ऐसे गाँव हैं, जहाँ नई चेतना नहीं पहुँची है, न ही वैज्ञानिक विकास के लक्षण दिखाई देते हैं। आज़ादी के पहले वाली जहालत, ग़रीबी, अंधविश्वास, जात-पाँत, ऊँच-नीच, अशिक्षा जस की तस है और जहाँ पहुँची है वहाँ के लोग जागरूक होते ही महानगर की ओर पलायन करने लगे हैं यानि ग्रामीण संस्कृति के ऊपर शहरी संस्कृति हावी होती जा रही है। लक-दक ज़िंदगी का इच्छुक पत्रकार भी पाँवों की ओर कम रुख करता है, जबकि भारत की अस्सी फीसदी आबादी की समस्याएँ भी हिमालयी ही होंगी। इसलिए ग्रामीण पत्रकारिता का महत्व शहरी पत्रकारिता से कम नहीं है। हाँ, वहाँ की पत्रकारिता में चमक-दमक नहीं, तीन या पाँच सितारा होटलों में आयोजित



होने वाली प्रेस-वार्ताओं का आनंद नहीं है, न ही लाल-नीली बत्ती वाली गाड़ियों की ठसक है। वहाँ हैं तो धूल-भरी पगडंडियाँ, गिरते-पड़ते झोंपड़े, कहीं आँधी तो कहीं तूफान, उसके बीच से झाँकती जिंदगी की हकीकत, लोकसंस्कृति, लोककलाएँ, लोकगीत, वहाँ के रीति-रिवाज यानि वहाँ भी बहुत कुछ है, जिसका संबंध ग्रामीण पत्रकारिता से है।

खेलकूद आज सभी देशों में पराक्रम, शौर्य, एकजुटता और अनुशासन के प्रतीक हैं। ऐसा शायद ही कोई अख़बार हो, जो कम से कम अपना एक पूरा पृष्ठ खेलकूद के लिए सुरक्षित न रखता हो। यदि न्यूज बहुत ब्रेकिंग हो तो मुख्य पृष्ठ को भी घेर लेती है और राजनीतिक घटनाक्रम को भी नीचे उतार देती है। इसी बात से इसका महत्व आँका जा सकता है। जाहिर है खेल-पत्रकारिता भी दुनिया-भर में बढ़ी-चढ़ी है। अब तो समाचार-पत्रों के अलावा बाज़ार में कितनी ही पत्र-पत्रिकाएँ हैं, जो खेलों पर ही केंद्रित रहती हैं। दैनिक समाचार-पत्रों में तो अपने खेल-पत्र को खेल, खेल के मैदान, खेल खिलाड़ी, खेल समाचार जैसे कितने ही शीर्षकों से सजाने की होड़ रहती है। आकाशवाणी का मज़ा बीते सालों में दूरदर्शन की वजह से कुछ फीका पड़ गया है। फिर भी क्रिकेट कमेंटरी सुनने का मज़ा जो रेडियो पर है, वह दूरदर्शन पर कहाँ, लेकिन सीधे प्रसारण के मामले में दूरदर्शन का भी कोई जवाब नहीं। केबिलों के जाल में तो चैनलों की भरमार हुई है, तबसे 24 घंटे का आनंद उठा सकते हैं। कहीं फुटबॉल तो कहीं हॉकी, कहीं टेनिस, और क्रिकेट तो सदाबहार है ही।

हमारे जीवन में फ़िल्मों की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है, इसका अंदाजा न केवल बॉलीवुड में बहुतायात में बनने वाली फ़िल्मों से लगाया जा सकता है, वरन् दुनिया-भर में मिलने वाले नायाब पुरस्कारों से भी लगाया जा सकता है। हॉलीवुड के बाद दूसरे नंबर पर सबसे अधिक फ़िल्में बनाने वाले बॉलीवुड की चमक-दमक, रिलीज और प्रीमियर के मौक़े पर होनेवाली पाँच सितारा पार्टियों से भी इसका पता चलता है। सितारों की निजी जिंदगी, उनके रोमांस, इनके साक्षात्कार, उनसे जुड़ी चटपटी ख़बरें प्रायः हर अख़बार में देखने को रोज़ाना मिल जाती है। कौन सितारा क्या खाता है, क्या पीता है, उसका स्टाइल कैसा है, उसका ड्रेस डिजाइन कैसा है-जैसी कितनी ही बातों में नवयुवक और नवयुवतियों की दिलचस्पी तो होती ही है। कितने बुजुर्ग भी उनके दीवाने हैं। वे चुपके-चुपके आहें भरते हैं न जाने क्या-क्या जानना चाहते हैं और उसे ऐसे ढंग से पेश करते हैं कि फ़िल्मों के शौकीन अख़बारों के पढ़ने से पहले वही पन्ना खोलते हैं। अख़बारों के अलावा कितनी ही पत्रिकायें अलग से निकलती हैं।

संसदीय पत्रकारिता कहने से ही बोध होता है कि संसद के दोनों सदनों लोकसभा और राज्यसभा से संबंधित पत्रकारिता का, लेकिन संसदीय के अंतर्गत राज्यों की विधानसभाओं और विधानपरिषदों की भी गतिविधियाँ आ जाती हैं। तात्पर्य यह है कि लोकसभा, राज्यसभा और प्रांतों की विधानसभा और विधानपरिषदों की कार्यवाही की रिपोर्टिंग करना। पत्रकारिता चाहे किसी प्रकार की हो, सावधानी तो सभी जगह बरतनी पड़ती है लेकिन संसदीय पत्रकारिता से जुड़े लोगों को बहुत ही सावधान रहना पड़ता है, क्योंकि ज़रा-सी असावधानी से सत्ता-पक्ष की भयंकर बदनामी होने का अंदेशा रहता है और विपक्ष उस पर कितना हंगामा कर सकता है, यह किसी से छिपी बात नहीं है। जहाँ तक इलैक्ट्रॉनिक मीडिया का सवाल है तो अब इन

कार्यवाहियों का सीधा प्रसारण भी होने लगा है इसलिए संसदीय पत्रकारिता बड़ी जोखिम-भरी है। क्या चीजें दिखाई जाएँ, क्या नहीं दिखाई जाएँ, क्या दिखाने से नेताओं की छवि जनता में कैसी बनेगी? इन सारी बातों का ध्यान भी संसदीय पत्रकारिता से जुड़े पत्रकार को रखना पड़ता है।

जनसंचार की दृष्टि से जो स्थान समाचार पत्र-पत्रिकाओं का है, उससे कम स्थान रेडियो और टेलीविजन पत्रकारिता का नहीं है। शायद इसलिए लेनिन का यह कथन मशहूर है कि—‘रेडियो बिना कागज़ और दूरी का समाचार-पत्र है।’ यानि जो कुछ समाचार-पत्रों में मुद्रित रूप में होता है, वही सब-कुछ रेडियो में श्रव्य रूप में। बाकी गुणवत्ता, विविधता और सुगमता की दृष्टि से दोनों में अंतर हो सकता है। जहाँ तक टी०वी० पत्रकारिता का सवाल है तो वह समाचार-पत्रों और रेडियो, दोनों से आगे की कड़ी है—जहाँ सुन भी सकते हैं और देख भी सकते हैं। अब तो टी०वी० स्क्रीन की पटरी में तैरती और आती-जाती इबारतों को पढ़ भी सकते हैं। आँखों-देखा हाल और सीधा प्रसारण रेडियो में भी होता है, लेकिन टी०वी० में सचित्र और जीवंत तकनीक और कला की दृष्टि से टी०वी० ने आज बाजी मार ली है। घटती हुई घटना को देखना टी०वी० पर ही संभव है, लेकिन जब कभी टी०वी० पर भी फ़ाइल चित्र या वीडियो फ़ोन के ज़रिए रिपोर्टिंग न्यूज़ रीडर के मेकअप लगे सलौने चेहरे के अलावा कुछ खास अंतर नहीं रह जाता। हाँ ग्राफिक्स आँकड़े सर्वे ज़रूर सामने दिखाई पड़ते हैं। और सरकार विरोधी सरकारों के संसर्ग के मामले में तो रेडियो और दूरदर्शन दोनों एक तरह से ही हैं। हाँ, निजी हाथों में चलने वाली पत्रकारिता का रुख़ सरकारों के प्रति कुछ ज़्यादा कड़ा दिखाई देता है, लेकिन सभी का नहीं। कुछ एक टी०वी० चैनल सरकार के मिट्टू भी हैं। इसके हमदर्द और ख़ैरख़्वाह भी हैं। बदले में फ़ायदे होते होंगे, कहना अत्युक्ति नहीं। वैसे सरकारों के प्रति निरक्षेप और तटस्थ होना आज के ज़माने में कठिन ही नहीं, बहुत कठिन है।

निष्कर्षतः, कहा जा सकता है कि पत्रकारिता के क्षेत्र में दिनों-दिन वृद्धि हो रही है, परंतु द्विवेदी और छायावादयुगीन पत्र-पत्रिकाओं का जो स्तर था, जो उद्देश्य था, वह आज की पत्रकारिता में नहीं परिलक्षित होता। फिर भी पत्रकारिता ने हिंदी-साहित्य के भंडार को भरने में काफ़ी सहयोग दिया है। पत्रकारिता के मापदंड, मूल्य, उद्देश्य एवं क्षेत्र निरंतर बदल रहे हैं। पत्रकारिता सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही रूपों में सत्ता और जनता को प्रभावित करने में सक्षम हो गई है। अतः यह क्षेत्र पारदर्शिता, निष्पक्षता, तार्किक तटस्थता एवं जवाबदेही की अधिक माँग करता है। जैसाकि निम्न पंक्तियों में स्पष्ट है ‘एक लोकतंत्र में सत्य के संवाद में खुला विवाद खड़ा करने हेतु समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता को एक पवित्र ज्योति के समान मानना चाहिए।’<sup>1</sup>

### संदर्भ

1. पत्रकारिता के सिद्धांत एवं मूल तत्त्व, मनीषा द्विवेदी, पृ० 57

## पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी का साहित्यिक प्रदेय

राजबाला, शोध-छात्रा

डॉ० महेश 'दिवाकर' शोध निदेशक

अध्यक्ष, एसो० प्रोफेसर हिंदी विभाग,

जी०एस०हिंदू (पी०जी०) कॉलेज, चाँदपुर (बिजनौर) उ०प्र०

भारतेंदुयुग में हिंदी की व्यापक स्वीकृति और प्रतिष्ठा को लेकर सार्थक प्रयत्न करनेवाले साहित्य-मनीषियों में पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी अग्रगण्य हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उनके कृतित्व की सराहना इन शब्दों में की है— 'संवत् 1910 के लगभग ही विलक्षण प्रतिभाशाली विद्वान पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी के व्याख्यानों और कथाओं की धूम पंजाब में आरंभ हुई। जालंधर के पादरी गोकुलनाथ के व्याख्यानों के प्रभाव से कपूरथला नरेश महाराज रणवीरसिंह ईसाई मत की ओर झुक रहे थे। पंडित श्रद्धाराम तुरंत 1920 में कपूरथले पहुँचे और उन्होंने महाराज के सब संशयों का समाधान करके प्राचीन वर्णाश्रमधर्म का ऐसा सुंदर निरूपण किया कि सब लोग मुग्ध हो गए।...अपने समय के वे एक सच्चे हिंदी हितैषी और सिद्धांत लेखक थे।'<sup>1</sup>

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी के कृतित्व का महत्त्व स्पष्ट रूप से उद्धृत किया है, किंतु डा० नगेंद्र द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य के इतिहास-ग्रंथ में आचार्य रामचंद्र तिवारी ने उनके कृतित्व के महत्त्व की उपेक्षा की है। उन्होंने लिखा है कि 'भारतेंदुयुग हिंदी-गद्य के बहुमुखी विकास का युग है। इसके पूर्व जिन गद्य-लेखकों राजा लक्ष्मणसिंह (1826-1896), राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद (1823-1895), नवीनचंद्रराय (1837-1890), और श्रद्धाराम फिल्लौरी-का उल्लेख इतिहास-ग्रंथों में किया गया है, उनकी कृतियों का साहित्यिक महत्त्व नहीं के बराबर है। राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद ने छात्रों के लिए पाठ्य पुस्तक तैयार की। नवीन चंद्रराय के साहित्य की मूल प्रेरणा धार्मिक है और श्रद्धाराम फिल्लौरी भी, धार्मिक व्यक्ति थे।'<sup>2</sup>

इस अभिमत से स्पष्ट है कि डॉ० रामचंद्र तिवारी ने श्रद्धाराम फिल्लौरी को धार्मिक व्यक्ति बताते हुए उनके साहित्यिक महत्त्व को पूर्णतया अस्वीकृत किया है। विचारणीय है कि क्या धार्मिक व्यक्ति होने के कारण पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी अथवा अन्य कोई रचनाकार साहित्यिक महत्त्व से रहित हो सकता है? भारतवर्ष में धर्म और साहित्य परस्पर इस प्रकार संयुक्त और समन्वित हैं कि उन्हें अलग कर पाना असंभव है। प्रत्येक भारतीय भाषा का साहित्य धर्म से अनुप्राणित है। कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, रसखान, नानक, नामदेव, महाप्रभु

चैतन्य, कंबन, विवेकानंद यहाँ तक कि गांधी, तिलक आदि के साहित्य की मूल प्रेरणा भी धर्म की धुरी पर ही गतिशील मिलती है। जब भक्तकवियों का धर्म-आधारित साहित्य साहित्य की श्रेणी में प्रतिष्ठापनीय है तो पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी के साहित्य को धार्मिक मान्यताओं के निकट होने के कारण कैसे अस्वीकृत किया जा सकता है? पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी की हिंदी रचनाएँ भाग्यवती (उपन्यास) मुक्तावली (काव्य) आदि उनके साहित्यिक कृतित्व की सशक्त साक्षी-कश्तियाँ हैं। इन कश्तियों के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि डॉ॰ रामचंद्र तिवारी आदि हिंदी-साहित्येतिहास-लेखकों ने फिल्लौरी जी के साहित्यिक प्रदेय का सही आकलन नहीं किया है और उनके संबंध में भ्रामक स्थापनाएँ देकर भ्रांतियाँ निर्मित की हैं। इन भ्रांतियों के निवारण एवं पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी के साहित्यिक प्रदेय का सम्यक् मूल्यांकन करने के उद्देश्य से उनके साहित्य का अनुशीलन किया जाना अपेक्षित है।

पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी का जन्म आश्विन शुक्ल प्रतिपदा संवत् 1894 विक्रमाब्द (सन् 1837 ई०) में पंजाब प्रांत के जालंधर ज़िले में स्थित 'फिल्लौर' नामक स्थान पर हुआ था। वे अठवंश जोशी सारस्वत ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए थे और ब्रह्म श्रोत्री, बह्य निष्ठ, वेदशास्त्र-मर्मज्ञ विद्वान् थे। उनके पिता का नाम पंडित जयदयाल और माता का नाम श्रीमती विष्णुदेवी था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा गुरुमुखी में हुई। यही उनकी मातृभाषा भी थी। सन् 1849 ईसवी में पंजाब पर अँग्रेजों ने अधिकार किया। उस समय बालक श्रद्धाराम की अवस्था मात्र 12 वर्ष की थी किंतु चतुर, प्रबुद्ध और संवेदनशील होने के कारण वे अपनी देशकाल की परिस्थितियों से परिचित थे और आत्मगौरव एवं देश-कल्याण के प्रति सजग थे। सन् 1850 ई० में उन्होंने पंडित रामचंद्र से संस्कृत और सैय्यद अबदुल्लाशाह से फारसी की शिक्षा प्राप्त की। संगीत, ज्योतिष, रमल आदि महत्त्वपूर्ण विषयों का ज्ञान प्राप्त कर उन्होंने हिंदूधर्म-ग्रंथों का गंभीर अध्ययन किया। इसप्रकार उनकी बौद्धिक सामर्थ्य और सूझ-बूझ उत्तरोत्तर विकसित होती गई।

विद्याध्ययन के अनंतर भी पंडित श्रद्धाराम का स्वाध्याय सतत चलता रहा। सन् 1855 ईसवी में उन्होंने आजीविका-प्राप्ति के लिए कथावाचक का कार्य प्रारंभ किया और 'महाभारत' आदि पौराणिक ग्रंथों के माध्यम से समाज-सुधार एवं देश-प्रेम की शिक्षा देने लगे। परिणामतः अँग्रेजी सरकार के कोषभाजन बने और अँग्रेज कुमेदान फिल्लौर द्वारा बंदी बना लिए गए। अँग्रेजी सत्ता ने सजा के रूप में नगर से निष्कासित कर दिया। तब पंडित श्रद्धाराम ने पटियाला, हरिद्वार, ऋषिकेश आदि तीर्थस्थलों की यात्राएँ कीं तथा देशाटन द्वारा स्वयं को अनुभव-समृद्ध बनाया। सन् 1858 ई० में वे पादरी न्यूटन के संपर्क में आए और 'मिशन प्रेस, लुधियाना' में पुस्तकों का अनुवाद-कार्य करके आजीविका प्राप्त की। इसी अनुवाद कार्य ने उनमें मौलिक लेखन की रुचि जाग्रत की और वे 'योग वाशिष्ठ' की कथा लिखने में प्रवृत्त हुए। आत्मगौरव के धनी पंडित श्रद्धाराम ने 1861 ई० में मिशन प्रेस की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया तथा हिंदूधर्म के व्याख्याता के रूप में पंजाब में यात्राएं करने लगे। उनकी व्याख्यान-शैली अत्यंत मार्मिक थी और तथ्यपूर्ण, तर्कसम्मत विश्लेषण द्वारा वे श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करने में सदा सफल रहते थे। उनके महान् व्यक्तित्व के इस पक्ष की साक्षी उनके पट्ट शिष्य श्री स्वामी तुलसीदेव ने इन शब्दों में दी है— 'देश में भ्रमण कर सर्व-वर्ण, आश्रम, मत, पंथ आदिक के मानव मात्र को दुराचार से बचाकर शुभाचार में लगाने वाला, सनातन धर्म

का प्रबल मुक्ति प्रमाणों से समर्थन करनेवाला, ओजस्वी प्रभावशाली यथार्थ उपदेष्टा, उन्नीसवीं शताब्दी में आपसे बड़ा प्रथम पंजाब में कोई धर्माचार्य नहीं हुआ। आप संस्कृत, हिंदी, पंजाबी, फ़ारसी के पंडितों में अग्रगण्य, लेख व भाषण में अतुल्य, आशुकवि, अद्भुत ग्रंथों के अनुपमकर्ता, प्रख्यात नेता, रिफार्मर होने के कारण राजा-प्रजा दोनों से पूजे गए।<sup>3</sup>

देश और समाज के कल्याण के लिए सतत प्रयत्नरत रहनेवाले पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी ने साहित्य-सृजन के अतिरिक्त अपने जन्मस्थान फुल्लौर और उपदेश-स्थल लाहौर में 'हरिज्ञान मंदिर' स्थापित किए, जो आज भी लोकमंगल के लिए सक्रिय हैं। पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी निसंतान थे, अतः उनकी वंश-परंपरा उन पर ही विराम पा गई। आषाढ़ कृष्णपक्ष त्रयोदशी को संवत् 1938 विक्रमी (1881 ई०) में उनका स्वर्गवास हुआ।

हिंदूधर्म और संस्कृति के माध्यम से भारतीय शास्त्रीय चिंतन परंपरा को प्रतिष्ठित करनेवाले अप्रतिम विद्वान पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी ने संस्कृत, हिंदी एवं पंजाबी। इन तीन भाषाओं में श्रेष्ठ साहित्य की सृष्टि की। उनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं—

1. संस्कृत कृतियाँ : 'दुर्जन मुख्य चेपटिका; 'तत्त्व-दीपक; 'धर्मकमेटी; 'असली मजहब; 'पाक-साधिनी; 'कोतक-संग्रह; 'जीवनी चरित्र'।

2. हिंदी-कृतियाँ : 'सत्य अम्रित प्रवाह (दो भाग), 'धर्म संवाद, 'धर्म रकशा, 'उपदेश संग्रह' (दो भाग), 'सत उपदेश, 'भागवती, 'सत्यधर्म मुक्तावली, 'रमल, 'कामधेनु अते बीजमंत्र'।

3. पंजाबी कृतियाँ : 'सिक्खां दे राज्य दी विधिआं', 'पंजाबी बातचीत, 'बारामाह, 'ट्रेक्टर और इंजील के अनुवाद, 'किशन भगत दे वैत'।

इस प्रकार पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी की रचनाएँ तीन भाषाओं में प्रस्तुत हुई हैं। किंतु प्रस्तुत आलेख उनकी हिंदी-रचनाओं पर केंद्रित है, अतएव हिंदी की कृतियाँ ही विशेष रूप से विवेचनीय हैं। हिंदी में फिल्लौरी जी ने गद्य एवं पद्य दोनों विधाओं में उच्चकोटि के साहित्य का सृजन किया है।

पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी उच्चकोटि के गद्य-लेखक थे। वे हिंदी के प्रथम उपन्यासकार थे। 'भाग्यवती' उनकी प्रथम औपन्यासिक कृति है। यह हिंदी की भी प्रथम उपन्यास-रचना है। हिंदी-साहित्य के इतिहास-लेखकों ने लाला श्रीनिवासदास के उपन्यास 'परीक्षागुरु' को हिंदी भाषा का प्रथम उपन्यास बताया है। 'परीक्षागुरु' बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक की रचना है, जबकि 'भाग्यवती' का रचनाकाल सन् 1877 ईसवी है। इस प्रकार कालक्रम की दृष्टि से 'भाग्यवती' ही हिंदी की प्रथम औपन्यासिक रचना है। इस उपन्यास में उपन्यास के समस्त तत्व-कथानक, पात्रयोजना, संवाद, वातावरण, भाषा-शैली और उद्देश्य मौलिक धरातल पर प्रस्तुत किए गए हैं। 'भाग्यवत' की कथावस्तु उस युग के लिए सर्वथा क्रांतिकारी है। वह न केवल 1877 में अपने रचनाकाल के लिए प्रासंगिक थी, बल्कि आज 143 वर्ष पश्चात् सन् 2011 में भी तथैव प्रासंगिक और मार्मिक है। स्त्री-विमर्श की दृष्टि से यह रचना विशेष महत्त्व की है, क्योंकि इसमें भारतीय नारी से बिना उसकी पारंपरिक भारतीय सांस्कृतिक छवि छुड़ाए उसे स्वातंत्र्य और महत्त्व के शिखर पर प्रतिष्ठित किया गया है। भारतीय नारी की समस्त मर्यादाओं का परिपालन करती हुई 'भाग्यवती' सीता, सावित्री,

अनुसुइया, गार्गी, मैत्रेयी आदि पौराणिक पात्रों की ही नहीं। बल्कि कस्तूरबा और सुभद्राकुमारी चौहान जैसी आधुनिक भारतीय नारियों की छवि को भी प्रस्तुत करती है। आदर्श पुत्री, आदर्श पत्नी, आदर्श माता, आदर्श गृहिणी-कुलवधू और आदर्श सामाजिक नारी के व्यावहारिक स्वरूप को अत्यंत सफलतापूर्वक प्रस्तुत करती हुई 'भाग्यवती' औपन्यासिक कृति नायिका के समस्त औदास का संवहन करती है। वैसी सफल स्त्री-सृष्टि परवर्ती उपन्यास साहित्य में दुर्लभ है। यथार्थ और आदर्श का उत्तम समन्वय करते हुए उपन्यासकार ने इस उपन्यास में काल्पनिक पात्र 'भाग्यवती' को जीवंत बना दिया है। उपन्यास के संवाद सहज-स्वाभाविक किंतु सर्वत्र ज्ञानगर्भित हैं। उपन्यास में सामाजिक-पारिवारिक वातावरण के विविध संदर्भों की यथार्थ प्रस्तुति ने न केवल इसकी विश्वसनीयता में वृद्धि की है, अपितु जीवन की विविध समस्याओं को भी समाधान-सहित प्रस्तुत किया है। स्त्री-शिक्षा, लिंगभेद, विवाह आदि उत्सवों पर अपव्यय, पारिवारिक विद्वेष, संयुक्त परिवारों के विघटन, चोरों-ठगों से आत्मरक्षा अंधविश्वासों से मुक्ति आदि अनेक सामाजिक-पारिवारिक समस्याओं के शाश्वत समाधान इस उपन्यास में समुपलब्ध हैं। इसकी भाषा व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध और सर्वथा विषयानुरूप एवं यात्रानुकूल है। बीच-बीच में आवश्यकता के अनुसार संस्कृत-साहित्य से सुभाषितों-श्लोकों को प्रस्तुत करके उपन्यासकार ने भाषा को सूक्ति-समृद्ध बनाया है। इसका उद्देश्य तत्कालीन भारतीय जीवन की समस्याओं को रेखांकित करते हुए उनके युक्तियुक्त व्यावहारिक समाधान सुझाना एवं जनसामान्य के जीवन-स्तर को निर्दोष एवं अधिक-से-अधिक स्वस्थ और सुविधा-संपन्न बनाना है। इस प्रकार 'भाग्यवती' उपन्यास कला की दृष्टि से सर्वथा श्रेष्ठ एवं मौलिक रचना है। डॉ० हरमहेंद्रसिंह वेदी ने इस उपन्यास के संबंध में इस प्रकार टिप्पणी की है- 'हिंदी-साहित्य के उपन्यास के इतिहास में पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी के इस उपन्यास को उच्च स्थान नहीं दिया गया। कारण कुछ भी रहा हो हिंदी प्रदेशों के इतिहासकारों ने पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी की इस महत्त्वपूर्ण देन को उस रूप में स्वीकार नहीं किया, जिसके लिए वे अधिकारी थे।'<sup>4</sup>

डॉ० वेदी का यह अभिमत असत्य नहीं है। पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी अहिंदीभाषी प्रदेश के हिंदी-रचनाकार थे और उनकी यह रचना हिंदीभाषियों के मध्य प्रायः अनुपलब्ध रही और अपरिचय के कारण अपेक्षित महत्त्व प्राप्त करने से वंचित रह गई। अब इस ओर पुनर्मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है।

पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी उच्चकोटि के कवि भी थे। 'सत्यधर्म मुक्तावली' और 'शतोपदेश' उनकी प्रख्यात एवं महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। उनके काव्य की लोकप्रियता की पुष्टि उनके द्वारा रचित एक आरती गीत 'ओम जय जगदीश हरे' मात्र से हो जाती है। न केवल संपूर्ण हिंदीभाषी भारतीय क्षेत्र में अपितु विदेशों तक में यह आरती लंबे समय से गाई जाती रही है। यह आश्चर्यजनक एवं चिंतनीय है कि इस इतनी लोकप्रिय आरती के गायकों को उसके रचनाकार का नाम ज्ञात नहीं है। हिंदी के समर्पित साधकों की उपेक्षा, अनादर और विस्मरण का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है? उक्त आरती गीत अपने भागवत् औदात्य और प्रभाव-संपन्न शिल्प-वैशिष्ट्य के कारण अकेला ही पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी के काव्य-कृतित्व को महिमामंडित बनाने के लिए पर्याप्त है।

पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी की काव्य-संवेदना का मूल स्वर भक्तिपरक है। वे

धार्मिक- साहित्य के गंभीर अध्येता थे और वैष्णवी संस्कारों से समृद्ध निष्ठावान ब्राह्मण थे। कथावाचक होने के कारण भी उनका व्यक्तित्व भक्ति-भाव से ओतप्रोत था। इसलिए उनकी काव्य-कृतियाँ भक्तिभाव से परिपूर्ण रहीं। उन्होंने विनय के पद विशेष रूप से रचे। निम्नांकित गीत में उनकी भक्ति-भावना की चरम पुष्टि दिखाई देती है-

रट राम सदा हमारी रसना।  
हरि-ध्यान धरो तुम मोरे मना।  
जिन कानन में हरि-नाम नहीं।  
जल जाँ कहीं मेरे कान नहीं।  
जिन नयनन में हरि रूप नहीं।  
तिन जाँ एकांत निकाल कहीं।  
मन जो न करै उपकार जरा।  
नहीं जीवत है लखिए सो मरा।  
मति जो हरि-भक्ति विद्वान रहे।  
धिक ताहि सदा मद सिंधु बहे।  
हरि कीरति की श्रद्धा कलि में।  
भव-पार करे सबको पल में।<sup>5</sup>

समीक्ष्य कवि स्वर्गीय फिल्लौरी जी की भक्ति-भावना दास्यभाव की है। उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास की भाँति स्वयं को अपने उपास्य का दास निरूपित किया है। 'सत्यधर्म मुक्तावली' के पदों में उनकी दास्यभावना पुनः पुनः प्रकट हुई है-

हे हरि हम दास हैं, तुम पाप मिटावो।  
द्वार तमुरे आ पड़े, हमें ना भटकावो।<sup>6</sup>

अब मैं हरि चरनन को दास  
मोको मत रोको रे भाई।  
काम क्रोध के वश में मेरी  
सारी ओध विहाई।<sup>7</sup>

कवि की भक्ति-भावना विशुद्ध सात्त्विक है। वह आडंबर और पाखंड से परे है। निम्नांकित पंक्तियों में इस तथ्य की पुष्टि होती है-

साधो कहा बनाबहु भेख।  
काम क्रोध मद लोभ तज सिमरो पुरुष अलेख।  
विषवत् जान त्याग जग के सुख, सबको सम कर पेख।  
छाड़ कुसंग गहो सत्संगत तब उधरत है लेख।  
माला तिलक जटा भगवें पट धारत हो बहु रेख।  
तन को साधु-साधु नहिं कहियत, मन को साधु विशेष।  
प्रकरो चरण शरण गोविंद की सब जग झूठो देख।  
'श्रद्धा' हरि गुण गावो निश-दिन लगे रेख पर मेख।<sup>8</sup>

पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी की भक्ति-भावना केवल ईश्वर-भक्ति तक ही सीमित नहीं है। उसमें मानव-सेवा भी समाहित है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य ईश्वर का रूप है—

घट-घट पूरण है परमात्म  
कोऊ न जानहु दूजा।  
'श्रद्धा' सहित सबन को पोषउ  
मुक्ति-पंथ यह पूजा।<sup>9</sup>

स्वामी विवेकानंद ने जिस दरिद्रनारायण की उपासना का संदेश दिया था, उस दरिद्र नारायण सहित सबकी सेवा का संदेश पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी ने भी दिया। इससे स्पष्ट है कि उनकी भक्ति-भावना नितान्त वैयक्तिक होकर भी सर्वथा समाज-सापेक्ष थी। उसमें लोकमंगल का स्वर मुखर हुआ है तथा कवि के समय की युगीन अपेक्षाओं की पूर्ति की संभावनाएँ प्रबल हैं।

पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी के काव्य में दार्शनिक चिंतन की गूँज सर्वत्र व्याप्त है। उन्होंने शंकराचार्य के वेदांत-दर्शन के अनुरूप 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो बह्ममैव नापरः' का उद्घोष किया है। 'सत्यधर्म मुक्तावली' के अनेक पदों में जगत् को मिथ्या बताया गया है—

देखन मात्र जगत है सुंदर  
ज्यों विश भरी मिटाई।  
भली प्रकार विचार कियो जब  
अंत समय दुखदाई।

झूठा संग स्नेह जगत का  
झूठी सब चतुराई।  
श्रद्धा-सहित गाय हरि के गुन  
होवे अंत सहाई।<sup>10</sup>

चतैर चित में सोच पराणी,  
यह जग झूठ पसारा है।  
चार दिनन की खेल पसारी  
ओड़क चल्लन हारा है।<sup>11</sup>

'भक्ति' और 'दर्शन' के समान ही काव्यतत्त्व रस आदि भी फिल्लौरी जी के काव्य की विशेष निधि हैं। जहाँ उनकी भाव-समाधि लगी है, वहाँ उनका काव्यरस से परिपूर्ण है। कृष्णभक्ति युक्त पदों में वे महाकवि रसखान के समान रसवर्षण में सफल रहे हैं। इस संबंध में एक पद इस प्रकार दृष्टव्य है—

बाँसुरी बजैया भैया बलराम जू के  
गैथा वन मों चरैया वाकी विपता हरा करैं।  
छोड़ आन पौर को भजैया जो कन्हैया जू के  
जसुदा के छैया को एकंत हो ररा करैं।  
नसे काल-व्याल याको नाम स्वपने ही कहो



श्रद्धा सो कहो तो न बंधन रहा करें।  
श्याम जो कृपा करें डरा के त्रिदेव वा ते,  
हा करे न दंड यमराज को भरा करें।<sup>12</sup>

उपर्युक्त पद में प्रयुक्त 'बजैया भैया', 'काल-व्याल' आदि प्रयोग पदमैत्री के काव्य-सौंदर्य को विशेषतः ज्ञापित करते हैं। यद्यपि कवि की भाषा कहीं-कहीं पर पंजाबी प्रभाव के कारण अपने गौरव से दूर हटी है, तथापि उसमें अलंकार आदि काव्य-प्रतिमानों का सौंदर्य सर्वत्र सुलभ है। 'श्रद्धा' शब्द के प्रयोग में श्लेष की प्रस्तुति अत्यंत प्रभावपूर्ण है और बार-बार हुई है। अनुप्रास के सफल प्रयोग में भी कवि बेजोड़ है। इस तथ्य की पुष्टि निम्नांकित पंक्तियों में होती है—

कातक किंचित भरम नहीं, पड़ी भरम को मरम।  
सो भ्रम भ्रमहं निवार के, भयो भरम को भरम।<sup>13</sup>  
फिरत-फिरत फिरके फिरी, फिरी आपनी पौर।  
घाशर हैं कल्लु जानती, भई ओर की ओर।<sup>14</sup>

इस प्रकार साहित्यकार श्रद्धाराम फिल्लौरी का काव्य साहित्य की अमूल्य निधि है। आधुनिक हिंदी-साहित्य के सृजन-संसार में वे नींव की ईंट की भाँति प्रतिष्ठित हैं। गद्य और पद्य दोनों में समान रूप से गतिमान फिल्लौरी जी के साहित्यिक अवदान का पुनर्मूल्यांकन अपेक्षित है। अतएव इस दिशा में शीघ्रातिशीघ्र विस्तृत प्रयत्न किया जाना चाहिए ताकि अहिंदी भाषी क्षेत्र के इस हिंदीसेवी साहित्यकार का समुचित सत्कार संभव हो सके।

### संदर्भ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास (आचार्य रामचंद्र शुक्ल), पृ० 304
2. हिंदी साहित्य का इतिहास (सं० डॉ० नगेंद्र), पृ० 477
3. पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी ग्रंथावली (खंड तीन) पृ० 98-99
4. पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी ग्रंथावली (खंड तीन) दो शब्द, पृ० अमुद्रित
5. पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी ग्रंथावली (खंड दो) पृ० 17
6. वही, पृ० 13
7. वही, पृ० 13-14
8. वही, पृ० 31
9. वही, पृ० 36
10. वही, पृ० 13
11. वही, पृ० 31
12. वही, पृ० 42
13. वही, पृ० 57
14. वही, पृ० 61

## विष्णु प्रभाकर के नाटकों में नारी की विविध समस्याएँ

कु० गीतिका चौहान,

शोधार्थी (हिंदी)

महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली (उ०प्र०)

डॉ० महेश 'दिवाकर' डी० लिट्०

अध्यक्ष, रीडर एवं शोध निर्देशक

हिंदी विभाग, गुलाबसिंह हिंदू कॉलेज

चाँदपुर-स्याऊ, बिजनौर (उ०प्र०)

भारतीय सभ्यता और संस्कृति के साथ धर्म का घनिष्ठ संबंध है। धर्म हमारी संस्कृति का आधार है। भारत में धर्म की विशेष महत्ता है। धर्म के आधार पर ही हमारे जीवन में धार्मिकता का उदय हुआ है। आधुनिक युग में भी धर्म को प्राथमिकता दी जाती है। शहरों व गांवों में देखा जाता है कि आज भी राम एवं सीता की पूजा होती है। दशहरे एवं दिवाली के त्योहारों को खूब धूमधाम से मनाया जाता है। घर-घर में राम का पाठ तथा गुणगान किया जाता है, क्योंकि हमारा समाज उन्हें धर्म का संस्थापक मानता है। रामायण को धार्मिक ग्रंथ मानकर हर घर में उसकी पूजा की जाती है। डॉ० रामप्रसाद मिश्र ने धर्म की परिभाषा करते हुए लिखा है, 'धर्म वह तत्त्व है, जो शाश्वत मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हुए समाज को सुव्यवस्थित रखता है।'<sup>1</sup>

### धर्म एवं मनुष्य

सभ्यता और संस्कृति का घनिष्ठ संबंध माना जाता है। मनुष्य समाज का सक्रिय सदस्य है, इसलिए वह भी सभ्यता एवं संस्कृति से जुड़ा हुआ है। संस्कृति के विकास के साथ समाज का विकास होता है। समाज का विकास जाति का विकास माना जाता है। मनुष्य प्रारंभ से ही धर्म से जुड़ा हुआ है। धर्म प्राचीनकाल से ही हमारी संस्कृति का प्रमुख अंग रहा है। धर्म का प्राचीनकाल से संस्कृति का प्रमुख अंग होने के कारण ही भारतीय लोगों का जीवन चिंतन इससे काफ़ी प्रभावित हुआ है। आज भी मनुष्य विविध रूपों से धर्म से जुड़ा हुआ है। डॉ० भोलानाथ तिवारी के अनुसार— 'धर्म की भावना जब-जब उभरकर विशेष रूप से सामने आई है तो भाषा और साहित्य को उसने प्रभावित किया है। हिंदी के आदिकाल में कई प्रकार के धार्मिक आंदोलन उभरे हैं। कुछ की जड़ें दक्षिण में थीं, तो कुछ की पूरब में। भक्तिकाल के आते-आते हमारे साहित्य का मुख्य स्वर ही धर्मप्रधान हो गया।'<sup>2</sup>

धर्म जीवन को दिशा और गति प्रदान करता है। धर्म के आधार पर जीवन के लक्ष्य इस प्रकार मानते हुए गोपालकृष्ण भुस्करे ने कहा है— 'अपने यहाँ जीवन के चार लक्ष्य पुरुषार्थ माने जाते हैं— 1. धर्म, 2. अर्थ, 3. काम, 4. मोक्ष।'<sup>3</sup>

भारतीय समाज में धर्म के नाम पर रूढ़ियों अंधविश्वास जादू-टोने, देव-पूजा, देवी-पूजा, मूर्तिपूजा इत्यादि का प्रचलन है। सबसे अधिक रूढ़ियों एवं अंधविश्वास विवाह के साथ जुड़े हैं। कुछ स्वार्थियों ने अपने स्वार्थ के कारण अनेक प्रकार की अनावश्यक विधियों से उसे इतना जटिल बना दिया है कि वह आनंददायी न होकर बंधन हो गया है।

विष्णु प्रभाकर जी जागरूक और प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं। उन्होंने समाज में उत्पन्न समस्याओं को देखा, परखा और समझा तथा अपने नाटकों की संवेदना का आधार बनाया। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व की समस्याओं के साथ-साथ आज़ादी के बाद सामाजिक जीवन में हुए परिवर्तन तथा नई उत्पन्न समस्याओं का चित्रण इन्होंने पूर्ण सजग रूप से किया। नारी-जीवन से संबंधित धार्मिक समस्याओं में विशेषतः विवाह से संबंधित समस्याओं को उजागर किया है। उन्होंने प्रेम-विवाह, अंतरजातीय विवाह, दहेज़ एवं अनमेल विवाह के साथ-साथ विधवा-विवाह की समस्या पर गंभीरता से प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त परित्यक्ता नारी की समस्या, पति द्वारा पत्नी को तलाक तथा प्राचीन अंधविश्वासों और रूढ़ियों से ग्रस्त नारी की समस्याओं को भी उजागर किया है।

### **वैवाहिक समस्याएँ**

पुरुष और नारी एक-दूसरे के पूरक हैं। इस भाव-पूर्ति और व्यवस्था के लिए समाज के नियमानुसार उन्हें विवाह-सूत्र में परिणत होना पड़ता है। प्राचीन काल से ही विवाह को धार्मिक संस्कारों से जुड़ी सामाजिक संस्था माना गया है। विवाह से परिवार, परिवार से कबीले तथा कबीलों से समाज का निर्माण होता है। विवाह ही व्यक्ति को पूरा बनाने का साधन है। विवाह सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक विकास के लिए अत्यंत पवित्र संबंध है। पहले अविवाहित व्यक्ति को धार्मिक दृष्टि से यज्ञहीन माना जाता था तथा विवाह को एक यज्ञ की संज्ञा दी जाती थी। प्रारंभ से ही हिंदुओं के विवाह को धार्मिक कृत्य माना जाता है, क्योंकि इसे तभी पूर्ण समझा जाता है जब पवित्र मंत्रों के उच्चारण के साथ-साथ रीति-रिवाज का पालन किया जाए। अतः विवाह स्त्री-पुरुष को समीप लाने का स्थाई संबंध है।

आज पुरुष के साथ-साथ नारी भी शिक्षित है। नारी शिक्षित होकर अपने अधिकारों के प्रति सजग है। उसे अपनी स्वतंत्रता की पहचान हो चुकी है। शिक्षा और स्वतंत्रता के कारण ही नारी में एक चेतना आई है, जिससे उसने अपने जीवनसाथी की तलाश करने के लिए भी स्वेच्छा को आगे लाती है। बाधा आने पर विद्रोह भी करने लगी है।

### **प्रेम-विवाह से संबंधित समस्याएँ**

आधुनिक समाज में 'प्रेम-विवाह' एक मान्य प्रथा बन गई है। आधुनिक भारतीय समाज पर पश्चिम सभ्यता ने आधिपत्य कर लिया है। आज हिंदूसमाज के कितने ही नवयुवक-युवतियाँ प्रेम-विवाह के सूत्र में बँधते हैं, इस बारे में अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

प्रभाकर के नाटक 'टूटते परिवेश' में मनीषा और दीप्ति के माध्यम से नारी के प्रेम-विवाह की समस्या को चित्रित किया गया है। मनीषा 25-26 वर्ष की युवती है, जो कालेज में लेक्चरर है। मनीषा अपने ही कालेज के असद नाम के एक लेक्चरर से प्रेम करती

है। वह असद से विवाह करने का वायदा कर चुकी है। मनीषा के पिता विश्वजीत और माता करुणा को इन दोनों की शादी करने पर आपत्ति है 'मैं जा रही हूँ वहीं जहाँ मैं चाहती हूँ। आप चाहें तो इसे पाप कह सकते हैं, विद्रोह भी कह सकते हैं, लेकिन मैं इसे अधिकार कहती हूँ। मैं इस अधिकार के लिए ही यह घर छोड़कर जा रही हूँ।'<sup>14</sup>

मनीषा असद से ब्याह कर लेती है। मनीषा अपने विवाह की सूचना पिता विश्वजीत को फ़ोन पर देती है। विश्वजीत की सबसे छोटी पुत्री दीप्ति कालेज में पढ़ रही है। उसकी मानसिकता 'नयेपन और उन्मुक्तता' के लिए छटपटा रही है। उसकी दृष्टि में स्वतंत्रता का अर्थ उच्छृंखलता है। अब अपनी बड़ी बहन मनीषा के पदचिह्नों पर चलती है। उसे कालेज के नीतिन नामक युवक से प्रेम है। वह नीतिन से शादी करना चाहती है, जिसके लिए उसे केवल अपने कालिग होने का इंतजार है। विश्वजीत और करुणा दीप्ति की इन गतिविधियों से परेशान है। दीप्ति माता-पिता की परवाह न करके बालिग होने से एक सप्ताह पहले ही घर छोड़कर होस्टल में रहने चली जाती है। सिगरेट पीना और देर तक मित्रों के साथ घूमना का शौक है। इस संदर्भ में दीप्ति, शरत एवं करुणा से कहती है, 'आप क्यों नहीं सोचतीं कि छात्रावास में सुविधा है; मित्रों के साथ घूमती आवारागर्दी तो नहीं करती, आपको परेशानी होगी यह सोचकर कभी-कभी नीतिन के साथ चली जाती हूँ। नीतिन और मैं विवाह का निश्चय कर चुके हैं।'<sup>15</sup>

'नवप्रभात' नाटक में अशोक की बहन संघमित्रा भी प्रेम-विवाह के लिए तत्पर है, लेकिन असफल रहती है। संघमित्रा कलिग नरेश के प्रेम पाश में बँधी हुई है। अशोक द्वारा युवराज को बंदी बना लिया जाता है। युवराज के बंदी बना लिए जाने पर भी वह युवराज की प्रशंसक है। वह अशोक के महामात्य राधागुप्त से कहती है, 'कुमार के साथ वही व्यवहार होना चाहिए जो एक वीर पुरुष के साथ होता है।'<sup>16</sup> संघमित्रा अशोक को बताती है कि हृदय की विशालता का नापम शौर्य है। इस बात पर अशोक क्रोधावस्था में कहता है, 'मैं जानता हूँ कि तुम क्या कहना चाहती हो। तुम कलिग के युवराज से प्रेम करती हो। तुम मुझे धोखा नहीं दे सकती, पर युवराज मेरा शत्रु है और तुम मेरी बहन।'<sup>17</sup> कलिग में मचे हाहाकार को देखकर सम्राट का मन पसीज उठता है और वे कलिग युवराज के लिए मृत्युदंड का प्रस्ताव वापिस ले लेते हैं। अशोक द्वारा लिए इस निर्णय से संघमित्रा के हृदय में प्रसन्नता की लहर दौड़ने लगती है। वह युवराज के पास जाकर उसे क्षमा-याचना का शुभ समाचार देती है। वह कलिग नरेश को अपने प्रणय संबंध के बारे में याद दिलाती है, लेकिन युवराज की उदासी संघमित्रा को अच्छी नहीं लगती। संघमित्रा तड़प उठती है और दृढ़ स्वर में कहती है, 'कुमार, नारी जिसे एक बार प्यार करती है, उसके हाथों अपना रक्त उलीचा जाने पर भी वह उससे प्यार करती रहती है।'<sup>18</sup>

कलिग युवराज दुविधाग्रस्त है। एक ओर उसके लिए मानवता का प्रश्न है और दूसरी ओर संघमित्रा से सच्चा प्रेम है। वह मानवता के नाते अपना सिर काटकर मगध सम्राट की आज्ञा का पालना करना चाहता है, ताकि बलिदान से कलिगयज्ञ पूर्ण हो जाए। इसके साथ-साथ वह संघमित्रा से सच्चे अर्थों में प्रेम करता है। अंत में निर्णय लेकर युवराज संघमित्रा को अपनी विवशता प्रकट करते हुए कहता है, 'मेरी मृत्यु में ही मेरा कल्याण है। कलिग के महानाश की बेला में जब उसकी असंख्य युवतियों का सुहाग सिंदूर रक्त से धुल

गया, तो मैं तुम्हारी माँग में सिंदूर नहीं भर सकता। आज तेरी आँखें तुम्हारा रूप देखने में आशक्त है। मेरे कान तुम्हारी प्रणयलीला सुनने के अयोग्य हैं।” युवराज बलिदान हो जाता है। संघमित्रा का प्रेम अफल हो जाता है।

### अंतरजातीय विवाह की समस्या

आज का युवक किसी भी जाति की सुशील और सुशिक्षित कन्या को पत्नी रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार रहता है। अंतरजातीय विवाह का मूलाधार प्रायः प्रेम ही है। योग्य वर यदि योग्य वधू का चयन करे तो समस्या होती ही नहीं। प्रभाकर ने ‘टूटते परिवेश’ एवं ‘युगे-युगे क्रांति’ नाटकों में अंतरजातीय विवाह की समस्या को अंकित किया है। ‘टूटते परिवेश’ नाटक में मनीषा हिंदू कन्या होते हुए भी ईसाई युवक क्रिस्टोफर से विवाह करती है। ‘युगे-युगे क्रांति’ नाटक में हिंदू युवक प्रदीप और ईसाई कन्या जैनेट से अंतरजातीय विवाह रचाता है।

‘टूटते परिवेश’ नाटक में विश्वजीत की बड़ी लड़की मनीषा लेक्चरर है। वह अपने ही कॉलेज के ईसाई लेक्चरर क्रिस्टोफर से प्रेम करती है तथा उससे विवाह का वायदा करती है। इस संदर्भ में माता-पिता की अनुमति न मिलने पर दिवाली की रात घर छोड़कर क्रिस्टोफर से विवाह करती है। मनीषा की माँ करुणा को जब इस बात का पता चलता है तो वह दुःखी होकर कहती है, ‘तो मनीषा ने क्रिस्टोफर से शादी कर ली।’<sup>10</sup>

प्रभाकर के ‘युगे-युगे क्रांति’ नाटक में विमल जेल में रही शारदा नामक युवती को पत्नी रूप में स्वीकार कर लेता है, वहीं विमल अपने पुत्र प्रदीप का ईसाई जाति की युवती जैनेट से विवाह करना सहन नहीं कर सकता। प्रदीप अपनी इच्छानुसार शादी करना चाहते हैं। विमल से जैनेट के धर्म-परिवर्तन करने पर बल देता है। उसका कहना है, ‘अपने परिवार और समाज की जो स्थिति है, उसको देखते हुए अच्छा होगा कि जैनेट को शुद्ध करके जाह्नवी बना दिया जाए।’<sup>11</sup> लेकिन प्रदीप जैनेट के धर्म-परिवर्तन में विश्वास नहीं रखता। प्रदीप कहता है, ‘जैनेट को यदि शुद्ध करके जाह्नवी नाम दे दिया जाएगा तो इसका क्या कुछ बदल जाएगा। नाम बदल जाने से गुण और दोष तो नहीं बदल जाते।’<sup>12</sup> वह आधुनिक हवा में बहने वाला युवक है।

जैनेट को शुद्ध जाह्नवी न बनाए जाने पर विमल उसका विरोध करता है और स्पष्ट कर देता है कि ‘अगर वह धर्म-परिवर्तन नहीं करती तो इस घर में तुम्हारे लिए कोई जगह नहीं है। कहाँ एक छोटी जाति की स्त्री और कहाँ हम! तू ज़रा-सी बात भी नहीं मान सकता। मेरा-तेरा अब कोई संबंध ही नहीं है।’<sup>13</sup> वह अपनी बात पर अडिग रहता है। विमल की लड़की सुरेखा अपने पिता द्वारा विरोध किए जाने पर भी प्रदीप व जैनेट के अंतरजातीय विवाह को स्वीकार करती है। वह विमल व शारदा को कहती है, ‘क्रांति के बिना समाज में परिवर्तन नहीं हो सकता। आपको तो खुश होना चाहिए कि आपके बेटे ने साहस किया। आप लोगों ने भी एक दिन ऐसा ही साहस किया था।’<sup>14</sup>

### दहेज एवं अनमेल विवाह की समस्या

हिंदूसमाज में आज दहेज जैसी कुप्रथा ने भयंकर रूप धारण कर लिया है। इस

कुप्रथा के कारण से कितनी ही कन्याएँ लगन-मंडप से उठ जाती हैं, कितनी अविवाहित रह जाती हैं और कितनी ही लड़कियाँ आत्महत्या कर लेती हैं।

पूर्व काल में दहेज नहीं उपकार होता था, जिसे माँ-बाप अपनी बेटी को घर से विदा करते समय यादगार के रूप में देते थे। आधुनिक युग में माँ-बाप को विवाह के अवसर पर अपनी बेटी को अपनी सामर्थ्य से अधिक वस्तुएँ दहेज में देनी होती हैं। इस कुप्रथा के कारण ही आज भारतीय समाज में अनमेल विवाह देखने को मिलते हैं। दहेज और अनमेल विवाह की इस समस्या को प्रभाकर ने अपने नाटक 'टगर', 'होरी' तथा 'चंद्रहार' आदि में चित्रित किया है।

प्रभाकर के 'टगर' नाटक में माथुर जिले का एक गजेटिड अधिकारी है उसकी सगाई उचित दहेज न मिल पाने के कारण तोड़ दी गई। सगाई टूट जाने पर माथुर सिविल हस्पताल की नर्स कुसुम से प्रेम करता है तथा उसके बाद टगर पर प्रेमजाल फैलाता है। टगर जो नाटक की नायिका है, अपने पति शेखर की परित्यक्ता है। माथुर को पता है कि टगर परित्यक्ता है। अपने बारे में बताते हुए वह टगर से कहता है, 'मेरे जीवन की भी कुछ ऐसी ही कहानी है। मेरे पिता जी ने मनचाहा मोल न पाने के कारण से मेरी सगाई तोड़ दी थी।'<sup>15</sup>

प्रभाकर के 'चंद्रहार' नाटक में अनमेल विवाह की समस्या को उजागर किया गया है। रतन के माता-पिता मर गए थे। उसके मामा ने उसका लालन-पोषण किया था। उसके मामा के पास संपत्ति का अभाव है। इसी अभाव के कारण वह रतन का विवाह इलाहाबाद के प्रसिद्ध एडवोकेट इंदुभूषण के साथ कर देता है। इंदुभूषण की आयु लगभग 60 वर्ष है। जब कि वह 25 वर्ष का था तो उसकी पत्नी एक पुत्र को छोड़कर मृत्युलोक को प्राप्त हुई। जीवन के 30 वर्ष इंदुभूषण ने अपने पुत्र के सहारे व्यतीत किए, लेकिन 55 वर्ष की आयु में एकमात्र पुत्र की मृत्यु से वे निराश्रित हो गए। अब उन्हें इस जीर्ण दशा में बुढ़ापे के लिए किसी सहारे की नितांत आवश्यकता थी। इंदुभूषण पर पर्याप्त धन था, इसलिए रतन-जैसी नवयुवती से विवाह करके उनको बुढ़ापे की मनचाही लाठी मिल गई।

उसकी देखभाल का सारा भार रतन ने सहर्ष आत्मीयता से उठा लिया। इसलिए इंदुभूषण भी रतन के साथ अच्छा व्यवहार करता। रतन स्वयं स्वीकार करती है, 'मैं जितना चाहूँ खर्च करूँ, जैसे चाहूँ रहूँ, कभी नहीं बोलते। जो कुछ पाते हैं, लाकर मेरे हाथ पर रख देते हैं।'<sup>16</sup> 5-7 वर्ष के पश्चात ही इंदुभूषण स्वर्ग सिधार गए और रतन विधवा का जीवन जीने के लिए विवश हो गई।

प्रभाकर के 'होरी' नाटक में भी होरी संपत्ति के अभाव में अपनी पुत्री रूपा का रामसेवक के साथ अनमेल विवाह करता है। होरी गाँव का गरीब किसान है। उसने अपनी बड़ी लड़की सोना का विवाह तो किसी तरह कर्ज लेकर कर दिया। रूपा होरी की छोटी पुत्री है जो अब यौवन की दहलीज पर क़दम रख चुकी है। आर्थिक अभाव के कारण होरी रूपा का विवाह करने में असमर्थ है। पंडित दातादीन होरी की विवशता का लाभ उठाकर फूल-सी रूपा की खातिर 45 वर्षीय रामसेवक मेहतो का प्रस्ताव लाता है। होरी जानता है कि रामसेवक उसकी अपनी उम्र का व्यक्ति है। दातादीन भी जानता है कि रूपा और रामसेवक की आयु में बहुत अंदर है, लेकिन वह होरी की आर्थिक विवशता का लाभ उठाकर रूपा की शादी

रामसेवक से करवाने को तैयार है। वह होरी को कहता है, 'यह अच्छा औसर है। लड़की का ब्याह भी हो जाएगा और खेत भी बच जाएँगे।'<sup>17</sup>

### विधवा नारी की समस्या

भारतीय समाज में पुरुष तो एक से अधिक विवाह कर लेते हैं, किंतु यह अधिकार नारी को नहीं है। पुरुष की पहली पत्नी जीवित हो तो भी वह दूसरी स्त्री को अपने घर रख लेता है, लेकिन भरी जवानी में विधवा हुई नारी शादी नहीं कर सकती है। बाल-विवाह के प्रचलन होने के कारण नादान उम्र में ही पति का साया सिर से उठ जाने पर हमारा समाज उसे दूसरा विवाह करने की अनुमति नहीं देता है। एक बार विधवा हो जाने पर नारी दूसरी बार विवाह-सूत्र में नहीं बँध पाती।

प्रभाकर जी ने 'युगे-युगे क्रांति' में इसी समस्या को उभारा है। आज वही कल्याणसिंह रूढ़िवादी बन गया है, जिसने सन् 1875 में क्रांति की थी। जो कल्याणसिंह अपने समय में क्रान्तिकारी रह चुका है, आज वही विधवा-विवाह का विरोध करता है। विधवा-विवाह के प्रति अपना रोष प्रकट करते हुए वह स्पष्ट कहता है, 'कैसा जमाना आ गया है कुछ सिरफिरे लोग कहते हैं कि विधवा का विवाह होना चाहिए। धर्म को भ्रष्ट करना चाहते हैं और यह तुम्हारा लाडला बेटा भी उन्हीं में जा मिला।'<sup>18</sup> लेकिन आज इसने हद कर दी। पूरे समाज में सबके सामने मेरे मुँह पर कालिख पोत दी। मेरे कुल पर कलंक लगा दिया। इसने प्रतिज्ञा की है कि यह लाला सुगनचंद की विधवा बेटे कलावंती से विवाह करना चाहता है।<sup>19</sup> इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय समाज में विधवा-विवाह अस्वीकार्य है। कल्याणसिंह के पुत्र प्यारेलाल कलावती नामक विधवा से शादी करने की प्रतिज्ञा कर चुका है। कल्याणसिंह इस बारे में अपनी पत्नी रामकली से बताते हैं। प्यारेलाल की माँ रामकली को विश्वास नहीं होता। वह अपने बेटे को कहती है कि तूने जोश में आकर ऐसा किया है। इस पर प्यारेलाल कहता है, 'माँ, मैंने जोश में आकर नहीं, होश में आकर ही ऐसा किया है।' पुत्र प्यारेलाल को पिता कल्याणसिंह उसके हाथ-पैर तोड़ने की धमकी देता है। प्यारेलाल की प्रतिज्ञा दृढ़ है। वह अपने वचन पर अडिग है। 'आप मेरे हाथ-पाँव तोड़ सकते हैं, लेकिन मेरी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकते। मेरी तो जान भी ले सकते हो लेकिन मुझे उससे विवाह करने से नहीं रोक सकते। मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर के ही रहूँगा।'<sup>20</sup> प्यारेलाल अपनी हठ नहीं छोड़ता। उसे पिता के हाथों पिटना पड़ता है। कल्याणसिंह द्वारा विरोध करने पर वह घर को त्याग देता है तथा विधवा कलावती से विवाह कर लेता है।

प्रभाकर जी ने 'होरी' नाटक में विधवा नारी के विवाह की समस्या को उठाया है। होरी का पुत्र गोबर जब भोला के घर गाय लेने जाता है तो वह भोला की विधवा पुत्री झुनिया के प्रेम में आबद्ध हो जाता है। विवाह से पूर्व गोबर की नाजायज संतान झुनिया की कोख में पहने लगती है। गोबर झुनिया के प्रेम में इतना पागल हो जाता है कि उसे अपनी पत्नी मानकर घर ले आता है। समाज में विधवा-विवाह को स्वीकृति नहीं है। समाज के डर से होरी स्पष्ट कहता है 'जाए जहाँ उसके सगे हों। हमारे घर में क्या रखा है? मैं तो गोबर को भी बाहर निकाल करूँगा। क्यों अपने मुँह में कालिख लगावाऊँ।'<sup>21</sup>

गोबर की माँ धनिया भी तो एक नारी ही नहीं उसकी माँ है। झुनिया की इस स्थिति

को देखकर धनिया का मन पसीज उठता है। वह होरी को समझाती है कि समाज में जो नाक कटनी थी वह तो कट ही चुकी है, फिर इस बेचारी विधवा पर अत्याचार क्यों? और धनिया के इतना समझाने पर होरी भी सहर्ष झुनिया को पुत्रवधु के रूप में स्वीकार कर लेता है। पंचायत उन पर तीन मन अनाज तथा 100 रुपये नकद दंड लगाने का फैसला सुनाती है। पंचायत का विचार है कि विधवा झुनिया की शादी को देखकर दूसरी विधवाएँ मर्यादा भंग करेंगी। पंचायत में शामिल झिंगुरीसिंह धनिया से कहते हैं कि 'पंचायत ने तुम्हारे मामले पर खूब गौर किया है। तुमने उस कुलटा को घर में रखकर समाज में विष बोया है।... झुनिया को देखकर दूसरी विधवाओं का मन बड़ेगा।'

### परित्यक्ता नारी की समस्या

बालविवाह इस समस्या की जड़ है। यदि किसी का विवाह कम उम्र में किसी सामान्य पढ़ी-लिखी लड़की के साथ संपन्न हो गया है और बाद में लड़का पढ़-लिखकर किसी बड़े पद पर अधिकारी हो जाता है, तो उन्नत सामाजिक स्तर के अनुरूप अपनी पत्नी को न पाकर उसे त्याग देता है और किसी पढ़ी-लिखी लड़की से विवाह कर लेता है। स्त्री पति द्वारा परित्यक्त हो जाती है, तो उसके जीवन में अँधेरा छा जाता है। स्त्रियाँ अपनी जीवन-लीला समाप्त कर लेती हैं। कुछ स्त्रियाँ परिस्थितियों से समझौता कर लेती हैं।

प्रभाकर ने इसी समस्या पर 'डॉक्टर' नाकम नामक की रचना की है। डॉक्टर नाटक की प्रमुख पात्र मधु लक्ष्मी इंजीनियर पद पर कार्यरत सतीशचंद्र शर्मा की पत्नी है। शशि इनकी एकमात्र पुत्री है। मधुलक्ष्मी सामान्य पढ़ी-लिखी है, इसलिए अफ़सर अनने के पश्चात् सतीशचंद्र उसे अपने सामाजिक स्तर के अनुरूप नहीं पाता है, क्योंकि वह अफ़सर बन गया है।

### तलाश से उत्पन्न समस्या

कई बार पुरुष स्वतंत्र संबंधों में विश्वास रखते हैं तथा अन्यत्र स्त्रियों से प्रेम करते रहते हैं तो तलाक की समस्या उत्पन्न हो जाती है। 'टगर' नाटक में माथुर अपनी पत्नी को तलाक दे देता है, ताकि वह प्रणयक्षेत्र में स्वच्छंद हो सके। पत्नी को तलाक देने के पश्चात् वह अस्पताल की नर्स कुसुम से प्रेम करता है तथा उसके सामने स्पष्ट कर देता है— 'पत्नी से अलग रहते मुझे दो वर्ष हो चुके हैं और वह तलाक के लिए राजी हो गई है।'<sup>23</sup> माथुर स्वतंत्र यौन-संबंध में विश्वास रखता है तथा पत्नी को कोई महत्त्व नहीं देता।

कुसुम को धोखा देकर माथुर साँवले सौंदर्य से युक्त टगर नामक युवती से प्रेम संबंध स्थापित करता है। लेकिन यह प्रेम भी केवल काम-पिपासा को शांत करने तक ही सीमित होता है।

### अंधविश्वास से संबंधित समस्या

प्रभाकर का 'बंदिनी' अंधविश्वास पर आधारित एक सशक्त नाटक है। नाटककार ने 'बंदिनी' नाटक की रचना जिस वातावरण को लेकर की है, उस में इस प्रकार के अंधविश्वास बहुत सहज रूप से प्राप्त थे। मध्ययुग में धार्मिक अंधविश्वास बहुत फैला था। स्त्रियाँ तो अपने पतियों का नाम भी नहीं लेती थीं। स्त्रियों में ऐसा समझा जाता था कि उनके पतियों का नाम



लिया जाएगा तो देवी-देवता रूष्ट हो जाएँगे।

यद्यपि विज्ञान ने आज उन्नति के चरम शिखर को छुआ है, मनुष्य के चरण भी दूसरे ग्रहों पर पड़ चुके हैं तथापि वह अब भी किसी न किसी अंधविश्वास से ग्रस्त है।

प्रभाकर के 'बंदिनी' नाटक में गृहस्वामी कालीनाथ राय को स्वप्न दिखाई देता है कि उसके घर में छोटी बहू उमा के रूप में माँ जगदंबा स्वयं अवतरित हुई है। कालीनाथ छोटी बहू उमा को देवी के रूप में मानना शुरू कर देते हैं मिट्टी की प्रतिमा की पूजा छोड़ उसकी पूजा करने लगते हैं। वे उसके सामने साष्टांग प्रणाम करके लेट जाते हैं तथा अपने छोटे पुत्र सुरेन्द्र को भी अपनी पत्नी उमा के पैर छूने को कहते हैं। उमा को देवी के रूप में मानकर मंदिर के भीतरी कक्ष में पूजा-मंच पर आसीन कर दिया जाता है। बड़े लड़के उपेंद्र का बेटा अनु अपनी चाची से बेहद प्यार करता है, वह उमा के पास जाने की ज़िद करता है, लेकिन कालीनाथ द्वारा उसे उमा से मिलने के लिए रोक दिया जाता है। उमा का मानसिक संतुलन अब बिगड़ने लगता है। क्योंकि अब उससे उसके पुत्रतुल्य भतीजे का स्नेह छिन्न गया है। वह अनु से नहीं मिल पाती है। उसके पति पर भी रोक लगा दी जाती है। उसका पति सुरेंद्र भी उससे नहीं मिल पाती है। उसे लगता है कि उसका पति सुरेंद्र अब उससे छिन्न गया है। वह अब तक भी देवी का मामला समझ नहीं पाई है। वह अपनी जेठानी सावित्री से अनुरोध करती है कि मुझे इस जगह से मुक्ति दिलाई जाए। इस संदर्भ में वह सावित्री से कहती है— 'पर जीजी, आज मुझे लगता है जैसे एक दिन मैं इन लहरों में समा जाऊँगी। मेरे कारण मेरा अनु पिटता है। वे मुझसे हमेशा-हमेशा के लिए बिछुड़ गए हैं। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। मुझे यहाँ से निकालने का कोई प्रबंध करो।'<sup>24</sup>

उमा की इसी पीड़ादायक स्थिति को देखकर उमा का पति सुरेंद्र भी अत्यंत परेशान है। वह उमा को इस बंधन से छुटकारा दिलाना चाहता है। वह उसे विश्वास दिलाता है कि अगले शनिवार तक उसे इस बंधन से मुक्त करवाएगा। उमा इस बंधन रूपी पीड़ा से व्याकुल है। वह अपने पति को अपनी इस पीड़ा का आभास कराते हुए कहती है, 'नहीं-नहीं, मैं देवी नहीं हूँ। मैं तुम्हारी छोड़कर और कुछ नहीं हूँ। मैं केवल तुम्हारी उमा हूँ। केवल तुम्हारी, तुम्हारी, तुम्हारी...।'<sup>25</sup>

उमा को शनिवार तक मुक्ति दिलाने का आश्वासन देकर उसका पति सुरेंद्र वहाँ से चला जाता है, लेकिन उमा के देवी होने की चर्चा अब सारे गाँव में फैल चुकी है। लोग रोगग्रस्त रोगियों को वैद्य की दवा न दिलाकर देवी के पास लाते हैं। इन्हीं अंधविश्वासों से ग्रस्त गाँव की पूंटी नामक एक विधवा और अपने तीव्र ज्वर से पीड़ित बेटे को लाकर माँ के चरणों में लिटा देती है। पूंटी माँ से प्रार्थना करती है, 'माँ यह सबेरे से आँखें नहीं खोल रहा। तेज़ ताप से इसका शरीर जल रहा है। मैं नहीं जानती यह कैसा ज्वर है? तुम अब साक्षात् जगदंबा हो। मेरी सखी उमा नहीं हो, करुणामयी काली हो। दया करो। मेरे बच्चे को बचा लो।'<sup>26</sup>

भारतीय नारी अंधविश्वासों का खंडन करते-करते स्वयं उसी की चपेट में आ जाती है। वह स्वयं को देवी मानने लगती है। परिवार के बीमार बच्चे को वैद्य की दवा न पिलाकर उसे दैवी कृपा से स्वस्थ करने का विश्वास दिखाती है। उन अंधविश्वासों से हानि होने के पश्चात् उसकी आँखें खुलती हैं। वह प्रायश्चित्त करने के लिए आत्महत्या का मार्ग अपनाती

है। विष्णु प्रभाकर के नाटकों में नारी जीवनपर्यंत धार्मिक विषमताओं से उत्पन्न समस्याओं में जूझती दिखाई देती है।

### संदर्भ

1. डॉ० रामप्रसाद मिश्र, हिंदूधर्म, पृ० 4
2. डॉ० भोलानाथ तिवारी, भाषा और संस्कृति, पृ० 73
3. गोपाल कृष्ण भुस्करे, हिंदूधर्म मानवधर्म, पृ० 39
4. विष्णु प्रभाकर, (टूटते परिवेश) संपूर्ण नाटक, (भाग-4), पृ० 206
5. विष्णु प्रभाकर, (टूटते परिवेश) संपूर्ण नाटक, (भाग-4), पृ० 237
6. विष्णु प्रभाकर, (नवप्रभात) पृ० 29
7. वहीं, पृ० 32
8. वहीं पृ० 93
9. विष्णु प्रभाकर, (नवप्रभात), संपूर्ण नाटक पृ० 95
10. विष्णु प्रभाकर, (टूटते परिवेश) संपूर्ण नाटक, (भाग-4), पृ० 218
11. विष्णु प्रभाकर, (युगे-युगे क्रांति) संपूर्ण नाटक, (भाग-4), पृ० 322
12. वही, पृ० 323-24
13. वही, पृ० 324
14. वही, पृ० 325
15. विष्णु प्रभाकर, (टगर) संपूर्ण नाटक, (भाग-4), पृ० 356
16. विष्णु प्रभाकर, (चंद्रहार) संपूर्ण नाटक, (भाग-6), पृ० 219
17. विष्णु प्रभाकर, (होरी) संपूर्ण नाटक, (भाग-5), पृ० 411
18. विष्णु प्रभाकर, (युगे-युगे क्रांति) संपूर्ण नाटक, (भाग-4), पृ० 173-74
19. वहीं, पृ० 174
20. वही, पृ० 27
21. विष्णु प्रभाकर, (होरी) संपूर्ण नाटक, (भाग-5), पृ० 371
22. वही, पृ० 371
23. विष्णु प्रभाकर, टगर, पृ० 44
24. विष्णु प्रभाकर, (बंदिनी) संपूर्ण नाटक, (भाग-6), पृ० 93
25. वही, पृ० 94
26. वही, पृ० 98

## प्रसाद-काव्य में कल्पना के रूप

वंदना पांडेय, शोध छात्रा

डॉ० मनमोहन शुक्ल, डी०लिट्, शोध-निर्देशक

वीर बहादुरसिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

समीक्षकों के अनुसार कल्पना वह शक्ति है, जो पहले वर्ण्यविषय को कवि के मानस से साक्षात्कार कराती है और फिर भाषा में चित्रात्मकता का समावेश कराके श्रोता के मन एवं चक्षु के सामने उसे प्रत्यक्ष कर देती है।<sup>1</sup> आचार्य शुक्ल के अनुसार कल्पना के बिना रूप-विधान, जिसमें बिंब-ग्रहण होता है, संभव नहीं है। कल्पना दो प्रकार की होती है— 1. विधायक कल्पना, 2. ग्राहक कल्पना। कवि में विधायक कल्पना अपेक्षित होती है और श्रोता या पाठक में ग्राहक कल्पना।<sup>2</sup> वे मानते हैं कि किसी भावोद्रेक द्वारा परिचालित अंतर्दृष्टि जब उस भाव का पोषक रूप ग्रहण कर या काट-छाँटकर सामने रखने लगती है, तब हम उसे सच्ची कवि-कल्पना कह सकते हैं।<sup>3</sup>

छायावादी कवियों ने कल्पना का तार्किक विश्लेषण तो नहीं किया है किंतु यत्र-तत्र काव्य एवं भूमिकाओं में उसके महत्त्व तथा उपयोगिता पर प्रकाश डाला है। स्वयं जयशंकर प्रसाद ने अपनी चित्राधार नामक रचना में अपनी 'कल्पना सुख' कविता के द्वारा कल्पना का निर्माकित रूप व्यक्त किया है—

हे कल्पना-सुखदान। तुम मनुज जीवन-प्राण।  
तुम विसद व्योम समान। तव अंत नर नहीं जान।  
प्रत्यक्ष, भावी, भूत। यह रंगे त्रिविध जु सूत।  
तव हानि प्रकृति सुतार। पट विनत सुचित संसार।  
येहि विश्व को विश्राम। अरु कछुक जो है काम।  
सबको अहो तुम ठाम। तब मधुर ध्यान ललाम।  
तव मधुर मूर्ति अतीत। है करत ही तल, सीत।  
व्याकुल करन की मीत। तुम करहु कबहु समीत।

प्रसाद-काव्य में प्रसाद की कई प्रबंधात्मक रचनाएँ, काव्यरूप तथा दीर्घ कविताएँ, जैसे— चित्रकूट<sup>5</sup>, भरत<sup>6</sup>, शिल्प-सौंदर्य<sup>7</sup>, अशोक की चिंता<sup>8</sup>, शेरसिंह का शस्त्र समर्पण<sup>9</sup>, पेशोला की प्रतिध्वनि<sup>10</sup>, और प्रलय की छाया<sup>11</sup> आदि रचनाएँ कल्पना के भिन्न-भिन्न रूपों को व्यक्त करने में समर्थ है।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने प्रसाद के साहित्य को रोमांटिक या कल्पना-प्रधान माना है।<sup>12</sup> परंतु उन्होंने प्रसाद को प्रगतिशील रोमांटिक माना है, जो स्वस्थ एवं रोमांटिक प्रकृति का होता है। साहित्य में प्रसाद ने जागृति की मनोरम और प्रगतिमयी भावनाओं का ही विन्यास

किया है। कल्पना का प्रयोग नवीन शक्ति एवं नव-सौंदर्य की सृष्टि में ही किया है।<sup>13</sup>

प्रसाद की काव्य-कला का सर्वोत्तम निदर्शन है 'कामायनी'। एक बिखरे हुए वैदिक प्रसंग को महाकाव्य का रूप देने का कार्य कवि की कल्पना ने ही संपन्न किया है, जिससे 'कामायनी' मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बन सकी है। इसकी घटनाएँ और पात्र-परियोजना कवि की अद्भुत कल्पना-शक्ति का उदाहरण है।<sup>14</sup> प्रसाद ने 'कामायनी' की भूमिका में लिखा भी है कि कामायनी की कथा-शृंखला मिलाने के लिए कहीं-कहीं थोड़ी-बहुत कल्पना को भी काम में ले आने का अधिकार मैं नहीं छोड़ सका हूँ।<sup>15</sup> मनु, श्रद्धा, इड़ा और किलात, आकुलि आदि चरित्रों को रूपकीय अर्थ देने और मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित करने का कार्य कल्पना ही कर सकी है।

पूर्वल्लिखित प्रसाद की प्रारंभिक कथात्मक दीर्घ कविताओं का आधार पौराणिक और ऐतिहासिक है। क्षीण कथा-तंतुओं से संयुक्त इन कविताओं में निरर्थक कोरी कल्पना नहीं है। कवि का सांस्कृतिक, राष्ट्रीय और धार्मिक दृष्टिकोण भी अभिव्यक्त है। 'अशोक की चिंता' में कलिंग युद्ध पर अशोक की प्रतिक्रिया को व्यक्त किया गया है। 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' और 'पेशोला की प्रतिध्वनि' कविताओं में ऐतिहासिक घटनाओं का आधार लेकर राष्ट्रीयता का संदेश दिया गया है। ऐतिहासिक कविताओं में प्रलय की छाया में भी प्रतीकात्मक और मनोवैज्ञानिक ढंग से नारी-मन का सुंदर चित्रण हुआ है। इन रचनाओं की अभिव्यक्ति में कोरा इतिहास नहीं है, क्योंकि कोरा इतिहास काव्य नहीं हो सकता, कल्पना-रंजित हुए बिना ऐतिहासिक वृत्ति के शुष्क कंकाल में प्राण नहीं आ सकते। विविध युगों की ऐतिहासिक घटनाओं को कवि ने कल्पना के रंग में रँगकर, अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति की है।

'प्रेम-पथिक' का आधार ऐतिहासिक नहीं है। मानव-प्रेम और देश-प्रेम की उच्च भावना का चित्रण ही इस काव्य का उद्देश्य है। इसमें कला-पक्ष की नवीनता और भावों की उच्चता प्रसाद के कवि-व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण मोड़ है।<sup>16</sup> इसी प्रकार 'महाराणा का महत्त्व' की कथा भी ऐतिहासिक है। इस दीर्घ कविता में 'महाराणा प्रताप' के चरित्र की महत्ता को विधायी कल्पना के द्वारा पूर्ण प्रतिष्ठित किया गया है। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचनाओं से यह स्पष्ट है कि प्रसाद ने जिस प्रकार अपने नाटकों में पौराणिक-ऐतिहासिक घटनाओं को कल्पना द्वारा नवीन आलोक प्रदान किया है, उसी प्रकार काव्य में भी उनकी कल्पना-शक्ति समान रूप से सक्रिय रही है।

प्रसाद अप्रस्तुत-योजना के प्रयोग और मूर्त उपमानों की खोज के लिए प्रकृति का लगभग सारा कार्य-व्यापार एवं प्राकृतिक उपकरण देख आए हैं। वे अमूर्त उपमानों की खोज करने के लिए मानव-हृदय की गहराई तक भावोन्वेषण के लिए उतरे हैं। परंपरागत अप्रस्तुतों का नवीन ढंग में उपयोग और नवीन अप्रस्तुतों की खोज प्रसाद-काव्य को अद्भुत गौरव प्रदान करते हैं और यह गौरव कल्पना-शक्ति की उर्वरता के बिना प्राप्त नहीं हो सकता। इस संबंध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन बड़ा ही सार्थक है कि कवि का प्राथमिक कर्तव्य बिंब-ग्रहण कराना है, और उसका साधन अप्रस्तुत साधन है। इसके बिना कवि मनोरम भाव को हृदयहार बनाकर अपना वक्तव्य कह ही नहीं सकता। अप्रस्तुत-विधान के समय कवि की कल्पनावृत्ति सतह पर आ गई होती है। वस्तुतः चिंता करते समय भी कवि को वैज्ञानिक की माँग तथ्य का

विश्लेषण नहीं करना होता बल्कि यह सत्य को सुंदर करके रखने का प्रयास करता है।<sup>17</sup>

जयशंकर प्रसाद के काव्य में कल्पना के विविध सोपान दिखायी पड़ते हैं। उनकी मधुमयी कल्पना उनकी कविता में मानवीकृत रूपों के साथ ऐसी व्यक्त होती है कि उसका मूर्त रूप हमारे सामने दिखायी पड़ने लगता है—

पगली हा! सँभाल ले कैसे छूट पड़ा तेरा आँचल  
देख विखरती है मणिराजी अरे! उठा बेसुध चंचल।<sup>18</sup>

करुणा और वेदना की अभिव्यक्ति में कल्पना का जो रूप प्रसाद-काव्य में दिखायी पड़ता है, वह कवि की पीड़ा को विश्वव्यापी बना देता है। 'झरना' और आँसू में प्रसाद अपने आप में खोए दिखायी पड़ते हैं। उन्होंने दुख और वेदना को जीवन के लिए उन्नायक माना है। प्रसाद ने आँसू के अंतर्गत वेदना को हृदय की प्रबोधिका का और परिशोचिका कल्पित किया है और उसे 'मानवता सिर की रोली' तक कहा है। उनके आँसू काव्य में व्यक्त वेदनावाद किसे अभिभूत नहीं कर लेता।

इस करुणा-कलित हृदय में, अब विकल रागिनी बजती।  
क्यों हाहाकार स्वरो में, वेदना असीम गरजती।<sup>19</sup>

प्रसाद ने रहस्य-भावनायुक्त कल्पना को बड़ा ही साकार रूप प्रदान किया है। परोक्ष सत्ता की खोज करते हुए वे आध्यात्मिक जिज्ञासा की सुंदर अभिव्यक्ति करते हैं—

विश्वदेव सविता या पूषा, सोम, मरुत, चंचल पवमान।  
वरुण आदि सब घूम रहे हैं किसके शासन में अम्लान?  
किसका था भ्रूभंग प्रलय-सा, जिसमें ये सब विकल रहे,  
अरे प्रकृति के शक्ति चिह्न ये, फिर भी कितने निबल रहे।<sup>20</sup>

सूक्ष्म कल्पना का प्रयोग प्रसाद-काव्य में प्रायः भावगत सूक्ष्मता में ही दिखाई पड़ता है। इस सूक्ष्मता को जयशंकर प्रसाद ने लज्जा-भाव की भाँति व्यापक बताते हुए लिखा है कि कवि की वाणी में यह प्रतीयमान छाया युवती के लज्जा भूषण की तरह होती है। इससे स्पष्ट है कि छायावादी रचना में छाया अथवा काँति उसी प्रकार प्रतीयमान रहती है, जिस प्रकार नारी के व्यवहार में छायारूप होने वाली लज्जा उसके अंतस् में व्यापक रूप से विद्यमान रहती है।<sup>21</sup> सौंदर्यानुभूति की प्रधानता के समय अन्य छायावादी कवियों की भाँति प्रसाद ने भी नारी-सौंदर्य के अनेक मनोरम चित्रण अपनी कल्पना-तूलिका के साथ प्रस्तुत किए हैं। प्रसाद की प्रेयसी का हृदय यौवन की संपूर्ण विभूतियों से परिपूर्ण है, तथा वह धरती के यथार्थ सौंदर्य एवं स्वर्ग की काल्पनिक सुषमा से सुसज्जित है—

नील-परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,  
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।<sup>22</sup>

कवि की कल्पना ने रजनी के माध्यम से शुक्लाभिसारिका नायिका का माधुर्य एवं भावपूर्ण चित्र प्रस्तुत कर दिया है। उस मुग्धा के वस्त्र में छिपे सौंदर्य का अपनी कल्पना के सहारे एक सजीव रूप प्रस्तुत कर दिया है—

फटा हुआ था नील वसन क्या, वो यौवन की मतवाली।  
देख अकिंचन जगत् लूटता तेरी छवि भोली-भाली।<sup>23</sup>

प्रसाद की काव्य-कल्पना में वैयक्तिकता के स्वरूप को भी बड़ी सहजता से व्यक्त किया है तथा उनकी निजी प्रेमानुभूतियों की व्यंजना भी की है। यथा—

तुम सत्य रहे, चिर सुंदर, मेरे इस मिथ्या जग के  
थे केवल जीवन-संगी, कल्याण-कलित इस मग के।<sup>24</sup>

अलौकिक प्रेम के प्रति भी कवि की कल्पना कहीं-कहीं बड़ी सार्थक लगती है—  
गिरा कहाँ वह सुख जिसका, मैं स्वप्न देखकर जाग गया।  
आलिंगन में आते-आते, मुस्क्याकर जो भाग गया।<sup>25</sup>

प्रसाद की कल्पना यही नहीं रुकती। मानव-सौंदर्य के आरोपण द्वारा कई स्थलों पर प्रकृति के असुंदर रूपों को भी उन्होंने सुंदर बना दिया है। प्रलयकालीन विशाल समुद्र में सिकुड़ी पड़ी पृथ्वी को कलहांतरिता नायिका के सौंदर्यारोपण द्वारा सुंदर बना दिया है—

सिंधु-सेज पर धरा-बधू, अब तनिक संकुचित बैठी-सी।  
प्रलय-निशा की हलचल स्मृति में मान किए-सी, ऐंठी-सी।<sup>26</sup>

प्रसाद-काव्य की अभिव्यक्ति की कल्पना के अनेक उज्वल पक्ष भी हैं। मानवतावाद उनमें से एक है। कामायनी में व्यक्त सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना मानवतावाद की ही अभिव्यक्ति है। अपनी विधायी कल्पना के सहारे कवि साम्य भाव से अनुप्राणित मानव-प्रेम, करुणा, राष्ट्रीय जागरण, उदारता, विश्वबंधुत्व आदि की बड़ी सफल अभिव्यक्ति करते हैं।

औरों को हँसते देखो मनु, हँसो और सुख पाओ।  
अपने सुख को विस्तृत कर लो, सबको सुखी बनाओ।<sup>27</sup>

प्रसाद-काव्य में अद्वैतवाद की अभिव्यक्ति भी एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। इसी के पृष्ठ में कवि ने व्यापक मानवतावाद तथा समन्वयवाद को रूपायित किया है—

नीचे जल था, ऊपर हिम था, एक तरल था, एक सघन।  
एक तत्त्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड़ या चेतन।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद-काव्य में कल्पना के विविध सोपान अपनी विधायी अनुभूति के साथ व्यक्त हुए हैं, जिनके द्वारा नए-नए उपमान प्रस्तुत किए गए हैं, परंपरागत उपमानों को नवीन रूप दिया जाता है, तब नए-नए रूपों का अनुसंधान किया गया है और नए-नए मानचित्र प्रस्तुत किए गए हैं। अपनी कल्पना के बल पर कवि ने असुंदरतम वस्तुओं और परिस्थितियों को सुंदरतम बना दिया है। इनकी कल्पना ने नवीन चेतना नवीन रूप एवं नवीन सौंदर्य की प्रतिष्ठा करके कवि ने काव्य को एक अलौकिक चमत्कार से युक्त कर दिया है।

### संदर्भ

1. डॉ० नागेंद्र के काव्य में उदात्ततत्त्व : भूमिका पृ० 19
2. चिंतामणि : भाग -1, पृ० 161
3. चिंतामणि : भाग-2, पृ० 89
4. चित्राधार, प्रसाद ग्रंथावली, पृ० 39-40
5. कानन-कुसुम, पृ० 96
6. कानन-कुसुम, पृ० 104

7. कानन-कुसुम, पृ० 107
8. लहर, पृ० 46
9. लहर, पृ० 51
10. लहर, पृ० 56
11. लहर, पृ० 59
12. जयशंकर प्रसाद, भूमिका पृ० 85
13. वही पृ० 11
14. डॉ० सुरेशचंद्र त्यागी, छायावादी काव्य में सौंदर्य-दर्शन, पृ० 116
15. कामायनी, आमुख, पृ० 10
16. डॉ० सुरेशचंद्र त्यागी, छायावादी काव्य में सौंदर्य दर्शन, पृ० 116
17. छायावाद, संपादक उदयभानु सिंह, पृ० 28
18. कामायनी, प्रसाद ग्रंथावली, पृ० 450
19. आँसू, प्रसाद ग्रंथावली, पृ० 303
20. कामायनी, आशा सर्ग, पृ० 435
21. अभिनव साहित्यिक निबंध, डॉ० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ० 222
22. प्रसाद ग्रंथावली, कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ० 456
23. वही, पृ० 450
24. आँसू, पृ० 307
25. कामायनी, 228
26. कामायनी, पृ० 434
27. वही, कामसर्ग, पृ० 542
28. वही, कामायनी, पृ० 413

□ द्वारा डॉ० मनमोहन शुक्ल  
 १४७ मायापुरी आवास योजना  
 छतनाग रोड, झूँसी, इलाहाबाद 211019

## संत रविदास की भक्ति-भावना

रुपिन्द्र शर्मा

(यू०जी०सी०-जे०आर०एफ०)

शोधार्थी, हिंदी विभाग

पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

भारतीय धर्म-साधना के इतिहास पर दृष्टिपात करने से मध्यकालीन भारत में दो परंपराएँ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती हैं। इनमें एक परंपरा शास्त्रसम्मत है तो दूसरी शास्त्र-निरपेक्ष। शास्त्र के प्रति आसक्ति अधिकतर ब्राह्मण भक्तों में देखी जाती है, जबकि ब्राह्मणोत्तर भक्त बहुधा शास्त्र-निरपेक्ष ही रहे हैं।

मध्यकालीन निर्गुण भक्तिधारा भी, जिसका प्रतिनिधित्व कबीर, रविदास, गुरु नानक इत्यादि करते हैं, शास्त्रमुक्त परंपरा के अंतर्गत ही आते हैं। इन संतों की वाणी शास्त्र से मुक्ति की वाणी है। यद्यपि मध्यकाल में शास्त्र को माननेवाले भक्त भक्ति के द्वार सभी वर्णों के लिए खोलने के पक्षधर थे, तथापि समाज के लिए वर्ण-व्यवस्था को वे आदर्श मानते रहे। परंतु संतों ने अपने ज्ञानरूपी नेत्रों से वर्ण-व्यवस्था के भयावह रूप को और ब्राह्मणों द्वारा किए जाने वाले शोषण को अत्यंत ध्यान से देखा। न केवल ब्राह्मणों के बल्कि मुसलमानों के काजिओं और मुल्लाओं द्वारा धर्म के नाम पर हो रहे आम जनता के शोषण को भी देखा था। इसीलिए उनकी वाणी उन सभी शास्त्रों, परंपराओं और रूढ़ियों का खंडन करती है, जो मनुष्य को जन्म के आधार पर छोटा या बड़ा मानती है। शास्त्र से मुक्ति की इसी परंपरा में भक्त रविदास का नाम उल्लेखनीय है।

वास्तव में शास्त्र से मुक्ति मध्ययुग में तत्कालीन परिस्थितियों में आवश्यक थी। हिंदू और मुसलमान जातियों में वैमनस्य अत्यधिक बढ़ गया था। ब्राह्मण अपने धर्मग्रंथों द्वारा स्वयं को उच्च मान रहे थे और मुल्ला, काजी अपनी किताबों के द्वारा स्वयं को। ऐसे में भक्त रविदास ने परमात्मा की आत्मानुभूति प्राप्त की और अपनी भक्ति-भावना द्वारा यह सिद्ध किया कि राम न तो मंदिर में हैं और न ही मस्जिद में, बल्कि वे तो मनुष्य के अंतर में हैं, जिन्हें साधन की शुद्धता से ही प्राप्त किया जा सकता है। संत रविदास की इसी भक्ति-भावना को निम्न शीर्षकों के अंतर्गत समझा जा सकता है :

### 1. निर्गुण राम :

रविदास की भक्ति का मूल आधार निर्गुण राम हैं। यह निर्गुण राम रूपी परमात्मा जन्म से रहित है, मरण से रहित है, उसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती। वह जैसा है वैसा ही है—



कहि रविदास अकथ कथा बहु काइ करीजै।  
जैसा तू तैसा तुही किआ उपमा दीजै।'

उनके माधव सगुण हैं, किंतु अवतारवाद के अर्थ में सगुण नहीं, बल्कि सर्वात्मवाद के अर्थ में ही सगुण हैं। इसीलिए उन्होंने माना है कि जो कमलापति के चरणों का पूजन करता है, उसके बराबर अन्य कोई नहीं है। वास्तव में वे एक ही हैं, जो अनेक रूपों में प्रसरित हो रहा है :

हरि जपत तेऊ जना पदम कवलासपति  
तास समतुलि नहीं आन कोऊ।  
एक ही अनेक होइ बिसथरिओ  
आन रे आन भरपूरि सोऊ।<sup>2</sup>

परंतु प्रेमस्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार तभी संभव है, जब उसकी शरण प्राप्त की जाए और उसे अपना संपूर्ण आपा समर्पित कर दिया जाए। प्रभु के नाम में वह प्रताप विद्यमान है कि अगर कोई उसके नाम की शरण ग्रहण करता है तो उसे उच्चता की प्राप्ति होती है। इसी नाम-स्मरण से रविदास को यह उच्चता प्राप्त हुई कि समाज के उच्चवर्णीय ब्राह्मण भी उन्हें दंडवत् प्रणाम करने लगे :

मेरी जाति कुट बाढला ढोर ढोवंता नितहि बानारसी आस पामा।  
अब बिप्र परधान तिहि करहि डंडउति  
तेरे नाम सरणाई रविदासु दासा।<sup>3</sup>

## 2. आत्मानुभूति पर बल :

संत रविदास की भक्ति-भावना की सबसे बड़ी बात है— आत्मानुभूति पर बल। बिना आत्मानुभूति के धर्म, धर्म न रहकर दिखावा-मात्र रह जाता है। इसलिए रविदास जी उन सभी बाह्याडंबरों का विरोध करते हैं, जो मनुष्य ने अपने अंह को दिखाने के लिए बना रखे हैं। परंतु मनुष्य को ज्ञान की ओर ले जानेवाले कर्मों का महत्त्व उन्होंने स्वीकार किया है। उनकी मान्यता है कि जैसे फलों की उत्पत्ति के हेतु संपूर्ण वनों पर फूल लगते हैं, किंतु जब फूल लग जाते हैं तो फूलों को झड़ जाना होता है। ठीक इसी तरह जब परमात्मा की ओर जाने वाले साधनों से ज्ञान की उत्पत्ति हो जाती है, तो संपूर्ण कर्मों का नाश हो जाता है :

फल कारन फूली बनराई।  
फल लागा तब फूलु बिलाई।  
गिआनै कारन करम अभिआसु।  
गिआनु भइआ तह करमह नासु।<sup>4</sup>

## 3. प्रेमा-भक्ति :

रविदास की भक्ति-भावना प्रेमभाव से सराबोर है। इसी कारण उन्होंने आत्मा को जीव स्त्री माना है और परमात्मा को पति माना है। वास्तव में भारतीय निर्गुण संत-परंपरा के अंतर्गत सभी संतों ने इसी रूपक का प्रयोग करते हुए भक्त की विरह-व्यथा का मार्मिक चित्रण किया है। किंतु यह दिव्य प्रेम तभी संभव है, जब भक्त अपने मन से अहंकार को मिटा

दे। संत रविदास जी के मतानुसार जो जीव-स्त्री अपने अभिमान का त्याग कर देती है, वही अपने प्रभु-पति के साथ रंगरलियाँ मनाती है। मिलन के इस परमानंद को प्राप्त कर लेने पर उसके मन में अपने प्रियतम के अलावा कोई दूसरा नहीं रह जाता :

सह की सार सुहागिन जानै।  
तजि अभिमानु सुख रलीआ मानै।  
तनु-मनु देइ न अंतरु राखै।  
अवरा देखि न सुनै अभाखै।<sup>5</sup>

अपनी इसी भक्ति-भावना से विभोर होकर भक्त-रूपी जीव-स्त्री अपने प्रभु प्रियतम से कहती है कि हे माधव! अगर तुम सुंदर पर्वत हो तो मैं मोर हूँ। अगर तुम चंद्र हो तो मैं चकोर हूँ। इसलिए जब उनके माधव इस प्रेम-संबंध को नहीं तोड़ते, तो वह उसे नहीं तोड़ सकती, क्योंकि वह अपने प्रभु-पति से नाता तोड़कर और किससे नाता जोड़ेगी :

जउ तुम गिरिवर तउ हम मोरा।  
जउ तुम चाँद तउ हम भए चकोरा।  
माधवे तुम न तोरहु तउ हम नहीं तोरहि।  
तुम सिउ तोरि कवन सिउ जोरहि।<sup>6</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि रविदास की भक्ति-भावना माधुर्य-भाव से ओत-प्रोत है, जिसके अंतर्गत उनकी आत्मा जहाँ एक ओर अपने प्रभु-पति के विरह में व्यथित दिखाई देती है, वहीं दूसरी ओर अपना अभिमान त्यागकर मिलन का परमानंद भी प्राप्त करती है और इस प्रेम-संबंध को वह किसी भी कीमत पर तोड़ना नहीं चाहती।

#### 4. नाम-स्मरण :

संतों की वाणी में नाम-स्मरण को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। उनकी मान्यता है कि जब जीव परमात्मा के नाम के जाप द्वारा अपनी सुरति प्रभु में लीन कर देता है, तभी उसे परमात्मा का साक्षात्कार होता है। शुरुआत में यह स्मरण मुख और वाणी द्वारा किया जाता है किंतु जैसे-जैसे साधक साधना की परिपक्व अवस्था में पहुँचता है, वह सभी बाह्याडंबरों को छोड़कर सिर्फ ब्रह्मरूपी शब्द में 'अजपा जाप' द्वारा स्वयं को लीन कर देता है। इसीलिए भक्त मानता है कि प्रभु का नाम ही उसकी आरती है और इस नाम के बिना बाहर के सभी विस्तार झूठे हैं :

नामु तेरो आरती भजनु मुरारे।  
हरि के नाम बिनु झूठे सगल पासारे।<sup>7</sup>

वास्तव में हरि का नाम ही भक्त को इस जगत् में उजागर करता है, क्योंकि यह उसका नाम ही है, जो जीव के जन्म-जन्मांतरों के कर्मों के हिसाब को काट देता है। इसी नाम-स्मरण द्वारा कबीर और नामदेव ने मुक्ति प्राप्त की और इसी नाम-स्मरण ने रविदास को भी प्रेमरंग में रँग दिया :

हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरे।  
हरि सिमरत जन गए निसतरि तरे।

हरि के नाम कबीर उजागर।  
 जनम-जनम के काटे कागर।  
 निमत नामदेउ दूधु पीआइआ।  
 तउ जग जनम संकट नहीं आइआ।  
 जन रविदास राम रंगि राता।  
 इउ गुर परसादि नरक नहीं जाता।<sup>8</sup>

#### 5. गुरु की आवश्यकता :

उपर्युक्त चर्चा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि संत रविदास की भक्ति-भावना नाम-स्मरण पर बल देती है। किंतु इस नाम की प्राप्ति, इस नाम का रहस्य, इस नाम की महिमा का ज्ञान गुरुप्रदत्त मार्ग-दर्शन से ही प्राप्त होता है। गुरुप्रदत्त ज्ञान के श्रवण के उपरांत, उसके मनन द्वारा जब गुरु-शब्द में ध्यान लगाने की विधि शिष्य को आ जाती है, तभी उसे परमानंद की प्राप्ति होती है। इसीलिए भक्त जी का मानना है कि सभी भ्रमों को त्यागकर केवल गुरु के ज्ञान को ही अपनी साधना का आधार बनाना चाहिए :

रविदास दास उदास तजु भ्रम तपन तपु गुर गिआन।  
 भगत जन भै हरन परमानंद करहु निदान।<sup>9</sup>

#### 6. वैराग्य की भावना :

व्यक्ति अपने व्यावहारिक कामों में इतना उलझा रहता है कि उसे परमात्मा याद ही नहीं रहता। अतः उसे यह याद दिलाना आवश्यक है कि यह संसार नाशवान है। जब तक संसार के प्रति एक वैराग्य की भावना व्यक्ति में जाग्रत नहीं होती, तब तक वह नाम-स्मरण की ओर नहीं झुकता। वास्तव में वैराग्य-भावना अर्थात् संसार और उसके सुखों के प्रति विरक्ति अपने आपमें एक महत्त्वपूर्ण साधना है, जिससे साधक का मन अपने प्रभु प्रियतम की ओर आकृष्ट होने लगता है। डॉ० मनमोहन सहगल अपने ग्रंथ 'संतकाव्य का दर्शनिक विश्लेषण' में लिखते हैं कि 'भक्तिमार्ग पर चलनेवाले जिज्ञासु के लिए बाहरी चेतनाओं और चिंताओं को संयत कर अपने इष्ट की स्मृति में लगाना ही त्याग या बाहरी आकर्षणों के प्रति वैराग्य है।'<sup>10</sup> इस संसार के सुख स्थिर नहीं रहते और न ही यह जीवन। हमारे सभी साथी एक-एक करके यहाँ से जा रहे हैं, हमें भी यहाँ से जाना होगा, मृत्यु हमारी भी प्रतीक्षा कर रही है। यह जीवन और जगत सत्य नहीं है, इसलिए जितनी जल्दी हो सके, इस मोह-निद्रा से जीव को जाग जाना चाहिए और अहंकार छोड़कर प्रभु के भजन में लगना चाहिए :

जो दिन आवहि सो दिन जाही।  
 करना कूचु रहनु थिरु नाहीं।  
 संग चलत है हम भी चलना।  
 दूरि गवनु सिरि ऊपरि मरना।  
 किआ तू सोइआ जागु इआना  
 तै जीवन जग सचु कर जाना। रहाउ।<sup>11</sup>

अतः संसार नश्वर है। उस मुक्तिदाता परमात्मा का नाम जीव को सदैव जपना

चाहिए। बिना हरि-भजन के यह शरीर नष्ट हो जाएगा। दरअसल, परमात्मा ही मुक्ति देनेवाला है, सब जीवों का माता और पिता है। इसीलिए रविदास जी हमें प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि भगवान के सेवक को जीवित रहते हुए और मरते हुए भी परमात्मा का नाम-स्मरण रखना चाहिए। ऐसा करने से उस सेवक का मन सदैव परमानंद में लीन रहता है :

मुकंद मुकंद जपहु संसार।  
 बिनु मुकंद तनु होइ अउहार।  
 सोइ मुकंद मुक्ति का दाता।  
 सोइ मुकंद हमारा पित माता।  
 जीवत मुकंदे मरत मुकंदे॥  
 ताके सेवक कउ सदा अनंदे। रहाउ।<sup>12</sup>

समग्र रूप में कहा जा सकता है कि संत रविदास की भक्ति-भावना निर्गुण परमात्मा को अपना आधार मानती हुई, आत्मानुभूति पर बल देती है। बिना परमपिता का आत्मिक स्पर्श प्राप्त किए, उससे अनुराग नहीं हो सकता और इस दिव्य स्पर्श की प्राप्ति गुरु द्वारा ही हो सकती है। जब साधक स्वयं को गुरु-चरणों में अर्पित कर देता है, तो उसको गुरु से नाम की दात मिलती है। जैसे-जैसे जीव में वैराग्य की वृद्धि होती है वैसे-वैसे उसका मन केवल अपने प्रभु पति के चरणों में लीन होता जाता है।

#### संदर्भ

1. श्री गुरुग्रंथ साहिब, पृ० 858
2. वही, पृ० 1293
3. वही
4. वही, पृ० 1167
5. वही, पृ० 793
6. वही, पृ० 657
7. वही, पृ० 694
8. वही, पृ० 487
9. वही, पृ० 486
10. डॉ० मनमोहन सहगल, संतकाव्य का दार्शनिक विश्लेषण, भारतेंदु भवन, चंडीगढ़, 1965, पृ. 237
11. श्री गुरुग्रंथ साहिब, पृ० 794
12. वही, पृ० 875

□ ग्राम-कालोमाजरा  
 पोस्ट-जांसला, तहसील-राजपुरा,  
 ज़िला-पटियाला ( पंजाब )।  
 मो० 9872694866  
 9417533075

## कालजयी कथाकार प्रेमचंद

डॉ० सरबजीत कौर राय

अध्यक्ष, हिंदी विभाग

लायलपुर खालसा कालेज फार वुमैन, जालंधर

प्रेमचंद जी का कालजयी साहित्य करोड़ों मनुष्यों का संहार करने वाले दो महायुद्धों के बीच अपने भविष्य में अटल विश्वास रखनेवाली भारतीय जनता की वाणी है। प्रेमचंद हिंदुस्तान की नई राष्ट्रीय और जनवादी चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार थे। जब उन्होंने लिखना शुरू किया था, तब संसार पर पहले महायुद्ध के बादल मँडरा रहे थे। जब मौत ने उनके हाथ से कलम छीन ली, तब दूसरे महायुद्ध की तैयारियाँ हो रही थीं। इस बीच विश्व की मानव-संस्कृति में बहुत से परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों से हिंदुस्तान भी प्रभावित हुआ और उसने उन परिवर्तनों में सहायता भी की। विराट् मानव-संस्कृति की धारा में भारतीय जन-संस्कृति की गंगा ने जो कुछ दिया, उसके प्रमाण प्रेमचंद के लगभग एक दर्जन उपन्यास और उनकी सैकड़ों कहानियाँ हैं।

प्रेमचंद जी युगद्रष्टा, युगस्रष्टा और भविष्य-निर्माता हैं, इसलिए आज भी उनके साहित्य की आज भी प्रासंगिकता है। उन्होंने जिन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक या नैतिक मूल्यों की बात की या उनमें परिवर्तन करना चाहा, वह आज भी किसी-न-किसी रूप में हमारे सामने है। आज भी मानवीयता चूर-चूर हो रही है, और जनता अभावग्रस्त है। युद्ध के बादल छाए हुए हैं। आज तमाम कठिनाइयों और बाधाओं को पार करती हुई भारतीय जनता से प्रेमचंद जी की आवाज़ यह कहती हुई सुनाई दे रही है—‘यह अंत नहीं है, आगे बढ़ो और आगे बढ़ो, जब तक कि रंगभूमि में विजय न हो, जब तक कि देश का कायाकल्प न हो, जब तक कि इस कर्मभूमि में गबन और गोदान से होरी और रमानाथ का त्रस्त होना बंद न हो और हमारा देश एक नई तरह का सेवासदन, एक नई तरह का प्रेमाश्रम न बन जाए।’<sup>1</sup>

प्रेमचंद जी का कथा-साहित्य इतना विस्तृत है कि उसमें भारतीय जीवन का कोई भी अंश नहीं छूटा। नगर और देहात के सभी वर्गों के मनुष्यों के चित्रण और स्थितियों के वर्णन उसमें हैं और उनके समस्त चित्रों और वर्णनों में कथारस का ऐसा विकास हुआ है कि पाठक तन्मय हो जाता है। उनका साहित्य जीवन और जगत के निकट है। डॉ० इंद्रकुमार सिन्हा जी कहते हैं कि—‘प्रेमचंद ने उपन्यास और कहानी-साहित्य को जीवन और जगत के निकट ला रखा है।’ प्रेमचंद ने अपने उपन्यास और कहानियों में तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है, सामाजिक जीवन की रूढ़ियों और पाखंडों का विरोध और समाज सुधार किया है एवं तत्कालीन सामाजिक जीवन की समस्याओं का उद्घाटन करते हुए नवीन

सामाजिक मूल्यों एवं सांस्कृतिक प्रतिमानों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है, उनका महत्त्व आज भी बना हुआ है। शायद इसका कारण है उनकी सूक्ष्म दृष्टि, जिससे मानव-जगत् का ऐसा कोई कोना या क्षेत्र अवशिष्ट नहीं रहा, जिस ओर उन्होंने देखा न हो। एक ओर से उन्होंने नारी के दुर्भाग्य पर आंसू बहाए हैं, दूसरी ओर नर-संहार का सजीव चित्रण किया है। जहाँ उन्होंने किसानों की विषम परिस्थितियों का विवेचन किया है, वहाँ ज़मींदारों, अफसरों और धनी-व्यक्तियों की झूठी शान का स्वरूप प्रस्तुत किया है। राजा-महाराजा, जमींदार-तहसीलदार, सेठ-साहूकार, किसान-भिखारी, मजदूर-खेत-मजदूर, डाक्टर-प्रोफेसर, वकील-जज, लेखक-पत्रकार, छात्र-अध्यापक, नीतिज्ञ-समाजसेवी, पुलिस-दरोगा, पंडित-महाजन, कारिंदा-पटवारी, चपरासी-अर्दली, तमाम वर्ग के लोग उनकी कथाकृतियों में विराजमान हैं। उनका रचना-संसार एक विशाल समुद्र की तरह है, जिसका एक चुल्लू पानी पीकर उसके खारे स्वाद का वर्णन तो किया जा सकता है, पर उसकी गहराई नहीं मापी जा सकती।<sup>2</sup>

किसान का जीवन जो युगों-युगों से संतुलित है और आज भी जो ऋणग्रस्त किसान आत्महत्याएँ कर रहे हैं, शायद विश्व के किसी भी कथाकार ने किसानों के जीवन का ऐसा संपूर्ण-चित्रण प्रस्तुत किया है। डॉ० नगेंद्र के शब्दों में—‘आज वर्षों बाद प्रेमचंद के सर्वतः स्वीकृत श्रेष्ठतम उपन्यास ‘गोदान’ का एक बार फिर अध्ययन करने के उपरांत भी मेरी धारणा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।’<sup>3</sup>

किसान-जीवन का शायद ही कोई पहलू उनकी पकड़ से बचा है। प्रेम-मुहब्बत, घृणा-नफरत, चापलूसी-ठकुरसुहाती, लोभ-लालच, मान-मारजाद, पूजा-पाठ, नाच-गाना, पर्व-त्योहार, क्रिया-कर्म, शादी-ब्याह, झूठ-सच, शिक्षा-अशिक्षा, खान-पान कपड़ा-लत्ता, हँसी-मजाक, लगान-सूद, नजराना-बेगार, डांड-जुर्माना, हैजा-महामारी, प्लेग-बीमारी, दवा-दारू, सबका वहाँ वर्णन है।

प्रेमचंद के किसान मुख्य रूप से जमींदारों से पीड़ित हैं। उनके जीवन में लगान की सबसे बड़ी समस्या है। प्रेमचंद के उपन्यास ‘कर्मभूमि’ में इस संत्रास को देखिए—‘कितना अन्याय है कि जो बेचारे रोटियों के मुहताज हों, जिनके पास तन ढकने के केवल चीथड़े हों, जो बीमारी में एक पैसे की दवा भी न कर सकते हों, जिनके घरों में दीपक भी न जलते हों, जो ईंधन के लिए घर में गोबर चुनते फिरें, उनसे पूरा लगान वसूल करना मानो उनके मुँह से रोटी का टुकड़ा छीन लेना है, उनकी रक्तहीन देह से खून चूसना है।’<sup>4</sup>

उनकी कहानी ‘बाँका जमींदार’ (1913) में ठाकुर प्रद्युमनसिंह असामियों से पेशगी लगान की माँग करते हैं और एक दिन के भीतर नहीं देने पर ‘गाँव में हल चलवा’ देने और ‘घरों को खेत बना’ देने की धमकी देते हैं। लगान लेकर भी रसीद न देकर जमींदार और उनके कारिंदे किसानों की गर्दन मुट्ठी में रखते हैं। प्रेमाश्रम (1918-20) में लगान की समस्या प्रमुख है। गौस खाँ लखनपुर में बड़ी निर्दयता के साथ लगान वसूल करता है—‘एक कौड़ी भी बाकी न छोड़ी। जिसने रुपए न दिए और न दे सका, उस पर नालिस की कुर्की कराई और एक का डेढ़ वसूल किया।’<sup>5</sup>

‘सेवासदन’ (1916-17) में इजाफ़ा लगान की नालिश होती है और किसान उसे दे नहीं पाते। ‘पूस की रात’ (1930) में मुन्नी हल्कू से कहती है—‘अब मजूरी करके

मालगुजारी भरनी पड़ेगी।' पूस की रात जो जाड़े की होती है, इससे बचने के लिए हल्कू कंबल तक नहीं ख़रीद सकता, वह कंबल के लिए इकट्ठे किए पैसों से ऋण चुका देता है। 'गोदान' (1932-36) की धनिया को बीस वर्षों के विवाहित जीवन में यह अनुभव हो गया था कि 'चाहे कितनी ही कतर-ब्योंत करो, कितना ही पेट-तन काटो, चाहे एक-एक कौड़ी को दाँत से पकड़ो, मगर लगान बेबाक होना मुश्किल हो।' <sup>6</sup>

गोदान में होरी, शोभा और हीरा तीनों भाइयों को एक-एक हल की जोत है पर उपन्यास के अंत में ये तीनों भाई किसान नहीं रह जाते।

प्रेमचंद के किसानों की इच्छाएँ सीमित हैं। वे दो जून पेट भर खाना खाकर शांतिपूर्वक 'मरजाद' से जीना चाहते हैं। सामान्य किसानों को न तो ज़मीन ख़रीदने की इच्छा है और न ही महल बनाने की। उनकी ग़रीबी ने उनकी इच्छाओं को भी मार दिया है। होरी की लालसा केवल एक गाय रखने की है, परंतु उसकी यह इच्छा भी पूरी नहीं होती, लालसा में ही उसकी मौत हो जाती है। इसी तरह 'अलग्योझा' कहानी में भोला महलो भी गाय की चिंता में ही मर जाता है।

किसानों की दुरवस्था का कारण अज्ञान, अंधविश्वास और अनपढ़ता है। जिसका फ़ायदा ज़मींदार, महाजन, धर्म के ठेकेदार ख़ूब उठाना जानते हैं। आज भी किसानों की ऐसी ही दुरवस्था और दुर्दशा हो रही है, आज का किसान भी भूमिहीन होकर पलायन कर रहा है। 19 दिसंबर, 1932 के 'जागरण' में प्रेमचंद ने 'हतभागे किसान' शीर्षक से एक टिप्पणी लिखी थी—'हमारे स्कूल और विद्यालय, हमारी पुलिस और फौज, हमारी अदालतें और कचहरियाँ सब उन्हीं की कमाई के बल पर चलते हैं। लेकिन वही जो राष्ट्र के अन्नदाता और वस्त्रदाता हैं, भरपेट की दशा की ओर ध्यान नहीं दिया और उनकी दशा आज भी वैसी है, जो पहले थी। इनकी खेती के औज़ार, साधन, कृषि-विधि, कर्ज़-दरिद्रता, सब-कुछ पूर्ववत् है।'

अगर बात करें भारतीय नारी-स्वतंत्रता की तो प्रेमचंद जी ने नारी-शिक्षा, समानता और स्वतंत्रता का उल्लेख किया है, क्योंकि सैद्धांतिक रूप से भारतीय संस्कृति एवं दर्शन में नारी सदा ही विशिष्ट पद की अधिकारिणी रही है, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से यदि नारी की स्थिति का अवलोकन किया जाए तो सिद्धांत एवं व्यवहार में पर्याप्त अंतर परिलक्षित होता है। सामाजिक तथा परिवारिक जीवन में नारी की स्थिति असंतोषप्रद एवं हेय रही है, वह पुरुष की विलासता का उपकरण-मात्र थी, उसे किसी प्रकार की भी स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी। नारी का समूचा जीवन अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, अभावों तथा प्रतिबंधों से इतना जकड़ा हुआ था उसकी आत्म-चेतना प्रायः लुप्त हो गई थी। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आंदोलनों के परिणामतः नारी की स्थिति सुधरी है— नारी को सम्मान-रक्षा, समानता, स्वतंत्रता तथा आर्थिक स्वावलंबन दिलाने के प्रयत्न हुए हैं। आज इक्कीसवीं शताब्दी में नारी सशक्तीकरण के लिए अनेक प्रयत्न हुए हैं, वह पुरुष के समान स्वतंत्र और आत्म-निर्भर है।

पर क्या यह अधिकार संपूर्ण नारी-जाति को मिले हैं? अगर ऐसा होता है तो आज बेटी का जन्म अपवाद क्यों माना जाता, क्यों होतीं भ्रूण-हत्याएँ?

जिन समस्याओं को प्रेमचंद जी ने अपने समय में उठाया—जैसे—अनमेल विवाह, बहु-विवाह, बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, विधवा-जीवन और आर्थिक स्वतंत्रता, वह सब आज

तक बरकरार हैं।

जो आर्थिक स्वतंत्रता, संपत्ति-अधिकार के कानून अब बने हैं, उनका समर्थन प्रेमचंद जी ने किया है। नारियों के सांपत्तिक अधिकार, पिता और पति की संपत्ति में नारियों के हिस्से प्रस्ताव का भी प्रेमचंद ने समर्थन किया था।<sup>7</sup>

‘हिंदू-नारी-सांपत्तिक अधिकार’ कानून (14 अप्रैल, 1937 ईसवी को पारित) का प्रस्ताव प्रेमचंद की जीवितावस्था में ही लोकसभा में आ चुका था। प्रेमचंद ने इसके प्रस्तावक 8 को बधाई दी थी और उन्होंने अपने साहित्य में इसका चित्रण किया है कि सांपत्तिक अधिकारों से वंचित होने के कारण स्त्री पुरुष पर आश्रित होती है। वह माता-पिता के घर विवाह के बाद मेहमान बनकर ही रह सकती थी और पति के घर पर उसका कोई अधिकार नहीं था।

‘प्रतिज्ञा’ में सुमित्रा अपने कृपण, निर्दयी पति के बुरे व्यवहार से दुखी होकर मायके जाना चाहती है, परंतु मायके वाले उसे बोझ मानते हैं, वह अंदर-ही-अंदर बहुत दुखी होती है। ‘मंगलसूत्र’ में दिखाया गया है कि पत्नी को पति के घर कोई अधिकार नहीं, उसका पति संतकुमार कहता है, ‘जो स्त्री पुरुष पर अवलंबित है, उसे पुरुष की हुकूमत माननी पड़ेगी।’<sup>8</sup>

‘सेवासदन’ में गजाधर अपनी पत्नी सुमन को घर से निकाल देता है। कानूनी सहारा न मिलने के कारण निम्न जाति की स्त्रियाँ किसी नौकरी या रोजगार से जो पैसे कमातीं, पुरुष उनसे छीनकर घर से निकाल देते। ‘अभिलाषा’ कहानी में पानवाला अपनी पत्नी के साथ ऐसा ही करता है।

इसी प्रकार नारी-जीवन से जुड़ी समस्या अनमेल विवाह का वर्णन प्रेमचंद जी ने अपनी अनेक कहानियों और उपन्यासों में किया है। कुलीनता, धन-प्रतिष्ठा, आयु, गुण, स्वभाव और दहेज के अभाव के कारण बेटी के अनमेल विवाह का संताप आज भी है।

दहेज के अभाव में अधिक आयु वाले पुरुष से कम उम्र वाली कन्या का विवाह कर देने का संताप ‘सेवासदन’ की सुमन, ‘गोदान’ में रूपा, ‘गबन’ में रतन तथा ‘निर्मला’ की निर्मला भोगती है। ‘निर्मला’ में दहेज के अभाव के कारण निर्मला का विवाह अंधेड़ दोहाजू से हो जाता है, जिससे निर्मला की समस्त यौवन-सुलभ अभिलाषाएँ एवं हर्षोल्लास खत्म हो जाता है, दूसरी ओर पति के शंकालु स्वभाव के परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो जाती है। ‘गबन’ में रतन का विवाह एक वृद्ध रोगी वकील से हो जाता है, वह अपने विवाह के कारणों पर प्रकाश डालती हुई कहती है—‘कह नहीं सकती, इनसे कुछ ले लिया या इनकी सज्जनता पर मुग्ध हो गए।’<sup>9</sup> इसी तरह ‘गोदान’ की रूपा का विवाह है। होरी धनी दामाद से 200 रुपए ले लेता है। ‘सेवासदन’ में सुमन का विवाह भी दहेज के अभाव के कारण गजाधर से होता है। एक रात देर से घर लौटने पर गजाधर उसे घर से निकाल देता है।

इसी प्रकार आज की तरह पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से बहु-विवाह की कुरीति का चित्रण प्रेमचंद जी ने ‘कायाकल्प’ में किया है। बाल-विधवा, अनाथ और निस्संतान युवती विधवा, अनाथ तथा संतान वाली विधवा, सांपत्तिक अधिकारों से वंचित विधवा, तिरस्कृत-अपमानित जीवन व्यतीत करने वाली विधवा की त्रासदी यह थी कि न तो वह पति के घर की और न मायके की रहती है। ‘निर्मला’ उपन्यास की रुक्मिणी विधवा होने पर अपने भाई के घर चली



जाती है। उसका भाई तोताराम उसके साथ नौकरों जैसा व्यवहार करता है और कहता है—‘मैंने तो सोचा था कि विधवा है, पाव भर आटा खाएगी, पड़ी रहेगी। जब और नौकर-चाकर खा रहे हैं तो यह तो अपनी बहिन ही है, लड़कों की देखभाल के लिए एक औरत की जरूरत भी थी, रख लिया।’<sup>10</sup>

आज के ज्वलंत मुद्दे नारी सशक्तीकरण के संबंध में प्रेमचंद जी की दृष्टि इस प्रकार है कि नारियों को पुरुषों के बराबर सभी अधिकार कानूनी तौर पर मिल जाएँ, साथ ही उनकी शिक्षा की भी व्यवस्था हो, ताकि वे अपने अधिकारों और कर्तव्यों को समझ सकें और उनका अपने हित में उपयोग कर सकें।<sup>11</sup>

लेकिन आज पश्चिम सभ्यता के प्रभाव से जो स्थिति उत्पन्न हुई है, उससे प्रेमचंद जी पहले ही सचेत थे। भले ही पश्चिमी नारी तेजी से प्रगति कर रही है, किंतु फिर भी उसने अपनी सभ्यता की विशेषता के कारण अथवा पुरुषों से विद्रोह के प्रयास में, अपने नारीत्व को खोकर पुरुष के गुणों और कार्यों का अनुकरण करना अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया है और वह पुरुष की तरह स्वच्छंद, विलासिनी, कठोर और पुरुष के साथ हर क्षेत्र में अपनी योग्यता प्रदर्शित करने को उत्सुक है। वह पुरुष की सहयोगी नहीं, प्रतिद्वंद्वी है, क्योंकि वह पुरुष की भाँति नौकरी करती है, उन्हीं के समान स्वच्छंद और विलासिनी हो गई है, विवाह से घबराती है और यदि विवाह कर भी लिया तो संतान के उत्तरदायित्व से भागती है। इसका परिणाम है—विवाह-विच्छेद, तलाक, विवाह-पूर्व और विवाहोपरांत संबंध, अवैध संतान आदि।

भारत की कुछ उच्च शिक्षित, पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित नारियों पर भी इसका प्रभाव पड़ा है। ‘गोदान’ की मिस मालती ने इंग्लैंड से डाक्टरी की शिक्षा प्राप्त की है और चिकित्सक है। उसमें पुरुषों का अनर्थमय अनुकरण करनेवाली आधुनिक शिक्षा-संपन्न नारी के सभी गुण-अवगुण विद्यमान हैं। मालती का परिचय प्रेमचंद जी व्यंग्यपूर्ण शब्दों में इस प्रकार देते हैं—‘आप (मालती) नवयुग की साक्षात् प्रतिमा हैं। झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं, मेकअप में प्रवीण, बला की हाजिर-जवाब, पुरुष-मनोविज्ञान की अच्छी जानकर, आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्त्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण, जहाँ आत्मा का स्थान है वहाँ प्रदर्शन, जहाँ हृदय का स्थान है वहाँ हाव-भाव, मनोद्गारों पर कठोर निग्रह, जिसमें इच्छा या अभिलाषा का लोप-सा हो गया हो।’<sup>12</sup>

‘गोदान’ में मेहता स्त्रियों की शिक्षा और अधिकार का समर्थन करते हुए कहता है कि स्त्री अपनी उच्चशिक्षा और शक्तियों का प्रयोग पुरुषों के साथ सहयोग में करें, संघर्ष में नहीं।

इस प्रकार प्रेमचंद जी नारी सशक्तीकरण का समर्थन करते हुए कहते हैं कि भारतीय नारी पश्चिम की नारी से सर्वथा भिन्न, भारतीय आदर्शों के अनुरूप ही अपनी शक्तियों का उपयोग करे। समानता के नाम पर प्रतिद्वंद्विता, शिक्षा के नाम पर विलासिता तथा स्वतंत्रता के नाम पर स्वच्छंदता और उच्छृंखलता भारतीय नारी के ध्येय नहीं होने चाहिए।

आज नारी-मनोविज्ञान के विशेषज्ञ भी यही मानते हैं कि समाज-कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि नारी पुरुष की प्रतिद्वंद्वी न हो। प्रेमचंद नारी को पुरुष की सहचरी मानते हैं, वे भारतीय नारी को न तो पुरुष की अनुचरी (जैसी की आज असंख्य भारतीय नारियाँ हैं।)

के रूप में और न ही प्रतियोगिनी रूप में (जैसी पश्चिमी की या नई सभ्यता से प्रभावित आधुनिक भारतीय नारियाँ हैं) स्वीकारते हैं। अतः भारतीय नारी को पाश्चात्य नारी के अनुकरण की आवश्यकता नहीं। वह तो अनेक क्षेत्रों में पाश्चात्य नारी का नेतृत्व कर सकती है। एक अमरीकी लेखिका ने हेलेन ड्यूश के 'नारी-मनोविज्ञान' के आधार पर, भारतीय नारी को स्त्रीत्व-प्रधान नारी माना है और पाश्चात्य नारी में प्रतिद्वंद्विता के भाव के कारण स्त्रीत्व की न्यूनता पर चिंता प्रकट की है, साथ ही इस दृष्टि से भारतीय नारी को पथ-प्रदर्शिका भी माना है।

प्रेमचंद ने औद्योगीकरण के अभिशाप और दुष्परिणामों का विस्तृत उल्लेख किया है, जिसके फलस्वरूप औद्योगिक सभ्यता के प्रवेश से एक नए वर्ग-शहरी-मजदूर वर्ग का जन्म हो रहा है और भारतीय अर्थ-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही है। भारत कृषि प्रधान देश है और आज तक भारत की अर्थ-व्यवस्था कृषि पर आधारित है, लेकिन औद्योगीकरण के कारण लोगों की ज़मीनों पर उद्योग-धंधों को देशहित की भावना से प्रेरित होकर विकसित किया जा रहा है, जिससे कृषि पर आधारित लोग बेरोजगारी के कारण पलायन कर रहे हैं या अपने पुश्तैनी धंधे के खो जाने के कारण लाचार होकर ग़लत रास्ते अपना रहे हैं। 'रंगभूमि' का सूरदास इसी कारण औद्योगीकरण का विरोध करता है। जब जनसेवक देश-समाज के हित तथा कला-कौशल की उन्नति के उद्देश्य से पांडेपुर में सिगरेट का कारखाना स्थापित करता है तो गाँव का वातावरण तो दूषित होता ही है, साथ ही श्रमिक-वर्ग में अनैतिकता भी बढ़ जाती है।

प्रेमचंद जी ने जहाँ दलितवर्ग के प्रति संवेदना प्रकट की है, वहीं समाजिक अन्याय को इसका कारण ठहराया है—'कफन' कहानी के घीसू और माधव के माध्यम से समाज की अमानवीयता का चित्रण स्पष्ट होता है—'जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की दशा उनसे कुछ अच्छी न थी, उस समाज में ऐसी मनोवृत्ति का आ जाना अस्वाभाविक न था।'

'सवा सेर गेहूँ' कहानी में एक विप्र महाराज से दूसरे विप्र महाराज का आतिथ्य करने के उद्देश्य से लिया गया सवा सेर गेहूँ, किसान से मजदूर बने शंकर की आजीवन गुलामी का कारण बनता है। शंकर के बाद उसका बेटा गुलामी के अभिशाप को भोगता है। इस कहानी के अंत में प्रेमचंद की टिप्पणी है कि यह कथा कपोल-कल्पित नहीं है, इस प्रकार के शंकरों और विप्रों से आज भी दुनिया ख़ाली नहीं है। 'सदगति' का दुखी चमार भूखेपेट विप्र महाराज के यहाँ लकड़ी की एक गाँठ चीरने के क्रम में मर जाता है। 'ठाकुर का कुआँ', 'मंदिर' कहानियों में भी उच्च वर्गों की यही अमानवीयता निर्दोषों की बलि लेती है।

आज की संवेदनशील समस्या है— पानी की समस्या। आज पानी दूषित है और कम हो रहा है, इसका कारण पर्यावरण की अशुद्धता है। प्रेमचंद के समय में भी पानी की समस्या रही है, लेकिन इसका कारण दूषित पर्यावरण नहीं, दूषित समाज था—'ठाकुर का कुआँ' कहानी में दलितों को पीने के लिए पानी नहीं मिलता क्योंकि गाँव में केवल दो कुएँ हैं—एक ठाकुर का और दूसरा साहु का। निचली जाति के लोग इन कुओं पर पानी नहीं ले सकते। 'प्रेमाश्रम' में ज्ञानशंकर का कारिंदा गौस तालाब का पानी रोक देता है।

आज का व्यक्तिवादी समाज, जो निजी स्वार्थ और सुख सर्वोपरि समझ रहा है,

हृदयहीन हो चुका है जिनके पास दया, माया, ममता, करुणा नाम की कोई चीज़ नहीं, जो मानवीय संबंधों की मृदुता खो बैठा है, इन अमानवीय वृत्तियों की संवेदना को बहुत पहले प्रेमचंद जी अपने साहित्य में व्यक्त कर चुके हैं—उनकी कहानी 'बूढ़ी काकी' में 'बेटा और बहू' अपने घर भोज करके सैकड़ों लोगों को तो खिला रहे हैं, परंतु अपनी भूखी माँ को भूल चुके हैं। इसी तरह 'बेटों वाली विधवा' कहानी में विधवा के चार बेटे हैं—'बड़ा लडका दफ़्तर में क्लर्क है। छोटा उमानाथ डाक्टर है। तीसरा दयानाथ संपादक है चौथा सीतानाथ प्रथम श्रेणी में बी०ए० पास है। उनके पिता अयोध्यानाथ काफ़ी संपत्ति भी छोड़कर गए हैं। पर वे नवशिक्षित वर्ग से आए बेटे इतने कमीने हैं कि विधवा माँ की संपत्ति और जेवर धीरे-धीरे हथिया लेते हैं। उसे सब तरह से जलील करते हैं और अंत में एक बरसाती दिन जब उसे बलात् गंगा में पानी भरने भेज दिया जाता है, तब वह फिसलकर गंगा में डूब जाती है।

वस्तुतः प्रेमचंद जी जीवन की सच्चाई आँकने वाले साहित्यकार थे। उनका साहित्य बीसवीं सदी के हिंदुस्तान का सच्चा इतिहास है। प्रेमचंद जी का साहित्य उस समय का है, जब पहले महायुद्ध में मानवता का हास हो चुका था और आज भी विश्व उसी संत्रास के दर पर खड़ा है, इसीलिए उनका साहित्य समूची मानवता का आज भी पथ-प्रदर्शक है। वह समय की सीमा में बँधा नहीं, कालजयी है।

#### संदर्भ

1. रामविलास शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग, पृ० 17
2. डॉ० रमेश कुतल मेघ (संपा०), प्रेमचंद हमारे समकालीन, पृ० 64
3. शचीरानी गुट्टू, प्रेमचंद : एक व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ० 113
4. प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृ० 360
5. प्रेमचंद, प्रेमाश्रम, पृ० 41
6. प्रेमचंद, गोदान, पृ० 7
7. मारगरेट कारमैक, 'द हिंदु वुमन', पृ० 138, 141, 142
8. प्रेमचंद, मंगलसूत्र, पृ० 10, 12
9. प्रेमचंद, गबन, पृ० 80
10. प्रेमचंद, निर्मला, पृ० 53
11. शिवरानी देवी, प्रेमचंद : घर में, पृ० 192-93
12. प्रेमचंद, गोदान, पृ० 70

## वैश्वीकरण के दौर में हिंदी के बढ़ते क़दम

डॉ० हरीशकुमार

प्रवक्ता हिंदी, राजकीय महाविद्यालय, सफीदों  
जींद (हरियाणा)

सूचना-क्रांति के इस युग में संचार-साधनों से हिंदी-क्षेत्र में क्रांति आई है। विज्ञान, तकनीक, इलैक्ट्रॉनिक, नए आविष्कारों व कंप्यूटर ने जनजीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित किया है। हिंदी की अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने इन वैज्ञानिक अनुसंधानों को जनता तक पहुँचाया और उनके जीवन को उन्नत बनाया। स्वयं पत्रकारिता भी नूतन आविष्कारों से पुष्पित व पल्लवित हुई और उसका कायाकल्प हुआ। इस प्रकार हिंदी-पत्रकारिता नवोदित देश तथा राजभाषा हिंदी के लिए प्राणधारा बन गई। नए-नए आविष्कार नए आयामों को और नई दिशाओं को उद्घाटित कर रहे हैं। तार, टेलीफोन, मोबाइल, सिनेमा, टेलीविजन, रेडियो, ऑडियो-वीडियो, कंप्यूटर, ए०टी०एम० मशीन, एजुसेट, फैक्स, ई-मेल, नेटस्केप लिंक, ब्राउजर, टेलीप्रिंटर, पेजर, एस०टी०डी०, इंटरनेट व अनेक साफ्टवेयर आदि संचार-माध्यम हिंदी-क्षेत्र में विराट रूप धारण कर चुके हैं और हिंदी को वैश्विक भाषा बनाने में रामबाण सिद्ध हुए हैं। वर्तमान 21वीं सदी में इन संसाधनों के प्रयोग में आने से हिंदी उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर हो रही है और वैश्विक स्तर पर पहचान बना चुकी है। जैसे :

**कंप्यूटर पर हिंदी :** आज कंप्यूटर टेक्नोलॉजी का उपयोग जीवन के सभी क्षेत्रों में हो रहा है। कंप्यूटर से तैयार बिजली बिल, टेलीफोन बिल, स्कूल, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों के परीक्षा-परिणाम, प्रतियोगी परीक्षा, रेल व हवाई यातायात, टिकट बुकिंग, शोध-संस्थान, उद्योग जगत्, साहित्यिक व भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन के लिए हिंदी में कंप्यूटर प्रौद्योगिकी का व्यापक स्तर पर प्रयोग किया जा रहा है। इस प्रकार सूचना-प्रौद्योगिकी कंप्यूटर विज्ञान का अगला क़दम है। हिंदीभाषा सुगम व सुग्राह्य है। कंप्यूटर में आने से हिंदी तेज़ी से विश्व-पटल पर प्रथम भाषा के रूप में अग्रसर हुई है।

**इंटरनेट पर हिंदी :** यह प्रणाली विभिन्न कंप्यूटर यंत्रों को एक समन्वित रूप से विशाल और विश्वव्यापी तंत्र से जोड़ने की प्रक्रिया है। इस प्रणाली के माध्यम से विभिन्न कंप्यूटर-तंत्र आपस में जोड़े जा सकते हैं। इससे सूचनाओं तथा आँकड़ों का आदान-प्रदान किया जाता है। वर्तमान में इंटरनेट पर हिंदी में ऑन लाइन परीक्षा देने व फ़ार्म भरने की सुविधा भी हो गई है। हिंदीभाषा के विकास को इससे नई दिशा मिली है। भविष्य में भी इस माध्यम से विश्वस्तर पर हिंदी के चरम विकास की संभावनाएँ दिखाई दे रही हैं।

**हिंदी में ई-मेल की सुविधा :** इंटरनेट पर लोगों के बीच कंप्यूटर के द्वारा सूचना

का आदान-प्रदान ई-मेल कहलाता है। यह सर्वाधिक प्रयुक्त किया जानेवाला इंटरनेट संसाधन है। देवनागरी में ई-मेल सुविधा के लिए सॉफ्टवेयर कंपनी 'सुवि इंफार्मेशन कंपनी सिस्टम, इंदौर' ने हिंदी देवनागरी में निःशुल्क ई-मेल (इ-पत्र) सेवा आरंभ की है, जिससे देवनागरी के पक्ष में इस सदी का यह क्रांतिकारी कदम सिद्ध हुआ और देवनागरी के लिए नया प्रवेश-द्वार खुल गया है। अब तो स्थिति है कि रोमन में टाइप होने पर भी एक छोर पर बैठा व्यक्ति दूसरे छोर से नागरी में लिखा पत्र प्राप्त कर सकता है।

पुणे स्थित सी-डैक द्वारा तैयार 'आई-लीप' के माध्यमों से भारतीय भाषाओं में 'ई-मेल' सुविधा की शुरुआत हुई है। इन्हीं के प्रयासों से 'आई-प्लग इन' के द्वारा भारतीय भाषाओं में बहुभाषीय 'ई-मेल' प्रारंभ हो गया।

**देवनागरी में वेब :** विश्वपटल पर 'वेब दुनिया' के आगमन से इंटरनेट पर देवनागरी लिपि की स्थापना हुई है। इंटरनेट जगत् में देवनागरी की यह एक ऐतिहासिक उपलब्धि है। इंदौर से प्रकाशित होनेवाले समाचार-पत्र 'नई दुनिया' 24 फरवरी 2000 के अंक में श्री विकास मिश्र का लेख- 'वेब दुनिया इंटरनेट के आँगन में हिंदी का अनमोल पुष्प' उल्लेखनीय है।

वेब (WWW) की दुनिया में सर्वप्रथम 'वेब दुनिया' ने पदार्पण किया, जिसके संबंध में डॉ॰ शैलेंद्रकुमार शर्मा ने अपने आलेख 'कंप्यूटर और इंटरनेट में देवनागरी' में इस प्रकार सूचना दी- 'विश्व के इस पहले हिंदी पोर्टल का विकास वेब दुनिया डॉट कॉम (इंडिया) लि. (webdunia.com) में किया है, जो 23 सितंबर 1999 ई॰ को इंटरनेट पर उपलब्ध हो गया है। इस पोर्टल के जनक विनय छजलानी का उद्देश्य था 'एक हिंदीभाषी परिवार की इंटरनेट की जरूरतों की पूर्ति करना।' इस पोर्टल के आगमन से इंटरनेट पर देवनागरी लिपि की शक्ति और संभानाएँ उजागर हो रही हैं। अल्प समय में यह साइट अत्यधिक लोकप्रिय हो गई है, जिसके माध्यम से 'वेब दुनिया' समाचार, संस्कृति, मनोरंजन, ई-व्यवसाय आदि अनेक क्षेत्रों की सूचनाओं का लाभ देश-विदेश के लाखों हिंदीभाषी ले रहे हैं। वर्ष 1997 में इंटरनेट पर पहले भाषायी समाचार-पत्र 'नई दुनिया' को लाने का श्रेय वेब दुनिया के नाम ही है। यह किसी भी भारतीय भाषा का पहला वेबसाइट है, यूनिकोड, आई॰एस॰सी॰आई॰आई॰ तथा इंस्क्रिप्ट जैसे मानक को आधार बनाकर वेब दुनिया ने अपने कदम आगे बढ़ाए हैं।..... वेब दुनिया में संदेश रोमन की-बोर्ड पर टाइप करने पर परदे में देवनागरी लिपि में अंकित नज़र आता है। वेब दुनिया.कॉम में पहले हिंदी सर्च इंजन 'वेब दुनिया.खोज' का लोकार्पण 23 फरवरी 2000 ई॰ को हुआ, जिसके माध्यम से कोई भी व्यक्ति विभिन्न वर्गों के अंतर्गत हिंदी में दी गई सूचनाओं और विषयों से संबंधित सामग्री की खोज कर सकता है। इसके माध्यम से बहुभाषी सूचनाएँ भी दी जा रही हैं। वेब दुनिया डॉट कॉम जैसी बहुउपयोगी प्रणाली ने पुनः यह सिद्ध कर दिया है कि देवनागरी हो या विभिन्न भारतीय भाषाएँ, अधुनातन तकनीकों तथा सूचना प्रौद्योगिकी के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने में समर्थ है।'<sup>1</sup>

एक महत्वपूर्ण वेब पेज नेट जाल डॉट कॉम (netjaal.com) है। अब तो कुछ वर्षों में ही इंटरनेट प्रणाली बहुभाषी (multi-lingual) हो गई है। 'अपना मेल डॉट कॉम'

(apnamail.com) में किसी भी भारतीय भाषा में संदेश भेजा जा सकता है। (टाइम्स ऑफ़ इंडिया- 8.7.2001)

**हिंदी में अन्य शब्द संसाधन पैकेज :** राजभाषा हिंदी को विश्वभाषा बनाने और सूचना-क्रांति से अधिकाधिक लाभ उठाने के लिए अनेक सॉफ्टवेयर बनाए गए हैं। द्विभाषिक शब्द संसाधकों में अलग-अलग सुविधाएँ उपलब्ध हैं :

1. देवनागरी सी- बेसिक कंपाइलर
2. द्विभाषिक डाटाबेस- देवबेस
3. एपीसी कॉरपोरेट 1.0
4. फैक्ट- एकाउंटिंग के लिए
5. रूपा- विज्ञापन के लिए
6. सुलिपि- डीबेस, लोटस, वर्डस्टार, सॉफ्ट बेस।
7. आकृति- विंडोज का अंतरापृष्ठ (इंटरफेस) है, जिसमें कई प्रकार के अनुप्रयोग संभव हैं। इसमें हिंदी के वर्ण/अक्षर उपलब्ध हैं। इसमें नागरी/रोमन को एक ही फॉन्ट में मिश्रित करने की व्यवस्था है। बिना बदले भी द्विभाषिक रूप में उपयोग किया जा सकता है।
8. बैंक्स- बैंकिंग सेवा के लिए बहुभाषिक सिंगल विंडो साफ्टवेयर।
9. श्रीलिपि- विंडोज आधारित भाषाओं के लिए फॉन्ट पैकेज।
10. प्रकाशक- आठ फॉन्ट के परिवार और बॉर्डर फॉन्ट्स के साथ डॉस, विंडोज और लेन पर उपलब्ध है।
11. अक्षर (विंडोज)- इसकी कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं :
  - 11.1 नागरी लिपि में कार्य करने के लिए तीन प्रकार के कुंजीपटल।
  - 11.2 अँग्रेज़ी से हिंदी में अनुवाद की सुविधा।
  - 11.3 पाठ में शब्द को बदलने की सुविधा।
  - 11.4 'स्पेल चेकर' भी उपलब्ध।
  - 11.5 पाठ को मानक रूप में प्रस्तुत करता है।
12. लीप ऑफ़िस- यह शब्द संसाधक मुख्यतः भारतीय भाषाओं के लिए तैयार किया गया है। देवनागरी के अतिरिक्त नौ अन्य लिपियों में भी काम कर सकता है। इसकी विशेषताएँ हैं :
  - 12.1 पाठ को भारतीय लिपियों में परिवर्तित कर मुद्रण करना।
  - 12.2 संपादन।
  - 12.3 अँग्रेज़ी, मराठी, और गुजराती में अनुवाद करने के लिए राजभाषा शब्दकोष।
  - 12.4 यथास्थान, शब्दों/वाक्यांशों को जोड़ा जा सकता है।
  - 12.5 हिंदी-मराठी-गुजराती के लिए स्पेल-चेक।
  - 12.6 समान कुंजीपटल।
  - 12.7 ध्वन्यात्मक कुंजीपटल (उच्चारणानुसार टाइप का काम कर सकते हैं।)

**ई-लीप** : इस सॉफ्टवेयर के द्वारा रोमन में टाइप करने पर भी नागरी में प्रस्तुत होगा। इस सॉफ्टवेयर द्वारा तेरह भारतीय भाषाओं में ई-मेल भेजा जा सकता है।<sup>12</sup>

**अनुवादक** : यह साफ्टवेयर अँग्रेजी के मूल पाठ को हिंदी में अनुवादित करने में सक्षम है। यह सॉफ्टवेयर अँग्रेजी के मूलभूत नियमों का परिपालन करने में सक्षम है, जिसका संचालन अंजली राय चौधरी कर रही हैं।

यह सॉफ्टवेयर अलग-अलग शब्दकोशों-सामान्य, वैज्ञानिक व कृषि-संबंधी डेढ़ लाख शब्दों के साथ मुद्रित पृष्ठों में अंकित शब्दों को भी पहचानने में समर्थ है। यह सॉफ्टवेयर निम्न विषयों के अनुरूप अनुवाद कर सकता है :

- सामान्य भाषा में
- वैज्ञानिक भाषा में
- कृषि के अनुकूल भाषा में
- प्रशासनिक भाषा में

सूचना-क्रांति के इस दौर में हिंदी को वैश्विक भाषा बनाने में इस सॉफ्टवेयर की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

‘पुणे स्थित, सी-डैक द्वारा भी डॉ॰ सूरजभान सिंह (पूर्व अध्यक्ष, वैज्ञानिक-तकनीकी शब्दावली आयोग) की सहायता से वृक्ष व्याकरण- (TAG) पद्धति से अनुवाद की व्यवस्था की जा रही है।’<sup>13</sup>

**पेजिंग व्यवस्था** : पेजलिंक कंपनी ने हिंदी (देवनागरी) में पेजिंग सेवा की शुरुआत की है। यह सेवा दिल्ली व समीपस्थ नोएडा, गुडगाँव, फरीदाबाद, गाज़ियाबाद में शुरू हो चुकी है। शीघ्र ही इसे भारत के प्रत्येक गाँव तक पहुँचा दिया जाएगा व हिंदी प्रयोग को प्रोत्साहन मिलेगा।

सूचना-क्रांति के इस युग में मल्टीमीडिया ‘गुरु’ भी काफी उपयोगी सिद्ध हो रहा है। ‘निकनेट’ राष्ट्रीय सूचना केंद्र, जहाँ से सरकारी आँकड़े व सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं, ‘सिरनेट’- वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान नेटवर्क, तार, टैलेक्स कुछ कंप्यूटर सॉफ्टवेयर जैसे जिस्टशैल, जिस्टर्मिनल, जिस्टकार्ड, ई-लीप आदि ने रोमन सॉफ्टवेयर तैयार किए हैं।

**फैक्स प्रणाली** : इस इलेक्ट्रॉनिक यंत्र द्वारा कोई सूचना लिखित रूप में विश्व के किसी भी भाग में लिखित रूप में पहुँच जाती है। इस यंत्र द्वारा पूरा-पूरा पृष्ठ, चित्र, डाक्यूमेंट, पत्र कुछ सैकंडों में हू-ब-हू एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचा सकते हैं। इस यंत्र ने हिंदी को विश्व के किसी भी कोने तक पहुँचने में सुलभ बना दिया है।

**अंतरिक्ष में उपग्रह प्रक्षेपण** : 20वीं शताब्दी के सातवें दशक में उपग्रहों को प्रक्षेपित करने का जो बीज हमारे वैज्ञानिकों ने रोपा था, आज वह विशाल वटवृक्ष का रूप धारण करके हमारे स्वप्न को साकार कर रहा है तथा समूचे अंतरिक्ष में फैला हुआ है। ये उपग्रह ऑडियो-विजुअल प्रजेंटेशन ‘आवाज़ व तस्वीर की प्रस्तुति’ के साथ हमारी आवश्यकताओं पर खरे उतरे हैं। उपग्रह प्रसारण के श्रीगणेश से भी हिंदी-पत्रकारिता विश्वस्तर पर निरंतर विकास-पथ पर साकार होने की ओर अग्रसर है।

**हिंदी-पत्रकारिता का तकनीकी युग :** तकनीकी माध्यमों से भी हिंदी ने अभूतपूर्व विकास की गति तय की है। विकास के इन तकनीकी साधनों का उल्लेख किए बिना इस विकास-यात्रा को समझ पाना मुश्किल-सा जान पड़ता है। वर्तमान में रेडियो के बढ़ते चरण, उपग्रहों का अंतरिक्ष में सफलतापूर्वक प्रक्षेपण, उनका प्रयोग, उनकी कार्य-प्रणाली का विस्तार, उपग्रह सेवाओं के नए परिदृश्य, आकाशवाणी पर राष्ट्रीय चैनल, एफ.एम. चैनल, मनोरंजन चैनल, सार्वजनिक प्रसारण-सेवा व आकाशवाणी नेटवर्क की शुरुआत, समाचार पत्र-पत्रिकाओं की संख्या में वृद्धि, प्रचार-प्रसार संख्या में वृद्धि, प्रिंट मिडिया का नवीनीकरण, हिंदीभाषा व उसके अनुदित साहित्य की विश्वस्तर पर बढ़ती माँग, अंतरिक्ष में फैली सूचना सड़कों का जाल, टेलीविजन की घर-घर में घुसपैठ, केबल चैनलों का बिछता जाल, दूरदर्शन पर प्रसारित राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय कार्यक्रम-डी०डी० मैट्रो, डी०डी० स्पोर्ट्स, डी०डी० भारती, डी०डी० न्यूज़, डी०डी० नेशनल इंडिया, ज्ञान दर्शन व डी०डी० नेशनल चैनलों का आगमन, विज्ञापन-संस्कृति का श्री गणेश, ध्वनि लेखागार का खुलना, प्रसार भारती व विदेशसेवा प्रभाग जैसी सेवाओं की शुरुआत, कंप्यूटर, इंटरनेट व ई-मेल जैसी सुविधाओं की हिंदी में स्कूली स्तर पर शिक्षा, प्रकाशन व संपादन कार्यों में अभूतपूर्व वृद्धि, पत्रकारों, लेखकों, संपादकों के वेतनमान व भत्तों में सुधार, इनको इंटरनेट, मोबाईल व वाहन जैसी सुविधाएं उपलब्ध करवाना, अनुवाद कार्यों में वृद्धि तथा विभिन्न पत्रकारिता कोर्सों को प्रोत्साहन आदि तकनीकी कारणों से हिंदी वैश्वीकरण के इस युग में विश्वस्तर पर अपनी पहचान बनाने में सक्षम हुई है।

हिंदी को विश्वभाषा बनाने की पहल वर्धा के महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय ने की है। विश्वविद्यालय ने दुनियाभर में फैले हिंदी-पाठकों और अध्येताओं के लिए भारतेंदु युग से लेकर 1950 तक के कापीराइट मुक्त हिंदी साहित्य के एक लाख पृष्ठ अपनी वेबसाइट हिंदीसमय.कॉम पर उपलब्ध करा दिए हैं। विश्वविद्यालय की यह वेबसाइट इंटरनेट पर हिंदी साहित्य की वैश्विक उपलब्धता का प्रतिनिधि नेटवर्क है, जिसमें भारतेंदु के नाटक, रामचंद्र शुक्ल के निबंध, प्रेमचंद के उपन्यास और जयशंकर प्रसाद की कविताएँ अपनी समग्रता में दुनियाभर में फैले हिंदी-पाठकों को उपलब्ध हो गई हैं। अँग्रेजी में क्लासिक रीडर.कॉम और गुटेनबर्ग.आर्ग इसी तरह घर बैठे विश्वसाहित्य उपलब्ध कराते हैं। हिंदीसमय.कॉम पर सद्यः उपलब्ध सभी महत्वपूर्ण सामग्री दूसरे चरण में विश्व की प्रमुख भाषाओं में उपलब्ध कराने का बीड़ा विश्वविद्यालय ने उठाया है।

विश्वविद्यालय सृजनात्मक अभिव्यक्ति और विचार के अनेक रूपों में परस्पर संवाद विकसित करने की आकांक्षा रखता है। हिंदी को विश्वभाषा बनाने के उद्देश्य से यह विश्वविद्यालय विदेशों के विश्वविद्यालयों और संस्थाओं में हिंदी और हिंदी-माध्यम से विभिन्न अनुशासनों के अध्ययन और अनुशीलन के लिए समन्वयक की भूमिका निभाने जा रहा है। विश्वविद्यालय चाहता है कि हिंदी में सिर्फ हिंदी-प्रदेशों को ही नहीं, समूचे देश की धड़कन सुनाई पड़े। सिर्फ देश की ही नहीं, विदेशों में भी हिंदी के अंतरराष्ट्रीय स्वरूप को मजबूती देने के लिए यह विश्वविद्यालय निरंतर सचेष्ट है।<sup>4</sup> विश्वविद्यालय चाहता है कि हिंदी मात्र साहित्य और चिंतन के संकुचित घेरे से निकलकर अंतरराष्ट्रीय स्तर की प्रमुख भाषाओं की बराबरी पर पहुँचकर विश्वभाषा की महती भूमिका निभा सके। इस विश्वविद्यालय ने नई वैश्विक व्यवस्था



के अनुरूप विषयों के चयन और उनके हिंदी में अध्ययन को सुनिश्चित किया है।

निश्चित रूप से सूचना-प्रौद्योगिकी के इस क्षेत्र में आज सभी दिशाओं में हिंदी के क्रम आगे बढ़े हैं। आज विश्व में यह प्रमाणित हो गया है कि नागरी लिपि में लिखी हिंदी सर्वाधिक सक्षम और विकसित भाषा है। सूचना व प्रौद्योगिकी की दिशा में जब भी कोई कदम आगे बढ़ता है तो हिंदी भी क्रम से क्रम मिलाकर आगे बढ़ती है। हिंदी के प्रति अब भी कुछ भ्रांतियाँ व चुनौतियाँ हैं, जिन्हें हमें मिलकर दूर करना होगा। जैसे— हिंदी को व्यावहारिक बनाने के लिए पाठ्यक्रम ऐसा हो, जो प्राथमिक स्तर से पूरे देश में लागू हो। हिंदी के प्रति रूढ़िवादी नहीं होना है, वस्तुतः सभी भाषाओं के शब्दों को, जो हिंदी के लिए उपयुक्त हैं, अपनाना होगा। निर्मूल शंकाओं को पीछे छोड़ते हुए रूढ़ियों को त्यागना होगा। मौलिक सोच व चिंतन मातृभाषा में होना चाहिए। संसार की अन्य भाषाओं के मुकाबले हिंदी मीडिया को आदर्शपरक, मूल्यवान् व सशक्त स्वर बनाना होगा। निष्काम व कर्मठ पत्रकारों को प्रोत्साहित करना होगा। उन्हें हिंदी-हित में अपने सुखों व स्वार्थों को तिलांजलि देनी होगी। कथनी और करनी के अंतर को पाटना होगा। हिंदी पत्रकारिता को व्यवसाय न मानकर एक मिशन मानना होगा। धनवान व यशस्वी होने की बजाय हिंदीसेवा की प्रबल भावना मन में धारण करनी है। हिन्दी में ऐसा सृजनात्मक व मौलिक साहित्य लिखना होगा, जो हिंदी के पाठकों की संख्या में वृद्धि करे। संसार की अन्य भाषाओं के समान हिंदी-साहित्य से जुड़ी जानकारी व सूचना प्रौद्योगिकी से जुड़ी विश्वस्तरीय तमाम जानकारियाँ हिंदी में इंटरनेट के विभिन्न पोर्टलों पर हर समय उपलब्ध हों। अनुवाद व विज्ञापन के क्षेत्र में भी हिंदी को क्रम-ताल मिलानी होगी। हिंदी के प्रवासी साहित्यकारों व साहित्य को भी उचित मान-सम्मान देना होगा।

सिनेमा-जगत् को भी स्लमडॉग मिलेनियम व लगान जैसी हिंदी फिल्मों तथा कौन बनेगा करोड़पति जैसे सुप्रसिद्ध विश्वस्तरीय कार्यक्रमों का सृजन करके हिंदी की धड़कन बनना होगा। स्वतंत्रता से पूर्व हिंदी-पत्रकारिता का इतिहास त्याग की अद्भुत क्षमता का परिचायक रहा है। अतः लेखक, संपादक, समीक्षक व पत्रकारवर्ग को लोकहित के परिप्रेक्ष्य में चुनौतियों एवं ज़िम्मेदारियों का मुकाबला करते हुए अपनी लेखनी रूपी बाण को कभी कुंद नहीं पड़ने देना है ताकि हिंदी के प्रति उनके विचार अमूल्य दस्तावेज़ बन सकें।

अतः हम कह सकते हैं कि आज हिंदी सूचना प्रौद्योगिकी के साथ कदम-से कदम मिलाकर चलने में समर्थ है। सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र में राजभाषा हिंदी के प्रयोग से सूचनाओं के प्रेषण, भंडारण, संचरण में ऐसी सुविधाएँ प्राप्त हो रही हैं कि विकास की इस आँधी में भारत निश्चित रूप से और अधिक उभरेगा और इसका दूरगामी प्रभाव पड़ेगा। विश्वगाँव पर जर्मनी रेडियो में हिंदी-उर्दू के अध्यक्ष फीडमन श्लैंडर का कथन विशेष उल्लेखनीय है— 'हिंदी को आज ओण्टेरी, न्यूयार्क और टोकियो तक पहुँचाना है, पर साथ ही उसे क्रस्बे में भी बने रहना है। संचार-माध्यमों के आधुनिकीकरण ने दुनिया को छोटा बना दिया है, किसी गाँव की तरह। अगर तकनीकी विकास संचार-माध्यमों को प्रभावित कर रहे हैं तो माध्यम भी अपनी माँग के कारण तकनीकी विकास को प्रभावित कर रहे हैं और इसे 'सूचना-क्रान्ति' कहा जा रहा है।'<sup>5</sup> इसी सूचना-क्रान्ति की दिशा में हिंदी के बढ़ते कदम हिंदी को विश्वभाषा बनाने में संजीवनी का काम करेंगे और भविष्य में वामन के चरणों की तरह सिद्ध होंगे।

### संदर्भ

1. कैलाशचंद्र भाटिया, व्यावहारिक हिंदी : प्रक्रिया और स्वरूप, पृ० 259
2. वही, पृ० 255-256
3. वही, पृ० 257
4. दैनिक जागरण, 14 मार्च 2010
5. कैलाशचंद्र भाटिया, व्यावहारिक हिंदी : प्रक्रिया एवं स्वरूप, पृ० 261

□ श्री हरीशकुमार भारद्वाज  
शिवकॉलोनी  
वार्ड नं० 15, गली नं० 2,  
किड्स वैली स्कूल के पास  
बंसल अस्पताल  
सफीदों ( जींद ) हरियाणा )  
मो० 094161-49795

## भारत में महिला सशक्तीकरण की विसंगतियाँ

कुलभूषण मौर्य, शोध छात्र  
हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

आज़ादी के पहले महिला की निजी पहचान, उसके विकास तथा सामाजिक, राजनीतिक गतिविधियों में उसकी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए जो प्रयास किए गए थे, देश के स्वतंत्र होने पर न केवल उनमें तेज़ी आई बल्कि उन्हें सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक रूप से विकास के समान अवसर उपलब्ध कराने के लिए भारतीय संविधान में विशेष व्यवस्था की गई। समाज में व्याप्त पुरुष की वर्चस्ववादी मानसिकता को, जो स्त्री की असमान एवं दयनीय स्थिति के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारक है, चुनौती देने का कार्य नारीवादी आंदोलनों एवं स्त्री-विमर्श ने किया। इससे न केवल स्त्री को उसकी वास्तविकता का बोध हुआ, बल्कि उसे नई पहचान भी मिली, जो पत्नी, माँ, बहन होने से इतर 'मनुष्य होने की थी। इससे न केवल स्त्री के जीवन में व्यापक परिवर्तन हुआ, समाज भी बदला। घरेलू स्त्री से भिन्न उसकी छवि कामकाजी महिला की बनी। आज़ादी के समय से अब तक स्त्री की स्थिति सशक्त हुई है। प्रत्येक क्षेत्र में उसने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है, परंतु वर्तमान समय में शासन एवं मीडिया द्वारा प्रचारित सशक्त स्त्री की छवि की वास्तविकता एवं व्यापकता संशय के घेरे में है। लचर शासन-व्यवस्था एवं समाज पर हावी पुरुष मानसिकता के कारण स्त्री सशक्तीकरण की चेतना प्रत्येक स्त्री तक नहीं पहुँची है। जहाँ दिखाई भी देती है, तमाम अंतर्विरोधों एवं विसंगतियों के साथ। स्त्री-सशक्तीकरण के लिए 'पुरुष वर्चस्ववाद की छाया से स्त्री को निकालने'<sup>1</sup> एवं दो बराबरी की अंतर्निर्भरता<sup>2</sup> की जो बात नवजागरण के दौर में कही गई थी, वर्तमान समय में भी वह ज्यों की त्यों लागू होती है।

स्त्री-मुक्ति के लिए सर्वप्रथम उसकी शिक्षा की ओर ध्यान गया, ताकि शिक्षित होकर स्त्री जागरूक एवं आत्मनिर्भर बन सके तथा अपने शोषण के खिलाफ़ आवज़ उठा सके, पर रूढ़िवादी सोच एवं परंपरागत शिक्षा-व्यवस्था के कारण शिक्षा का प्रसार सभी स्त्रियों तक नहीं हो सका। भारतीय स्त्री समाज का सबसे निचला तबका आज भी शिक्षा से वंचित है। जिन स्त्रियों तक शिक्षा पहुँची भी, केवल डिग्री पाने और उसके सहारे नौकरी पाने तक सीमित रही। 'स्त्रियों में शिक्षा के बावजूद अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता नहीं आ पाई है, शिक्षा उन्हें अपने विरुद्ध होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध लड़ने की ताकत नहीं देती। आत्म विश्वास और साहस नहीं देती।<sup>3</sup> शिक्षा के बावजूद सोचने-विचारने की गुंजाइश इसलिए भी नहीं है कि लंबे समय की पराधीनता ने उसे मानसिक रूप से अपंग बना दिया है।

इस प्रकार शिक्षा ने भले ही स्त्री की पराधीन मानसिकता को नहीं बदला, पर उसे

आत्मनिर्भर बनने का अवसर अवश्य दिया, जिसके परिणामस्वरूप उसमें साहस एवं आत्मविश्वास भी आया। उसके भीतर की आर्थिक असुरक्षा की भावना समाप्त हुई। किंतु समाज द्वारा दी गई सामाजिक असुरक्षा की भावना ने उसे मुक्त नहीं होने दिया। इससे वह आज भी पीड़ित है। नौकरी करने के कारण स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में कोई सुधार नहीं आया है। 'आर्थिक रूप से स्वतंत्र/सशक्त स्त्रियाँ भी शोषण और गैरबराबरी का शिकार होती हैं।'<sup>14</sup> बल्कि उन्हें दोहरी जिम्मेदारी निभानी पड़ती है। दफ्तर में कामकाजी महिला की एवं घर में घरेलू महिला की। 'जब ये लड़कियाँ तमाम क्षेत्रों में कीर्तिमान एवं ताज़ातरीन प्रतिमान बनाकर घर लौटती हैं तो अधिकतर का वजूद बदल जाता है।' नारीवादियों ने जिसे स्त्री-मुक्ति का रास्ता बताया, वह स्त्रियों के लिए नई समस्या बन गया। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के बावजूद अधिकतर स्त्रियाँ अपनी इच्छा से धन के उपयोग के लिए स्वतंत्र नहीं हैं।

कामकाजी महिलाएँ घर से बाहर भी हिंसा का शिकार होने लगीं। इससे आर्थिक-सामाजिक रूप से सशक्त हो रही स्त्री के मन में भय व असुरक्षा की भावना व्याप्त हो गई। वैसा तो हिंसा से बचाव के लिए क़ानून है, पर 'मौजूदा विधान-संविधान-कानून महिलाओं को क़ानूनी सुरक्षा कम देता है, आतंकित भयभीत और पीड़ित अधिक करता है।'<sup>15</sup>

भारत की स्वतंत्रता के साथ नारी-सशक्तीकरण की शुरुआत महिलाओं की उपेक्षा, शोषण और श्रम में लिंग-आधारित भेदभाव को समाप्त करने तथा बराबरी के सिद्धांत का दृढ़तापूर्वक पालन करने की नीति से हुई। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 के अनुसार लिंग के आधार पर भेदभाव को समाप्त किया गया है एवं अनुच्छेद 23, 24 के अंतर्गत महिलाओं के किसी भी प्रकार के शोषण पर पूर्ण प्रतिबंध है। पर व्यवहार में न तो स्त्री-पुरुष समानता आ पाई है, न ही उनका शोषण समाप्त हुआ है। स्त्री-पुरुष को बराबरी का दर्जा देने एवं स्त्री को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए संपत्ति में हिस्सेदारी का अधिकार मिला, पर व्यावहारिकता में यह कहीं भी लागू नहीं है। न तो पुरुषों ने स्त्री को यह अधिकार दिया और न ही स्त्री माँग पाई। 'स्त्री जब अपने समानाधिकारों और लोकतांत्रिक वैज्ञानिक नज़रिए की अनिवार्यता पर ज़िह्न करती है या बदलाव की क्रांतिकारी मुहिम छेड़ती लगती है तो उसके रास्ते में तमाम बाधाएँ खड़ी की जाती हैं। बार-बार भारतीय संस्कृति, परंपरा, धर्म, नैतिकता और सनातन मूल्यों की दुहाई देकर उसके बढ़ते क़दमों को रोका जाता है।'<sup>16</sup>

भारत सरकार ने महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करने एवं उनकी स्थिति को मजबूत करने के लिए अनेक क़ानून बनाए हैं, जिनमें प्रसव-निदान तकनीकी अधिनियम, 73वाँ व 74वाँ संविधान संशोधन, वेश्यावृत्ति-निवारण अधिनियम, स्त्री अशिष्ट निरूपण निषेध अधिनियम, बाल विवाह निषेध अधिनियम, समान पारिश्रमिक अधिनियम, दहेज-निषेध अधिनियम, प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम आदि प्रमुख हैं।

भारत में प्रसवपूर्व निदान तकनीकी अधिनियम बनाकर स्त्री को गर्भपात का अधिकार दिया गया, ताकि वह अनैच्छिक गर्भ से निजात पा सके। किंतु महिलाओं का एक बड़ा हिस्सा आज भी अपने प्रजनन-संबंधी मौलिक अधिकार के बारे में खुद फैसला करने से वंचित है। एक सर्वेक्षण के अनुसार 'आज भी भारत में हर पाँच में से तीन महिलाओं के बच्चे पैदा करने के अधिकार पर उनके परिवार या पति का ही नियंत्रण है।'<sup>17</sup> इसके चलते लिंग-जाँच करवाकर

गर्भस्थ बालिका की हत्या की जाने लगी, जोकि अपराध है। समाज में इस तरह की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण 'हम ऐसे विषम समाज के निर्माण की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं, जहाँ भविष्य में स्त्रियों के प्रति अपराधों में बेतहाशा वृद्धि होगी।'<sup>9</sup> लिंगानुपात में भारी अंतर होना इस बात का प्रमाण है कि स्त्रियाँ भेदभाव की शिकार हैं। 73वाँ व 74वाँ संविधान संशोधन के द्वारा महिलाओं को त्रिस्तरीय पंचायतों में एक तिहाई आरक्षण प्रदान किया गया। कुछ पंचायतों में तो महिलाओं ने अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए अच्छा कार्य किया किंतु ज्यादातर पंचायतों की महिला प्रधान निर्णय लेने की स्थिति में नहीं है। अभी हाल में संसद की एक समिति ने 'देश में कुछ पंचायतों में चुनी हुई महिला प्रतिनिधियों के पति या नजदीकी संबंधियों की ओर से चलाए जाने पर'<sup>10</sup> चिंता व्यक्त की है। विडंबना यह है कि प्रशासनिक अधिकारियों की जानकारी में यह सब हो रहा है।

बाल-विवाह निरोधक अधिनियम 1929 के तहत बालविवाह करना दंडनीय अपराध है, पर विडंबना यह है कि हो चुका विवाह अपने आपमें अवैध या गैर-कानूनी नहीं होता। 'राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-3 के मुताबिक देश में करीब पचास फीसदी लड़कियों की शादी 18 साल से भी कम उम्र में हो जाती है।'<sup>11</sup> इसके पीछे बेटों को पराया धन समझने की मानसिकता तो है ही गरीबी भी एक प्रमुख कारण है। आज भी लड़कियों को ज्यादा पढ़ाने के पीछे उन्हें योग्य एवं समझदार बनाने से अधिक यह मानसिकता काम करती है कि उन्हें अच्छा वर मिलेगा।

घरेलू हिंसा, बलात्कार, यौनिक आचार, विवाह से जुड़े अपराध खर्चे तथा जीवन पोषण के अधिकार आदि से संबंधित क़ानून बनाकर स्त्रियों की सुरक्षा के इंतज़ाम किए गए हैं, पर मुश्किल यह है कि सामाजिक मान्यताओं के कारण इस तरह की हिंसा की शिकार स्त्री उसे सामने लाने से कतराती है। महिलाओं के साथ घर में होनेवाली हिंसा पुलिस के लिए आज भी जुर्म नहीं, महज घरेलू मामला है।<sup>12</sup> परिणामस्वरूप घरेलू हिंसा ने विकराल रूप ले लिया है। 'स्त्रियों से जुड़े जितने भी मामले हैं, उनमें घर वाले ही अपनी लड़कियों को मारते हैं। चाहे सती का मामला हो, दहेज-हत्याएँ हों, भ्रूण-हत्या हो, बीमार होने पर इलाज न कराना हो, बाल-विवाह, बेमेल विवाह।'<sup>13</sup> आजकल 'ऑनर किलिंग' का एक नया हथकंडा अपना लिया गया है, जिसके कई मामले सामने आने के बावजूद सरकार एवं न्यायालय इन पर रोक लगाने में असमर्थ हैं।

कार्यस्थलों पर यौन-उत्पीड़न रोकने के लिए प्रस्तावित क़ानून का तो लागू होने से पहले ही विरोध शुरू हो गया। इसके दुरुपयोग की संभावना हो सकती है, पर इसे खारिज नहीं किया जा सकता। विरोध करने वालों के तर्क हैं—

'इस कानून से झूठे मसलों की बाढ़ आएगी। यह धन ऐंठने का ज़रिया बनेगा, कंपनी के निदेशकों के खिलाफ़ इसका बेजा इस्तेमाल होगा। लिहाजा कोई भी कंपनी बेमतलब झंझट मोल लेने की जगह लड़कियों की तुलना में लड़कों को नौकरी देना चाहेगी।<sup>4</sup> ये तर्क पुरुष-मानसिकता की पुष्टि करते हैं, जो कार्यालयों में महिलाओं को मनोरंजन के रूप में देखती है। लोकसभा में महिला-आरक्षण बिल का लागू न होना भी पुरुष-वर्चस्व बनाए रखने की साजिश है। मुद्दा केवल आरक्षण का नहीं, महिला-सशक्तीकरण का है। 'महिला-आरक्षण-विधेयक

भी तब तक महिलाओं के जीवन-स्तर में सुधार नहीं ला सकता, जब तक राजनीतिक पार्टियाँ महिलाओं से जुड़ी समस्याओं को एक जनअभियान का मुद्दा न बनाएँ। इसके लिए इन्हें सबसे पहले अपने घर को सुधारना होगा।<sup>15</sup>

समाज के निचले तबके की औरतों को पुरुष-सत्ता के साथ-साथ जातीय सत्ता और सांस्कृतिक दबावों को भी सहन करना पड़ता है। उनतक न तो शिक्षा की पहुँच है और नहीं किसी सरकारी क़ानून या योजना की। 'दलित औरतों में मनुष्य होने का एहसास ही पैदा हो पाता, अस्तित्व और अस्मिता-बोध का प्रश्न तो उठता ही नहीं है। बहुआयामी उत्पीड़न के कारण हाशिए की औरत की सृजनात्मकता व कल्पनाशीलता सुप्त रहती है।'<sup>16</sup> आज समाज में मेहतर व अन्य दलित जाति की लाखों महिलाएँ शोषित हैं। 1993 अधिनियम के अनुसार, किसी भी प्रकार के शुष्क शौचालय को इंसान से साफ़ करवाना प्रतिबंधित है, पर सरकारी उदासीनता की वजह से 'भारत में आज भी तेरह लाख लोग मैला ढोने के काम में लगे हैं, जिसमें नब्बे फीसदी महिलाएँ हैं। मैला-प्रथा एक तरह से जाति-व्यवस्था और पुरुषों द्वारा इन महिलाओं पर थोपी गई हिंसा है।'<sup>17</sup>

महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश तथा दक्षिण के अन्य राज्यों में प्रचलित 'देवदासी और 'जोगिन' प्रथाएँ भी सामाजिक या जातिगत वैधता के आधार पर लंबे समय से जीवित हैं, जिनका उन्मूलन कानून द्वारा नहीं हो सका है।<sup>18</sup>

सरकार ने तो कानून बनाकर महिलाओं को समानता एवं स्वतंत्रता का अधिकार दे दिया, पर समाज उन पर अपने ही बनाए नियम थोपता है। 'आलिया विश्वविद्यालय की एक प्रवक्ता इसलिए पढ़ाने से वंचित हैं कि उन्होंने बुर्के में विश्वविद्यालय आने से इंकार कर दिया है।'<sup>19</sup> हालाँकि विश्वविद्यालय के कानून में ऐसी कोई शर्त नहीं है।

कानून एवं अधिकार देने के अलावा केंद्र सरकार ने महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए कई योजनाएँ भी चलाई हैं, जिससे उनके विकास, कल्याण और उत्थान का मार्ग प्रशस्त हो सके। ये योजनाएँ ग्रामीण महिलाओं को मुख्य धारा में लाने का प्रयास हैं। इनमें डबाकरा योजना, न्यूमॉडल चर्खा योजना, महिला समाख्या योजना, मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रम, किशोरी बालिका योजना, राष्ट्रीय महिला कोष, इंदिरा महिला योजना, ग्रामीण महिला विकास परियोजना, बालिका समृद्धि-योजना आदि प्रमुख हैं, जिनके द्वारा ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने, उन्हें समानता, शिक्षा का अधिकार देने, जागरूक बनाने का प्रयास किया जा रहा है। परंतु वास्तविकता यह है कि अधिकतर योजनाओं की जानकारी ही ग्रामीण महिलाओं के पास नहीं है। जो योजनाएँ पहुँची भी हैं, उनमें धाँधली ज़्यादा है। इस वजह से महिलाओं को इनका समुचित लाभ नहीं मिल पाता। मध्य प्रदेश में घोषित परिवार कल्याण वर्ष में स्वास्थ्य विभाग में भ्रष्टाचार की बात सामने आई है।<sup>20</sup> वस्तुतः 'देश में स्वाधीनता-प्राप्ति के समय से ही महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनाने, उन्हें स्वावलंबी बनाने, स्वरोज़गार उपलब्ध कराने, उनके तथा उनके बच्चों के स्वास्थ्य और शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देने हेतु विशेष कानूनों की रचना कराके उनको लागू किया गया है तथा विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं को चलाकर उनके विकास, कल्याण, उत्थान और प्रगति के लिए अनेक स्तरों से प्रयास किए जाते रहे हैं।'<sup>21</sup> पर सदा रूढ़िगत सामाजिक मान्यताएँ एवं

सोच इन पर हावी रही हैं। केवल कुछ फीसदी महिलाएँ इनसे बाहर निकल पाती हैं, जिन्हें हम सशक्त नारी के रूप में देख रहे हैं। महिलाओं के हितों की रक्षा एवं उनके विकास के लिए आवश्यक कदम उठाने हेतु सरकार को परामर्श देने के लिए वर्ष 1992 में राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया है, किंतु यह आयोग भी केवल विरोध व्यक्त करने तक ही सीमित रह गया है, स्त्रियों को उनका हक एवं न्याय दिलाने में इसकी भूमिका बहुत कम रही है।

नारी-सशक्तीकरण की दिशा में नारीवादी आंदोलनों एवं स्त्री-विमर्श का योगदान इस मायने में महत्वपूर्ण है कि 'उन्होंने व्यापक स्तर पर स्त्री को स्वचेतन बनाया है। उसमें यह बोध पैदा किया है कि वह अपने को उपभोग की वस्तु न मानकर सजीव इकाई माने और समाज से अपनी इस नई भूमिका की स्वीकृति की माँग करें।<sup>22</sup> नारीवादी साहित्य ने स्त्रियों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया एवं उनमें यह बोध उत्पन्न किया कि अपने बारे में निर्णय लेने का अधिकार, चयन की स्वतंत्रता स्वयं स्त्री के हाथ में होनी चाहिए। इस चेतना ने एक नई स्त्री को जन्म दिया है जो 'आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर, अपनी उपलब्धियों पर गर्व करने वाली आत्मविश्वास, अधिकारा और समृद्धि से भरी 'पॉवर वूमन' है।<sup>23</sup> इस स्त्री की एक सामाजिक पहचान बनी। वह किसी की पत्नी, बेटे या बहू के रूप में नहीं, अपनी उपलब्धियों के कारण पहचानी गई। पर सच्चाई यह है कि मानवश्रम में आधी से ज्यादा भागीदारी करने वाली स्त्री शक्ति के मध्य यह सशक्त स्त्री एक प्रतिशत से भी कम है। अधिकतर स्त्रियों में न तो इस तरह की चेतना विकसित हुई और न ही उनकी कोई पहचान बनी। ग्रामीण स्त्रियाँ कामकाज के लिए बाहर निकली भी हैं तो आर्थिक परिस्थितियों से मजबूर होकर, उनकी घर के भीतर की भूमिका में कोई परिवर्तन नहीं आया है।

स्त्री पर हो रहे शारीरिक अत्याचारों को दृष्टि में रखते हुए नारीवादी चिंतकों एवं स्त्री-विमर्श के पैरोकारों ने स्त्री की देह-मुक्ति की बात की, उसे इस बात का एहसास दिलाया कि देह पर स्त्री का अधिकार है और इस पर पुरुष का वर्चस्व नहीं चल सकता। पर उनका दृष्टिकोण भूमंडलीकरण की गिरफ्त में आ गया। भूमंडलीकरण ऐसी प्रक्रिया है, जो 'भीतर से सभी प्रकार की स्वतंत्रताओं का अपहरण कर रही है, पर ऊपर से स्वतंत्र होने का भ्रम फैला के रख रही है।'<sup>24</sup> बाजारीकरण इसी का दूसरा रूप है, जिसने स्त्री की 'देहमुक्ति' की अवधारणा को सबसे अधिक भुनाया है। देह-मुक्ति की बात करनेवाली स्त्रियों की देह, उनके पहनावे तथा दिनचर्या पर बाजार का नियंत्रण है। दरअसल, 'भूमंडलीकरण औरत को अपने ही सौंदर्य से अभिभूत करने की सोची-समझी योजना पर काम कर रहा है। चूँकि अधिकतर औरतें मध्यवर्गीय गृहिणी हैं, इसलिए सौंदर्य-उद्योग का ख्याल है कि अगर इन गृहिणियों में अपने शरीर, त्वचा और चेहरे के लिए ललक पैदा कर दी जाए तो उन्हें विशाल उपभोक्ता वर्ग में बदला जा सकता है।'<sup>25</sup> विज्ञापनों, फिल्मों एवं सौंदर्य-प्रतियोगिताओं के माध्यम से बाजार अपना यह काम बखूबी कर रहा है। 'वस्तु' एवं 'संपत्ति' की जिस छवि से स्त्री निकल रही थी, बाजार ने पुनः बिना उसे एहसास कराए उसी में बदल दिया है। 'सौंदर्य-प्रतियोगिताओं की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि यहाँ औरत 'मैं हूँ' का दावा पेश करते हुए पुरुष द्वारा स्थापित की गई अपनी उसी छवि को मजबूत करती है, जिसमें वह सिर्फ एक माल,

देखने-दिखाने और दिल बहलाने के सामान के अलावा और कुछ नहीं है।<sup>26</sup>

बाजारवाद के चंगुल में फँसकर नारीवाद अपनी दिशा एवं अपने लक्ष्य से भटक रहा है। दरअसल, 'स्त्रीवाद पूर्व की कूपमंडूकता से बाहर निकलकर पश्चिम के सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का अंग बन रहा है। स्त्रीवादी स्त्री लिंग-भेद जरूर मिटा रही है, पर बाजार के 'पण्य' के रूप में। वह एक सार्वभौमवाद से छूटकर एक दूसरे सार्वभौमवाद में फँस रही है।<sup>27</sup>

बाजार, राजनीति एवं समाज का प्रभाव नारीवाद पर भी पड़ा है। 'महिला-आंदोलन भी कहीं-न-कहीं जातिगत, सांप्रदायिक व दलगत ताकतों और विदेशी फंडिंग एजेंसियों की चपेट में आ गया है। फंडिंग एजेंसियों के पैसे ने उन्हें आराम-परस्त बनाया है और उनके काम को दफ्तरों तथा सेमिनार व स्टडीज तक सीमित कर दिया है।<sup>28</sup> आजकल हिंदी साहित्य में नारी-विमर्श ज़ोरों से चल रहा है और उसके कुछ पहलुओं को लेकर नारी को सशक्त रूप में पेश किया जा रहा है, लेकिन सवाल यह है कि 'उत्पादन की मुख्य प्रक्रिया में शिरकत करने वाली स्त्री कहाँ है। इस नारीवादी साहित्य में, पिता पति, भाई से पैतृक संपत्ति में अपना हिस्सा माँगने वाली स्त्री कहाँ है?<sup>29</sup>

दरअसल, समानता एवं शोषण-मुक्ति के लिए किया गया संघर्ष 'स्त्री बनाम पुरुष नहीं है। यह लड़ाई उस पूरी सामाजिक व्यवस्था, तंत्र और मानसिकता से है, जिसने सभ्यता के विकास की आरंभिक स्थिति से ही पुरुष की तुलना में स्त्री को कमतर, कमजोर और पुरुष पर आश्रित नागरिक के रूप में देखा।<sup>30</sup> आज इक्कीसवीं सदी में भी स्त्री को लेकर पुरुष मानसिकता में कोई फर्क नहीं आया है। स्त्री सशक्तीकरण के लिए पुरुष की इस मानसिकता को बदलना होगा और पुरुष से तो यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह स्वयं बदल जाएगा, इसलिए 'दबाव बनाकर, अपनी स्थिति सुदृढ़ कर, स्त्री के खिलाफ होने वाले षड्यंत्रों व स्त्री पुरुष के लिए स्थापित दोहरे मानदंडों के खिलाफ आवाज़ बुलंद करके ही<sup>30</sup> पुरुष में परिवर्तन की गुंजाइश बनती है।

पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था एवं पुरुष वर्चस्ववादी मानसिकता के चलते आज भी स्त्री की संपूर्ण स्वतंत्रता संभव नहीं है। इससे मुक्ति के अभाव में तमाम अधिकारों एवं कानून के होते हुए भी स्त्री की दोयम दर्जे की स्थिति बनी हुई है। महिला-सशक्तीकरण न आरक्षण से संभव है, न ही स्वेच्छाचारिता से। जब तक समाज की मानसिकता में बदलाव नहीं आएगा, स्त्री की यह स्थिति बनी रहेगी। प्रत्येक क्षेत्र में दो-चार स्त्रियों के नाम गिना देने भर से महिला सशक्तीकरण की विसंगतियों पर पर्दा नहीं डाला जा सकता।

#### संदर्भ

1. शंभुनाथ, हिंदी नवजागरण और संस्कृति, आनंद प्रकाशन, सं० 2004, पृ० 115
2. वही, पृ० 116
3. रेखा कस्तवार, स्त्री-चिंतन की चुनौतियाँ, राजकमल प्रकाशन, सं० 2009, पृ० 89
4. राजी सेठ, कथाक्रम, वर्ष-8, अंक-33, पृ० 9
5. सुशील सिद्धार्थ, जनसत्ता, 11 अप्रैल 2010, पृ० 6
6. अरविंद जैन, संपादकीय, स्त्री : मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन, सं० 2009, पृ० 12
7. रजनी गुप्त, कथाक्रम, वर्ष-8, अंक-33, पृ० 3



8. जनसत्ता, 28 जुलाई 2010, पृ० 9
9. कमलाबाई यादव, जनसत्ता रविवारी, 11 अप्रैल 2010, पृ० 3
10. जनसत्ता, 28 जुलाई 2010 पृ० 9
11. गायत्री आर्य, जनसत्ता रविवारी, 13 जून 2010, पृ० 1
12. वीना, जनसत्ता रविवारी, 21 मार्च 2010, पृ० 3
13. क्षमा शर्मा, हिंदुस्तान (दैनिक), 29 जून 2010 पृ० 10
14. जनसत्ता 19 जुलाई, 2010 पृ० 3
15. अजेयकुमार, जनसत्ता, 26 मार्च 2010, पृ० 6
16. रामशरण जोशी, स्त्री : मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन, सं० 2009, पृ० 38
17. राज वाल्मीकि, जनसत्ता रविवारी 18 जुलाई 2010, पृ० 1
18. रामशरण जोशी, स्त्री : मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन, सं० 2009, पृ० 39
19. जनसत्ता, 31 जुलाई, 2010 पृ० 7
20. जनसत्ता, 05 जुलाई, 2010, पृ० 7
21. प्रकाशनारायण नाटाणी, महिला जागृति और कानून, आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, सं० 2002, पृ० 34
22. निर्मला जैन, कथाक्रम, वर्ष 8, अंक 33, पृ० 11
23. रेखा कस्तवार, स्त्री-चिंतन की चुनौतियाँ, राजकमल प्रकाशन, सं० 2006, पृ० 92
24. विजयमोहन सिंह, कथाक्रम वर्ष 8, अंक 33, पृ० 7
25. कुसुम त्रिपाठी, शब्द शिखर अंक 8, पृ० 30
26. वीना, जनसत्ता 06 जुलाई, 2010 पृ० 6
27. शंभुनाथ, हिंदी नवजागरण और संस्कृति, आनंद प्रकाशन, सं० 2004, पृ० 117
28. नीलम गुप्ता, स्त्री : मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन, सं० 2009 पृ० 49
29. अरुणप्रकाश, स्त्री : मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन, सं० 2009, पृ० 67
30. निर्मला जैन, कथाक्रम, वर्ष 8, अंक 33 पृष्ठ 11
31. रेखा कस्तवार, स्त्री-चिंतन की चुनौतियाँ, राजकमल प्रकाशन, सं० 2009 पृ० 26

## हिंदी-कहानी : व्यावहारिक समीक्षा की समीक्षा

डॉ० बागेश्री चक्रधर

हिंदी की आधुनिक समीक्षा आचार्य शुक्ल से शुरू हुई मानी जाती है, लेकिन विडंबना यह है कि सर्वाधिक आधुनिक कही जा सकनेवाली हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण कहानी विधा पर आचार्य शुक्ल तक ने कोई व्यावहारिक ध्यान नहीं दिया। उनके युग को न केवल सामान्य पाठक बल्कि भारतीय काव्यशास्त्र की शास्त्रीय परंपराओं से नालबद्ध गंभीरताधारी आचार्य पंडितवर्ग तक कहानी को हलके-फुलके मनोरंजन का साधन मानता था। कहानी पर गंभीर विचार तो दूर, उसे साहित्य में एक महत्वपूर्ण विधा का स्थान देने तक में कोताही की गई। समीक्षा पर कविता की जकड़ इतनी मजबूत थी कि कोई और विधा उसे ढीला करने में समर्थ नहीं थी। उपन्यास अवश्य ही उसमें प्रविष्ट हुआ। लेकिन औद्योगिक क्रांति के समय के पाश्चात्य साहित्य में औपन्यासिक समीक्षा के जो प्रतिमान बनाए थे, उन्हीं का अनुवाद करके वहाँ के उपन्यासों पर आजमाया गया। कहानी ने जब स्वयं को एक विधा मानने पर आचार्यों को बाध्य किया तो उच्चतर शिक्षा के पाठ्यक्रमों में सांत्वना रूप में उसे स्थान दे दिया गया, लेकिन पाठ्यक्रमों की परीक्षा-पद्धति ने कहानी से भी कविता की तरह व्याख्या आदि के बँधे-बँधाए ढरें की माँग की। दूसरी तरफ़ उपन्यास की समीक्षा ने पात्र, चरित्र-चित्रण, देशकाल, उद्देश्य का जो पैमाना दिया था, कहानी पर भी लागू किया गया। कहना न होगा कि 'एकेडेमिक सुविधावाद या सरलीकरण' के फ़ार्मूले और 'कथा-साहित्य के प्रति एक अगंभीर भाव' ने हिंदी कहानी-समीक्षा को पनपने नहीं दिया।

लेकिन रचनात्मक स्तर पर हिंदी-कहानी एक भौतिक शक्ति के रूप में समृद्ध अस्तित्व में थी और उसका स्वयं का अस्तित्व समीक्षा के लिए एक बड़ी चुनौती था। जैनैन्द्र जी के कहानी-संग्रह 'दो चिड़िया' पर 'विश्वास भारत' में छपी अज्ञेय जी की समीक्षा को कहानी-समीक्षा की बात करते हुए अकसर दोहराया जाता है। सन् 1935 में कहानी के बारे में पहली बार अज्ञेय की ओर से यह बात व्यंजित हुई कि कहानी सिर्फ़ वक्त बिताने के लिए पढ़नेवाली चीज़ नहीं है। इस धारणा ने एक ओर कहानी को हलके-फुलके मनोरंजन की रूपता से निकाला तो दूसरी ओर कहानी की समीक्षा भी पालने में से पैर का अँगूठा दिखाने लगी। कहानी को सोचने-विचारने के स्तर तक ले आया गया।

स्वतंत्रता के बाद हिंदी-साहित्य की सभी विधाओं में लेखन की नवप्रवृत्तियाँ खुद को मजबूत करने लगीं। कहानी में भी नवलेखन के स्वर अपनी पहचान के लिए समीक्षकों को बाध्य करने लगे। मानो कहानी के एक लंबे आत्मसंघर्ष के बाद समीक्षकों ने उस पर ध्यान दिया हो। 'कहानी' पत्रिका का पुनर्प्रकाशन और इधर-उधर पत्रिकाओं में छपनेवाले छिटपुट

निबंध और नए कहानी-संग्रहों में कहानीकारों की भूमिकाएँ कहानी-समीक्षा के सिलसिले की प्रारंभिक कड़ियाँ हैं। सन् 1957 में प्रयाग में हुए साहित्यकार-सम्मेलन में कहानी को नई कहानी की संज्ञा दे दी गई और कहानी की चर्चा एक 'बिजली की चमक की तरह' तेजी से फैल गई। कहानी का ऐसा बोलबाला उठा कि कविता तो नहीं, पर उपन्यास आदि अन्य विधाएँ काफी पीछे छूट गईं।

कहानी की हालत उपेक्षिता उर्मिला को एकाएक ध्यानकर्षण दिए जाने जैसी हुई। एकाएक ध्यानकर्षण में अतिरिक्त उत्साह और आपाधापी भी हुई। परिणाम यह हुआ कि स्वतंत्रता के बाद की कहानियों पर जो समीक्षा लिखी गई, वह अपने प्रारंभिक दौर से टिप्पणी-धर्मा स्वरूप ही ग्रहण कर पाई। नई कविता ने जिस नई समीक्षा को पैदा किया, वह सामने थी ही। कहानी-समीक्षा अपने संगठनात्मक स्वरूप में और कहानी की स्तर-बहुलता को उद्घाटित करने में पीछे न रह जाए, काव्य-समीक्षा परोक्ष रूप से आगाह करती रही। कहानी के लिए समीक्षा-मानों की कोई समृद्ध परंपरा तो थी नहीं, कविता के औजार इस्तेमाल किए गए। स्वातंत्र्योत्तर कविता के पास भी जो समीक्षा के औजार थे, वह भी कई मायनों में उसके अपने नहीं थे।

यों तो हर विधा में स्वतंत्रता के बाद दो धाराएँ स्पष्ट रूप से अलग-अलग दिखाई देती हैं, जिनमें एक धारा ने साहित्यगत अपने जातीय संस्कारों को परंपरा के प्रदेय के साथ स्वीकार भी किया और साहित्य के ऐतिहासिक विकास के क्रम को भारतीय संदर्भों में ही दृष्टि में रखा। यहाँ हम इन धाराओं का जिक्र नहीं कर रहे और न इस बात पर अधिक बल दे रहे कि किस धारा के समीक्षा के औजार कितने थे, किसके थे और कितने अपने थे। लेकिन यह बात सही है कि पश्चिम की नई समीक्षा के मुहावरों को तेजी से देसी बनाया गया। प्रासंगिकता (रैलिवेंस), विरोधाभास (पैराडाक्स), तनाव (टेंशन), द्वंद्व (कॉन्फ्लिक्ट), प्रतिबद्धता (कमिटमेंट), समसामयिकता (कांटेम्पेरेनिटी), प्रामाणिकता (ओर्थेंटिसिटी), आयाम (डायमेंशन), पक्षधरता (पार्टीजन), सामूहिक अवचेतन (कलैक्टिव अनकांशस), उत्सवधर्मिता (सैलीब्रेशन), विडंबना (आयरनी), नाटकीय (ड्रेमेटिक) आदि शब्दों के माध्यम से हिंदी में भी 'नई' समीक्षा चल निकली। कविता जब इन शब्दों और शब्द-पदों का इस्तेमाल अपनी समीक्षा के लिए करा सकती थी तो कहानी की दृष्टि (कहानीकारों की दृष्टि) भी इस ओर गई और नाक भले ही हाथ घुमाकर पकड़ी गई हो, कहानी को भी इन्हीं दिए गए औजारों से छीला-तराशा गया। यह एक ध्यान देने की बात है कि कहानी की संरचना और उसकी रचना-प्रक्रिया की पड़ताल की शुरुआत स्वयं कहानीकारों द्वारा ही प्रस्तुत किया जाना कहानी के जन-अलगाव को सूचित करता है कि कहानी से वास्ता उन्होंने मध्यवर्गीय पढ़े-लिखे लोगों को था, जो खुद इसकी रचना-प्रक्रिया से जुड़े थे, कि कहानीकार जिस अनुभूति और जिस मानसिकता से गुज़र रहा था उसके लिए उसने जरूरत महसूस की कि वह बताए कि वह कहाँ से गुज़र रहा है। उस समझ को और उस मानसिकता को समझाने की 'समीक्षक जिम्मेदारी' कहानी के इस जन-अलगाव के कारण स्वयं कहानीकार को निभानी पड़ी। इन कथाकार समीक्षकों द्वारा एक महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक काम तो यह किया गया कि इन्होंने काव्यशास्त्र के शास्त्रीय बने-बनाए ऐकेडेमिक ढाँचे के प्रति अवज्ञा और विरोध को जन्म दिया, जिसके चलते कहानी तो क्या कोई भी साहित्यिक विधा पनप नहीं सकती

थी। अपनी कहानियों को खास स्थिति में सिद्ध करने के लिए कहानीकारों ने अपने कहानी-संग्रहों में लंबी-लंबी भूमिकाएँ लिखीं। मोहन राकेश के कहानी-संग्रह नए बादल (जनवरी 1975) और राजेंद्र यादव के कहानी-संग्रह 'जहाँ लक्ष्मी कैद है'। (अगस्त 1957) की भूमिकाएँ कहानी-संबंधी नई चेतना को व्यक्त करती हैं।

इस तरह कहानी, जो कभी 'कहने-सुनने की चीज़ थी, 'लिखने-पढ़ने की चीज़' बनी और धीरे-धीरे वह 'समझने-समझाने' की विधा बनती गई। सन् 1956-57 के लगभग 'नई कहानी' के अस्तित्व पर गर्मागर्म बहसें होने लगीं। डॉ॰ देवीशंकर अवस्थी का कहना है कि 1957 में प्रयाग में होनेवाले साहित्यकार सम्मेलन तक 'नई कहानी' के अभियान को लगभग स्वीकार कर लिया गया था, लेकिन उस स्वीकार में अनेक भ्रम विद्यमान थे। कहानी में नयापन किस बात को लेकर है, इस तथ्य पर तब तक बहुत गहराई से विचार नहीं किया जा सका था। नएपन और पुरानेपन की यह बहस कहानी-समीक्षा को विचित्र निष्कर्षों तक ले जा रही थी। प्रथम तो कहानी में नगर विभक्तिवाद धीरे-धीरे तिरोहित हो गया और दोनों को ही नई कहानी के अंतर्गत स्वीकार किया। दूसरे, कहानी समीक्षा में कंडीशंड रिफ्लेक्सेज़ भी सक्रिय थे। नए कहानीकार अपनी रचनाओं में नयापन रखते हुए भी पुरानी खानेबूढ़ समीक्षा-पद्धति से मुक्त नहीं हुए थे। कहानी में वही वातावरण, घटना-संघटन, चरित्र और पात्रों को ध्यान में रखकर किसी एक की प्रधानता दिखाकर वैशिष्ट्य निर्धारण करने की प्रवृत्ति बनी रही। पुरानी समीक्षा-पद्धति ने अभ्यास ही ऐसा करा दिया कि उसने लत का रूप धारण कर लिया। इन कहानीकारों के मध्य अकेले राजेंद्र यादव का स्वर ऐसा था जो पुरानेपन के चौखटे के खिलाफ आत्मविश्वास रखता था। कहना न होगा कि इस दौर में कहानी के मर्म को समझने वाले लोगों की असली कमी थी, जिसे इस वक्त महसूस भी किया गया। 'कहानी' पत्रिका में 'आज की कहानी' शीर्षक से आयोजित लेखमाला में समकालीन कहानीकारों के ही वक्तव्य प्रकाशित किए गए। अभी तक कहानी की लेखन-प्रक्रिया और चिंतन-प्रक्रिया का दायरा कहानीकारों तक ही सीमित था, यानि समीक्षा का दायित्व भी कहानीकारों पर ही था लेकिन कुछ ही अर्स में कविता के इलाके में सक्रिय आलोचक भी इस ओर उन्मुख हुए।

उक्त लेखमाला में कहानीकारों के अतिरिक्त अन्य आलोचक भी प्रविष्ट हुए। सन् 1961 से 'नई कहानियाँ' में 'हाशिए पर' स्तंभ के अंतर्गत डॉ॰ नामवर सिंह ने समकालीन महत्त्वपूर्ण कहानियों को अलग-अलग व्याख्यायित-विश्लेषित करके एक ठोस पहल की और कहानी-समीक्षा को एक 'पद्धति' देने का प्रयास किया। सन् 1965 तक लेखकों और समीक्षकों ने निर्मम बहस बरकरार रखी लेकिन इस पूरी प्रक्रिया में कहानी को सबसे ज्यादा लाभ इस अर्थ में मिला कि उसने बेहद साहित्यिक प्रतिष्ठा प्राप्त की। निर्विवाद महसूस किया जाने लगा कि कहानी साहित्य की एक केंद्रीय विधा है। समीक्षा में कहानी की पड़ताल के लिए 'जीवन की गहराई' नापने, सृजन के समूचे माहौल से गुज़रने, प्रामाणिकता और आंतरिक विवशता के साथ उससे जुड़कर उसमें 'हिस्सेदारी निभाने' की बातें की जाने लगीं। सही मायनों में कहानी की समीक्षा के लिए रचना-प्रक्रिया, संश्लेषिता और आंतरिक रचाव या लेखकीय ट्रीटमेंट को मद्देनज़र रखा जाने लगा। उसके लिए उस 'सत्य की उपलब्धि' को महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा, जो समीक्षा-प्रक्रिया से निकलती थी।

अब नई कहानी के सामने एक विडंबना (जिसे परोक्ष रूप से हिंदी-कहानी के लिए प्रदेय भी माना जा सकता है।) यह प्रकट कि शुरुआत में ही अंतर्विरोधी विचार पनपने लगे और आरोपण-प्रत्यारोपण का ऐसा घनीभूत आलम हुआ कि कहानी में नेतृत्व की कामना बलवती होने लगी। नई कहानी बनाम नई कविता का विवाद उठा तो नई कहानी बनाम सचेतन कहानी, अकहानी आदि भी दिखे। सन् 1965 तक पत्रिकाएँ चर्चाओं से सरगर्म थीं। डॉ० नामवर सिंह पर सबसे बड़ा आरोप यह लगाया गया कि उन्होंने कहानी की चीरफाड़ कविता के औजारों से की। आरोप लगानेवालों ने जवाब में वायवी टिप्पणियाँ कीं, उलजलूलियत के सिवा कुछ ठोस नहीं दिया। मसलन, इस तरह की अतिवादी टिप्पणियाँ भी दिखाई दीं कि 'हर कहानी के शास्त्र को उसी में से ईजाद करना होगा।'

ज़ाहिर है कि कहानी की समीक्षा कहानी के होने के कारण थी और उस 'होने' ने ही उसे जन्म दिया था। कहानी की समीक्षा कहानियों की रचनात्मकता से गुज़रकर निकली थी। यही कारण है कि लगभग कहानी की समग्र समीक्षा व्यावहारिक समीक्षा के रूप में प्रस्तुत हुई। भले ही यह व्यावहारिक समीक्षा बहुत आवयिक ढंग से गहरे पैठकर न की गई हो, लेकिन कहानी के जीवंत उदाहरणों से प्रवृत्तियों के निकालने की पद्धति में से निकलकर आई थी।

इसके बाद पुस्तकों के प्रकाशन का एक दौर हुआ। जिन्होंने पत्र-पत्रिकाओं की लेखमालाओं में क्रमशः लेख लिखे थे, उन्होंने लेखों को एक जगह संकलित करके पुस्तकाकार दिया। जो लोग पत्र-पत्रिकाओं की बहसों के सक्रिय हिस्सेदार थे, उन्होंने अपनी सद् इच्छा, सद्भावना के फलस्वरूप छिटपुट बिखरे लेखों को संपादित किया। कुछ ने, जो 'नई कहानी क्या है' के जवाब में कहानियों के ठोस उदाहरण के साथ अपनी बात रखना चाहते थे, प्रमुख कहानियों को संपादित करते हुए भूमिकामय समीक्षा लिखी और नई कहानी की प्रवृत्ति, प्रक्रिया और पाठ को निर्धारित करने की कोशिश की। उपर्युक्त समीक्षकों में से कुछ का संबंध प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रमुख या गौण स्थिति में विश्वविद्यालयों से भी था।

नई कहानी मध्यवर्ग के पढ़े-लिखे तबके में जगह पा चुकी थी और उसके पक्ष में खासा जनमत तैयार हो गया था, परिणाम यह हुआ कि विश्वविद्यालय भी नई कहानी (समस्त नई विधाओं) की ओर ध्यान देने को बाध्य कर दिए गए। पाठ्यक्रमों में नई विधाओं को एकाएक स्थान भले न दिया गया हो, लेकिन शोधविषयों में अवश्य ही नए विषय दिखने लगे। हिंदी-शोध में अब तक मध्यकालीन, आदिकालीन साहित्यगत अन्वेषणों का ही बोलबाला था, पर नई मानसिकता लिए, नई भावभूमियों को खोजते हुए नए अनुसंधित्सुओं की नए विषयों की माँग को पुराने खुराट शिक्षक निर्देश टुकराने का बल न सहेज सके। नए विषयों पर काम किए जाने की माँग शोधार्थियों की ओर से ही बड़ी तेज़ी से उठी। विषय मिले और 4-5 साल के अनंतर वे शोधकार्य भी दिखाई देने लगे। इस तरह हिंदी-कहानी की व्यावहारिक समीक्षा पर स्वतंत्र पुस्तकों (जिनकी श्रेणियाँ ऊपर बताई गई) के साथ-साथ शोधग्रंथों का भी आना हुआ।

दो दशकों की कहानी से प्रमुख ताल्लुक रखने वाली अनेक पुस्तकें पिछले एक दशक के दौरान प्रकाशित हुई हैं। रचनात्मक कार्य की अवधि और मात्रा देखते हुए पुस्तकें कम नहीं हैं। गत दो दशकों की कथा-यात्रा का ब्यौरा देने के साथ-साथ लगभग हर पुस्तक में उनसे पहले चार दशकों की कहानी-स्थिति भी किसी-न-किसी रूप में दे ही दी गई है।

कहानी तो कहानी उक्त सभी पुस्तकें आज स्वयं समीक्षा-दिशा और समीक्षा-दृष्टि के विश्लेषण के लिए एक गंभीर शोध की माँग करती हैं। जो पारिभाषिक शब्दावली इन पुस्तकों ने कहानी की व्यावहारिक समीक्षा को दी है, उसी के मनोविश्लेषणात्मक, सौंदर्यशास्त्रीय और समाजशास्त्रीय विश्लेषण के लिए पर्याप्त समय और विस्तार की गुंजाइश है। यहाँ पर हम हिंदी की व्यावहारिक समीक्षा पर गहन अध्ययन प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं। सिर्फ़ किए गए काम को छोटी-छोटी टिप्पणियों के साथ उँगलियों पर गिना रहे हैं।

हिंदी का शोध-कार्य अभी तक शिशु-प्रयासों से आगे की मैच्योरिटी हासिल नहीं कर सका है। इस बात को अब वे लोग भी मानने लगे हैं, जो नहीं मानते थे। लेकिन जो कुछ भी हिंदी-कहानी की व्यावहारिक समीक्षा के सिलसिले में शोध-ग्रंथों के रूप में सामने आया है वह इतना शैशव-ग्रस्त भी नहीं है। विश्वविद्यालयों द्वारा दी गई पारंपरिक जड़ता की गिरफ्त में तो वह शोध-ग्रंथ भी हैं, लेकिन अध्ययन में सार्थक श्रम भी किया गया है। हालाँकि यह सही है कि इन सभी शोध-ग्रंथों में स्वतंत्र समीक्षा-पुस्तकों की मान्यता-धारणाओं को ही स्फीत रूप में लिख दिया गया है और निष्कर्षों के मूल में मौलिक पुस्तकों का ही उल्था है। लेकिन इतना भी कम नहीं है। एक जगह सभी मतों का संग्रह-भर भी उपयोगी है। बात चाहे 'स्वातंत्र्योत्तर कथा-लेखिकाओं' को केन्द्र में रखकर की गई हो चाहे 'कहानियों में द्वंद्व' की खोजों और चाहे कहानियों में 'ग्राम-चेतना' या 'प्रगति चेतना' की बात की गई हो, सभी ग्रंथों में स्वतंत्र पुस्तकों का सार सारस्वत शैली में प्रस्तुत किया गया है। स्वतंत्र पुस्तकों में भी केंद्रीय पुस्तकें डॉ॰ नामवर सिंह, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव या देवीशंकर अवस्थी (संपादन) की ही रही हैं। शेष स्वतंत्र पुस्तकें या तो इन पुस्तकों के जवाब में लिखी गईं या इनके मतों को अपने शब्दों में व्यक्त किया गया या इनकी बातों को विद्यार्थियों के लिए सुलभ बनाने की कोशिश की गई या फिर दूसरे 'कुछ अपनी कुछ पराई' शैली में घुमा-फिराकर वही-वहीं बातें पर कोट चढ़ाकर पेश की गईं।

स्वतंत्र पुस्तकों के प्रकाशन का क्रम 1960-62 के लगभग से प्रारंभ हुआ। यानी पत्रिकाओं या पुस्तक की भूमिका में लिखी गई समीक्षाओं के सिलसिले के लगभग 5-6 वर्ष बाद। लक्ष्मीनारायण लाल की 'आधुनिक हिंदी कहानी' पुस्तक प्रकाशित हुई। प्रेमचंद, जैनेंद्र, अज्ञेय तथा यशपाल की उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में नई कहानी की 'जययात्रा' में एक अभिनंदन के तौर पर। डॉ॰ लाल ने अज्ञेय के आगे की पीढ़ी की 'आगे की ज़मीन' को सर्वथा अस्पष्ट' माना। उसकी प्रारंभिक रचना-धर्मिता को 'अस्पष्टता, यथार्थ की ऊब और शिल्प-प्रयोग की प्रतिक्रिया में सस्ती सेक्स की धारा बताया। उनके अनुसार, 'द्वितीय महायुद्ध के उपरांत आए हुए समाज, अर्थ और रुचि को भोजन देने वाली सस्ती, भौंडी कहानियाँ' लिखी गईं। लगभग पाँच-छः वर्ष तक यह 'गत्यावरोध' रहा। 'नए बादल' की भूमिका में इसी काल के बारे में मोहन राकेश ने लिखा है कि इस काल में एक छोटे वर्ग ने 'बहुत ईमानदारी से साहित्यिक मूल्यों के विकास का प्रयत्न किया, वहाँ दूसरे वर्ग ने केवल लिखने के लिए लिखा और सामान्य पाठकों के लिए यह विवेक करना लगभग असंभव कर दिया कि इन दोनों वर्गों की विभाजन-रेखा कहाँ से आरंभ होती है। बहरहाल, छोटे से वर्ग ने ही कहानी-आंदोलन में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। नई कहानियों के उदाहरण देते हुए और समकालीन कहानी

विचारकों के मतों पर ध्यान देते हुए डॉ० लाल नई कहानियों के स्वरूप की तीन विशेषताएँ निकालते हैं—(अ) सहज सामाजिकता (ब) अनुभूति (स) परिवेश-बोध की विकसित चेतना। लेकिन इस नई कहानी का वेग इतना प्रभावमयी था कि अनेक प्रतिष्ठित कहानीकारों ने अपनी रचना-प्रक्रिया को ही बदल दिया। डॉ० लाल ने कहानियों के उदाहरण रखकर नई कहानी की विशेषताओं के संदर्भ में एक विशेषता यह भी निकाली कि जो नया कथाकार अपनी जन्मभूमि-कर्मभूमि के विशेष अंचल से आया हुआ था या उससे संस्कार-संबंधित था, उसने प्रायः अपने उसी अंचल या देश-विशेष को ही सामग्री के रूप में ग्रहण किया। मार्कण्डेय की ग्राम-जीवन की कहानियों और कमलेश्वर एवं रेणु की अपनी बस्ती की कहानियों के उदाहरण ('भूदान', 'दाना भूसा', 'आदर्श कुक्कुट गृह' मार्कण्डेय, 'नीली झील', 'बदनाम बस्ती', 'सलमा' कमलेश्वर और 'अच्छे आदमी' रेणु) देकर डॉ० लाल लेखकों की 'अपार संवेदनशीलता तथा बदलते हुए जीवन के भीतर असत पक्षों तथा हासोन्मुख अंध शक्तियों के प्रति उनके कटु व्यंग्य तथा विद्रोह को नई कहानी के प्रसंग में महत्वपूर्ण मानते हैं। दरअसल, समीक्षा का यह दौर नई कहानी के रूप में कहानीगत बदलावों की पहचान करा रहा था, उनकी प्रवृत्तियाँ उकेर रहा था, उनकी विविधताओं में निहित एकता को गिनवा रहा था। शिल्प के बारे में प्रगतिवाद द्वारा दी गई सैद्धांतिक धारणा व्यावहारिक स्तर पर सिद्ध हो रही थी। शिल्प पर डॉ० लाल कोई व्यावहारिक विवेचन तो नहीं करते, पर कहते हैं—'कहानी की मौलिक अनिवार्यता आखिरकार चरित्र ही है, वह जीवन-अंश ही है, जो कहानी के नए शिल्प का उत्स-बिंदु है।' निश्चय ही शिल्प के बारे में यह एक बेहतर समझ है। आगे की पुस्तकों में हमें इसी समझ से किया गया विश्लेषण उपलब्ध होता है। अलग-अलग विचार के लोगों ने भी इसी मत को माना। यह एक आश्चर्य की बात हो सकती है पर इससे यह भी सिद्ध होता है कि सही समीक्षात्मक निष्कर्ष रचनात्मक साहित्य को सही करने की क्षमता भले ही न रखते हों, पर सही रचनात्मक साहित्य में सही समीक्षात्मक निष्कर्षों को निकालने की क्षमता काफ़ी मात्रा में होती है। अब कोई निहित उद्देश्यों से ग़लत निष्कर्ष निकालने पर तुल जाए तो बात दूसरी है, पर रचनात्मक साहित्य व्यावहारिक समीक्षा के वक्त समीक्षक को सही मार्ग पकड़ने को बाध्य करता है। यही कारण है कि ऐसे बहुत सारे अनुभववादी या कभी-कभी प्रतिक्रियावादी समीक्षक भी ठीक-ठीक निष्कर्ष देते हुए दिखाई दे जाते हैं। पर निष्कर्ष के तौर पर यह भी एक सरलीकरण ही है। ऐसा भी हमेशा ही हो, यह आवश्यक नहीं है।

नई कहानी परिमाण में इतनी हो ही गई थी कि उसका एक समीक्षा-तंत्र बनाने की माँग उठने लगी। पत्रिकाओं में 'तांत्रिक' सक्रिय थे। स्वयं डॉ० नामवर सिंह ने कहानी के रचनातंत्र पर पर्याप्त विचार किया। अपनी पुस्तक की भूमिका में वे इस बात की घोषणा भी निस्संकोच करते हैं कि उन्होंने 'कथ्य-समीक्षा की एक पद्धति निकालने की कोशिश की है।' और वास्तव में डॉ० नामवर सिंह का कहानी के रचनातंत्र के शोध पर महत्वपूर्ण कार्य है उनके अनुसार उसे गढ़ने में उन्हें विरोधियों द्वारा 'सहयोग' भी मिला। 'कहानी : नई कहानी' के कमलेश्वर को उन्होंने तीन भागों में विभाजित किया है— प्रस्थान, प्रक्रिया और प्रतिपत्ति। पुरानी समीक्षा के विभक्तिवाद की ऐतिहासिक कमजोरियों का जिक्र करते हुए डॉ० नामवर कहानी के लिए जिस तत्त्व को बुनियादी तौर पर आवश्यक बताते हैं, उसका नाम रखते हैं

‘कहानीपन’ कविता में जो स्थान लय का है, कहानी में वही स्थान कहानीपन का है। ‘कहानी के कहानीपन की रक्षा करते हुए भी कहानी के शिल्प में नवीनता उत्पन्न की जा सकती है। एक तरह से कहानी की सफलता उसका कहानीपन है और कहानी की सार्थकता इसमें है कि वह ‘हमारे जीवन की छोटी-से छोटी घटना में भी अर्थ खोज लेती है या उसे अर्थ प्रदान कर देती है। इस अर्थ की व्याप्ति मानवीय सत्य की सीमा तक पहुँचा देती है। ‘हत्याभरन’, ‘गदल’, ‘छोटा डॉक्टर’, ‘चीफ की दावत’, गिद्ध और सेवती के फूल’, ‘जिंदगी और जोंक’ आदि सभी कहानियों में ‘कहानीपन’ है, इसलिए सफल हैं और मानवीय सत्य के निकट के अर्थ उद्घाटित करती हैं, इसलिए सार्थक हैं। राजेंद्र यादव का चक्करदार शिल्प कहानीपन के प्रतिकूल बैठता है। कथानक में पेचीदगी और उलझनों के पीछे भावनाओं के स्तर पर मानसिक गुत्थियाँ सक्रिय रहती हैं। कहना न होगा कि शिल्प की गड़बड़ी कथ्य की गड़बड़ी से ही आती है। डॉ० नामवर ‘एक कमजोर लड़की’ की कहानी के पेचों को प्रस्तुत करते हैं। राजेंद्र यादव की कहानियों पर नामवर की व्यावहारिक समीक्षा ने काफी विरोध को जन्म दिया। बहुतों ने माना भी। इसी तरह नई कहानी की ‘प्रस्थान’ कहानी (पहली कृति) परिंदे को तय कर देने का भी जहाँ एक ओर समर्थन हुआ तो दूसरी ओर जमकर विरोध भी हुआ। परिंदे को ‘पहली कृति’ घोषित करने से पहले वे नई कहानियों से गुजरते हुए कुछ विशेषताओं को रेखांकित करते हैं। मसलन “नई कहानी का समूचा रूप गठन (स्ट्रैक्चर) और शब्द गठन (टेक्स्चर) ही सांकेतिक है। -नए बिंब नए कहानीकारों के विकसित ऐंद्रिय बोध के सूचक हैं। जो कहानीकार जितना संवेदनशील है, उसका वातावरण उतना ही मार्मिक और सजीव है। -नवीनता केवल शिल्पगत नहीं है बल्कि उसके मूल में कहानीकार की नवीन दृष्टि है।

नई कहानी में आर्थिक परिस्थितियों का सामना करनेवाले निम्नमध्यवर्गीय व्यक्तियों की लाचारी, पीड़ा, आत्म-प्रवंचना और जिजीविषा आदि मनःस्थितियों का कलापूर्ण मार्मिक चित्रण मिलता है। इस प्रकार कहानी हमारे जीवन की वास्तविकता के ऐतिहासिक विकास की प्रतीक है।

‘परिंदे’ की समीक्षा कथ्य और शिल्प दोनों को ध्यान में रखकर की गई है। नामवर जब कथ्य का विवेचन करते हैं तो शिल्प भी विवेचित होने लगता है और जब शिल्प का विवेचन करते हैं तो कथ्य भी रास्ते में आता है। ‘व्यक्ति चरित्र भी वही है, जीवन-स्थितियाँ भी रोज की जानी-पहचानी ही हैं, लेकिन निर्मल के हाथों वही स्थितियाँ इतिहास की विराट नियति बनकर खड़ी हो जाती हैं... मामूली-सा वाक्य युगव्यापी प्रश्न बन जाता है। ‘छोटा-सा वाक्य कहानी दूरगामी अर्थवत्तों से वलयित कर देता है। (हम कहाँ जाएँगे) नामवर कहानी द्वारा पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण करते हैं, समीक्षा-पद्धति के लिए एक नवीनता थी, प्रभाव, जिसके प्रभाव में बने रहकर भी पाठक को न चरित्र याद रह पाते हैं, न घटनाएँ। नामवर कहते हैं—‘चरित्र वही याद आते हैं जहाँ भाव कमजोर होता है और शिल्प प्रबल।’ ..निर्मल की कहानियों के विश्लेषण के जरिए वे कहानी में प्रभाव की गहराई के लिए चरित्र, वातावरण कथानक आदि का ‘कलात्मक रचाव’ आवश्यक मानते हैं।

कहानी की प्रक्रिया पर नामवर ने विचार किया तो सुरेंद्र चौधरी और श्री सुरेंद्र ने भी किया। कहानी की पाठ-प्रक्रिया में चित्र खंड साकार होते हैं, जो भावों से गुजरते हुए विचार



तक पहुँचते हैं, ऐसा अन्य समीक्षकों ने भी माना था, उनके द्वारा की गई कहानियों की व्यावहारिक समीक्षा द्वारा सिद्ध हुआ वहमवादी कहानियों के पीछे की यथार्थ की वास्तविकता भी वे उद्घाटित करते हैं। जैनेंद्र की नीलम देश की राजकन्या का विवेचन करते हुए वे उसके उद्देश्यों को व्याख्यायित करते हैं। जैनेंद्र जिसमें वहम के शिकार हैं, नामवर उसे एक दृष्टिकोण से शिकार होना मानते हैं। प्रेमचंद से तुलना करते हुए कहते हैं—जैनेंद्र का वहम प्रेमचंद जानते थे, उन्हें बाहर के उस प्रकाश का भी ज्ञान था, जो वहम के उस अंधकार को दूर कर देता है। नामवर जैनेंद्र में जिस वहम का जिक्र करते हैं, वह अकेले जैनेंद्र का नहीं, वस्तुतः वह समूचे एक वर्ग का वहम है, जो बाहरी जीवन की हलचलों से निरपेक्ष रहकर आत्मकुंठाओं की झाड़ियों में फँसा होता है और उसी में बहिर्जगत् की भ्रांतिमय कल्पनाएँ करता है और डॉ० नामवर सिंह की यहाँ चुटीली टिप्पणी सही लगती है कि वहम से पैदा होने वाली फेंटेसी कला नहीं, बल्कि कला का वहम पैदा करती है। प्रेमचंद की 'मुक्तिमार्ग' नामक कहानी की व्यावहारिक कहानी की प्रक्रिया में पाठक की 'फिर क्या हुआ?' रूपी जिज्ञासा कौतूहल और उत्सुकता के बारीक अंतर को विवेचित करता है।

कुल मिलाकर वे अच्छी कहानी के लिए संपूर्ण प्रभाव आवश्यक समझते हैं या संपूर्ण प्रभाव न केवल भावात्मक रूप में बल्कि बौद्धिक रूप में चेतना की स्तर-बहुलता पर भी पड़ना चाहिए। इस अन्विति की निर्मिति के लिए कलात्मक रचाव अकेला माध्यम है। आरोपण दर आरोपण और सवाल झेलते हुए निर्गुण की कहानी की तुलना में उषा प्रियवंदा की कहानी 'वापसी' को अच्छी की श्रेणी में रखते हैं। इस कहानी को अच्छा सिद्ध करने में नामवर ने जिन समीक्षा-अस्त्रों का इस्तेमाल किया है वह उनके द्वारा अपनाई गई समीक्षा पद्धति का व्यावहारिक रूप है। यानी जिस समीक्षा-पद्धति के निकालने की बात इन्होंने की, वह यही है।

डॉ० नामवर सिंह की 'नई कहानी' पूरे तौर पर व्यावहारिक समीक्षा की एक बेहतर कृति है। इसके प्रदेय और इसके उचित मूल्यांकन को हम इस तथ्य से बहुत अच्छी तरह समझ सकते हैं कि सर्वाधिक चर्चा इसी कृति की हुई। जिस प्रकार कहानी-कला आज्ञादी के बाद पूरे साहित्य की केंद्रीय विधा बनकर सामने आई, उसी तरह हिंदी कथा-समीक्षा की केंद्रीयता नामवर की इस कृति ने हासिल की।

इसके बाद तो हिंदी-कहानी की समीक्षा के रूप में अनेक पुस्तकें दिखाई देने लगीं। डॉ० देवीशंकर अवस्थी ने यद्यपि संपादन-कार्य किया, तथापि व्यावहारिक समीक्षा के लिए यही उनका बड़ा योगदान था। 'विवेक के रंग' नामक पुस्तक के 'अनुभाव का अपनापन' नामक खंड में उन्होंने मार्कण्डेय, कमल जोशी, राजेंद्र यादव, अमरकांत, निर्मल वर्मा, उपेन्द्रनाथ अशक, मोहन राकेश, उषा प्रियवंदा और कमलेश्वर के क्रमशः पानफूल, ब्रह्म और माया, जहाँ लक्ष्मी कैद है, जिंदगी और कैद, परिंदे, पलंग, एक और जिंदगी और गुलाब का फूल, खोई हुई दिशाएँ नामक कहानी-संग्रहों पर प्रमुख समीक्षकों या कथाकार-समीक्षकों की व्यावहारिक समीक्षाएँ संकलित हैं। व्यावहारिक समीक्षा के इन सभी लेखों में कहानियों की उन सामान्य प्रवृत्तियाँ को निकाला गया है, जिन्हें नई कहानी की रीढ़ कहा जा सकता है। संग्रहों की कहानियों के विवेचन के दौरान अलग-अलग कहानीकारों की वे कहानियाँ भी निकलकर आई हैं, जिन्हें आगे चलकर हिंदी-कहानी की उपलब्धि माना गया। ध्यान देने की बात है कि कहानी में उस समय तक इतने

दल, गुटों, डंडों और झंडों की सक्रिय शुरुआत नहीं हुई थी। प्रारंभिक दौर में विरोधी भी एक प्लेटफार्म पर बातचीत करने की सहजता महसूस करते थे। आज शायद यह उम्मीद नहीं की जाती कि धर्मवीर भारती मार्कण्डेय की किसी पुस्तक की समीक्षा लिखेंगे। लेकिन उस दौर में धर्मवीर भारती ने 'पानफूल' कही कहानियों के बारे में लिखा है कि लेखक ने अपने परिचित ग्रामीण वातावरण का चित्रण किया है और मनुष्य जीवन के रागात्मक यथार्थ को चित्रित करते हुए मानवीय रागात्मक संबंधों के सूक्ष्मतरंग और कोमलतरंग तंतुओं को पकड़ने और उनकी रसमयता में डूबकर कथा कहने की दिशा अपनाई है।

डॉ० नामवर सिंह ने 'परिदे' के बारे में वे ही सारी बातें कही हैं, जो परिदे को पहली कृति घोषित करते हुए अपनी पुस्तक में कही हैं। मार्कण्डेय ने 'अशक' के 'पलंग' संग्रह-पत्र शैली में समीक्षा की है और शिकायती ढंग में अशक के अनुभव-तंत्र को बेमानी करार दिया है। पात्रों के अंतःसंघर्षों में अपनी प्रगतिशील दृष्टि और यथार्थवाद की सूक्ष्म पकड़ से उन्होंने पात्रों में निहित विरोधाभासों को उद्घाटित किया है। मजे की बात यह है कि अशक को यह पत्र उन्हीं की कहानी 'ठहराव' की एक पात्र 'मन्नो' के द्वारा लिखाया गया है। व्यावहारिक समीक्षा की यह एक अपनी ही शैली है। ओमप्रकाश 'दीपक' ने 'खोई हुई दिशाएँ' नामक संग्रह की समीक्षा करते हुए दिशाओं के खोने को सार्थक सवालों की तलाश बताया है। किंतु इस पुस्तक की सभी समीक्षाएँ गंभीर समीक्षाओं की कोटि में नहीं आतीं, उनका स्वरूप केवल पुस्तक-समीक्षाओं जैसा है जिसके कारण अपने टिप्पण-धर्मास्वरूप से ऊपर ये नहीं उठ पाई हैं।

अगली केंद्रीय चर्चित पुस्तक कमलेश्वर की 'नई कहानी की भूमिका' है। कमलेश्वर स्वयं नई कहानी के शीर्षस्थ रचनाकारों में गिने जाते हैं। उन्हें भी यदि कहानी पर समीक्षा लिखने की जरूरत महसूस हुई तो इसका कारण यही मानना चाहिए कि उस समय रचनाकार पेशेवर समीक्षकों की समीक्षा से संतुष्ट नहीं होता था या फिर यह कि अपने तौर पर उसे कहानी की कुछ अलग प्रवृत्तियाँ नज़र आती थीं। लेकिन कमलेश्वर इस पुस्तक को अपनी रचनाधर्मिता में कोई अलग कर्म नहीं मानते बल्कि कहते हैं—'कहानी और उपन्यास लिखे जाने के बाद भी कितना कुछ कहने को बाकी रह जाता है, उसी की पूर्ति का यह एक प्रयास और है। कमलेश्वर ने नई कहानी में नया क्या है, का जवाब कहानियों के ठोस उदाहरण देते हुए दिया है और पुरानी तथा नई कहानी के बीच बदलाव का बिंदु वैचारिक दृष्टि को माना है। नई कहानी के पात्रों में युगीन यथार्थ की छवियाँ जीवन की गहराइयों के ऊपर तिरती दिखाई देती हैं। पात्रों की एक सूची गिनाते हुए कमलेश्वर कहते हैं—'इनमें मानवीय परिणति की यथार्थ अभिव्यक्ति और सूची में जो कहानियाँ गिनाई गई हैं, संयोग से वही कहानी चर्चा के केंद्र में भी रही हैं। सूची इस प्रकार है—भीष्म की 'चीफ की दावत' की माँ या 'भाग्यरेखा' का वह रेखा खाता हुआ व्यक्ति, शरद जोशी की 'तिलिस्म' का नौकरीपेशा बाबू, दूधनाथसिंह की 'रक्तपात' की माँ, ज्ञानरंजन की 'पिता' के पिता, उषा प्रियंवदा की 'जिंदगी और गुलाब के फूल' का भाई, मन्नू भंडारी की 'यही सच है' की वह औरत, कृष्णा सोबती की मित्रो, कृष्णा बलदेव वैद की 'मेरा दुश्मन' का पति, देवेंद्र गुप्त की 'अजनबी समय की गति' का रिटायर्ड बूढ़ा और तमाम लोग जो इधर की कहानियों में आए हैं, मात्र अपनी ही नहीं, अपने माध्यम से अपने वक्त की कहानी कहते हैं।'

समीक्षा में अपने आगमन पर कमलेश्वर ने यह कह भी दिया कि रचनाधर्मी लेखक

तभी कुछ कहने के लिए मजबूर होता है, जब वह देखता है कि समीक्षा अपने दायित्व को वहन नहीं कर रही है और कृतित्व की आंतरिक भाषा को नहीं समझा जा रहा है या उसकी रचनाशीलता के स्रोत अवरुद्ध किए जा रहे हैं। कृतित्व की आंतरिक भाषा से शायद कमलेश्वर का आशय कहानियों की उस शिल्पगत बुनावट से है, जो उनकी समझ से समीक्षकों द्वारा नहीं समझी गई और रचनाशीलता के स्रोत से यह कि वे कौन-सी परिस्थितियाँ थीं, जो हिंदी नई कहानी की पृष्ठभूमि में सक्रिय थीं। कमलेश्वर का स्रोतों के बारे में अपना विशेष मत है (जिसे नामवर नहीं मानते)। कमलेश्वर तो कहते हैं कि आज़ादी मिलते ही जो भयंकर रक्तपात और जनसंहार हुआ, उसमें शरणार्थियों के कफ़िले ही नहीं आए, बल्कि अपने देश-घर-परिवार में ही आदमी शरणार्थी बन गया। कमलेश्वर की इस राय को इसी राह के अनुसरणकर्ता समीक्षकों ने काफ़ी समय तक दुहराया, किंतु कहना न होगा कि यह एक खंड सत्य ही था। मोहभंग का कारण अकेले विभाजन की विभीषिका ही नहीं थी, बल्कि आज़ादी के बाद आज़ादी के भ्रम से मुक्ति थी। यानी देश की राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति (जिसका संबंध अकेली विभाजन-भूमि से नहीं, प्रत्युत पूरी भारतभूमि से था।) ही इस मोहभंग के मूल में थी। जिस तरह युग के बारे में यह तय नहीं होता कि वह अपनी युग-चेतना से परिचित होगा, उसी तरह रचनाकार के बारे में भी यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि वह कम-से-कम अपनी रचना के बारे में ही वस्तुगत जानकारियाँ रखता होगा। प्रभावमय भावुकतापरक विश्लेषण की शैली में कमलेश्वर जिन असरदार निष्कर्षों पर पहुँचते हैं, वह किसी अनुभववादी को ही प्रभावित कर सकते हैं, लेकिन विडंबना है कि कथा की रचनात्मकता और समीक्षा-क्षेत्र में लगे लोगों में अनुभववादियों की कमी नहीं थी। कमलेश्वर के ही रास्ते कहानी-समीक्षा में अनुभववाद पुरजोर ढंग से प्रविष्ट हुआ। इसमें संदेह नहीं कि कहानी की व्यावहारिक समीक्षा को कमलेश्वर ने पर्याप्त मात्रा में पैमाने दिए, पारिभाषिक शब्द दिए और सोचने-समझने के लिए नया मसाला दिया। नई कहानी में आधुनिकता, प्रामाणिकता, यथार्थ, अस्तित्व, सफलता, मृत्युबोध, क्षमताबोध आदि कथ्यगत मसलों के साथ नई कहानी के रूपबंध, व्यक्तित्व और भाषा पर भी विचार किया। नई कहानी की भाषा को गति में आकार गढ़ने का प्रयास बताया और भाषा के इस्तेमाल के जोखिमों को गिनाया।

नई कहानी के शीर्षस्थ बिंदुओं से गुज़रकर कमलेश्वर जिन निष्कर्षों तक ले जाते हैं, वे भले ही शतशः स्वीकार न किए जा सकें, किंतु वे कहानी विधा की एक पहचान बनाने में सफल होते हैं।

साहित्यिक बुद्धिजीवी जगत् की चर्चाओं से निकलकर जब कहानी विश्वविद्यालय परिसरों में प्रविष्ट हुई तो मध्यकालीन साहित्य को ही साहित्य माननेवाले आचार्य समीक्षक चौंके और जब कहानी पाठ्यक्रमों में प्रविष्ट हो गई तो उस पर भी कलम चलाने की विवशता से वे ग्रस्त हुए। डॉ॰ लक्ष्मीसागर वाष्ण्य ने 'आधुनिक कहानी का परिपार्श्व' नामक पुस्तक लिखी और पारंपरिक शैली में पृष्ठभूमि, परंपरा, परिभाषा, स्वरूप एवं विस्तार आदि पर लेख लिखते हुए वही सारी बातें प्रकारांतर से दुहराई, जिनको कि कथा-समीक्षकों ने कभी पत्रिकाओं में लेख के रूप में, कभी स्वतंत्र पुस्तकों के रूप में प्रकाशित कराया था। 'विचारधारा एवं उपलब्धियाँ' निबंध के अंतर्गत वाष्ण्य जी ने प्रमुख स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों

का और उनकी रचनाधर्मिता का संक्षिप्त परिचय दिया है। डॉ० इंद्रनाथ मदान भी अन्य साहित्यिक विधाओं के साथ-साथ कहानी पर पर्याप्त श्रम कर चुके हैं। उन्होंने राजकमल के लिए हिंदी कहानी नामक पुस्तक लिखी। पुस्तक में दो खंड हैं—'चिंतन और सृजन'। चिंतन पक्ष के भी पुनः दो विभाग किए गए हैं।

शास्त्रीय दृष्टि विभाजनवादी होती ही है। (क) कहानीकार-आलोचक, (ख) कहानी आलोचक। कहानीकार आलोचकों में प्रेमचंद, अज्ञेय, जैनेंद्रकुमार, यशपाल, उपेंद्रनाथ अशक, मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, निर्मल वर्मा, श्रीकांत वर्मा, रमेश बक्षी, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, महीपसिंह, गंगाप्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी, दूधनाथ सिंह, रवींद्र कालिया, ज्ञानरंजन तक को लिया है। कहानी-आलोचकों में नामवर सिंह, स्वयं देवीशंकर अवस्थी, परमानंद श्रीवास्तव, सुरेंद्र चौधरी, नित्यानंद तिवारी, सकलदीप सिंह। चिंतन पक्ष में एक तरह से समीक्षा की समीक्षा है। वे समीक्षकों के उन्हीं मुद्दों को उठाते हैं, जिन पर अपनी ओर से टिप्पणी कर सकते हैं। रचनाप्रक्रिया के बारे में अलग-अलग दृष्टियों के परिचय स्थापित करने के प्रयास किए हैं और यत्र-तत्र बिखरे समीक्षकों के विचारों को आमने-सामने रख दिया है। सृजनपक्ष में 39 रचनात्मक कहानीकारों की उन कहानियों की चर्चा को आगे बढ़ाया है, जिन पर पहले से चर्चा होती रही है। असहमतियाँ भी ज्ञापित की हैं और अपने अनुभव-निष्कर्ष भी रखे हैं। लेकिन कहना न होगा कि हिंदी-कहानी की व्यावहारिक समीक्षा के लिए इनकी ओर से कोई केंद्रीय विचार आया हो, ऐसा नहीं हुआ। डॉ० नामवर सिंह जब कहते हैं कि उन्हें विरोध द्वारा सहयोग मिला तो संभवतः इस तरह सोचकर ही कहते होंगे।

एक पुस्तक और है, जो पूरी तरह से नामवर की स्थापनाओं को ध्वस्त करने के लिए ही लिखी गई—'नई कहानी : प्रकृति और पाठ'। प्रकृति अंश में नई कहानी पर नामवर की मान्यताओं को एक-एक कर काटने का प्रयास किया गया है। श्री सुरेंद्र को तो लगता है कि नामवर की शैली भी संतोषजनक नहीं है। कहानियों के उदाहरण और उनसे गुजरते हुए सुरेंद्र जी ने धाराप्रवाह समीक्षा लिखी है। कहानी की व्यावहारिक समीक्षा को जहाँ ठोस ढंग से व्याख्यायित करने की आवश्यकता थी, वहाँ ये वायवी ढंग से सरलीकरण करते हुए निकल जाते हैं। उदाहरणार्थ कहते हैं—'हर कहानी के शास्त्र को उसी में से ईजाद करना होगा।' गोया, ऐसे सामान्य प्रतिमान तो बन ही नहीं सकते, जिनसे किसी विधा को पहचाना जा सके। नामवर जी की सीधी बातें भी इन्हें उल्टी लगी हैं। अगर नामवर राजेंद्र यादव के शिल्प को चक्करदार बताते हैं तो सुरेंद्र उसे सरल और सीधा सिद्ध करने के लिए चक्करदार और जटिल तर्क गढ़ते हैं।

जैनेंद्र जी के नाम से एक पुस्तक छपी—'कहानी : अनुभव और शिल्प'। विचार तो जैनेंद्र जी के ही हैं, पर दूसरे-दूसरे लोगों ने लिखे हैं—कभी इंटरव्यू लेकर, कभी बातचीत के आधार पर। पुस्तक में जैनेंद्र जी के दो-एक लेख भी हैं, जो कभी पत्रिकाओं में छपे थे। कथाकार की रचना-प्रक्रिया समझने की दृष्टि से यह एक अच्छी पुस्तक है। कहा जाता है कि रचना-प्रक्रिया की निर्धारिका जीवन-प्रक्रिया होती है। जैनेंद्र जी ने अपनी जीवन-प्रक्रिया और चेतना-प्रक्रिया के समानांतर अपनी रचनाओं पर जिज्ञासाओं के लिए उत्तर दिए हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याओं पर अपने उन विचारों को भी सामने रखा है, जिनको कभी किसी उपन्यास में, कभी कहानियों में पात्रों के माध्यम से कहलाते रहे हैं। आत्मकथन-पद्धति के

दर्दिले नोट्स की शैली में यह पुस्तक हिंदी-कहानी की व्यावहारिक समीक्षा की अपने ढंग की निराली पुस्तक है।

कथाकार समीक्षकों में कमलेश्वर के बाद राजेंद्र यादव ने महत्वपूर्ण काम किया है। उनकी पुस्तक है—‘कहानी : स्वरूप और संवेदना’। ‘एक दुनिया समानांतर’ संपादित कहानी-संग्रह की भूमिका में भी उन्होंने कहानी के व्यावहारिक पक्षों को उद्घाटित करने की कोशिश की है। वह मानते हैं कि कहानी हमेशा ही किसी विशेष परिस्थिति में मनुष्य के मन और अनुभवों यानी मनोविज्ञान को समझने-संप्रेषित करने का एक प्रयत्न है। उसे बनाने बदलने वाले तत्वों और उसके द्वारा बनाई बदली गई स्थितियों के जीवन खंडों का अध्ययन है। मनोविज्ञान को कहानी में लाने का काम अज्ञेय और जैनेंद्र ने किया था। राजेंद्र यादव नएन के साथ इसी परंपरा से जुड़ते हैं। जब नई कहानी शुरू हुई ही थी, तब एक धार्मिक उत्साह में सारे कथाकार एक मंच पर जुड़ने के लिए प्रयत्नशील थे। ‘कहानी’ और ‘नई कहानियाँ’ के संपादक के रूप में भैरवप्रसाद गुप्त उस मंच का नेतृत्व संभाले हुए थे और नई कहानी को प्रगतिशील दिशा में ले जाना चाहते थे। कमलेश्वर, धर्मवीर भारती और राजेंद्र यादव उन लेखकों में से थे, जो न केवल रचनाधर्मिता के स्तर पर बल्कि समीक्षा-दृष्टि के स्तर पर भी मंच छोड़कर भैरव द्वारा जमाई गई प्रतिष्ठा को अलगाकर अलग नेतृत्व कायम करने लगे। अलगाव का बिंदु यथार्थवादी धारा के विरोध में अंतर्निहित था। अस्तित्ववादी मान्यताओं के चलते स्वयं को परंपरा तक काट लेने का गुनाह किया। प्रेमचंद के उस प्रदेश को अस्वीकार करने की नौबत इन्होंने पैदा की, जो ऐतिहासिक संदर्भों में महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों, दीनता और विद्रूपता की स्थितियों से अनुभववादी निष्कर्ष निकाले गए, जो ऊपरी तौर पर मध्यवर्गीय मन को भावुक परिणतियों तक ले जाने के कारण भले और लुभावने लग सकते थे, लेकिन विवेकसंगत और वैज्ञानिक नहीं थे, अपितु विवेक और वैज्ञानिकता का भ्रम पैदा करने वाले थे। नर-नारी की समस्याओं को अनेक स्तरीय और अनेकमुखी बताते हुए एकांगी तरह से सोचा-समझा गया और जीवन के विरूपण को और भी विरूपित किया गया। अनास्था, कुंठा, क्षणजीविता के चलते पूरी युवा पीढ़ी की मानसिकता को सार्थक विद्रोह के स्थान पर खलनायकत्व, फालतूपन और दिशा हीनता में भटकने के अहसास को देखा गया। शरणार्थी मानसिकता वाली कमलेश्वर की मान्यता का पिष्टपेषण तो किया ही किया, प्रतीकों, बिंबों, पारिभाषिक शब्दावली की भी बात की, लेकिन इनका दायरा वही सबके अंतर्द्वंद्व का रहा। इनकी व्यावहारिक समीक्षा की दृष्टि तक जाने के लिए विस्तारमय विश्लेषण अपेक्षित है।

उपेंद्रनाथ ‘अशक’ द्वारा दिया गया हिंदी कहानी का अंतरंग परिचय कई मायनों में अंतरंग इसलिए है कि उन्होंने हो रही चर्चा में योगदान तो दिया ही, साथ ही कथाकारों, कथाकार समीक्षकों और समीक्षकों के साथ हुई अपनी अंतरंग पत्र-परिचर्चा को भी प्रकाशित किया। कुछ पत्र कहानीकारों को, कुछ कहानीकारों के पात्रों को और कुछ पत्र कहानीकारों द्वारा लिखे गए हैं। ‘मन्नो’ के पत्र का जवाब मार्कण्डेय की आलोचना का उसी शैली में जवाब है और बेबाक शैली में अपना डिफेंस है। ‘कुछ व्यक्तिगत आशंसाएँ’ शीर्षक से अशक जी द्वारा विभिन्न निबंधों, पुस्तकों की भूमिकाओं, पत्रों अथवा डायरी के पृष्ठों में अपने समकालीन कथाकारों के संबंध में मतों का संग्रह है। अज्ञेय से लेकर ज्ञानरंजन तक लगभग

सभी नामी-गिरामी समीक्षकों की कहानियों पर चलते रिमार्क हैं। सातवें दशक के कहानी-आंदोलनों, उसकी दशा और दिशा भी अपनी प्रतिक्रियाएँ ज्ञापित की हैं। संभवतः अशक जी ने पहली बार हिंदी हास्य-व्यंग्य की कहानियों को एक 'शोभायात्रा' के रूप में देखा है और प्रमुख हास्य-व्यंग्य कहानीकारों की कहानियों की गिनती कराते हुए कुछ की समीक्षा की है। पुस्तक पर व्यक्तित्व की गहरी छाप है और विश्लेषण की लगभग हर शैली इसमें मिल जाती है।

डॉ० देवीशंकर अवस्थी की ही भाँति डॉ० धनंजय वर्मा ने भी कहानियों की समीक्षा पर 'समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि' नाम से एक पुस्तक का संपादन किया है। प्रस्थान अन्वेषण और दिशा खंडों के अंतर्गत 28 निबंध संकलित किए गए हैं। 'कहानी : रचना प्रक्रिया और स्वरूप' नामक बटरोही जी की एक किताब है, जिसमें कहानी के मूल रचनातंत्र से जुड़े हुए एक विचार को पाँच शीर्षकों के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया है। समीक्षा में व्यावहारिक दृष्टि को समझने में यह पुस्तक मदद देती है।

नई कहानी में जब खेमेबाज़ी बढ़ने लगी और नेतृत्व की लालसा बलवती होने लगी तो नए-नए नामों से आंदोलन चल निकले। सचेतन कहानी पर डॉ० महीपसिंह के संपादन में नौ लेखकों के आठ निबंध छपे और नई कहानी पर उन्हीं-उन्हीं पारिभाषिक शब्दों के पहले सचेतन विशेषण जोड़ दिया गया और इस प्रकार एक पुस्तक हो गई सचेतन कहानी पर। सचेतन कहानी के उदाहरण के रूप में बीस कहानीकारों की बीस कहानियाँ और छपी गई और कहा गया कि सचेतन कहानी की बात, हिंदी में कहानी-संबंधी चर्चा को व्यक्तिपरकता से मुक्त कर उसे पुनः वैचारिक धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास है। मजे की बात यह है कि पुस्तक में ऐसे निबंध भी हैं, जो बार-बार यह सवाल उठाते हैं कि सचेतन कहानी क्या है?

नई कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी आदि तथाकथित आंदोलनों से इतना हुआ कि कहानी एक भारी-भरकम विधा लगने लगी। अगले समीक्षकों को अब उसका इतिहास लिखने की आवश्यकता महसूस होने लगी। ये आंदोलन मुख्यतः पैसठ से सत्तर तक चले थे। सत्तर से पुनर्मूल्यांकन की प्रक्रिया में डॉ० रामदरश मिश्र और डॉ० नरेंद्रमोहन द्वारा संपादित पुस्तक आती है—हिंदी कहानी : दो दशक की यात्रा। अकेले सातवें दशक पर प्रह्लाद अग्रवाल की पुस्तक 'हिंदी कहानी : सातवाँ दशक' है, जिसमें उपलब्धियाँ, सीमाएँ और संभावनाएँ सभी सोची-विचारी गई हैं। साथ ही नई कहानी के गिने-चुने दस-बारह कहानीकारों की कहानियाँ संकलित की गई हैं।

स्वतंत्र समीक्षा-पुस्तकें इनके अतिरिक्त भी हैं और हो सकती हैं, पर प्रमुख-प्रमुख लगभग यही हैं, जो ऊपर गिनाई जा चुकी हैं। इन पुस्तकों से गुज़रते हुए कुल मिलाकर जो देखने में आया, वह यह कि कहानी को सोचने-समझने की विधा मानते हुए शास्त्रीय परिपाटियों से अलग समीक्षा-अस्त्र गढ़ने के प्रयास किए गए हैं और सवाल-जवाब में कोई उपचारधर्मिता या संकोच नहीं बरता गया है। कभी-कभी बात अपना जड़-मूल खोकर बेबात बढ़ती भी गई, लेकिन वैचारिक, मानसिक संघर्षों का खाका प्रस्तुत करती निश्चय ही इन पुस्तकों पर गंभीर कार्य करने और रचनात्मक समीक्षा के कला-प्रतिमानों और मूल्य-विवेचनों तक पहुँचने की आवश्यकता है।

□ जे-116, सरिता विहार  
नई दिल्ली 110076

## हिंदी-मराठी संतों का प्रगतिशील दृष्टिकोण

डॉ० सुधाकर शेंडगे

हिंदी विभाग

डॉ० बाबासाहेब अंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

साहित्य और समाज का संबंध अनन्य रहा है। मनुष्य जीवन का विकास ही साहित्य का मूल उत्स है। परिवर्तन संसार का नियम है। मनुष्य निरंतर प्रगति की दिशा में मार्गक्रमण करता आया है, लेकिन प्रगति करना एक बात है और प्रगतिशील होना दूसरी बात। इसी प्रकार प्रगतिवादी धारणा और प्रगतिशील चेतना में भी बहुत अंतर है। प्रगतिशीलता एक विशाल दृष्टिकोण है, जिसके केंद्र में मानवता और मनुष्य की मुक्ति की धारणा है। भारतीय संतों की कविता मानवता और मानव-मुक्ति के ही गीत गाती है। इसी कारण हिंदी-मराठी संतों की कविता केवल भक्ति की कविता नहीं, बल्कि प्रगतिशील चिंतन की कविता है, प्रगतिशील विचारधारा की कविता है।

प्रगतिशील साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है शोषण-विरोध। प्रगतिशील साहित्यकार शोषण के विरोध में आवाज उठाता है। शोषण केवल आर्थिक हो तो ही विरोध करता है, ऐसा नहीं, बल्कि मानसिक शोषण, सामाजिक शोषण या पेट की मजबूरी में जब बुद्धि को बेचना पड़ता है तब हुए बौद्धिक शोषण का विरोध भी प्रगतिशील साहित्य करता है।

संतों का साहित्य 'बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय' के लिए लिखा गया साहित्य है। इसीलिए ही वह जातिहीन, वर्गहीन समाज-रचना के लिए प्रतिबद्ध है। संत कबीर का विशाल मानतावादी दृष्टिकोण देखिए—

जाति-पाँति पूछै नहिं कोई।

हरि को भजे सो हरि का होई।

ध्यान रहे प्रगतिशील संत-साहित्य ईश्वर को नहीं नकारता, बल्कि उनका विरोध करता है, जो ईश्वर के नाम पर सामान्य जनता का शोषण करते हैं। वास्तव में संत कबीर विशुद्ध मानवतावादी एवं मानवप्रेमी महापुरुष थे। उनके मतानुसार अगर सभी एक ही कुम्हार की रचना है, एक ही ब्रह्म-ज्योति से उत्पन्न हैं तो फिर एक ब्राह्मण और दूसरा शूद्र कैसे?

एक बूँद एकै मलमूत्र, एक चाम, एक गूदा।

एक जाति से सब उतपना, कौन ब्राह्मण, कौन सूदा।

कबीर की भाँति रविदास भी समताधिष्ठित मूल्यों में ही विश्वास रखनेवाले कवि हैं। उनकी यह मान्यता थी कि जब तक बहुजन समाज का उद्बोधन-प्रबोधन नहीं होगा, तब तक सामाजिक क्रांति असंभव है। रैदास जाति-व्यवस्था के षड्यंत्र को तोड़ना चाहते थे और एक आदर्श समाज की स्थापना करना चाहते थे। इसलिए वे कहते हैं—

ऐसा चाहूँ राज मैं, जहाँ मिले सबन को अन्न।  
छोट बड़ौ सब सम बसई, रविदास रहे प्रसन्न।

संतों की दृष्टि में न कोई बड़ा है न कोई छोटा, न कोई ऊँच है न कोई नीचा। एक ही ईश्वर ने सबको जन्म दिया है, अतः सभी समान हैं। समता का सूत्र संविधान में बहुत बाद को आया उसके पहले वह संतों की कविता में देखा जा सकता है। प्रगतिशीलता का विशाल दृष्टिकोण हिंदी-मराठी संतों के पास था, इसलिए ही उन्होंने वर्णव्यवस्था और वर्णव्यवस्था का डटकर विरोध किया। मराठी और हिंदी के क्रांतिकारी कवि एवं विद्रोही व्यक्तित्व संत तुकाराम पर पहले क्रांतिधर्मी पुरुष, विद्रोही कवि संत कबीर की फक्कड़ विचारधारा और प्रगतिशील चिंतन का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। वस्तुतः वारकरी संप्रदाय भी मानवता और समता का हिमायती रहा है। यही कारण है कि न केवल तुकाराम बल्कि सभी मराठी संतों में जाति-भेद, ऊँच-नीच और छुआछूत को आड़े हाथों लिया है। जगद्गुरु तुकोबाराय ने तो सभी संतों की मिसाल ही समाज के सामने रखी—

वर्ण अभिमाने कोण झाले पावन। ऐसे द्या सांगुन मजपाशी।  
अल्पजाति योनी तल्या हरिभजने। तयांची पुराणे भाट झाली।  
वेश्य तुळाधर गोरा तो कुंभार। धागा हा चांभार रोहिदास।  
कबीर मोमिन लतिफ मुसलमान। सेना न्हावी जाण विष्णूदास।  
कान्होंपात्रा खोदु पिंजारी तो दादू। भजनी अभेदू हरिचे पाय।  
चोखामेळा बंका जातीचे महार। त्यासी सर्वेश्वर एका करी।

वर्ण और जाति-व्यवस्था को तुकाराम ने नकारा है। उनकी यह धारणा है कि वर्ण-अभिमान से कोई पावन नहीं हुआ है। कनिष्ठ जातियों में कुछ साधु उत्पन्न हुए, जो उच्च विचारधारा और कर्तव्य से श्रेष्ठ सिद्ध हुए। वारकरी संप्रदाय की नींव रखनेवाले और सारे 'विश्वची माझे घर' का संदेश देने वाले संत ज्ञानेश्वर ने भी मानवता और समता की ही वकालत की है। तथाकथित वर्णव्यवस्था का प्रखर विरोध करने के कारण ही ज्ञानेश्वर को तत्कालीन ब्राह्मण समाज ने बहिष्कृत किया था। ज्ञानेश्वर लिखते हैं—

म्हणौनि कुल जाति-वर्ण। हे आघवेचि गा अकारण।  
एथ अर्जुना माझे पण। सार्थक एक।

संतों की दृष्टि में वह साधु नहीं है, जो भगवे कपड़े पहनता है, माथे पर तिलक लगाता है, हाथों में माला पहनता है, लोगों को भस्म बाँटता है। उनकी नज़रों में जो जनसामान्य के सुख-दुखों का ध्यान रखता है, जो समाज को सही दिशा देता है, लोगों में जागृति पैदा करता है, वही सच्चा साधु होता है। जगद्गुरु तुकोबाराय के शब्दों में—

जे का रंजले गांजले। त्यासी म्हणे जो आपुले।  
तोची साधु ओळखावा। देव तेथेची जाणावा।

संत कबीर तो सबसे अधिक महत्त्व ज्ञान को देते हैं। यहीं कारण है कि उनको ज्ञानमार्गी कवि कहा जाता है। वे अच्छी तरह से जानते हैं कि जीवन का अंधकार केवल ज्ञान के द्वारा ही दूर हो सकता है। इसीलिए वे लिखते हैं—

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।



मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।

वारकरी संप्रदाय के विचारों की पताका दक्षिण से लेकर उत्तर तक पहुँचाने वाले संत नामदेव तो अपने सहधर्मी और सहकर्मी संत सज्जनों को 'नाचू कीर्तनाचे रंगी। ज्ञानदीप लावू जगी' का ही संदेश देते हैं। संत ज्ञानेश्वर तो 'ज्ञानदेव' की उपाधि से अलंकृत हैं, जिन्होंने जनसामान्य के लिए ज्ञानमार्ग प्रशस्त किया और मानवजाति के कल्याण के लिए ही 'पसायदान' माँगा।

संत जनसामान्य के जीवन में आए अंधकार को मिटाना चाहते हैं। इसीलिए वे अंधविश्वास, बाह्याडंबर तथा पाखंड के विरोध में बिगुल बजाते हैं, हिंदुओं को फटकारते हैं, वहीं मुस्लिमों को भी नहीं छोड़ते। संतों की यह धारणा थी कि ईश्वर को यहाँ-वहाँ ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है। वह हरके के हृदय में विद्यमान है। इस संबंध में कबीर लिखते हैं—

मोको कहाँ ढूँढ़े बंदे, मैं तो तेरे पास में।

ना मैं मंदिर, ना मैं मस्जिद, ना काबे-कैलास में।

कहत कबीर सुनो भई साधौ, मैं साँसों की साँस में।

भक्ति के लिए दिखावे की नहीं शुद्ध अंतःकरण ही जरूरत होती है। मन अगर चंगा है तो कठौती में गंगा होती है। इसीलिए तीर्थ क्षेत्र में जाकर स्नान करनेवाले और धन्यता माननेवाले से तुकोबाराय प्रश्न उठाते हैं कि—

काय काशी करि ती गंगा। भीतरी चंगा नाही तो।

नाही निर्मल जीवन। काय करील साबन।'

संत बखूबी यह जानते थे कि अंधविश्वास समाज पर लगा एक कलंक है, उसे जब तक नहीं मिटाया जाएगा, तब तक स्वस्थ समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। संतों का दृष्टिकोण शुद्ध रूप से वैज्ञानिक था। इसलिए ही उन्होंने पाखंड का विरोध किया है। संत तुकाराम का यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण देखिए 'नवसे कन्या पुत्र होती। तरि का करने लागे पती।'

संत तुकाराम के विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। प्रकृति से समन्वय स्थापित करके ही मानव प्रगति कर सकता है अन्यथा मानव को अनेक संकटों का सामना करना पड़ेगा। वृक्ष मानवजाति के मित्र हैं, उनका संहार महँगा पड़ सकता है। इसी बात को ध्यान में रखकर तुकाराम ने संदेश दिया था कि 'वृक्षवल्ली आम्हा सोयरी। पक्षी ही सुस्वरे आलविती।'

संतों का नारी-विषयक दृष्टिकोण भी विशाल रहा है। यही कारण है कि अपने समकालीन जनाबाई-मुक्ताबाई का ही आदर नहीं किया, बल्कि कान्होपात्रा जैसी वेश्या का भी प्रतिष्ठित किया। 'पराविया नारी रखुमाई समान' कहनेवाले तुकोबाराय एक पुरुषा दोधी नारी। पाप वसे त्याचे घरी' का संदेश देते हैं। लेकिन अपना सबकुछ छोड़कर नारी के पीछे भागने वाले पुरुषों को भी रामदास इन शब्दों में टोकते हैं—परस्त्री प्रेमा धरी। श्वशुरगृही वास करी। तो एक मूर्खी इतना ही नहीं सप्त वेसनी जयाचे मन। तो एक मूर्ख और अनीतिने द्रव्य जोडी। धर्म नीति न्याय सोडी तो एक मूर्ख ऐसी भी रामदास कहते हैं।

ज्ञानेश्वर जैसे संत जहाँ और विश्वव्यापी विचार समाज के सामने रखते हैं, वहीं संत तुकडोजी महारा मेरा गाँव ही मेरा देश वाली भावना इन शब्दों में युवाओं के सामने रखते हैं—

‘तुझ गाँव नाही का तीर्थ। मंग रिकामं कशाला फिरतं।’

संत जहाँ एक ओर पुराणपंथी धारणाओं को नकारते हैं, वहीं धर्म के ठेकेदारों द्वारा बनाई गई व्यवस्था को भी नकारते हैं। विशिष्ट लोगों के लिए बनाई गई व्यवस्था का इंद्रजाल तोड़कर जनसामान्य के लिए नई व्यवस्था बनाना चाहते हैं। संत जानते हैं कि जब तक जनसामान्य को अंधविश्वास, जातिभेद, बाह्याडंबर, पाखंड, पुरोहितवाद के चंगुल से बाहर निकाला नहीं जाता, तब तक उसकी मुक्ति ही संभव नहीं है। वे यह भी जानते हैं कि इन मानसिक बीमारियों की एक ही दवा है—शिक्षा या ज्ञान। जब तक ज्ञान का प्रकाश इनकी जिंदगी में नहीं आएगा, तब तक ये अंधकार की दल-दल में फँसे रहेंगे। तुकोबाराय की यह धारणा है कि जब तक जनसामान्य अक्षरधन को नहीं अपनाता तब तक उनकी जिंदगी में परिवर्तन असंभव है। संतों की वाणी का बखान वे इन शब्दों में करते हैं—

आम्हा घरी धन। शब्दांचीच रत्ने  
शब्दांचीच शस्त्रे। यत्न करू।  
शब्दची अमुच्या। जीवनाचे जीवन।  
शब्दची धन। वाटू जनलोका।

संत रामदास भी साक्षरता का महत्त्व विशद करते हुए लिखते हैं—  
जाणत्यापासी लेहो सिकावे। जाणत्यापासी वाचू सिकावे।  
जाणत्यापासी पुसावे। जाणत्यापासी वाचू सिकावे।  
जाणत्यापासी पुसावे। सकल काही।  
जितुके काही आपणांसी ठावे। तितुके हलुहलु सिकावे।  
शाहणे करुनि सोडावे। बहुत जन।

आज का समाज अगर परिवर्तन की दिशा में मार्गक्रमण कर रहा है या यों कहें कि आज समाज ने प्रगति का पथ प्रशस्त किया है तो इसके बीज हमें संतो द्वारा लिखी गई प्रगतिशील कविता में दिखाई देते हैं। कुल मिलाकर संतों के प्रगतिशील विचारों ने ही भारतीय जनजीवन को उचित दिशा में कदम उठाने के लिए प्रेरणा देकर नया समाज निर्माण किया है। निःसंदेह, संतों की प्रगतिशील कविता अपना असाधारण महत्त्व रखती है। संतों की कविता में व्यक्त विचार आज भी प्रासंगिक हैं।

### संदर्भ

1. कबीर ग्रंथावली, सं० डॉ० श्यामसुंदर दास
2. तुकाराम गाथा, सं० विष्णु बुवा जोग
3. संत कविता : एक दृष्टिकोण, डॉ० प्रकाश केजकर
4. मराठी संतकाव्य, प्रो० वेदकुमार वेदालंकार
5. संत-साहित्य की सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डॉ० सावित्री शुक्ल
6. महाराष्ट्र के प्रिय संत और उनकी वाणी, डॉ० शिवदान सिंह चौहान
7. मराठी संतांचे अभंग, सं० डॉ० दादा गोरे
8. कबीर कवि और युग, एक पुनर्मूल्यांकन, डॉ० के० श्रीलता
8. संत-साहित्य की भूमिका, राजदेव सिंह

## समीक्षक डॉ० धर्मवीर भारती (प्रगतिवाद : एक समीक्षा के विशेष संदर्भ में)

डॉ० आशा अग्रवाल

सहायक प्राध्यापक, हिंदी

श्री अटलबिहारी वाजपेयी शासकीय कला

एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इंदौर (म०प्र०)

हिंदी के समीक्षकों में डॉ० धर्मवीर भारती जी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'प्रगतिवाद : एक समीक्षा' और 'मानवमूल्य और साहित्य' इन दोनों आलोचनात्मक ग्रंथों तथा अन्य शोधपरक निबंधों से उनकी समीक्षा-पद्धति का सहज ही बोध को जाता है। भारती जी का समीक्षक रूप उनकी सृजनात्मक कृतियों की भूमिकाओं में भी दृष्टव्य होता है। ये भूमिकाएँ दो प्रकार की हैं— प्रथम भूमिकाओं द्वारा रचना-प्रक्रिया आदि का परिचय मिलता है तथा दूसरी भूमिकाएँ मूल-प्रतिपाद्य की ओर संकेत करती हैं। प्रथम वर्ग के अंतर्गत आनेवाली भूमिकाओं में 'सात गीत वर्ष', 'ठंडा लोहा', 'कनुप्रिया' आदि पुस्तकों की भूमिकाएँ आती हैं। दूसरे वर्ग के अंतर्गत आने वाली भूमिकाओं में निबंध, आलोचनात्मक ग्रंथ आदि को लिया जा सकता है।

'सात गीत वर्ष' की 'क्षण सृजन' की भूमिका अन्य रचनाओं से व्यापक, उल्लेखनीय, संदर्भयुक्त एवं महत्त्वपूर्ण है। इसमें लेखक की गहनता, व्यापकता, विषय एवं विधानगत प्रौढ़ता आदि का परिचय मिलता है।

इस प्रकार की भूमिकाएँ उनके समीक्षात्मक एवं शोधपरक रचनाओं से भिन्न हैं। ये भूमिकाएँ गद्य में कहीं गई हैं, लेकिन इनमें काव्यात्मकता भी विद्यमान है। इस कृति की आगे की भूमिका में आलोचक, कवि और दर्शन तीनों की भाषा दिखाई देती है। लेखक क्षण-सृजन और शून्य के विषय में चर्चा करते हुए अपने विचारों या भावों को 'काव्य की कसौटी' पर व्यक्त करता है। इस कृति की भूमिका के अंत में लेखक ने रचना-प्रक्रिया की स्थितियों का उल्लेख किया है और पाठक तथा रचना दोनों के मध्य से कृतिकार के अलग हो जाने की पुष्टि की है।

'ठंडा लोहा' काव्य की भूमिका में पथ-निर्माण और आत्मा की सुख-दुख की अनुभूतियों से युक्त काव्य की घोषणा करते हुए लेखक ने कहा है—

'मैं और मेरी कलम एक निर्मल, एक सशक्त माध्यम बन सके, जिसमें विराट जीवन, उसका सुख-दुख, उसकी प्रगति तथा उसका अर्थ व्यक्त हो सके, यही मेरी कविता की सार्थकता होगी।' इस संग्रह की भूमिका में लेखक ने रचना-निर्माण की सामान्य बातों की अपेक्षा प्रस्तुत कृति पर ही अधिक ध्यान दिया है।

भारती जी की समीक्षा-पद्धति के विविध रूपों के संकेत 'अंधायुग' की भूमिका में

दृष्टव्य होते हैं। 'पर एक नशा होता है—अंधकार के गरजते महासागर की चुनौती को स्वीकार करने का, पर्वताकार लहरों से खाली हाथ जूझने का, अतल गहराइयों में उतर जाने का और फिर अपने को सारे खतरों में डालकर आस्था के, प्रकाश के, सत्य के, मर्यादा के कुछ क्षणों को बटोरकर बचाकर धरातल तक ले जाने का। इस नशे में इतनी गहरी वेदना और इतना तीखा सुख घुला-मिला रहता है कि आस्वादन के लिए मन बेबस हो उठता है। उसी की उपलब्धि के लिए यह कृति लिखी गई है।'<sup>2</sup>

भारती जी प्रायः सभी कृतियों की भूमिका अथवा वक्तव्य में शुष्क आलोचक की भूमि पर नहीं रहे हैं। उन्होंने प्रतिमानों की मात्र परिगणना करके उनकी पुष्टि ही नहीं की है, वरन् उन्होंने ऐसे संकेत भी दिए हैं, जो कृति-विशेष के मूल कथ्य से जुड़े हुए हैं। साथ ही वे उनकी अभिरुचि का प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं। 'कनुप्रिया' की भूमिका में भारती जी ने महत्त्वपूर्ण क्षणों की ओर संकेत किया है।

निबंधों, कहानी-संग्रहों, आलोचनात्मक-ग्रंथों आदि की भूमिकाएँ काव्य-संग्रहों की भूमिकाओं से अलग है। यद्यपि इसमें आलोचक का पक्ष भी स्पष्ट होता है, तथापि रचना की कठिनाइयों को ही अधिक प्रस्तुत किया गया है— 'उपन्यास लिखते समय अक्सर मुझे कठिनाई भी हुई, मैं कथानक को किसी दूसरी ओर ले जाना चाहता था और वे (मात्र) मुझसे कथासूत्र छीनकर अपने मन से अपनी स्वतंत्र दिशाओं में चले गए हैं।'<sup>3</sup>

शोध-प्रबंध 'सिद्ध साहित्य', 'प्रगतिवाद : एक समीक्षा', 'देशांतर' आदि के वक्तव्य में समीक्षा-पद्धति का निर्णयात्मक पक्ष प्रस्तुत हुआ है। इसके अतिरिक्त भारती जी ने कुछ कृतियों की भूमिकाएँ नहीं दी हैं। उनकी केवल प्रकाशित टिप्पणियाँ हैं।

अधिकांश समीक्षक कृति-विशेष की भूमिका को आधार बनाकर उस कृति की समीक्षा करते हैं। समीक्षा का यह पक्ष उचित नहीं होता है, क्योंकि भूमिका में लेखक अपनी वास्तविकता को प्रकट न करने के लिए कुछ तथ्यों को आरोपित भी करता है। अतः उचित समीक्षा के लिए लेखकीय वक्तव्य से सहायता ली जा सकती है। लेकिन आधार कृति-विशेष को ही बनाना चाहिए। भारती जी इसके प्रति सतर्क रहे हैं।

भूमिकाओं के द्वारा काव्य-सृजन की प्रक्रिया को समझने में सहायता मिलती है। भारती जी के आलोचनात्मक ग्रंथों तथा अन्य रचनाओं की भूमिकाओं में उनका भावुक व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है। भूमिकाओं के माध्यम से उन्होंने पाठकों को क्षण महत्त्व, काव्योपलब्धि, रचना-प्रक्रिया के विभिन्न आयाम तथा सृजन की समस्याओं से परिचित कराने का प्रयत्न किया है। इसके अतिरिक्त ये भूमिकाएँ भारती जी के मूल्य-प्रतिष्ठक होने का प्रमाण भी हैं। ये भूमिकाएँ उनके स्वतंत्र आलोचनात्मक ग्रंथों से भिन्न हैं फिर भी समीक्षा-पद्धति का परिचय प्राप्त कराने में महत्त्वपूर्ण रही हैं।

'प्रगतिवाद : एक समीक्षा' नामक आलोचनात्मक ग्रंथ कई संदर्भों की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रंथ में लेखक ने प्रगतिवाद से संबंधित अपने निजी विचारों को व्यक्त किया है। प्रगतिवाद मार्क्सवादी विचारधारा का पोषक माना जाता है। भारती जी ने मार्क्सवाद की आरोपित धारणाओं का विरोध किया है। इसका प्रमाण 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास की भूमिका है। समीक्षा करते समय समीक्षक की दृष्टि गुण-दोषों पर सम्यक् रूप से रहती है।

अतः भारती जी ने प्रगतिवाद-संबंधी मान्यताओं का विवेचन-विश्लेषण करके अपने विचारों को सांकेतिक रूप में प्रस्तुत किया है।

‘प्रगतिवाद बनाम अतीत जीविता और रोमांटिक प्रेम’ शीर्षक में डॉ॰ लक्ष्मणदत्त गौतम ने इस समीक्षात्मक ग्रंथ में प्रस्तुत भारती जी की अनुभव-चिंतन की भूमिका को अपरिपक्व और आवेगप्रवण माना है। इस ग्रंथ की भूमिका से भारती जी की मान्यताओं का पता चलता है। उन्होंने मार्क्सवाद के प्रति अंध आस्था और आरोपित धाराणाओं को स्वीकार नहीं किया है। ‘मैं प्रगतिवाद के उन निंदकों का विरोधी हूँ, जो मार्क्सवाद के व्यापक संदेश को समझे बिना, रूसी साहित्य का अध्ययन किए बिना, प्रगतिवाद के खिलाफ़ गुहार मचाते हैं। मैं प्रगतिवाद के उन समर्थकों का भी विरोधी हूँ, जो भारतीय परिस्थितियों, भारतीय परंपराओं और भारतीय साहित्य की आत्मा को पहचाने बिना अपने पूर्व-निर्धारित सिद्धांत साहित्य पर लादना चाहते हैं। ऐसे समर्थक न केवल प्रगतिवाद का नुकसान करते हैं, वरन् हिंदी के मार्ग में भी ख़ूब बिछा देते हैं।’<sup>4</sup>

प्रस्तुत समीक्षात्मक ग्रंथ शीर्षकों में विभाजित है। इन शीर्षकों की संख्या 13 है। इन्हें प्रगतिवाद से संबंधित निबंध कह सकते हैं। ‘विषय-प्रवेश’ शीर्षक में लेखक ने प्रगतिवादी साहित्य को स्पष्ट करते हुए मार्क्सवादी जीवन-दर्शन की ओर संकेत किया है। लेखक ने व्यवस्था की मूल भित्ति पूँजीवाद, सर्वहारा वर्ग आदि को मानते हुए यह स्वीकार किया है कि मार्क्सवादी दृष्टि से युक्त कला ही जन-आंदोलन, नवीन विकास आदि में सहायक होती है। उन्होंने जन-जीवन से अलग लिखे गए वैयक्तिक साहित्य को पलायनवादी तथा प्रतिक्रियावादी माना है। आगे भारती जी ने कार्ल मार्क्स के मैनीफेस्टो के प्रकाशन का उल्लेख किया और गार्की, वर्ले तथा बाद में लुई स्लोक, एंजेल्स, प्राउडन और कार्लमार्क्स के आंदोलन की ओर संकेत करते हुए यह माना है कि मार्क्स ने ही साम्यवादी चेतना को वैज्ञानिक रूप प्रदान किया है।

‘रूसी साहित्य में प्रगतिवादी धारा’ के अंतर्गत भारती जी ने रोमांटिसिज्म और मार्क्सवादी चेतना की उन्नति, प्रगति, विकास आदि की ओर संकेत करते हुए भारत में प्रगतिवादी विचारधारा के प्रचार-प्रसार को व्यक्त किया है। लेखक का मत है कि भारतीय प्रगतिवादियों की संकीर्ण विचारधारा की ओर रूसी लेखकों की मानसिक उदारता को रूसी साहित्य के सम्यक् एवं विस्तृत अध्ययन द्वारा समझा जा सकता है। उन्होंने आधुनिक रूसी साहित्य को विवेचन की सुविधा की दृष्टि से पाँच कालखंडों में विभाजित किया है। पूर्व क्रांति और क्रांति तक, संक्रांतिकाल, पुनर्निर्माणकाल, सोशलिस्ट, रीयलिज्म तथा क्रांतिकारी पहलू। ‘पूर्व क्रांति और क्रांति तक’ में लेखक ने इस काल के कवियों तथा उनके काव्य की मूल चेतना की ओर संकेत किया है। साथ ही इस काल के महत्त्वपूर्ण प्यूचरिस्ट आंदोलन का उल्लेख किया है। संक्रांतिकाल में लेखक ने युद्ध की विषमता के बाद जनता में आए हुए परिवर्तनों की ओर संकेत किया है। मायकावस्की की लोकप्रियता के महत्त्वपूर्ण बिंदुओं का भी उल्लेख किया है। आगे लेखक ने मार्क्सवादी पक्षधरों की व्यापक तथा संकीर्ण विचाराधारा की ओर संकेत किया है। इसके पश्चात् स्टालिन के संघर्ष की, रूसी साहित्य की संकीर्णता के फलस्वरूप आए कुप्रभावों की, सामाजिक यथार्थवाद की, महत्त्वपूर्ण स्थितियों की व्यापक एवं विस्तृत चर्चा की है।

‘प्राचीन, स्थायी और शाश्वत साहित्य तथा प्रगतिवादी प्रयोग’ शीर्षक में भारती जी ने अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों की ओर संकेत किया है। इसमें भारती जी ने पहले स्थायी प्राचीन साहित्य

का विरोध करने, फिर उसे स्वीकारने का उल्लेख किया है। लेखक ने 'लिफशिञ्जे' के लेखों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करते हुए टाल्सटाय-संबंधी विभिन्न धारणाओं की विस्तार से चर्चा की है। केमेनाव की राष्ट्रीय विचारधारणाओं की ओर संकेत किया है तथा अन्त में रूस में प्राचीन साहित्य की ओर आकृष्ट होकर उसके महत्त्व को स्वीकारने की पुष्टि की है। 'कला युग-युगों की एक स्थायी चीज है, एक चिरंतन निर्माण है, जो न कभी बूढ़ा होगा, न कभी मेला पड़ेगा।'<sup>5</sup>

'क्या प्राचीन राष्ट्रीय इतिहास पर लिखा गया साहित्य पलायनवादी है' इस निबंध में लेखक ने महत्त्वपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन उपर्युक्त लेखों को ध्यान में रखकर किया है। लेखक ने संस्कृति की महानता को स्पष्ट करते हुए प्रगतिवाद के परिप्रेक्ष्य में राहुल तथा यशपाल का उल्लेख किया है। प्रगतिवादी आंदोलन के अंतर्गत जिन धारणाओं का विरोध किया गया था, उन धारणाओं का विरोध रूस में नहीं था। इसकी पुष्टि लेखक ने फिर से रूसी साहित्य के विभिन्न आंदोलनों का उल्लेख करते हुए की है। साहित्य की रचना प्राचीन राष्ट्रीय इतिहास पर न होने का कारण वे 'मार्क्सवादी संकीर्णता' को मानते हैं। इसके संदर्भ में मायकावस्की के 'यांत्रिक इतिहास विज्ञान' का उल्लेख कर उसका विरोध किया है। प्रगतिवादी आलोचकों ने संस्कृतिनिष्ठ राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत साहित्यकार प्रसाद को किन आधारों पर पलायनवादी कहा है? इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए लेखक ने रूसी साहित्य और लेखकों तथा प्रसाद-साहित्य पर दृष्टिपात किया है। इस लेख में भारती जी का मूल उद्देश्य प्रसाद की मानवतावादी राष्ट्रीय भावना को व्यक्त करते हुए उनके पलायनवादी होने का तीक्ष्ण विरोध किया है। भारती जी का मत है— 'यह उदार राष्ट्रीयता दृढ़ता और गौरव की चीज है। यह रूस की संस्कृति और प्रतिष्ठा को बल और प्रेरणा देगी।'<sup>6</sup>

'प्रगतिवाद और रोमांटिक प्रेम' शीर्षक में भारती का रूमानी रूप देखा जा सकता है। भारती जी ने रोमांटिक प्रेम-भावना से युक्त कविताओं और प्रगतिवाद के आधार पर रूसी साहित्य एवं हिंदी-आलोचना का स्पर्श किया है। 'लेकिन सच बात यह है कि प्रेम-भावना और उसका हल्का, सूक्ष्म और रोमानी स्वरूप न आज तक मर पाये हैं न मर पाएँगे।'<sup>7</sup> इसके बाद भारती जी ने रोसेनिनि और मायकावस्की की अभिशिप्त नियति को समानांतरता में रखकर दोनों के काव्य-सृजन तथा चिंतन की अंतिम परिणति आत्महत्या बतलाई है। लेखक ने दोनों की मूल चेतना का उदाहरण-सहित उल्लेख किया है तथा महत्त्वपूर्ण तथ्यों की ओर संकेत भी दिया है। मायकावस्की के अनुयायियों ने येसेनिन की प्रेम-गीतात्मक शैली का विरोध किया, जिसके फलस्वरूप उसे आत्महत्या करनी पड़ी। लेखक ने 'आलेशा' का उल्लेख किया है और येसेनिन की आत्महत्या को संघर्षमयी विचारधाराओं का दुःखद परिणाम माना है।

'राजनीति, अनुशासन और साहित्य' लेख में भारती जी ने राजनीति और साहित्य से संबंधित परिप्रेक्ष्यों में साहित्य तथा दल नीतियों के प्रतिबंध के महत्त्वपूर्ण तथ्यों को प्रस्तुत किया है। आगे भारती जी ने रूस के संदर्भ में साहित्य एवं राजकीय संरक्षण के प्रश्न को प्रस्तुत किया है। सोवियत लेखक संघ का व्यापक-विस्तृत उल्लेख करते हुए प्रसंगानुसार नरेंद्र और सूमन की काव्य-पंक्तियों को प्रस्तुत किया है।

'प्रगतिवादी साहित्य में कलात्मक तत्त्वों का अभाव' शीर्षक में लेखक ने काव्य में कलात्मक तत्त्वों को स्वीकार किया है। उन्होंने प्रगतिवादी लेखकों की चर्चा करते हुए

अधिकांश लेखकों को जन-आंदोलन से दूर मानकर उनमें सूक्ष्म अनुभूतियों के अभाव को स्वीकारा है। '...साहित्यिक होने के लिए, साहित्य की कोटि में आने के लिए किसी भी रचना का केवल प्रगतिवादी होना काफी नहीं है। उसे साहित्यिक होना चाहिए, उसे साहित्य के अपने नियमों से निर्देशित होना चाहिये।'<sup>8</sup> इसके विपरीत रूस में साहित्य के अंतर्गत कलात्मक महत्ता को माना जाता था। यद्यपि आवरबारव की राजनीतिक तानाशाही के कारण इस कलात्मकता की हानि अवश्य हुई थी, लेकिन स्थिति में परिवर्तन आने पर फिर से उसके महत्त्व को स्वीकारा गया। भारती जी ने प्रगतिवादी हिंदी लेखकों में से केवल शिवदान सिंह चौहान को ही कलात्मक मूल्य को समझने, उसे महत्त्व देनेवाला माना है।

'क्या व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं' में भारती जी ने आवरबारव के माध्यम से कई प्रश्नों पर विचार किया है। लेखक के अनुसार मार्क्सवादी साहित्य केवल समाज की परिस्थितियों का ही परिचय नहीं देता है, बल्कि व्यक्ति को भी महत्त्व प्रदान करता है। वास्तव में मार्क्सवाद व्यक्ति की उपेक्षा नहीं करता है। यह सच है कुछ 'प्रोलेटेरियन' उपन्यासकारों ने इस तरह की गलत धारणा लोगों के मन पैदा कर दी है, लेकिन यह मार्क्सवाद की नहीं, उपन्यासकारों की कमजोरी है।'<sup>9</sup> इसके अतिरिक्त भारती जी ने अंतर्जगत् तथा मनोविज्ञान की चित्रण-संबंधी समस्याओं का विवेचन किया है।

'धर्म, ईश्वर : वैयक्तिक अध्यात्म-साधना और सोवियत साहित्य' में लेखक ने रूसी साहित्य के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण संकेत दिए हैं। उन्होंने अध्यात्म को धर्म से जोड़कर रूस में इसके बहिष्कार की चर्चा की है तथा धर्म एवं मजहब में अंतर स्पष्ट किया है। लेखक यह मानता है कि यदि धर्म को सेवा के रूप में मानकर चर्चा की जाए तो रूस सबसे बड़ा धार्मिक देश सिद्ध होगा। भारती जी ने रूसी साहित्य में धर्म का उल्लेख करते हुए भारतीय प्रगतिवादियों द्वारा किए गए धर्म-विरोध को अंधानुकरण माना है। क्योंकि दोनों देशों की संस्कृति व सभ्यता अलग है। रूढ़िवादी धर्म एवं प्रगतिवादी धर्म के मध्य जो अंतर है, उसे स्पष्ट करने के लिए लेखक ने गोर्की के उपन्यास 'माँ' का उल्लेख किया है। लेखक ने इस में मार्क्सवाद और साम्यवाद की अपेक्षा मानवतावाद को अधिक स्वीकारा है और इस कथन की पुष्टि रूसी कवयित्री 'वेरा इन्वर की काव्य-पंक्तियों' द्वारा की है।

'प्रगतिवादी साहित्य के नाम पर गंदी अश्लीलता' में भारती जी ने भारतीय प्रगतिवाद की चर्चा करते हुए उसमें विकृत तथा अस्वस्थ मनोवृत्ति को पाकर पुष्टिस्वरूप मार्क्सवादी कथाकारों का उल्लेख किया है। लेखक ने नागार्जुन के वास्तविक रूप का बोध कराने के लिये 'रतिनाथ की चाची' के प्रसंगों को प्रस्तुत किया है। लेखक ने यह जाना कि प्रगतिवाद में यथार्थ चित्रण जन-समस्याओं के आधार पर हुआ है, न कि अश्लीलता के आधार पर।

'कलाकार किसी का मानसिक गुलाम नहीं बनेगा' शीर्षक में कलाकार की मानसिक स्वतंत्रता का उल्लेख करते हुए यूरोप की घृणित स्थिति को ध्यान में रखकर रोमा रोला के योगदान की चर्चा की है। आगे लेखक ने रोला को कोरे भौतिक मार्क्सवाद का समर्थक न मानकर उसे मानवतावाद और स्वाधीनता का मूलाधार माना है। इस लेख में भारती जी ने गोर्की के स्वतंत्र विचारों तथा 'रोमा रोला' के साथ गांधी असहयोग आंदोलन की चर्चा की है।

'हिंदी-आलोचना में प्रगतिशील लेखक संघ' के अंतर्गत शिवदानसिंह चौहान का

उल्लेख किया है। राहुल की स्वतंत्र विचारों के कारण निंदा, डॉ० रांगेय राघव के छायावादी होने के आरोप की ओर संकेत तथा रोला की निश्चयात्मक स्वतंत्र विचारधारणाओं के प्रति सहमति प्रकट की है। 'तरुण कलाकारों से' शीर्षक में लेखक ने युद्ध, अकाल, संघर्ष, अनैतिकता आदि के कारण जीवन में आई नीरसता का चित्रण करते हुए संक्रांतिकाल में कलाकार के महत्त्व एवं दायित्वों को स्वीकार किया है। 'परिशिष्ट' में सोवियत साहित्य में वैयक्तिक चरित्र-चित्रण और मनोविज्ञान, मार्क्सवादी कूपमंडूकता, राजनीति और साहित्य उपशीर्षक के द्वारा संक्षिप्त निष्कर्षों को प्रस्तुत किया है।

डॉ० रमेश कुंतल मेघ ने भारती जी का नाम आलोचकों की प्रथम पंक्ति में माना है, जबकि डा० मेघ और भारती जी की विचारधारा में पर्याप्त अंतर है। भारती जी ने देश, राष्ट्र, संस्कृति आदि को ध्यान में रखकर चर्चा की है, जबकि डॉ० मेघ ने आध्यात्मिकता से अलग होकर प्रगतिवाद की चर्चा की है। भारती जी का यह ग्रंथ स्वतंत्र-युग के आरंभ में लिखा गया है और यह ग्रंथ इस विषय पर लिखा गया हिंदी का प्रथम ग्रंथ है। अब प्रगतिवाद पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। उसमें केवल भौतिकवादी दर्शन की ही नहीं, संस्कृति सौंदर्य, नैतिकता आदि की भी चर्चा होने लगी है। भारती जी ने उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह ग्रंथ लिखा है। उनकी दृष्टि किसी वाद-विशेष अथवा किसी देश या काल की सीमा में आबद्ध नहीं रही है। वे मानवतावाद के समर्थक रहे हैं।

'मानवता को प्यार करनेवाले एक ईमानदार कलाकार के नाते प्रगति मेरा ईमान है, मेरी कलम की जवानी है, लेकिन अपनी आत्मा में जिस सत्य का साक्षात्कार करता हूँ, उसे निर्भीकता से आगे रखना मेरा कर्तव्य है। ....प्रगति के समर्थन में आवाज़ उठानी पड़ती है, क्योंकि मैं देख रहा हूँ 'वाद' की जंजीरों ने प्रगति के कदम जकड़ लिए हैं।'<sup>10</sup>

उपर्युक्त विवेचना के पश्चात् निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यह ग्रंथ अनेक पूर्वाग्रहों के होते हुए भी प्रगतिवादी समीक्षा के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों में से एक है। इस ग्रंथ में भारती जी का रूमानी स्वरूप, अभिरुचि और कहीं-कहीं पूर्वाग्रह दिखाई देता है। उन्होंने अनेक स्थानों पर विवेचन-विश्लेषण द्वारा भारतीय प्रगतिवादियों पर व्यंग्य-प्रहार किए हैं। उनकी दृष्टि सदैव संस्कृति और मूल्यों से युक्त रही है। भारतीय चिंतन और रूमानी स्वभाव उनके अभिभाज्य अंग है।

### संदर्भ

1. ठंडा लोहा, भूमिका
2. अंधा युग, पृ० 1
3. गुनाहों का देवता, भूमिका
4. प्रगतिवाद : एक समीक्षा, पृ० 3
5. वही, पृ० 64
6. वही, पृ० 79
7. वही, पृ० 85
8. वही, पृ० 140
9. वही, पृ० 140
10. वही, भूमिका, पृ० 3



## रामकाव्य : परंपरा एवं युगबोध

सारिका, शोध छात्रा

हिंदी विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

वैदिक युग से वर्तमान युग तक सांस्कृतिक-पौराणिक बिंबों, मिथकों एवं विचार खंडों की जो धारा प्रवाहित होती रही है, उसके वैविध्य के मूल में एक अखंड चेतना सदैव विद्यमान रही है। हमारे जातीय जीवन के अनेक अनुभव-खंडों एवं संकल्पों का बहुत बड़ा सामूहिक अवचेतन के रूप में व्यक्ति-मानस को उद्वेलित एवं प्रभावित करते रहे हैं। रामकाव्य वस्तुतः प्रागैतिहासिक युग से वर्तमानयुग तक के जनमानस को प्रभावित एवं आंदोलित करने वाले नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्यों का प्रतिबिंब है। भारतीय संस्कृति के क्रमिक विकास को रामकथा के क्रम-विकास के समानांतर उसके नैरंतर्य में विश्लेषित किया जा सकता है, अतः आधुनिक रामकाव्य के मूल्यों और प्रतिमानों का अनुसंधान हमें उसे वैदिक संस्कृति के उत्स तक ले जाता है। प्राचीन एवं मध्ययुग के समान ही आज भी युग एवं जीवन की शाश्वत तथा सामयिक संकल्पनाओं की अभिव्यक्ति के लिए रामकथा ही अर्थपूर्ण माध्यम है।<sup>1</sup>

धार्मिक दृष्टि से भारत में वैदिक (ब्राह्मण), बौद्ध, जैन नामक तीन परंपराएँ पर्याप्त विकसित हैं। इन तीनों ने रामकथा को अपनाते हुए उसे अपने-अपने दृष्टिकोण के रंग में रंग दिया—हाँ बौद्ध-परंपरा में यह कथा अपेक्षाकृत कम विकसित रही है। ब्राह्मण परंपरा ने नर राम को पहले भगवान 'विष्णु' का अवतार माना तो जैनों में 'शलाका पुरुष' माना। बौद्ध-जातक कथाओं के अनुसार तथागत गौतम बुद्ध अपने पूर्वजन्म में राम के रूप में उत्पन्न हो गए थे।<sup>2</sup>

### वाल्मीकि रामायण

रामकथा का प्राचीनतम क्रमबद्ध रूप वाल्मीकीय रामायण में मिलता है। विद्वानों का विचार है कि वाल्मीकि ने स्फुट आख्यानों को कथासूत्रों में संगृहीत कर रामायण की रचना की।<sup>3</sup> रामायण में भारत की आरण्यक संस्कृति का जैसा विशद-व्यापक चित्रण हुआ है, वैसा अन्यत्र अलभ्य है। रामायण में जीवन के जिन काम्य मूल्यों के अनुसंधान का आयोजन किया गया, उनमें वाल्मीकि किसी अति प्राकृत, अलौकिक देवत्व के अनुसंधान की अपेक्षा नरत्व के अनुसंधान के लिए ही विशेष प्रवृत्त रहें। उनकी दृष्टि में मानवीय सृष्टि देवसृष्टि से भी कहीं अधिक महान् है।

देवेष्वपि न पश्यामि कश्चिदेभिर्गुणैर्युतः।

श्रूयतां तु गुणैरेभियो युक्तो नरचन्द्रमाः। 2

अर्थात् 'ऐसा गुणयुक्त पुरुष देवताओं में तो मुझे दिखाई नहीं पड़ता, इसलिए जिस नर-चंद्रमा में ये सब गुण हैं, उनकी कथा सुनो।

**रवींद्रनाथ ठाकुर** ने उपयुक्त ही कहा है— 'रामायण में देवता ने अपने को छोटा करके मनुष्य नहीं बनाया, मनुष्य ही अपने गुण से देवता हो उठा है।' <sup>4</sup>

वाल्मीकी ने मनुष्यत्व को उसके केंद्र में प्रस्तुत किया है तथा दैवी और आसुरी जीवन-दर्शनों के जिस द्वंद्व को उद्घाटित किया है, वह भी मनुष्यत्व की भूमि पर है। रावण यदि प्रतिनायक है तो वह क्षुद्र-संकीर्ण राक्षसी वृत्ति से अनुशासित नहीं है। रावण-विरोधी एवं प्रति आदर्शों का प्रतीक है, खलनायक नहीं। राम और रावण का संघर्ष दो विश्वव्यापी चरम आदर्शों का द्वंद्व है, न कि धर्म के विरुद्ध अधर्म का संघर्ष। <sup>5</sup>

रामायण भारत के प्राचीन पारिवारिक आदर्श को मूर्त करती है। पिता के प्रति पुत्र का आज्ञापालन, भाई के आत्म त्याग पति-पत्नी की परस्पर निष्ठा आदि के संदर्भ मौलिक रूप से रामायण में विद्यमान हैं। फलतः आत्मबलिदान, स्वार्थ-त्याग, सहिष्णुता, प्रेम, भक्ति एवं श्रद्धा को कवि ने मूल मानकों के रूप में ही स्वीकार किया है। अस्तु, रामायण की रचना भारतीय संस्कृति के आदिम आलोक की महती उपलब्धि है। आज भी रामायण के आदर्श पात्रों की परंपरा यथावत चली आ रही है।

विष्णुदासकृत 'रामायण कथा' 15 वीं शताब्दी की रचना है, जिसमें चौपाई-दोहा छंद-श्लोक आदि अनेक वृत्तों का प्रयोग हुआ है। कथानक अपने विकास क्रम की दृष्टि से 'वाल्मीकि रामायण' की सरणि पर है। कतिपय विद्वान इससे वाल्मीकि रामायण का भाषा-रूपांतर मानते हैं। डॉ. अमरपाल सिंह के अनुसार इसका नाम 'भाषा वाल्मीकिरामायण' है। <sup>6</sup>

### **बौद्ध रामायण :**

बौद्धसाहित्य में रामकथा की परंपरा अति प्राचीन है। ईसापूर्व तीसरी शताब्दी में रचित जातकों में महात्मा बुद्ध को राम का पुनरवतार मानने की संकल्पना के आधार पर जातकों में रामकथा की अवतरण हुआ है। <sup>7</sup> 'दशरथ जातक', 'अनामक जातक' तथा 'दशरथ कथानक' रामायण-संबंधी तीन ये मुख्य जातक हैं। 'दशरथ जातक' में सीता दशरथ की संतान तथा राम-लक्ष्मण की बहिन हैं, अतः कथा के अनुसार राम अपनी बहिन से विवाह करते हैं। स्पष्टतः इन कथाओं में आदिम युग का प्रतिबिंब दृष्टिगत होता है। नैतिकता, अनैतिकता के मानदंड प्रत्येक युग में भिन्न-भिन्न रहे हैं और परवर्ती बौद्धग्रंथों में रामकथा का उपयोग नहीं के बराबर हुआ है, और शायद कारण यह कि राम को जब विष्णु के अवतार के रूप में मान्यता मिल गई तो भारत के बौद्धों ने उसकी ओर से ध्यान हटा लेना बेहतर समझा।

### **जैन रामकाव्य :**

जैन-धर्म में राम की गणना त्रिशष्टि शलाका पुरुषों में की गई है। राम का नाम पद्म है, वे वासुदेव हैं तथा रावण प्रतिवासुदेव है। प्रतिवासुदेव वासुदेव का विरोध अवश्य करता है, किंतु वह खलनायक नहीं है, एक समानांतर आदर्श का प्रतिष्ठापक है। जैन साहित्य में विमलसूरि तथा गुणभद्र की दो परंपराएँ हैं। विमलसूरिकृत 'पउमचरिउ' (चौथी ई० शती) तथा रविषेणकृत 'पद्मपुराण' (आठवीं ई० शती) में रामकथा का एक रूप मिलता है तथा

गुणभद्राचार्य के 'उत्तरपुराण' (नौवीं शती) में दूसरा रूप मिलता है। विमलसूरि की परंपरा में रामकथा परंपरानुकूल है, जबकि गुण भद्राचार्य की परंपरा 'उत्तरपुराण' में ब्राह्मण परंपरा से भिन्न जैन सांप्रदायिकता का अनुसरण करके चली है। 'उत्तरपुराण' में राजा दशरथ वाराणसी के राजा हैं तथा राम की माता कैकेयी को बताया गया है। सीता मंदोदरी के गर्भ से उत्पन्न हुई है। इस रामकथा का अनुसरण पुष्पदंत ने भी अपने 'महापुराण' में किया है। दसवीं ई० शती में रचित इस ग्रंथ के 'उत्तरपुराणखंड' में रामकथा का वर्णन है। इसे 'पउमचरिउ' या 'पद्मपुराण' भी कहते हैं। पुष्पदंत ने अपनी रामकथा को रामायण भी कहा है, जिससे वाल्मीकि रामायण की शैली के अनुकरण के प्रति उनकी आग्रहशीलता स्पष्ट होती है।<sup>8</sup> इस प्रकार जैनाचार्यों ने अपभ्रंश और संस्कृत में विपुल रामसाहित्य की सृष्टि की है। अपभ्रंश में स्वयंभूकृत 'पउमचरिउ' अथवा 'रामायणपुराण' अपनी मौलिकता, सप्रश्नता तथा मानवीय अंतर्द्वंद्वों के व्यापक महत्त्व के कारण अपना विशिष्ट स्थान रखती है। आधुनिक दृष्टि जिन अतिप्राकृत-अलौकिक तत्त्वों के प्रति शंकुल एवं प्रश्नशील है, उनका पूर्वाभास 'पउमचरिउ' में स्पष्ट दृष्टिगत होता है।

राजस्थान की सबसे बड़ी जैनरामायण ब्रह्मजिनदास कृत 'राम रास' (1508 ई०) ने भी जैनरामायण की परंपरा का अनुसरण किया है। इसमें कवि की मौलिकता भी नजर आती है। जैसे कथा में क्षेत्र-विशेष का वर्णन करना। कवि का संबंध झालावाड़, डूंगरपुर, चित्तौड़गढ़, गुजरात आदि क्षेत्रों से है। 'रामरास' में कवि ने नायक राम की अपेक्षा लक्ष्मण को नायक के रूप में प्रस्तुत किया है तथा उस रामरास का स्वरूप कथात्मक है उसमें ब्रह्म जिनदास कथाएँ सुनाते रहते हैं तथा पूर्वजन्म की घटनाएँ, सद्विचार जैनधर्म के सिद्धांतों का वर्णन किया है। साथ में ही स्थानीय शब्दों का प्रयोग किया गया है। जैसे 'सीता-मंदोदरी संवाद' में एक-दूसरे को 'रांड' कहकर संबोधित करती हैं। सीता को वापस 'गाँव' लाना है, आदि। राम, लक्ष्मण, सीता का वनवास, वनवास नहीं है, क्योंकि वे एक राज्य से दूसरे राज्य में जाते हैं और सोने की थाली में भोजन करते हैं, लक्ष्मण सोलह शृंगार करता है। वनवास में लक्ष्मण बहुत सी शादियाँ करता है। वनवास भी बारह वर्ष का होता है। लक्ष्मण को शक्ति बाण लगाना एक जादुई घटना है। बाण एक औरत का रूप होती है, जो विशल्या नामक राजकुमारी द्वारा ही सही होता है। आवागमन के लिए विमान का बहुतायत प्रयोग किया गया है।<sup>9</sup>

इस रासो काव्य में भी समाज के आदर्श, नियम, पाँच अणुव्रत, शिक्षा व्रत एवं तीन गुण व्रत इत्यादि का अनेक स्थानों में उल्लेख होने के कारण जैन काव्य में सांप्रदायिक दृष्टि की प्रधानता है। पुराणों के नाम स्वभाव तथा शैली को अपनाते हुए कवि ब्रह्मजिनदास ने अपने एवं ब्राह्मणों की ईश्वर-संबंधी मान्यताओं तथा सिद्धांतों का तर्कपूर्ण खंडन भी किया है। बाह्य प्रकृति एवं मानव-प्रकृति का अत्यंत रसमय चित्रण किया गया है। ये निवृत्ति के धरातल पर प्रवृत्ति की प्रतिष्ठा कर स्वस्थ मानसिकता का दिशानिर्देश देते हैं।

### तुलसी की रामायण :

मर्यादामूलक भक्तिभाव का चरम परिपाक गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य में दृष्टिगत होता है। 'रामचरितमानस' में रामचरित के माध्यम से विभिन्न दार्शनिक, धार्मिक सामाजिक एवं राजनीतिक अंतर्विरोधों में समन्वय स्थापित किया गया है। तुलसी की दृष्टि

में सभी नैतिक-सांसारिक संबंधों का लक्ष्य राम के प्रति उन्मुखता ही है। यही उनका चरम प्रतिपाद्य है और यही जीवनमूल्यों को निर्धारित करनेवाला एकमात्र निष्कर्ष है। आधुनिक संदर्भों में रामभक्ति से आशय संशय से मुक्ति तथा लोकमंगल की चेतना है, जहाँ रामकथा मन को संशय से मुक्त कर निर्विकार एवं विशुद्ध बनाती है वहाँ 'दशरथ अजिर बिहारी' राम को सगुण ब्रह्म के रूप में स्थापित कर लोकमंगल का स्वरूप विधान भी करती है। अतः आज का आलोचक तुलसी के प्रतिमानों का अनुसंधान करता हुआ भक्तितत्त्व, लोकमंगल सामाजिक चेतना, सौंदर्यबोध तथा समन्वयवाद की ओर इंगित करता है।

तुलसी के पश्चात् रामकाव्य का विकास अनेक सरणियों में हुआ। मध्यकालीन दास्य व भक्तिप्रधान रचनाओं से भिन्न केशवदास ने 'रामचंद्रिका' की रचना की जो सामान्यजन की भावाभिव्यक्ति न होकर पांडित्य एवं वैदग्ध्यपूर्ण उक्तियों का समाहार है। राम, केशव की दृष्टि में पूर्ण ब्रह्म है, किंतु संपूर्ण 'रामचंद्रिका' का वातावरण एक विशिष्ट आभिजात्य एवं सामंतीय सांस्कृतिक मूल्यों से परिवेष्टित है। फलतः व्यक्ति-व्यक्ति के बीच का संबंध है। बहुत कुछ नागर सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर निर्मित है। केशवदास के संवाद इसके प्रमाण हैं।

आधुनिक युग में बढ़ते वैचारिक अंतर्विरोध, जीवनगत विसंगतियाँ और जटिलता कवि-मानस को अधिकाधिक उद्वेलित कर देते हैं। आधुनिकयुग के राम बँधे-बँधाए शाश्वत मूल्यों की लीक पर चलने वाले नहीं हैं। परिस्थितियों से जूझते हुए आंतरिक और बाह्य विरोधों में विभाजित द्विधाग्रस्त राम ही आज के मानव का सही प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। 'राम की शक्तिपूजा' (निराला) 'संशय की एक रात' (नरेश मेहता) जैसी कृतियों में चित्रित राम का चरित्र दूसरा प्रमाण है। 'राम की शक्ति पूजा' में संशय ही राम के चरित्र को एक नई भूमि पर प्रतिष्ठित करता है, क्योंकि संशय ही आज के मनुष्य का अद्भुत सत्य है।<sup>10</sup> इसी प्रकार 'संशय की एक रात' में प्रज्ञा-पुरुष राम सत्यों और संकल्पों की अनिर्णयात्मक स्थिति से पीड़ित हैं यही नहीं आधुनिक कवि स्वयं को आक्षेपों और प्रश्नों के लिए उन्मुक्त रखता है।

क्रमशः साहित्य में जीवन-मूल्यों की मानवतावादी व्याख्याओं तथा वैज्ञानिक संकल्पनाओं का प्रभाव बढ़ता गया, जो मध्ययुगीन निवृत्तिपरक जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति है। अस्तु पारंपरिक संस्कारों तथा परिवर्तित मूल्यबोध के संघर्ष को अभिव्यक्ति प्रदान करने में रामकथा के आख्यान एवं पात्र उपयुक्त माध्यम सिद्ध हुए हैं। रामकथा के आख्यान का वैविध्य कवि को एक ऐसी स्वतंत्रता प्रदान करता है कि वह युगीन आदर्शों को पारंपरिक संदर्भ के अनुकूल प्रस्तुत करने में किसी कठिनाई का अनुभव नहीं करता। यही कारण है कि रामकाव्य के आधुनिक प्रणेताओं ने पात्रों एवं संदर्भों को युग की आवश्यकता के अनुरूप जिस नवीन रूप में प्रस्तुत किया है, उसकी आधारभूमि पारंपरिक आख्यानों में ही खोज निकाली है, इन काव्यों के साथ रचयिताओं द्वारा लिखित भूमिकाएँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं। इस प्रकार रामकाव्य में आधुनिक युग की वैचारिक शक्तियों, पारंपरिक मान्यताओं तथा कवि की निजी अनुभूतियों को वहन करने की अद्भुत क्षमता है और इस दृष्टि से परंपरा युग और कवि की सनातन त्रिवेणी आधुनिक रामकाव्य की परिवृत्ति में प्रवाहित हो रही है।

#### संदर्भ

1. कामिल बुल्के, रामकथा, द्वितीय संस्करण, 1962 हिंदी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग,

- पृ० 25, 26
2. जैन रामकाव्य-परंपरा, डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा अरुण, अपभ्रंश साहित्य अकादमी, सं० 2006, पृ० 54
  3. तुलसीपूर्व राम साहित्य, अमरपालसिंह, सं० 1968, रचना प्रकाशन, इलाहबाद, पृ० 19
  4. रामायण : रवींद्रनाथ के निबंध (हिंदी अनुवाद) सं० 1965, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृ० 358
  5. कुबेरनाथ राय, विषाद योग-नारायण और प्रतिनारायण, सं० 1973 नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ० 67
  6. तुलसीपूर्व राम-साहित्य, पृ० 134
  7. पालि साहित्य का इतिहास, भरतसिंह उपाध्याय, संवत् 2008 वि० हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० 104
  8. हिंदी रामकाव्य का स्वरूप और विकास, प्रेमचंद महेश्वरी, वाणी प्रकाशन, सं० 1998, पृ० 25
  9. पांडुलिपि प्राप्ति-स्थान : श्री ए० पन्नालाल दिगंबर जैन मंदिर, व्यावर (अजमेर), रचनाकाल 1508 पत्र संख्या 405, वेष्टन संख्या 66, नं० 4671, 364
  10. निराला, आत्महंता आस्था, दूधनाथसिंह, संस्करण सन् 1972, प्रकाशन इलाहबाद, पृ० 143-144

## निर्गुण काव्यधारा के कालजयी हस्ताक्षर कबीर

डॉ० अमरदीप दयोल

प्रवक्ता लायलपुर खालसा  
कालेज फार वुमैन, जालंधर

हिंदी-साहित्य के इतिहास का पूर्व मध्यकाल अथवा भक्तिकाल हमारी प्राचीन समृद्ध और शक्तिशाली भारतीय संस्कृति का ही सार अथवा निचोड़ है। अपने मूल्यबोध, भावबोध और सौंदर्यबोध के कारण ही इसे स्वर्णिम साहित्य कहा जाता है। इस साहित्य की मूल्यवत्ता एककालिक न होकर सार्वकालिक है। अंधकार में भटकते मध्यकालीन मनुष्य को इसने ऊर्जा प्रदान की थी। आज भी भौतिकता, वैचारिक उलझन, हिंसा तथा अविश्वास से ग्रस्त वर्तमान परिवेश को ऊर्जा एवं प्रकाश मिल सकता है, वर्तमान भारतीय परिवेश के परिप्रेक्ष्य में इस महान साहित्य की प्रासंगिकता निर्विवाद रूप से स्वीकार्य है। यह साहित्य मानव-मूल्यों से युक्त शाश्वत साहित्य है। इसी साहित्य की निर्गुण काव्यधारा के सर्वाधिक प्रासंगिक एवं कालजयी हस्ताक्षर हैं कबीर।

कबीर जिसका साहित्य काल, धर्म, जाति, समाज देश की सभी सीमाओं से परे का साहित्य है। किसी भी भाषा में किसी भी साहित्य की मूल्यवत्ता अथवा गुणवत्ता का आधार है उसकी प्रासंगिकता। जो साहित्य अपने युग से आगे जाकर आनेवाले युगों को भी प्रभावित करे और अपने गुणों के कारण लोककल्याण अथवा लोकमंगल का आधार बने, वही प्रासंगिक है और वही सार्वकालिक अथवा कालजयी है। डॉ० रवींद्रकुमार सिंह के शब्दों में, 'जिस साहित्य में समाज के उदात्त एवं कल्याणकारी तत्त्वों का समावेश है, जिसमें जितनी अधिक प्रकाश-प्रदायक शक्ति होती है, वह साहित्य उतना ही अधिक चिरजीवी होता है। जिस तरह यह निर्विवाद है कि कविता में कवि का संपूर्ण व्यक्तित्व समाहित रहता है उसी तरह यह भी ठीक है कि किसी भी काल विशेष के साहित्य में उसकी अपनी विशिष्टताएँ सन्निहित रहती हैं। समयुगीन चेतनाओं से प्रतिबिंबित साहित्य अपने समय का सवाक् इतिहास होता है, किंतु उपर्युक्त सत्य से जुड़ा एक और सत्य है कि विशिष्ट प्रभावशाली कवि युग चित्रकार के साथ ही युगांतकारी भी हुआ करता है। वह अपने समय में भी रहता है और अपने समय के आगे भी।' कबीर का साहित्य इस कसौटी पर पूरी तरह से खरा उतरता है। अपने आविर्भाव के छह सौ वर्षों से अधिक समय के उपरांत भी कबीर की उपादेयता आज भी ज्यों-की-त्यों बनी हुई है।

कबीर की काव्य-रचना का उद्देश्य इच्छापूर्ति या लोकयश प्राप्त करना नहीं था, बल्कि वह तो आंतरिक शांति की खोज कर जनजीवन का कल्याण करना चाहते थे। कबीर ने कठिन परिस्थितियों में मानव के अंदर संघर्षपूर्ण जीवन की प्रेरणा भरकर मानव-मन में निराशा के स्थान पर आशा का संचार किया। 'जीवनगत सुदृढ़ वैयक्तिकता के कारण ही

कबीर-साहित्य शाश्वत शक्ति एवं नूतनता से संयुक्त है। प्रवृत्तिजन्य उल्लास एवं निवृत्तिजन्य संतोष का समावेश होने के कारण कबीर-साहित्य की दृष्टि जीवन के प्रति स्वस्थ एवं संतुलित है। कबीर ने प्रभावोत्पादक ढंग से सरल, सदाचारपूर्ण, लौकिक जीवन बिताने का उपदेश दिया और स्वयं भी उसे अपने आचरण में ढालने के कारण जनता के श्रद्धेय बन गए।<sup>2</sup> कबीर के सारे आग्रह मनुष्य, जीवन और जगत को सँवारने के रहे हैं। कबीर की सोच और चिंताओं का केंद्रबिंदु मानव-जीवन रहा है। इसी मानव के लिए कबीर ने इस प्रत्यक्ष संसार से अलग एक प्रति संसार की बात की है, जिसे वह कभी बेगम देश, कभी बेगमपुरा तो कहीं अगमपुर या अमरदेश कहते हैं। यह सबसे 'न्यारा घर' है, जहाँ 'खेलत बसंत ऋतुराज है' और 'वहि देसवा में नित पूर्निमा कबहूँ न होई अँधेर' यह कबीर का भविष्य-दर्शन है। उनके मौलिक चिंतन से उपजा मूल्य जगत है। उन सारे जीवन-मूल्यों से बना जगत जो कबीर के तत्कालीन युग में या उनके प्रत्यक्ष संसार में नहीं थे। निश्चित ही यह उच्चतर मानव मूल्यों का बेहतर जगत है। क्योंकि कबीर जानते हैं कि मनुष्य जीवन का संचालन एवं निर्धारण मूल्य ही करते हैं। मनुष्य के मस्तिष्क में हमेशा चिंतन की प्रक्रिया क्रियाशील रहती है और यही प्रक्रिया अनेक अवधारणाओं का निर्माण करती है। यही अवधारणाएँ आगे चलकर मूल्यों का रूप धारण करती हैं। यह मूल्य समाज के लिए आवश्यक तत्व हैं। साहित्य में यही मूल्य चित्रित होते हैं। जैसे कबीर के साहित्य में शाश्वत जीवनमूल्यों की आधारशिला है। जो साहित्य शाश्वत मूल्यों को समाहित किए रहता है, वही साहित्य शाश्वत बनता है और प्रासंगिक कहलाता है, वह देश-काल की सीमाओं को पार कर कालजयी बनता है। इसलिए कबीर मूल्यरहित इस संसार को बेगाना समझते हैं और कहते हैं—'रहना नहीं देस बिराना है।' क्योंकि यह रहने लायक है ही नहीं। कबीर सबको बता देते हैं—

बाबा अब न बसहु यह गाऊँ।

घरी-घरी का लेखा माँगे काइथु चेतु जाऊँ।<sup>3</sup>

यह स्थिति जितनी कबीर के युग में सत्य थी, उतनी ही सत्य आज भी है। आज का संसार भी इसी तरह घरी-घरी का, पैसे-पैसे का लेखा-जोखा करने वाला भौतिकता में आकंठ डूबा है। इस बात में कोई संदेह नहीं कि आज का समाज कबीरयुगीन समाज से निश्चित ही भिन्न है, परंतु बहुत सी ऐसी समस्याएँ, मूल्य संकर की ऐसी स्थितियाँ हैं, जिन्हें कबीर ने अपने समय में अनुभव किया। कबीर की अनुभूति के कुछ ऐसे स्थल हैं, जिन्हें आज का प्रबुद्ध एवं सचेत मनुष्य भी अनुभव करता है, जो आज भी हमारी पीड़ा का कारण है। समाज की विसंगतियों तथा नेतृत्व के खोखलेपन का जो अहसास कबीर को हुआ था, वैसी ही टीस आज के जनमानस को आंदोलित कर रही है। वर्तमान नेतृत्व वर्ग ऊँच नीच और जाँति-पाँति संबंधी अनेक विवादों की संरचना अपने स्वार्थ-हेतु कर रहा है। जनसामान्य के बीच से प्रेम का तंतु तोड़कर एक चौड़ी खाई खोदने की कुचेष्टा आज भी की जा रही है। विचार करने पर ऐसे अनेक मुद्दे दिखाई पड़ते हैं, जिनके द्वारा हम संत कबीर और उनके युग से जुड़ जाते हैं या इस तरह कहा जाए कि कबीर आज के युग में भी उतने ही प्रासंगिक लगते हैं, जितने उस युग में थे। कबीर का संघर्ष किसी व्यक्ति, समुदाय या संप्रदाय के विरुद्ध नहीं था, बल्कि सीधे उन मठाधीशों के खिलाफ था जिनकी संवेदना का स्रोत सूख चुका था,

जिन्हें केवल अपने पैर के नीचे की ज़मीन दिखाई देती थी। हमारा संघर्ष भी ऐसे ही लोगों के विरुद्ध है। भारतीय समाज की जैसी विस्फोटक स्थिति आज है, कदाचित ही कभी रही होगी। जातिवाद का नंगा नाच, धार्मिकता, अधार्मिकता का सवाल, भौतिक सुखों को प्राप्त करने की अमानवीय प्रतिस्पर्द्धा और उसी के समानांतर चलने वाले देशी-विदेशी धार्मिक संस्थाओं के कुचक्र ने आज पुनः भारतीय समाज को विघटन के कगार पर लाकर पटक दिया है। ऐसी विषम परिस्थिति में कबीर का समाज-दर्शन ही एक मजबूत आधार के रूप में हमें दिखाई देता है। कबीर समाज की प्रथम एवं मूलभूत इकाई व्यक्ति के आचरण को केंद्र में रखकर उसे सुधारने, सँवारने और तराशने की बात करते हैं क्योंकि तभी उस 'बेगमपुर' का स्वप्न सत्य होगा जब हर व्यक्ति स्वयं अपने दोषों को पहचान सकेगा—

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलिया कोय।

जो दिल खोजा आपना, मुझ-सा बुरा न होया।<sup>4</sup>

कबीर नैतिक आचरण का संदेश देते हैं। ऐसी नैतिकता, जो सद्भावना और सदाचार पर टिकी है। यह नैतिकता आत्मविश्वास से परिपूर्ण है और यही आत्मविश्वास सबल और स्वस्थ समाज के लिए बड़ा उपकारक है। जिस समकालीन समाज का निषेध और खंडन कबीर करते हैं, उसमें मिथ्याचार है, बाह्याचार है, पाखंड है, छल-कपट है, जातिवाद संप्रदाय का द्वंद्व है, कथनी-करनी की खाई है। उन सबको राजनीति व धर्म के स्तर पर कबीर पूरे जोर-शोर से नकारते हैं। यही परिदृश्य आज के संसार में व्याप्त है और कबीर की वह फटकार आज भी उतनी ही समीचीन और अर्थपूर्ण है। कबीर ने ज़्यादा प्रखर विरोध उनका किया है, जो इस मूल्यहीनता के जनक एवं पालक हैं। उनमें पंडित-मुल्ला, जोगी-सिद्ध तो हैं ही, ज्ञानी, गुणी, चतुर, राजा-रंक-नरेस भी हैं। इनकी बताई स्वर्ग, नरक, मुक्ति एवं कर्मफल आदि की संकल्पनाओं के साथ इनके बताए देवी-देवताओं का भी कबीर ज़बरदस्त विरोध करते हैं। समकालीन समाज में प्रचलित सभी मार्गों, उपासना-पद्धतियों, दार्शनिक मतवादों का खुला प्रतिकार करते हैं, लोक-वेद सबको छोड़ देते हैं—

पीछे लागा जाइ था, लोक-वेद के साथ

आगे थे सतगुर मिला दीपक दीया हाथ।<sup>5</sup>

पंडित मुल्ला जो कहि दीहा

छाँड़ि चले हम कछु नहीं लीहा।<sup>6</sup>

क्योंकि वह जानते हैं कि यह सारे तथाकथित ज्ञान, धर्म, दर्शन अलगाव को जन्म देते हैं। उनका लक्ष्य तो मानव है। मानवधर्म के पालन हेतु वह हिंदु-मुसलमान के झगड़े को व्यर्थ समझते हैं—

कह हिंदू मोहि राम पियारा, तुरुक कहै रहिमाना।

आपस में दोऊ लरि-लरि मुए, मरम न काहू जाना।<sup>7</sup>

जब कबीर साफ़ घोषणा करते हैं कि 'पंडित बाद बंदते झूठा' क्योंकि वह जानते हैं कि धर्म के ठेकेदार ही अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए जनसाधारण को बाँटकर रखते हैं, तो यह घोषणा वर्तमान संदर्भ में भी उतनी ही सटीक बैठती है, क्योंकि आज धार्मिक असहिष्णुता एवं सांप्रदायिकता का विष हमारे समाज की रगों में फैलकर उसे किस तरह दूषित कर रहा



है, इसके अनेक उदाहरण हमारे समक्ष हैं। ऐसे में कबीर का यह कथन ही समाधान है—

एक निरंजन अलह मेरा

हिंदू तुरक दुहु नाहि मेरा।

कबीर दोनों ही संप्रदायों में व्याप्त कर्मकांडों और बाह्यचारों के कट्टर विरोधी हैं। उन्होंने खूब कड़े शब्दों में पंडितों और मुल्लाओं को फटकार लगाई है—

हिंदू की दया मेहर तुरकन की दूनों घट सों त्यागी।

ई हलाल वै झटका मारै आगु दुनों घर लागी।<sup>8</sup>

धर्म के साथ-साथ जाति-आधारित व्यवस्था भी हमारे समाज के लिए घुन की तरह विनाशकारी सिद्ध होती रही है। आज इक्कीसवीं सदी में भी भारत जातिगत संकीर्णताओं से ऊपर नहीं उठ पाया है। कबीर इस संकीर्णता पर जोरदार प्रहार करते हैं। अपने समय में कबीर स्वयं इस भेदभाव के चलते अवहेलित, अपमानित एवं लोचिंत हुए थे, परंतु वह इस व्यवस्था से डरे, नहीं बल्कि डरे हुए लोगों को डर-मुक्त किया और डराने वाले पंडितों, ज्ञानियों को खुलेआम ललकारकर पूछा—

जे तू बाभन बभनी जाया, तो आन बाट हुवै कहे न आया।

जे तू तुरक तुरकनी जाया, तो भीतरि खतना क्यों न कराया <sup>9</sup>

ब्राह्मण अथवा शूद्र के भेद पर वह पूछते हैं—

एकै तुचा हाड़ मल मूत्रा, एक रिधुर, एक गूदा।

ए बूँद ते सिस्टि रची है, को बाम्हन, को सूदा। <sup>10</sup>

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में 'उनकी एकेश्वरवादी भावना, सामाजिक भेदभाव विहीनता तथा धार्मिक समानता के वैशिष्ट्य ने यहाँ की दलित परिगणित एवं पिछड़ी हुई जातियों में एक नवीन आयाम का संचार कर दिया, जिससे उनमें नवजागरण और स्वावलंबन का भाव उठने लगा।<sup>11</sup> वस्तुतः कबीर ने जातिगत, कुलगत, संस्कारगत और संप्रदायगत भावों को तोड़कर एक ऐसे समाज की स्थापना का स्वपन देखा, जिसमें मनुष्य एक हो और प्रेम का मार्ग ही असल मार्ग हो बिल्कुल यही आवश्यकता आज के समाज की भी है। जब कबीर कहते हैं—

अवल अलह नूर उपाइया, कुदरत दे सब बंदे।

एक नूर ते सब जग उपजिया, कौन भले को मंदे<sup>12</sup>

तो उनके गहन चिंतन और दूरदर्शिता का पता चलता है। कबीर की ये पंक्तियाँ किसी भी कालखंड में मानव-सभ्यता की समस्त समस्याओं का निराकरण करने में सक्षम हैं।

अपने समय के गहन समाजबोध से ही कबीर यह जान पाए कि न केवल धर्म और जाति बल्कि आर्थिक असमानता भी समाज की विसंगतियों के लिए समान रूप से उत्तरदायी है। उन्होंने इसे न केवल समझा, बल्कि अपनी प्रखर वाणी के माध्यम से इसके मूलभूत कारणों, परिणामों एवं समाधानों को भी विवेचन विश्लेषित किया। इस संबंध में डॉ॰ रांगेय राघव का मत समीचीन है वह कहते हैं—'जब संसार में कार्ल मार्क्स नहीं था, जब संसार में द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का चिंतन नहीं था, तब भी मनुष्य असमानता एवं अन्याय के प्रति लड़ता था और यह संघर्ष मध्यकाल के संतों में हमें दिखाई देता है।'<sup>13</sup>

स्वयं फक्कड़ होते हुए भी कबीर अर्थ के महत्त्व को भली-भाँति पहचानते हैं। उन्हें

यह साफ़तौर पर मालूम है कि भूख बड़े-से-बड़े व्यक्ति को भी विचलित कर देती है। इसीलिए वह कहते हैं—‘भूखै भगति न कीजै, यह माला अपनी लीजै।’<sup>14</sup>

धन की आवश्यकता को स्वीकारते हुए भी वे धन से जुड़े दोषों को नकारते नहीं हैं, क्योंकि इसी धन का जब आवश्यकता से अधिक संग्रह किया जाता है तो शोषण की नींव पड़ती है, जो समाज को वर्गों में विभाजित करती है। कबीर इसी व्यवस्था की ओर संकेत करते हैं—

एकनि दीना पाट पटंबर, एकनि सेज निवारा।

एकनि दीना गरे गूदरी, एकनि सेज पयारा।<sup>15</sup>

और इसका परिणाम होता है—

निर्धन आदर कोई न देई।

लाख जतन करै ओहु चित न धरेई।<sup>16</sup>

इस स्थिति में निपटने का हल भी कबीर के पास है—

साई इतना दीजिए, जा में कुटुमब समाय

मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय।<sup>17</sup>

कबीर ने शताब्दियों पहले अर्थविषयक अनिवार्यता एवं उसके संग्रह-संबंधी जो व्यावहारिक रूपरेखा प्रस्तुत की वह आज भी चरितार्थ होती है। सरकार, समाज और संविधान की भाषा में वह काला धन, सफेद धन, आयकर की चोरी, घोटाला आदि भिन्न-भिन्न रूपों में व्यक्त और व्यवहृत हो रही है।

भारतीय दर्शन के कर्म-सिद्धांत के अनुसार कबीर ने भी कर्म को सर्वोच्च गरिमा प्रदान की है। उन्होंने अपने समाज में सत्ता एवं शक्ति से प्रेरित उच्छृंखलता, हिंसा और क्रूर व्यवहारों को देखा था। इसलिए वह प्रत्येक मनुष्य को आत्मसंतोष और परिश्रम का महत्त्व बताना चाहते थे। आत्म-निर्भरता प्रत्येक मनुष्य के लिए अनिवार्य है। कबीर हाथ के काम को बहुत महत्त्व देते हैं—

कबीर जे धंधै तो धूलि, बिन धंधै धूलै नहीं।

तै नर बिनटे मूलि, जिनि धंधै मैं धयाया नहीं।<sup>18</sup>

आज के मशीनी-युग में हस्तकला का यह विचार पूर्णतः प्रासंगिक है, क्योंकि इसी के माध्यम से निर्मम मशीनीकरण का प्रखर प्रतिवाद किया जा सकता है।

वस्तुतः कबीर का काव्य सच्चा मानवतावादी काव्य है, जो मनुष्य के विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। कबीर एक ऐसे समाज की स्थापना चाहते हैं, जिसमें सहअस्तित्व की भावना हो, परिश्रमी और उद्यमी व्यक्ति हों तथा परिवेशजन्य कोई भय उनके मन में न हो। उनके ऐसे विचारों को मात्र ‘यूटोपिया’ कहकर नकारा नहीं जा सकता। क्योंकि वह केवल विचार नहीं प्रकट करते, उसका व्यावहारिक पक्ष भी सामने रखते हैं। उनका काव्य मानवता के पोषक तत्वों से परिपूर्ण है। अज्ञेय के अनुसार, ‘जो कुछ भी मानव की स्वाधीनता और सृजनशीलता को बढ़ाता है, पुष्ट करता है, उसे स्थायित्व और सुरक्षा देता है, वह सब मूल्यवान है और वही प्रासंगिक है।’<sup>19</sup> इस तरह कबीर साहित्य तो पूरी तरह मानवमात्र पर केंद्रित है तो उसकी प्रासंगिकता एवं कालजयीता स्वयंसिद्ध है। कबीर का यह मानवतावादी दृष्टिकोण गहरी संवेदना से ओत-प्रोत है। उन्होंने जाति, धर्म, वर्ण, मत, वर्ग आदि बाधाओं से हटकर एक सहज धर्म की स्थापना की, जो

सबके लिए सुलभ है। कबीर ने कष्टसहिष्णुता, परोपकार, दया, क्षमा, अपरिग्रह की भावना को जन-जन तक पहुँचाया। आज भी कबीर का मानवतावादी दृष्टिकोण समाज की आवश्यकता है। नैतिक पतन के इस दौर में कबीर के ये विचार अत्यंत मूल्यवान प्रतीत होते हैं। इन्हें अपनाकर खंडित हो रही मनुष्यता को बचाया जा सकता है। छह सौ साल पहले भी कबीर की जितनी ज़रूरत थी, आज उससे भी कहीं अधिक है। आज देश और समाज की हालत कबीर के युग से भी बदतर है। कबीर परस्पर द्वेष बढ़ानेवाली स्वार्थप्रेरित राजनीति को पहचानकर हिंदू-मुस्लिम धर्मों के आडंबरों, पांखडों और अंध-विश्वासों पर निर्भीक होकर प्रहार करनेवाले, अपने युगबोध को समझने वाले कालदर्शी कवि हैं। इसीलिए आज का साहित्यकार अपने को कबीर की परंपरा से जोड़ने में गर्व का अनुभव करता है। कबीर अपने युग के तनावों को झेलते हुए अपने सहज जीवनबोध और गतियों को बरकरार रखते हैं। स्वयं शिकार नहीं बन जाते बल्कि तनाव देनेवाली विसंगतियों को लक्ष्य करके प्रहार करते हैं। विसंगतियाँ रचने वाली सामाजिक, धार्मिक शक्तियों पर निर्मम चोट करते हैं। ऐसे ही कवि कालजयी होते हैं। उनकी रचना की आधारभूमि भी अत्यंत सुदृढ़ है, क्योंकि उन्हें ईश्वर पर आस्था, व्यक्ति की सद्वृत्तियों, दया, प्रेम और करुणा जैसे उदारतावादी मानवीयमूल्यों पर पूर्ण विश्वास है। आज की मुख्यधारा की कविता में कबीर की अमिट छाप और अस्पष्ट गूँज सुनाई देती है। वस्तुतः मानव-समाज जब तक दमन, शोषण, अन्याय, वर्ग-भेद एवं वर्ण-भेद जैसी विकृतियों से जूझता रहेगा, तब तक कबीर उसके सशक्त प्रतिपक्ष के रूप में साहसपूर्वक खड़े दिखाई देते रहेंगे और उनकी कविता की सार्वकालिक और सार्वदेशिक प्रासंगिकता भी वर्तमान रहेगी।

### संदर्भ

1. संतकाव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, डॉ॰ रवींद्रकुमार सिंह, पृ॰ 37-38
2. कबीर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ॰ आर्याप्रसाद त्रिपाठी, पृ॰ 73
3. कबीर ग्रंथावली, पृ॰ 120
4. कबीर वचनावली, पृ॰ 145
5. कबीर ग्रंथावली, पृ॰ 2
6. वही, पृ॰
7. वही, पृ॰
8. बीजक, पृ॰ 136-137
9. बीजक, पृ॰ 85
10. बीजक, पृ॰ 224
11. भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ, परशुराम चतुर्वेदी, पृ॰ 34
12. कबीर ग्रंथावली, पृ॰ 140
13. संगम और संघर्ष, डॉ॰ रांगेय राघव, पृ॰ 92-93
14. कबीर ग्रंथावली, पृ॰ 140
15. वही,
16. वही, पृ॰ 130
17. वही, पृ॰ 149
18. वही, पृ॰ 17
19. 'अतएव', जुलाई, पृ॰ 9-10

## नारी-विमर्श और समकालीन हिंदी नवगीत

डॉ० सुनीतादेवी

सहायक प्राफ़ेसर, हिंदी

कु०वि०आ० डी०ए०वी० महिला महाविद्यालय, करनाल

### नारी-विमर्श क्या है

नारी की दशा व नारी की मुक्ति की अवधरणा को ध्यान में रखकर जो विचार व्यक्त किए जाते हैं, वे 'नारी-विमर्श' के अंतर्गत आते हैं। नारी क्या सोचती है, जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण, उसकी आकांक्षाएँ व अपेक्षाएँ, उसके जीवन का उद्देश्य तथा जीवन के विभिन्न पक्षों पर उसके विचारों का विश्लेषण आज के युग की अनिवार्यता है। उपभोक्तावादी संस्कृति के फलस्वरूप आज की नारी की दबंग एवं निर्भीक भूमिका ने हर क्षेत्र में पुरुष को चौंकाया है। अगर गौर किया जाए तो आज का नारी-लेखन, नारी-विमर्श की सीमा का अतिक्रमण करके नारी के संकल्पनात्मक संघर्ष के रूप में उभर रहा है। आज की कवयित्रियाँ विमर्श की भाषा को त्यागकर अपने अस्तित्व के लिए युद्ध-भाषा का प्रयोग करने लगी हैं।

भारतीय नारी-इतिहास की यह बहुत बड़ी विडंबना रही है कि धर्मग्रंथों ने उन्हें वस्तु, बाजार, धर्मकृत्यों का उपकरण, यौन-विलास, पुरुष-सेवा और गृहिणी से अधिक कुछ समझने की कोशिश नहीं की। इसी संदर्भ में मैथिलीशरण गुप्त ने भी लिखा है—

अबला जीवन हाथ तुम्हारी यही कहानी,  
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

परंतु आज नारी-विमर्श की परिधि से इन पंक्तियों को बाहर फेंक दिया गया है। आज नारी की आँखों में अगर पानी भी दिखाई देता है तो वह आँसू नहीं अपितु तेजस्वी जल है, जो अबला शब्द को गलत सिद्ध कर देता है और यह अहसास दिलाता है कि नारी अबला न होकर, सबला है। परंतु गाँव की ग़रीब नारी का परंपरागत जीवन अब भी वही है— दिनभर मेहनत करना और अभावों में जीना। नारी की इस दशा को समकालीन हिंदी नवगीतकारों ने गीतों में सहजता से अभिव्यक्त किया है।

### नवगीत से अभिप्राय

'नवगीत' दो शब्दों से मिलकर बना है— 'नव' और 'गीत'। नव का अर्थ है—नया और गीत अर्थात् जिसे गाया जा सके। हिंदी में 'गीतिकाव्य' को अँग्रेज़ी के 'लिरिकल पोइट्री' का समानांतर रूप माना जाने लगा है। वस्तुतः 'गीत' का परिष्कृत रूप ही 'गीति' है। 'गीतिकाव्य' को परिभाषित करते हुए विश्वकोश में लिखा है—'गीतिकाव्य वह रचना है, जिसमें विशुद्ध कलात्मक धरातल पर कवि के अंतर्मुखी जीवन का उद्घाटन मुख्य रूप से होता है और जो उसके हर्ष-उल्लास, सुख-दुख एवं विषाद को वाणी प्रदान करता है।'।

महादेवी वर्मा ने गीत को परिभाषित करते हुए लिखा है—‘सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था विशेष कर गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।’<sup>1</sup> शंभूदयाल सिंह ने लिखा है—‘दरअसल, गीत कवि की आंतरिक निजता की मुखरित अभिव्यक्ति होती है।’<sup>2</sup> इस प्रकार कहा जा सकता है कि गीत बाह्य जगत् का चित्रण न होकर व्यक्तिगत संवेदनाओं एवं अनुभूतियों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रस्तुत करने का एक सशक्त माध्यम है।

विगत 10-12 वर्षों से गीतकारों ने नए रूप में गीत का सृजन किया, जिसे ‘नवगीत’ कहा गया। ‘नवगीतकार’ निराशा में आशा और दुःख में सुख की किरणें लेकर चलता है। उसका रोना भी आशा और आकांक्षा के साथ होता है। वह युगबोध को हार्दिकता के साथ ग्रहण करता है। गीत का ही विकसित और संश्लिष्ट रूप नवगीत है। विषय-वस्तु और शिल्प की नवीनता और विस्तार के आग्रह के साथ नवगीत का स्वरूप निर्मित होता है। वह विभाजन और वैषम्य से दूर समग्रता का काव्य है। ‘नवगीत’ वस्तुतः वह गीत है जो, गीत के शिल्प-विधान में समय-सापेक्ष वैचारिकता का वहन करता है और कथ्य को अधिक-से-अधिक यथार्थपरक बनाता है। ‘नवगीत कोई जादू नहीं है। यह हिंदी की गीति-परंपरा का ही सहज क्रमिक विकास है। इस प्रकार नवगीत गीत की सीमित होती दुनिया को पुनः प्रतिष्ठित करने की आकांक्षा से आगे आया और एक आंदोलन बन गया। फलतः नवगीत आधुनिक युगबोध की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन गया। उसने नई लय, नया संगीत, नए भाव-बोध तथा नई सौंदर्याभिरुचि के साथ परंपरा को भी जीवित रखा।’<sup>3</sup>

निष्कर्षतः, समकालीन हिंदी-नवगीत वह समकालीन काव्य-बोध है, जिसमें आधुनिक काव्य की आत्मा भी है, आत्मिक ज्योति भी है, भावों का त्वरित आवेग भी और वैचारिक संयोग भी। नवगीत में इशारों में ही बहुत-कुछ कह दिया जाता है। वस्तुतः व्यापक यथार्थ की रागात्मक अभिव्यक्ति ही नवगीत है।

वैयक्तिकता, यथार्थ, आंचलिकता, मानवतावाद, युगबोध, सामाजिक सरोकार, वैज्ञानिकता, इतिहास-बोध, नारी-विमर्श, दलित-विमर्श, उपभोक्तावादी संस्कृति, उदारीकरण आदि विषयों का व्यापक चित्रण समकालीन हिंदी नवगीतों में मिलता है।

### समकालीन हिंदी नवगीत में स्त्री-विमर्श

आधुनिक हिंदी-साहित्य में भारतीय विचारकों एवं पाश्चात्य विचारकों का मिला-जुला प्रभाव दिखाई पड़ता है। स्वामी दयानंद सरस्वती, विवेकानंद, राजा राममोहनराय जैसे समाज-सुधारकों के प्रयासों से भारतीय नारी की दशा और दिशा दोनों बदली हैं, जिससे नारी-संबंधी विचारधारा में भी बदलाव आया है। विगत तीन दशकों से स्त्री-विमर्श साहित्य के केंद्र में उभरकर प्रस्तुत हो रहा है। स्वतंत्रता के बाद स्त्री-रचनाकारों की लंबी अनुपस्थिति के विपरीत समकालीन नवगीतों में स्त्री-विमर्शवादी स्वर बड़े संवेदनशील एवं व्यापक स्तर पर सुनाई देता है। नारी-विषयक अवधारणा को प्रस्तुत करने में कवियों के साथ-साथ कवयित्रियों ने भी अहम भूमिका निभाई है। कवयित्रियों ने नारी-संवेदना का मार्मिक एवं यथार्थ चित्रण किया है। इंदिरा मोहन, ज्ञानवती सक्सेना, प्रमिला भारती, सावित्री परमार, डॉ॰ शैल रस्तोगी, डॉ॰ शांति सुमन, डॉ॰ शरद सिंह, अरुणा दुबे, रमा सिंह, यशोधरा राठौर, मधुप्रसाद, वर्षा सिंह, मंजू गुप्ता, मृदुला सिन्हा, राजकुमारी ‘रश्मि’ आदि कवयित्रियों ने अपने काव्य में स्त्री की आकांक्षाओं, वेदनाओं

को उपयुक्त स्थान दिया है।

ज्ञानवती सक्सेना के अनुसार— नारी में परिस्थिति और समय के अनुरूप खुद को ढालने की अधिक क्षमता होती है। वह पुरुष से बराबरी नहीं करना चाहती अपितु नारी रहकर ही सर्वांगीण विकास करना चाहती है। आज की नारी संघर्षों का सामना करते हुए दैहिक सौंदर्य के भँवर से ऊपर उठकर एक बाँसुरी के समान संघर्षमय जीवन जीना चाहती है। कवयित्री नवगीत के माध्यम से कहती है—

कंचन-काया कंचन काया / सुनते-सुनते ऊब गई मैं,  
भँवर चीरकर तैर रही थी / नाव देखकर डूब गई मैं।  
झुककर नहीं, चलूँगी तनकर / ऐसी है मेरी गुरु दीक्षा,  
संघर्षों से / गोद-गोद कर / बना दिया है मुझे बाँसुरी,  
उगली रखते / ही गूँजूँगी / पर न जपूँगी नाम तुम्हारा।<sup>4</sup>

क्या नारी-मुक्ति मात्र देह-मुक्ति है? नहीं, नारी-मुक्ति का अर्थ है—विचारों की मुक्ति, आत्मा और परंपरागत शोषण से मुक्ति। सदियों से चली आ रही रूढ़ परंपराओं, पितृसत्तात्मक नैतिक प्रतिमानों तथा पुरुष-प्रधान भारतीय समाज में सदियों से दमित, शोषित व संघर्षरत स्त्री आज भी उस दमनचक्र से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाई है। हर स्त्री के अंदर कोई-न-कोई क्षमता अवश्य होती है। स्त्री को अपनी उसी क्षमता को ताकत बनाकर तरह-तरह के शोषण से खुद को बचाना होगा। शांति सुमन लिखती हैं कि आज अगर सड़क के किसी कोने में किसी युवती का शव पड़ा हो तो आने-जाने वाले लोगों की नजरें उसके शरीर पर तो पड़ती हैं, परंतु कोई उस मृत शरीर को उठाकर सही स्थान पर नहीं पहुँचाता। इस गंदी मानसिकता का चित्रा कवयित्री ने इन पंक्तियों में किया है—

शव किसी युवती का है / इसलिए भीड़ है।  
देखने वालों की / उठाने वालों की नहीं  
कोई नई बात नहीं / जहाँ वह मिली है / गटर में  
वहाँ सैकड़ों किस्सों के / सैकड़ों मुँह / वह सिर्फ देह थी  
देह के साथ रही / देह लेकर मर गई  
मनुष्य होने की आदिम परिभाषा / पर भी / पत्थर रख गई।<sup>5</sup>

डॉ० शरद सिंह ने स्त्री-विमर्श पर आधारित अपने साहित्य में सदियों से दलित, पीड़ित, शोषित और उपेक्षित स्त्रियों के जीवन और उनसे जुड़ी समस्याओं को उजागर किया है। शरद जी लिखती हैं— 'मैं पुरुषों की विरोधी नहीं हूँ, किंतु उस विचारधारा की विरोधी हूँ, जिसके अंतर्गत स्त्री को मात्र उपभोग की वस्तु के रूप में देखा जाता है। विचारों का यह पुरुष-प्रधान समाज ही जिम्मेदार है, उन औरतों के जीवन की त्रासदियों के लिए जो अतीत में 'गणिकाएँ', 'देवदासियाँ' अथवा 'नगरवधुएँ' कहलाती थीं और वर्तमान में 'कालगर्ल', 'बार डांसर' और 'सैक्स वर्कर' कहलाती हैं। अर्द्धशिक्षितों के बीच इन्हीं औरतों को 'नचनिया', 'पतुरिया' और 'धंधेवाली' कहा जाता है। स्त्रियों से जुड़े इस अपराध को स्त्रियों की सहज उपलब्धता पर मढ़कर कोई भी समाज दोषमुक्त नहीं हो सकता।' <sup>6</sup> नारी के विभिन्न रूपों पर प्रकाश डालते हुए डॉ० शरद सिंह ने लिखा है—

धूप हैं, पानी, हवा हैं/ बिजलियाँ हैं औरतें।  
हैं शिला जैसी अडिग, तो तितलियाँ हैं औरतें।

अरुणा दुबे नारी के मातृ रूप को महान मानती हैं। उसका मातृत्व अपनी संतान तक ही सीमित नहीं रहता, अपितु वह संपूर्ण चराचर जगत् में व्याप्त हो जाता है। मातृत्व के साथ उसमें दैवीय गुणों जैसे—धैर्य, त्याग, दया, क्षमा, सहानुभूति जैसे गुण उत्पन्न होते हैं।

इक्कीसवीं सदी के इस महिला सशक्तीकरण के युग में क्या नारी के प्रति पुरुष और समाज की मानसिकता बदली है? क्या भौतिकवादी युग में नारी मात्र 'वस्तु' है? इन प्रश्नों का उत्तर डॉ० रमा सिंह ने खोजने का प्रयास किया है। वे लिखती हैं— 'आज समाज जगा है। नारी-शिक्षा के प्रति जागृति आई है। अब नारी सामाजिक बंधन से विद्रोह करने लगी है। यह विद्रोही स्वभाव उसे दिग्भ्रमित भी कर रहा है। वह पश्चिमी अंधानुकरण की दौड़ में शामिल हो भारतीयता को तिलांजलि भी दे रही है। बीड़ी के विज्ञापन से लेकर बड़े से बड़े उत्पाद का विज्ञापन नारी देहयष्टि के माध्यम से हो रहा है। दबे-ढके सौंदर्य के कपड़े, दिन-प्रतिदिन विज्ञापन के हाथों उतर रहे हैं।'<sup>7</sup>

समकालीन नवगीतों की सशक्त कवयित्री यशोधरा राठौर ने समाज, परिवेश और वक्त की त्रासदी का यथार्थ चित्रण किया है। आज की नारी को सबला बनकर अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठानी होगी और प्रत्येक संघर्ष को पार करते हुए अपनी मंज़िल की ओर बढ़ना होगा। नारी को प्रेरित करती हुई कवयित्री लिखती हैं—

आँखों में पसरे घर को / जीना होगा  
नीलकंठ-सा तेज़ ज़हर / पीना होगा  
सधे पाँव ही चलती / तनिक न / डगती मैं।<sup>8</sup>

वस्तुतः यह एक कटु सत्य है कि स्वभावतः स्त्री अधिक परिश्रमी, व्यावहारकुशल, ईमानदार, कुशाग्रबुद्धि और उदारप्रकृति की होती है। ज़्यादा उत्तरदायित्व आ जाने पर नारी अपनी बढ़ी हुई ज़िम्मेदारियों को भी अपनी दिनचर्या में समायोजित कर लेती है। नारी की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए प्रसिद्ध समकालीन नवगीतकर्त्री वर्षा सिंह लिखती हैं—

अमृत वहाँ ज़हर है / जहाँ औरतें नहीं,  
वो घर न कोई घर है, जहाँ औरतें नहीं।  
आँसू, हँसी, खुशी की, वहाँ दौलतें नहीं,  
शुभ-लाभ से भरा इक सतिया नहीं  
बेहद उदास दर है, जहाँ औरतें नहीं।  
बेटों की चाहतों ने / हमें ये भुला दिया  
बेटी भी रौनकें हैं / बेटों-सी शर्तिया।  
बेरंगा वो शहर है, जहाँ औरतें नहीं।<sup>9</sup>

डॉ० मंजु गुप्ता अपने गीतों के माध्यम से स्त्री को प्रेरित करती हुई कहती हैं कि स्त्रियों को स्वयं आगे आकर खुद को सशक्त बनाकर ही संसार के मानचित्र में आधी आबादी की अस्मिता सिद्ध करनी होगी—

ठोस धरती पर क़दम रखे / और करो महसूस

हजारों औरतों के अनवरत दुःख / अंतहीन हाहाकार को  
 अपने भीतर / यही है नारी सशक्तिकरण / तुम औरत हो  
 इसलिए दोगम दर्जे का पुरुष / या पुरुष जैसी नहीं  
 सिर्फ औरत बनो / सही मायने में ठीक आदमकद औरत।<sup>10</sup>

कवयित्रियों ने स्त्री के प्रत्येक रूप के प्रति संवेदना व्यक्त की है। स्त्री के अंदर सभी सात्त्विक गुणों का समावेश मानते हुए सुश्री शरद सिंह ने अपने विचार व्यक्त किए हैं—

माँ की ममता है इन्हीं से, है बहन का प्यार भी  
 हर परिदे की शरण ज्यों, डालियाँ हैं औरतें।  
 ये न शोषित हो सकेंगी, और न पीड़ित रहेंगी  
 खाक कर दे जो बुराई, तीलियाँ हैं औरतें।

निष्कर्षतः, कहा जा सकता है कि समकालीन नवगीत की महिला रचनाकारों ने जहाँ स्त्री के प्रेम, करुणामुक्त संवेदनाओं को अपने साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया है, वहीं उसके विद्रोही स्वर को भी अपनी रचनाओं में उभारा है। भारतीय स्त्री-रचनाकारों ने स्त्री-विमर्श का जो स्वर उठाया है, वह भारतीय परिवेश की देन है। वैश्विक प्रसंग होते हुए भी यह पश्चिम का अंधा अनुकरण नहीं है। यहाँ स्त्री-रचनाकारों ने पीड़ा और दमन का अनुभव किया है, दूसरी ओर सुख-स्वप्नों की कल्पना की है। भारतीय ग्रामीण एवं शहरी स्त्रियों की सम्मिलित संवेदना नवगीतों में स्त्री-विमर्श के रूप में उजागर हुई है, परंतु यह तो मात्र शुरुआत है। साहित्य के माध्यम से स्त्री की वास्तविक स्थिति व उससे जुड़ी अनेक चिंताओं का संपूर्ण चित्रण अभी शेष है। अतः इस दिशा में अनेक नए क्षितिज तलाशने होंगे। श्री अरुणप्रकाश के अनुसार— हिंदी का नारीवादी लेखन अभी शैशवकाल से गुजर रहा है। वह परिपक्व होगा, तभी जब वह सामूहिक मुक्ति का स्वप्न अपने मन में बिटाए। स्त्री की दासता मर्दवादी सभ्यता का कलंक है। कलंक जितनी जल्दी धुल जाए उतना ही अच्छा। लेकिन नारीवादी लेखन को मर्दवादी बाजार, सौंदर्य मूल्य, भाषा और संस्कृति के प्रबंधकों से बचाना होगा।<sup>11</sup>

#### संदर्भ

1. यामा : महादेवी वर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, 2008, भूमिका भाग से
2. डलमऊ दर्शन, 1997, गीत मेरे मीत, समीक्षक शंभूदयाल सिंह सुधाकर, पृ० 40
3. यदि, सं. रमाकांत, दिसंबर 2004, (लेख : प्रो. वीरेंद्रमोहन), पृ० 11
4. बीसवीं सदी के श्रेष्ठ गीत, सं. मधुकर गौड़, सार्थक प्रकाशन, मुंबई, 2003, पृ० 51
5. शांति सुमन की गीत-रचना और दृष्टि, सं. दिनेश्वरप्रसाद सिंह, सुमन भारती प्रकाशन, जमशेदपुर, 2009 पृ० 371
6. पिछले पन्ने की औरतें, शरद सिंह, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, भूमिका से
7. नारी : एक सफ़र, सं. दिनेशनंदिनी डालमिया एवं संतोष गोयल, ज्ञानभारती प्रकाशन, दिल्ली, 2008 पृ० 192
8. उस गली के मोड़ पर, यशोधरा राठौर, अभिदा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, 2008, पृ० 79
9. दैनिक आचरण, वर्षा सिंह, सागर
10. नारी : एक सफ़र, सं. दिनेशनंदिनी डालमिया एवं संतोष गोयल, पृ० 77
11. स्त्री : मुक्ति का सपना, सं. प्रो० कमलाप्रसाद, वाणी प्रकाशन, 2004, पृ० 66



## हिंदी-उपन्यासों में प्रवासी भारतीय

प्रणु शुक्ला

शोधार्थी

हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान् है। किंतु, भौतिकता की अन्धी दौड़ में, ज़्यादा से ज़्यादा पैसा कमाने की आकांक्षा रखता हुआ व्यक्ति देश से बाहर जाने की ललक रखता है, और विदेश में अपनी आजीविका और मूल्यों की शोध करता हुआ प्रवासी बन जाता है। प्रवास की ओर प्रवृत्त होते हुए वह देश और जीवनमूल्यों से ही नहीं, अपनी जड़ों से भी दूर होता जाता है। जब वह प्रवास के लिए प्रस्थान करता है तो नित-नई महत्वाकांक्षाएँ कल्पनाएँ करता है, सपने संजोता है। किंतु शीघ्र ही वास्तविकता से उसका साक्षात्कार होता है फलतः उसके सपने धाराशायी होने लगते हैं। कुछ है जो उसके भीतर, टूटने-दरकने लगता है। सारा परिवेश पराया सा लगता है और उसके हाथ कुछ नहीं लगता, संवादहीनता की स्थिति कायम हो जाती है। उसकी टूटन धीरे-धीरे अवसाद में बदलने लगती है।

परिवेश जन्य वैविध्य उपस्थित होने पर उसका देश, उसका समाज, घर परिवार उसे याद आने लगते हैं। प्रवास में जानेवाला भले ही पैसा बहुत कमा ले या सुख-सुविधा की हर वस्तु प्राप्त कर ले, किंतु हृदय की भावनाएँ सूख ही जाती है।

कुछ इस ही तरह के भावबोध लकर प्रकट हो रहे हैं आज के उपन्यास जो उपर्युक्त सन्दर्भों को विभिन्न आयामों में खोलते हैं, विश्लेषित करते हैं। प्रियंवदा का 'भया कबीर उदास' हो या शशिप्रभा शास्त्री का 'सागर पार का संसार' या फिर मोहन सहगल का 'मिले सुर मेरा तुम्हारा'।

भूमंडलीकरण के दौर में समय, स्थान और कार्य की परिभाषाएँ अपना रूप बदल, नया आभार ले चुकी है, इनकी नवीन परिभाषाएँ हो गई हैं। प्रौद्योगिकी के बढ़ते चरण, यातायात के अधुनातन साधन, मीडिया एवं संचार माध्यमों की अनवरत (निरंतर) सप्लाई और विज्ञान के अभूतपूर्व आविष्कारों ने पूरे विश्व को एक गाँव में तो परिवर्तित कर दिया है, और परिवर्तन की इस हवा ने निःसन्देह महानगरों के परिवेश को भी बदल दिया है। लेकिन इस बदलते परिवेश ने न केवल हमारे मूल्य और संस्कृति में ऐसी घुसपैठ की है, बल्कि उन्हें अन्दर से बिल्कुल खोखला करने में भी कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। जिस समाज की 'युवा ब्रिगेड' अपने मूल्यों-कर्तव्यों को भुलाकर नई रोशनी की चकाचौंध में खो जाती है उस समाज का पतन अवश्यभावी है। नए सपने गढ़ना कोई बुरी बात नहीं, किंतु दिवास्वप्न हकीकत से बहुत दूर होते हैं।

मीडिया द्वारा पश्चिम प्रभावों के कुपरिणामों में एक अभावग्रस्त और अनुभवहीन युवाओं को ऐसी रंगीन दुनिया के दर्शन कराना, जो मृगमरीचिका के अतिरिक्त कुछ नहीं। आज इंजीनियरिंग, मेडिकल, मॉडलिंग, कार्पोरेट सेक्टर में हुए क्रांतिकारी बदलाव ने न केवल महानगरों की मानसिकता को प्रभावित किया बल्कि गाँवों में भी दस्तक दी है। इस दस्तक ने आम आदमी को इतना झकझोर दिया है कि कथानक का मुख्य विषय बन गया है। लेकिन स्थिति की भयावहता तब प्रकट होती है, जब आए-दिन इन प्रवासियों पर, कभी नस्ल के नाम पर, कभी रंग के आधार पर, तो कभी देश के नाम पर इनकी भावनाओं का मखौल उड़ाया जाता है। आस्ट्रेलिया में जो घटा वह हमारे सामने है, बल्कि मैं यहाँ तक कहती हूँ आज भारतीय युवा, उद्यमी, व्यापारी जिस परचम के साथ विदेशी सरजमीं पर धाक जमा रहे हैं उसकी प्रतिक्रिया के रूप में हमारे प्रवासी भारतीयों को टारगेट बनाया जा रहा है।

प्रवासी होने के बाद एक नई स्थिति से सरोकार तो होता ही है साथ ही हम यह सोचने को विवश हो जाते हैं कि वह क्या है जो मेरे देश से मुझे इस देश में खींच लाया है? और इन संदर्भों में हम तुलना करने लगते हैं, इस प्रकार देश की परिस्थितियों और विदेश की परिस्थितियों में हमें अंतर दृष्टिगत होता है।

एक ऐसा उपन्यास हमें 'मिले सुर मेरा तुम्हारा' जो मनमोहन सहगल द्वारा विरचित है, जिसमें एक खास किस्म की प्रवासी समस्या पाठकों के सामने उभरती है, जिसका कलेवर 'प्रवास के दर्द' से ओर बढ़ता जाता है। यह समस्या हमें भावात्मक स्वर पर इतना झकझोरती है कि कैसे बेचारे प्रवासी मजदूर विस्थापित-सा जीने लगता है। एक ओर पंजाब से जाने का दर्द उभरता है वहीं विदेश में बात-बात पर होते दुराचार, उनके मान सम्मान को चोट पहुँचाते हैं। डॉ० सुधा जितेंद्र अपने एक लेख में इस ओर संकेत करते हैं।

'मिले सुर मेरा तुम्हारा' में प्रवासी मजदूरों की समस्या को दो स्तरों पर चित्रित किया गया है। पंजाब के सन्दर्भ में और विदेश में जाकर वहाँ बसने की चाह में टूटकर बिखरने के रूप में, पूरे राष्ट्र के संदर्भ में प्रवासी चेतना की दोनों ही स्तरों पर इस उपन्यास में दमदार अभिव्यक्ति हुई है।<sup>2</sup>

पंजाबी किसानों की दुर्दशा, पंजाबी श्रमिकों के पतन के अनेक कारणों को इतने रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है कि आद्यन्त रोचकता एवं कौतूहल बना रहता है। पात्रों एवं स्थितियों, परिस्थितियों का मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म चित्रण करने में उपन्यासकार बेहद सफल है। उपन्यास की विषयवस्तु हमें अनुकूलत करनेवाली है।

डॉ० सुधा जी लिखती हैं— 'पंजाब के किसानों की ऋण की समस्या, आत्महत्या की समस्या, संयुक्त परिवारों के टूटने की समस्या, नई पीढ़ी की विदेश के प्रति ललक की समस्या, एन०आर०आई० दूल्हों के द्वारा पंजाबी किशोरियों के शोषण की समस्या, पारिवारिक कलह की समस्या, वित्तीय संकट की समस्या इत्यादि अनेक ऐसे कोण हैं जहाँ से पंजाबी जनजीवन सहित राष्ट्रीय सरोकारों के अनेक अनछुए लेकिन गम्भीर मुद्दे दृश्यमान होते हैं। सशक्त विषयवस्तु की दमदार अभिव्यक्ति है— 'मिले सुर मेरा तुम्हारा'।<sup>3</sup>

एक ऐसा ही अन्य उपन्यास है— 'सागर-पार का संसार' जिसकी लेखिका है - शशिप्रभा शास्त्री, इसमें प्रवास पर अपने पुत्र के पास गई माँ के विचार-प्रवाह एवं एकाकी

संलापों का चित्रण है। इस उपन्यास का मूल विचारपरक तथ्य यह है कि 'व्यक्ति की विशिष्ट परिस्थितियाँ कैसे उसके मानसिक निर्माण-हेतु बनती है। इस उपन्यास में अमेरिका के केलीफोर्निया का चित्रण अंतःसंयोजन रूप में किया है जो अपनी जलवायु वनस्पति और तत्संबंधी सभी चीजों के कारण अमेरिका से वैभिन्न रखता है।

लेखिका ने समय-समय पर भारत की और निदेश की तुलना की है और अपने एकाकी क्षणों में देश को याद किया है। प्रवास के दौरान देश की याद में अश्रुविगलित हो जाना न केवल लेखिका की देशभक्ति की अलौकिकता को प्रकट करता है वरन् प्रवास में देश भी शामिल रहता है इसकी प्रस्थापना भी करता है। यहाँ लेखिका लिखती हैं कि— यह क्या हुआ, अभी मैं अच्छी-खासी बोल-बतिया रही थी, हँस रही थी, डपट रही थी, एकाएकी हजारों योजन दूर बसा मेरा छोटा-सा देश खिंचकर कैसे इतने पास आ गया— वहाँ के दृश्य, व्यक्ति-परिजन सब कोई-मन भर आया, गला रूँधने लगा, बेतरह लगा-अभी मैं चीखकर रो उठूँगी।<sup>4</sup>

जिंदगी में प्रवास तभी तक सार्थक है जब तक देश मन में बसा रहे लेखिका यहाँ अपना मन्तव्य उपस्थित करती है। लेखिका ने एक ओर महत्वपूर्ण विषय एवं समस्या पर दृष्टिपात किया है वह है 'ब्रेन-डेन' या 'बौद्धिक गमन'। भारतीय युवा विदेशों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपनी सेवाएँ देने लगते हैं। भारत में न तो वहाँ की जैसी सुविधाएँ हैं न उतना पैसा। इसलिए भारतीय युवा विदेश के प्रति आकर्षित होते हैं। लेखिका लिखती हैं— मेरा देश अपनी संतति की प्रतिभा को क्यों सँगवाकर नहीं रख पाता? इनके बल पर अपनी जमीन पर गुलशन क्यों नहीं उगा सकता? कितनी दयनीय है वह जो अपने हीरे-मोतियों को अपनी जमीन पर यों रूलने देता है, तभी न ये युवक अपने सपनों, अपनी आकांक्षाओं को जिलाये रखने के लिए ही न समुद्र घाटी और खाइयाँ लाँघकर अपने देश से हटकर दूसरे देश की सरजमीं पर अपने को रोपने के लिए निकल पड़ते हैं।<sup>5</sup>

इन अर्थों में अपना देश बहुत पीछे छूट जाता है और वहाँ बसे लोग दिल में अपने देश की यादों को संजोये वहाँ की संस्कृति और परिवेश में एकसार होना चाहते हैं, किंतु हो नहीं पाते। वहाँ की तथाकथित 'फैंकू' संस्कृति में अन्य संस्कृति को आत्मसात् करने का गुण नहीं है। प्रवासियों की छटपटाहट का यह भी एक प्रमुख कारण है। उनकी नई पीढ़ी के साथ उनके विचारों का तालमेल नहीं बैठ पाता, क्योंकि उनकी नई पीढ़ी तो वहाँ के विदेशी एवं पाश्चात्य समाज और संस्कृति में पली-बढ़ी है और वे स्वयं अपनी संस्कृति में किंतु विचारों का आदान-प्रदान एवं संप्रेषण भी ठीक तरह से नहीं हो पाता क्योंकि भाषाई अंतर तो आ ही जाता है। जैसी जी० नामक बच्ची ए० और पी० से विचारों में अन्तर रखती हैं लेखिका लिखती हैं— मुझे थोड़ा आश्चर्य हुआ, कुछ बुरा लगा, यह देश क्या हमारा है? वे क्या इसकी मिट्टी में इसकी धरती पर लोट-पोटकर बड़े हुए हैं? यहाँ की आबोहवा में रस-बसकर क्या इनकी मास-मज्जा में शक्ति प्रवाहित हुई है? उस छोटे किंतु महादेश की पौध हैं ये तो तब क्या वे उस बालू मिट्टी को बिल्कुल भूला बैठें हैं?<sup>6</sup> प्रवास पर जाने से पूर्व यहाँ के लोगों में आत्म श्लाघा और आत्ममुग्धा की प्रवृत्ति पाई जाती है, क्योंकि वे वहाँ की परिवेश जन्म समस्याओं से पूर्व परिचित नहीं होते, स्थितियाँ विकराल रूप तब ले लेती हैं, जब वे वहाँ तालमेल नहीं

बैठा पाते। ऐसा नहीं है कि हर विदेशी व्यक्ति ही हमें हानि पहुँचाए, किंतु वहाँ का एकाकीपन, अलगाव, संत्रास, मूल्यहीनता, निर्वासना ज़िदगी, भाषायी सांप्रदायिकता, रंगभेद, भौतिकता का अतिप्रसार आदि ऐसे कई कारण हैं जो विदेश में एक सहज मनुज को दुष्कर जीवन जीने के लिए मजबूर कर देते हैं।

अंत में एक ऐसे उपन्यास का जिक्र करती हूँ, जो युवा मानसिकता का परिचायक है। दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर की बेटी लिली पांडेय देश के बाहर पढ़ाई करना चाहती है, उसे अपनी उच्च शिक्षा का लुभावना पैकेज, देशीय शिक्षा में नज़र नहीं आता फलतः पीएच०डी० करने अमेरिका चली जाती है। लेकिन सालों बाद जब एकाएक उसे स्तन कैंसर हो जाता है वह अपनों से मिलने को तरस उठती है। हॉस्पिटल में इलाज के दौरान नर्स एक सोशल सपोर्ट के बारे में कहती है— ‘ऐसे में सोशल सपोर्ट की बहुत ज़रूरत होती है। बात करने से, पीड़ा बाँटने से भार हलका होता है। अकेले-अकेले झेलने से और बाकी सबको रिजेक्ट कर देने से ‘रिकवरी स्लो हो जाती है।’ तो जवाब में लिली कहती है— ‘मुझे किसी की करुणा या संवेदना नहीं चाहिए अपना स्वर स्वयं मुझे कटु लगा, मैं सब झेल लूँगी अकेली ही।’<sup>8</sup>

इतना ही नहीं नायिका जिस पुरुष से प्यार करती है बीमारी के दौरान वो भी उसे छोड़ देता है। वह अकेलेपन से इस कदर जूझ जाती है कि मानव-संपर्क के लिए तड़प उठती है— ‘क्या मैं इतनी अकेली और ज़रूरतमंद हो गयी हूँ कि मानव-संपर्क के लिए तरसती रहती हूँ, कभी भी किसी का भी।’<sup>9</sup>

जिस प्रवासी वेदना का जिक्र मैंने आरंभ में किया, उसका मुखरित रूप इस उपन्यास में कुछ ऐसे ही प्रवासी अकेलेपन की गहरी वेदना के रूप में उपस्थित हुआ है— ‘फिर भी कोई सहारा चाहिए, कोई भी अपना जिसके सामने वह खुलकर रो सकती, चींख कर कह सकती, मुझे नहीं निकलवाने अपने शरीर के अंग, मुझे नहीं पीना है कीमो थैरेपी का विष।’<sup>10</sup>

प्रवास में इसी संवेदना की ही तो कमी होती है। आँखों में सुनहरे स्वप्न लिए, आत्ममुग्ध मनुष्य प्रवास पर चला तो जाता है, किंतु जब कभी हृदय अपनों की सहानुभूति और संवेदना को तलाशता है। प्रवास में इसका अभाव होता है एक छटपटाहट के रूप में पीछा करता है, तब देश अपने साकार रूप में उस व्यक्ति के मन में समा जाता है, जो प्रवासी है। किंतु, उस समय सिवा यादों के कुछ नहीं होता। एक सूना-सा फलक उतर आता है आँखों की भाप बनकर।

अंत में मैं आपका ध्यान सांध्य जीवन के उस संदर्भ की ओर ले जाना चाहूँगी, जो प्रवासी जीवन की त्रासदी का सबसे गहरा असर भोगता है। हज़ारों माँ-बाप बुढ़ापे के सहारे (बेटे-बहू) के मुख दर्शन को तड़प उठते हैं क्यों? अपने पोते-पोतियों के साथ रहने, खेलने की उमंग इस प्रवास के कारण दबी जाती है। ‘समय सरगम’ के ईशान और अरण्या हो या दमयंती या फिर ‘शेष कादंबरी’ की रूबी दी आदि बुजुर्ग पात्र अपने प्रवासी बेटों के कारण अपने देश में बुढ़ापे से जूझते रहते हैं।

बहरहाल, सार रूप में यही कहा जा सकता है कि हिंदी-उपन्यासों में प्रवासी भारतीय मानसिकता का अति सशक्त चित्रण हुआ है, यह समस्या उपेक्षित एवं महत्वपूर्ण तो है ही,

साथ ही साथ वर्तमान समय में बहुत ही प्रासंगिक एवं प्रभावी भी है। लोग विदेशों की चमक तथा चकाचौंध से इस कदर खिंचे जाते हैं कि वहाँ जाना ही उनका मुख्य लक्ष्य बन जाता है। वहाँ पढ़ने वाले विद्यार्थी भी वहाँ ही रहना चाहते हैं किंतु जब वास्तविकता से साक्षात्कार होता है तो सारे सपने चूर-चूर हो जाते हैं मन में कुछ दरकता है, तब देश-परिवार की यादें अश्रुविगलित कर देती हैं।

#### संदर्भ

1. मिले सुर मेरा तुम्हारा, मनमोहन सहगल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2009
2. डॉ० सुधा जितेंद्र का लेख, प्रवासी चेतना की दोहरी त्रासदी की सशक्त अभिव्यक्ति के उपन्यासकार : मनमोहन सहगल, पंचशील शोध समीक्षा, पृ० 99, अंक जुलाई-सितंबर
3. वही, पृ० 109
4. सागर पार का संसार, शशिप्रभा शास्त्री, पृ० 144, राजपाल एंड संस, दिल्ली
5. वही, पृ० 116
6. वही, पृ० 114
7. भया कबीर उदास, उषा प्रियंवदा, पृ० 34
8. वही, पृ० 34
9. वही, पृ० 101
10. वही, पृ० 68

□ द्वारा श्री सदाशंकर शुक्ला  
सुधा सदन, खादी के सामने  
जयपुर रोड, बस्सी  
जिला जयपुर ( राज० )

## श्रीरामकथामृत में वर्णित समाज

जोगेश, शोध छात्र

हिंदी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

डॉ० बाबूराम, शोध-निर्देशक

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी-विभाग,

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके लिए यह अनिवार्य है कि वह अपनी जातीय तथा आर्थिक भावनाओं को केवल अपने तक ही सीमित न रखे, वरन् कुल, ग्राम और जनपद के अन्य व्यक्तियों के साथ संपर्क स्थापित करने का प्रयास करे। समाज में सबसे पहले परिवार की उत्पत्ति हुई और परिवार समाज की एक महत्वपूर्ण इकाई है। समाज शब्द का प्रयोग दो तरह से किया जाता है। साधारण बोलचाल की भाषा में समाज शब्द का अभिप्राय मनुष्यों के समूह से लिया जाता है, जबकि वैज्ञानिक ढंग से समाज शब्द का प्रयोग 'समाजशास्त्र' के संदर्भ में किया जाता है।

'समाजशास्त्र' में समाज शब्द का प्रयोग सामाजिक संबंधों के लिए किया जाता है। समाज मानव-जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। समाज में रहकर मनुष्य की अपनी मूलभूत आवश्यकताएँ भूख, प्यास, काम, वासना, भय आदि प्रवृत्तियों को पूरा करने के साथ-साथ उसमें सामूहिकता, स्वाभिमान, धार्मिकता और कल्याण-भावना विद्यमान रहती है।

### समाज का अर्थ एवं परिभाषा

समाज शब्द 'सम्' उपसर्ग और 'अज्' धातु में 'द्यम्' प्रत्यय लगाने से बनता है। 'सम्' का अर्थ है सम्यक् रूप से तथा 'अज्' का अर्थ है जाना। इस प्रकार एक ही उद्देश्य को लेकर किसी निश्चित दिशा में जाने वाले मानव-समूह को समाज कहा जाता है। अंग्रेजी भाषा में समाज के लिए Society शब्द मिलता है। सामान्यतः समाज से अभिप्रायः उस परिवेश या वातावरण से लिया जाता है, जहाँ रहकर मनुष्य अपना जीवन व्यतीत करता है। जैसे तो समाज का निर्माण समस्त जीव व प्राणी करते हैं, लेकिन मनुष्य सब प्राणियों में श्रेष्ठ प्राणी है। इसलिए श्रेष्ठता और बुद्धितत्त्व की प्रधानता के कारण मनुष्य समाज, अन्य प्राणी समाज की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित होता है। समाज अत्यंत व्यापक शब्द है। यह सामाजिक संबंधों का एक बड़ा जाल है। समाजशास्त्र के विद्वानों ने समाज की परिभाषा अपने-अपने ढंग से दी है :

मैकाइवर के अनुसार, 'समाज के इस शब्द में हर तरह का और हर अंश का वह संबंध आ जाता है, जो मनुष्यों तथा किन्हीं भी अन्य सामाजिक प्राणियों द्वारा एक-दूसरे के साथ स्थापित किया जाता है।' <sup>1</sup>

रविन्द्रनाथ मुखर्जी, 'शारीरिक और मानसिक विकास के लिए समाज में रहना मनुष्य की व्यक्तिगत जरूरत है। भारतीय समाज संस्कृति को सुरक्षित रखता है। मनुष्य के दृष्टिकोणों विश्वासों, आदर्शों को समुचित रूप में ढालकर आगामी पीढ़ी तक पहुँचाता है।' <sup>2</sup>

डॉ. नगेंद्र के अनुसार, 'समाज से अभिप्राय सामुदायिक जीवन की ऐसी अनवरत एवं नियामक व्यवस्था से है, जिसका निर्माण व्यक्ति पारस्परिक हित तथा सुरक्षा के निमित्त जाने-अनजाने कर लेते हैं।' <sup>4</sup>

सत्यकेतु विद्यालंकार के अनुसार, 'मनुष्यों के जीवन में एक-दूसरे के साथ संबंधों का जाल बिछा हुआ है। समाजशास्त्र में उसी को समाज कहा जा सकता है।' <sup>4</sup>

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समाज केवल एक व्यक्ति तक सीमित न होकर व्यक्तियों के सामाजिक संबंधों का स्थाई एवं व्यवस्थित रूप है। जो परस्पर समाज, उद्देश्यों, जीवन के कर्मों, व्यवस्थाओं और समान स्वामित्व के आधार पर निर्मित हुआ है।

### श्रीरामकथामृत में वर्णित समाज

भारतीय रामकाव्य परंपरा में महर्षि वाल्मीकि की रामायण आदि महाकाव्य है। भारत की भाषाओं, उपभाषाओं और लोकभाषाओं में अनेक रामायण लिखी हुई हैं। रामकथा के संदर्भ में महाकवि कालिदास का रघुवंश, भवभूति का उत्तररामचरित, जैनों और बौद्धों की पालि और प्राकृत रचनाओं में रामकथा का महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिलता है, जैसे 'दशरथ जातक'। अपभ्रंश में पुष्पदंत की 'महापुराण'। कंब ने तमिल रामायण लिखी। नेपाली भाषा में नेपाली रामायण है। हरियाणा के लोककवियों ने भी अनेक रामायण लिखी हैं, जिनमें कवि ईसरदास, हृदयराम, भाई संतोषसिंह, साधु गुलाबसिंह, रामसिंह, चंदूलाल की रामायण, मुसलमान कवि अहमदबख्स थानेसरी की रामायण उल्लेखनीय है। गोस्वामी तुलसीदास की 'श्रीरामचरितमानस' भक्तिकाव्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। आचार्य केशव ने 'रामचंद्रिका' लिखी है। आधुनिककाल में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' की रचना की। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की 'वैदेही वनवास' है और नरेश मेहता का 'प्रवादपर्व' इसी परंपरा में आता है।

गोस्वामी तुलसीदास के 'श्रीरामचरितमानस' के पश्चात् यदि रामकथा पर कोई महत्त्वपूर्ण काव्य की रचना हुई है, तो वह महात्मा स्वामी रामचंद्र वीर की 'श्रीरामकथामृत' है। आधुनिक हिंदी साहित्य में 20-21वीं शताब्दी में श्री धर्मभास्कर महाकवि महात्मा श्री रामचंद्र वीर महाराज द्वारा विरचित 'श्रीरामकथामृत' खड़ीबोली में सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। रामकाव्य-परंपरा में इसको महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसमें कुल सात कांड हैं। उन्होंने लंकाकाण्ड का नामकरण 'महायुद्ध कांड' किया है। वाल्मीकि रामायण की इस पर अमित छाप है। श्री रामचंद्र वीर महाराज जी ने अपनी इस कृति में समाज-व्यवस्था का विशद्-व्यापक चित्रण किया है। उन्होंने अपने युग को भली-भाँति देखा था और उसकी विषमताओं से वे पूर्ण परिचित थे। 'श्रीरामकथामृत' में अपने युग के कवि ने यथार्थ चित्रण किया है तथा उस युगीन परिस्थितियों से छुटकारा पाने का उपाय भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत किया है।

'श्रीरामकथामृत' में धर्म-संबंधी विवेचन हुआ है। इस धर्म के आधार ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद हैं। वैदिक धर्म को सभी धर्मों में श्रेष्ठ माना गया है। मानवता का मर्म

इसी धर्म में निहित है। वैदिक धर्म की श्रेष्ठता को प्रतिपादन करते हुए कवि ने लिखा है—

वेदों में जिसका वर्णन है, वह है दिव्य सनातन धर्म।  
इसको कहते हैं हम सबही वेद-धर्म या वैदिक धर्म।<sup>6</sup>

तत्कालीन समाज में ब्राह्मणवर्ग को श्रेष्ठ माना जाता था। समाज में ब्राह्मणों को आदरणीय स्थान प्राप्त था। ब्राह्मण अपने आदर्शों पर अडिग रहते थे। उदाहरणस्वरूप—

ब्राह्मण श्रेष्ठ देवऋषि नारद पापों का करने को नाश।  
सदैव ही करते रहते हैं भूमंडल के मध्य प्रवास।<sup>7</sup>

कवि ने बताया है कि क्षत्रिय का धर्म यह है कि वह ब्राह्मणों की वंदना करें। उनको परम पूज्य समझे। वे लिखते हैं—

क्षत्रिय का धर्म सुनिश्चित, करे ब्राह्मणों का वंदन।  
ब्राह्मण की पद-रज को समझे, निज ललाट के हित चंदन।<sup>8</sup>

प्राचीनकाल से ही भारतीय समाज में संतों को महत्त्व दिया जाता था। संत जन यज्ञादि करवाते थे और सूर्य को प्रतिदिन पूजते थे। इसी कारण क्षत्रिय संतों का सम्मान करते थे। कवि ने 'श्रीरामकथामृत' में संतों के सम्मान को दर्शाते हुए कहा है कि—

संतजन का करते सन्मान। राक्षसों का करते अवसान।  
साधु पुरुषों का कर उपकार। दानवों का करते संहार।<sup>9</sup>

भारतीय समाज में अतिथि का आदर किया जाता है। जिस प्रकार से भक्त अपने इष्ट देव का मान-सम्मान करता है। उसी प्रकार से भारतीय समाज में अतिथि को भी आदरपूर्वक देखा जाता है। बड़े हर्षोल्लास के साथ उसका अभिनंदन किया जाता है। भक्ति के क्षेत्र में गुरु का विशिष्ट स्थान रहा है। वस्तुतः भक्त और गुरु में विशेष संबंध माना गया है। श्री रामचंद्र वीर महाराज जी ने गुरु की महिमा के असाधारण रूप का चित्रण किया है। वे मोह, माया आदि को नष्ट करने के लिए गुरु की कृपा को अनिवार्य मानते हैं। वे गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

गुरुदेव कृपानिधि नारद ने मुझको जो है निर्देश किया।  
भगवान राम की पुण्यकथा रचने का है आदेश दिया।  
उस पवित्र आज्ञा का पालन, मुझको अवश्य ही करना है।  
अगणित हृदयों-मस्तिष्कों में वह रामकथामृत भरना है।<sup>10</sup>

प्राचीन समय में शिक्षा गुरुकुलों या आश्रमों में दी जाती थी। वहीं पर रहकर गुरु जी से विद्याध्ययन करते थे। यथा—

गुरुवर वसिष्ठ के आश्रम में, स्वर व्यंजन का उच्चार हुआ।  
पढ़ गए वर्णमाला पूरी, तब बारहखड़ी पढ़ी उनने।<sup>11</sup>

तत्कालीन समाज में शराब का सेवन अर्थात् मदिरापान किया जाता था। राजा लोग भी शराब पीते थे। राक्षस जाति पशु हत्या, मांस भक्षण, शराब-सेवन करते थे। यथा—

पशुहत्या आमिष भक्षण कर और अधिक कर मदिरापान।  
लंका में करता सुमालि था, दुराचार व्याभिचार महान।<sup>12</sup>

आर्यजाति के लोग और ऋषि-मुनि कंदमूल और फल खाकर जीवन-निर्वाह करते



थे। यथा—

कंदमूल फल खाकर ही वे, जीवन को कर रहे व्यतीत।  
स्वस्थ सबल हैं, सुंदर भी हैं, होते हैं वे तरुण प्रतीत।<sup>13</sup>

भारतीय समाज में नारियों का बड़ा आदर-सत्कार होता था, क्योंकि नारीजाति गृहस्थ आश्रम का आधार है। 'श्रीरामकथामृत' में नारी-जाति के विभिन्न रूपों का वर्णन किया गया है। कवि ने नारी के कामिनी रूप का सुंदर चित्रण किया है। यथा—

यह कहकर हो गयी कैकसी, दिगंबरा हो लज्जाहीन।  
क्योंकि दैत्यपुत्री ही तो थी, प्रमदा थी, आदर्शविहीन।  
आर्यकन्यका इस प्रकार से, कभी न हो सकती थी नग्न।  
देख नग्न उसको योगी की, संयम भवना हो गई भग्न।<sup>14</sup>

कवि ने पतिव्रता नारी की प्रशंसा करते हुआ कहा है कि यदि नारी पतिव्रता है तो सतीधर्म उसके अनुकूल है। पतिव्रता नारी कोई ऐसा कार्य नहीं करती, जिससे उसके पति की प्रतिष्ठता को क्षति पहुँचे। कवि का कथन है—

यदि नारी है पतिव्रत में है, सती-धर्म अनुकूल।  
कोई कार्य नहीं करती है, निज पति के प्रतिकूल।<sup>15</sup>

भारतीय समाज में प्राचीनकाल से 16 संस्कारों का पालन किया जाता था। 'श्रीरामकथामृत' में इन संस्कारों का चित्रण किया गया है। प्राचीनकाल से ही नामकरण, यज्ञोपवीत की परंपरा का प्रचलन रहा है। तत्कालीन समाज में जब बालकों को विद्याध्ययन के लिए गुरुकुलों में भेजा जाता था तो उनका यज्ञोपवीत संस्कार कराया जाता था। ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

तीनों पुत्रों को महर्षि ने, विद्याध्ययन करा विधियुक्त।  
किया उपनयन तीनों का फिर, ब्रह्मचर्य व्रत से संयुक्त।  
ब्रह्मसूत्र धारण करके, वे वेद-पाठ में हुए प्रवृत्त।  
महामंत्र गायत्री द्वारा, दिव्य हुए तीनों के चित्त।<sup>16</sup>

'श्रीरामकथामृत' में मातृ-पितृ सेवाभाव भी उजागर हुआ है और भ्रातृभाव भी देखा जा सकता है। भारतीय समाज में माता-पिता की सेवा करना भगवान की सेवा करने से बढकर माना गया है। रावण जैसा विद्वान भी माता-पिता की सेवा तन्मयता से करता था। यथा—

पिता को कर प्रणाम सादर। मिले फिर माता से जाकर।  
सुरक्षा कुंभकर्ण की कर। मुक्त अब चिता से होकर।  
पिता की सेवा में हो मग्न। विभीषण थे सद्ब्रत संलग्न।  
महात्मा रावण जा एकांत। किया करते थे निश्चय निर्भ्रांत।<sup>17</sup>

कवि ने आर्यसंस्कृति की श्रेष्ठता को 'श्रीरामकथामृत' महाकाव्य में दर्शाया है। आर्य संस्कृति विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में एक है। आर्यलोग त्याग और तपस्या में विश्वास रखते थे। गौसेवा करते थे। ऋषि-मुनियों का आदर-सत्कार किया जाता था। यथा— 'फिर तो मेरे जैसा पापी, नहीं मिलेगा जग के बीच। समस्त ऋषि, मुनि और देवता, मुझे कहेंगे पामर नीच। आप दैत्य हैं नहीं जानते, क्या है आर्यों का आदर्श। त्याग और तप से हम ब्राह्मण करते हैं

अपना उत्कर्ष।’<sup>18</sup>

भारतीय समाज में प्राचीनकाल से उपाधि देने की परंपरा चली आ रही है। ‘श्रीरामकथामृत’ में जब मेघनाद ने इंद्र को पराजित किया जिससे प्रसन्न होकर रावण ने अपने पुत्र को ‘इंद्रजीत’ की उपाधि से विभूषित किया। यथा— ‘बोला प्रिय मेघनाद तुमको, क्या पद दूँ क्या सम्मान करूँ। क्या ‘इंद्रजीत’ की गर्वमयी, यशमयी उपाधि प्रदान करूँ।’<sup>19</sup>

‘श्रीरामकथामृत’ में वर्णाश्रम-व्यवस्था का सम्यक् निर्वाह हुआ है। प्राचीनकाल में समाज में चार वर्ण थे— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ये सभी अपने-अपने कर्तव्य का पालन करते थे। जिस कारण समाज का प्रत्येक कार्य सम्यक् रूप से चलता था। यजुर्वेद में वर्ण-व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है। यह उदाहरण द्रष्टव्य है—

यजुर्वेद के एक मंत्र में, वर्ण-व्यवस्था का है सारा।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये, वर्ण बताए उसमें चार।

उसी मंत्र में ब्राह्मण मुख है, क्षत्रिय तो है भुजा समान।

वैश्य उदर है आर्यजाति का, शूद्र चरण है धैर्य-प्रधान।<sup>20</sup>

प्राचीनकाल में ऋषि-मुनियों ने पुरुषार्थ के त्रिवर्ग में ‘अर्थ’ को धर्म और काम दोनों के मध्य व्यवस्थित किया है। ‘अर्थ’ एक ऐसा पुरुषार्थ है, जो धर्म और काम दोनों के लिए साधन और सेतु दोनों का काम करता है। वैदिककाल से ही इसका महत्त्व समाज द्वारा सुप्रतिष्ठित है। तत्कालीन समाज में लोगों के पास धन-संपदा के अथाह भंडार थे। इसी कारण भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था। समाज की अर्थव्यवस्था गौ पालन और कृषि पर निर्भर थी। कवि ने राजा दशरथ की नगरी के धन-वैभव का वर्णन करते हुए कहा है कि

कंचन रजन नीलमणि हीरक, मरकत विद्रुम के आगार।

असंख्य गायें और वृषभ थे, वत्स दौड़ते थे सानंद।<sup>21</sup>

प्राचीन समय में राजा-महाराजा अपने भव्य महलों में रहते थे और ऋषि-मुनि अपनी घास-फूस की कुटिया बनाकर आश्रमों में रहते थे। कवि ने तत्कालीन समाज में रहन-सहन पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि—

‘ऋषियों, मुनियों, तपस्वियों के आश्रम भी उस पार अनेक।

स्थित होकर रहे ध्वनित हैं, सामवेद गायन प्रत्येक।<sup>22</sup>

भारतीय समाज में दान देने की परंपरा प्राचीनकाल से चली आ रही है। राजा लोग ब्राह्मणों को स्वर्ण-दान करते थे। गाय का भी दान देते थे। कौशलपति प्रभु श्रीराम ने भी राजसिंहासन के समय विप्रों को गाय का दान दिया था। यथा—

वत्स-वत्साओं से थीं जो युक्ता। धेनु दीं दुग्धवती उपयुक्ता।

दिए दो लाख स्वर्ण विनिमय। ब्राह्मणों ऋषियों को सविनय।<sup>23</sup>

भारतीय समाज में प्राचीनकाल से गाय को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। इसको गौ माता कहा जाता है और इसकी पूजा की जाती है। तत्कालीन समाज में गाय की महत्ता इतनी थी कि प्रभु श्रीराम गायों को मिष्ठान देते थे। यथा—

स्वयं अयोध्यानाथ राम भी, देते गायों को मिष्ठान।

वाल्मीकि महर्षि लिख गए, रामायण को कर विस्तार।<sup>24</sup>

निष्कर्षतः, कहा जा सकता है कि आज के सूचना और प्रौद्योगिकी युग में हिंदी रामकाव्य परंपरा में स्वामी रामचंद्र वीर युगपुरुष के रूप में दिखाई पड़ते हैं, इनके द्वारा रचित महाकाव्य 'श्रीरामकथामृत' को गौरवग्रंथ माना जा सकता है। इस महाकाव्य में तत्कालीन समाज के रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, धर्म-परंपराओं, नारी के विभिन्न रूपों आदि सामाजिक व्यवस्थाओं का मणिकांचन समन्वय दृष्टिगोचर होता है। 'श्रीरामकथामृत' में समाज के सभी वर्ग अपने-अपने कर्तव्य का पालन करते थे, जिस कारण समाज का प्रत्येक कार्य सम्यक् रूप से चलता था। यदि आज के युग में तत्कालीन समाज-व्यवस्था का सम्यक् रूप से निर्वाह किया जाए तो आदर्श समाज की स्थापना की जा सकती है।

### संदर्भ

1. R.M. Maciver, Social Causation- "Society includes every kinds and degree and relationship interested in to by men and any other social creatures with one another", p. 144
2. रविंद्रनाथ मुखर्जी, भारतीय संस्कृति और समाज, पृ० 423
3. डॉ. नगेंद्र, साहित्य का समाजशास्त्र, पृ० 6
4. सत्यकेतु विद्यालंकार, समाजशास्त्र, पृ० 36
5. दैनिक ट्रिब्यून, 11 अक्टूबर, 2009, पृ० 8
6. श्री रामचंद्र वीर, श्रीरामकथामृत, पृ० 22
7. वही, पृ० 22
8. वही, पृ० 162
9. वही, पृ० 227
10. वही, पृ० 26
11. वही, पृ० 114
12. वही, पृ० 30
13. वही, पृ० 32
14. वही, पृ० 33
15. वही, पृ० 226
16. श्री रामचन्द्र वीर, 'श्रीरामकथामृत, पृ० 36
17. वही, पृ० 43
18. वही, पृ० 45
19. वही, पृ० 59
20. वही, पृ० 26
21. वही, पृ० 69
22. वही, पृ० 572
23. वही, पृ० 806
24. वही, पृ० 812

## अज्ञेय साहित्य : प्रभाव और प्रासंगिकता

गरिमा त्यागी

प्रत्येक काव्य प्राचीनकाल से जीवनमूल्यों की आंतरिक प्रेरणा से सृजित रहा है क्योंकि यह मानवीय प्रकृति ही है कि वह पीड़ित-दुःखी, त्रसित और कष्टित के प्रति करुणामय भाव रखती है तथा उत्पीड़क एवं त्रासक के प्रति क्रोध का भाव सदा उसके मन में होता है, वही सौंदर्य के प्रति प्रेमभाव होता है तो कुरूपता के प्रति जुगुप्सा, घृणा आदि भाव सदैव उसके अंतस् में विद्यमान रहते हैं। इन्हीं भावों को कवि जब सात्त्विकता सत्त्व-विरोधी द्वंद्वात्मक सृष्टि की स्थिति के रूप में काव्य-फलक पर अंकित करता है तो एक काव्य-संकल्पना का सृजन होता है। किसी भी काव्य का भविष्य इस बात से निश्चित नहीं होता कि वर्तमान में जो घटित हो रहा है वह वास्तविक और यथार्थ है तथा उसी मौलिक रूप से परिचय करके हम भविष्य के प्रति आशंकित या भयभीत हो उठें। यह सत्य है कि काव्य जीवन की बाह्य रेखाकृति न होकर मानव के अभ्यंतर का मर्म है, एक अभिव्यक्ति है।

जिस प्रकार नदी की ऊपरी सतह पर उठती तरंगों में जीवन का वेग इतना नहीं होता, जितना कि उसके तल पर बहते प्रवाह में। इतना ही नहीं कोई भी मनुष्य नदी के पानी को देखकर उसकी गहराई का आकलन नहीं कर सकता। वह तो केवल उसके अंदर पहुँचकर ही कर सकता है, इसलिए आवश्यक है कि एक कवि को उस तल तक पहुँचना होता है, जिसके लिए वह आँख चाहिए, जो नदी की ऊपरी सतह को भेदकर अंतःस्तल तक पहुँच सके। अतः एक सच्चा कवि कविता-सृजन करते हुए इन प्रश्नों से निरंतर जूझता हुआ न केवल अपने समय को विस्तृत फलक पर चित्रित करता है, वरन वर्तमान और भविष्य की उस शक्ति का संकेत भी करता है, जो मनुष्यता को अपने स्तर पर सुरक्षित रखती है। ऐसे ही एक कवि हैं अज्ञेय, जो न केवल प्रयोगवाद के और नई कविता के प्रवर्तक माने जाते हैं वरन् वे बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी हैं।

अज्ञेय को उनके आलोचकों ने भी आधुनिक हिंदीकाव्य का मसीहा माना है। अज्ञेय जी गहन चिंतनशील प्रवृत्ति, अंतर्मुखी, एकांतप्रिय, संवेदनशील, भावुक, प्रकृति-अनुरागी तथा विनीत विद्रोही-आक्रोशी स्वभाव के कवि हैं। स्वयं की स्वाध्याय-शक्ति और गहन चिंतनधर्मिता द्वारा उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं में उल्लेखनीय, ख्यातिप्राप्त एवं दिशा-निर्देशात्मक कार्य किया। अज्ञेय जी को जिस भी उपमा से विभूषित किया जाए, वह कम ही है। यदि हम उनके संपूर्ण व्यक्तित्व को एक सूत्र में अभिव्यक्त करें तो यही कहेंगे कि अज्ञेय जी विशिष्ट संस्कृति के शलाका पुरुष हैं। उनके संपूर्ण जीवन की साधना वास्तव में साहित्य की ही महती साधना है।

प्रगतिवाद की क्षुद्रता, सामाजिकता, राजनीतिक प्रेम एवं नारेबाजी के कारण ही

प्रयोगवाद का जन्म हुआ। वहीं दूसरी ओर द्वितीय महायुद्ध के कारण मानव-जाति पर आए मूल्य-संकट ने भी प्रयोगवादी काव्यधारा को उभारने में महत्वपूर्ण योग दिया। अज्ञेय जी का जीवन यायावरी एवं क्रांतिकारी रहा है। ये किसी परंपरा में बँधकर नहीं रहे। ये कवि होने के साथ सुविख्यात कथाकार, आलोचक और गहन चिंतक-विचारक भी हैं। इन्हें पत्रकारिता के क्षेत्र में भी 'दिनमान' और 'प्रतीक' के संपादक के रूप में विशेष ख्याति प्राप्त हुई। इन्हें आधुनिक हिंदीकाव्य का सृजनकर्ता माना जाता है। आधुनिक हिंदीकाव्य, कथासाहित्य, और निबंध-साहित्य को अपने प्रखर प्रयोगवादी व्यक्तित्व से नूतन साँचे में निर्मित करनेवाले अज्ञेय जी हैं, जहाँ इन्हें एक ओर प्रयोगवादी नूतन काव्यधारा का प्रवर्तक माना गया, वहीं दूसरी ओर वे जीवनी-प्रधान व्यक्ति चेतना से समन्वित मनोविश्लेषणवादी उपन्यास साहित्य के अग्रणी हैं। अज्ञेय जी न केवल एक उत्कृष्ट संपादक हैं, एक सर्वश्रेष्ठ कहानीकार भी हैं। इन्होंने निबंध साहित्य को भी अनेक नूतन मूल्य व मान प्रदान किए। यों तो प्रारंभ में इन्हें साहित्य की विभिन्न विधाओं में लिखने के कारण अनेक उपेक्षाओं व आक्षेपों का भी सामना भी करना पड़ा, लेकिन आज हिंदी का विधात्मक साहित्य जिन संचरणों में व्यतित हो रहा है, उनमें इनकी उपेक्षा कर पाना तो नितांत असंभव है।

अज्ञेय जी सर्वतोन्मुखी प्रतिभावाले कवि हैं। अगर उनके साहित्य पर दृष्टि डालें तो उनके कृतित्व को स्वतंत्र को केंद्रबिंदु मानकर पूर्व स्वतंत्रतायुग और स्वातंत्र्योत्तरयुग इन दो कालखंडों में विभाजित किया जाता है। अज्ञेय जी पूर्व स्वतंत्रता युग को संक्रांति युग की संज्ञा देते हैं, क्योंकि उस समय जीवन की सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक समस्त दिशाओं में निरंतर परिवर्तन हो रहा था। सन् 1946 ई० में ही उनके द्वारा संपादित प्रथम 'तारसप्तक' प्रकाश में आया था, जिससे हिंदी-कविता के क्षेत्र में नूतन युग प्रयोगवादीयुग का सूत्रपात माना जाता है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश, जीवन, समाज, राजनीति और साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन आए हैं, जिसका प्रभाव इनके काव्य एवं व्यक्तित्व में देखने को मिलता है। उसके रूप भी विविध हैं और प्रभाव भी विविध हैं।

अज्ञेय जी प्रकृति से क्रांतिकारियों के हिंसक आंदोलन की ओर विशेष रूप से प्रभावित हुए। सामाजिक जीवन में जो नूतन परिवर्तन हुए, उनका स्पष्ट प्रभाव अज्ञेय जी पर परिलक्षित हुआ है। इतना ही नहीं अज्ञेय जी नूतन सामाजिक चेतना के अग्रणी रूप में हमारे सामने आए। अज्ञेय जी पर भाग्यवादी और निराशावादी चेतना एवं दर्शन का भी अत्यधिक प्रभाव पड़ा। स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व इन पर मार्क्स और फ्रायड का प्रभाव भी प्रतीत होता है। फ्रायड के मनोविश्लेषणावादी सिद्धांतों ने इन्हें अत्यधिक प्रभावित किया है।

अज्ञेय जी के वैचारिक विषय पर दृष्टि डालें तो ज्ञात होता है कि इन्होंने साहित्य में मानव की स्पष्ट अवतारणा तो की है, साथ ही मानवता के नूतन मूल्यों को स्थापित करने की दिशा में भी ये अनवरत प्रत्यनशील दिखाई पड़ते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यथार्थवादी पर्यावरण में परिलक्षित होता है। यँ तो अज्ञेय जी के व्यक्तित्व में भावना और भावुकता का अद्भुत संगम है, लेकिन इसको इन्होंने जीवन के यथार्थ पर हावी नहीं होने दिया।

स्पष्टतः कह सकते हैं कि अज्ञेय के साहित्यिक युग का शुभारंभ जब माना गया, तब भारतीय साहित्य और जीवन बहुविध परिपेक्ष्यों में विविध विचारों, मान्यताओं और

भावनाओं से प्रभावित हो रहा था। समग्र दृष्टि से जीवन एवं साहित्य से नूतन प्रौढ़ता अभिव्यक्ति हो रही थी। अज्ञेय जी ने उनको अपनी समग्रता में पचाकर परिपक्व करके ही अभिव्यक्त किया है। इसी कारण उन पर पड़नेवाले प्रभाव को पराया नहीं कहा जा सकता है। उनकी बहुमुखी प्रतिभा के वास्तविक मूल्यांकन के लिए उनके विविध रूपों का अवलोकन करना समीचीन होगा—

- (क) काव्यकार के रूप में, (ख) निबंधकार के रूप में  
(ग) कहानीकार के रूप में, (घ) उपन्यासकार के रूप में

### काव्यकार के रूप में

अज्ञेय जी को प्रयोगवादी कविता के प्रस्तोता के साथ-साथ समर्थक और प्रशासक के रूप में भी स्मरण किया जाता रहा है। इतना ही नहीं काव्यकार के रूप में उन्हें युगप्रवर्तक के रूप में स्वीकारा जाता है। 'तार सप्तक' के संपादन से पूर्व उनकी छायावादी संस्कारों से युक्त 'भग्नदूत' (1933) और 'चिंता' (1932-1936 तक की कविताएँ) रचनाएँ प्रकाश में आ चुकी थीं। तारसप्तक में संकलित रचनाओं के पश्चात् 'इत्यलम्' (1946) ही उनका प्रथम प्रयोगवादी काव्यसंग्रह कहा जा सकता है। इसी विकास क्रम में 'हरी घास पर क्षण' भर (1949) उनकी द्वितीय महत्वपूर्ण रचना है। उनके इस काव्य को गीतात्मक कविताओं का संकलन कहा जाता है। इसमें छंद-तुक से रहित और सहित दोनों प्रकार की कविताएँ हैं। यों तो उनकी प्रयोगवादी प्रवृत्तियाँ नई कविता की काल-सीमा में आनेवाले काव्य-ग्रंथों में भी स्पष्ट देखी जा सकती हैं, लेकिन उनके प्रयोगवादी कवि के मूल्यांकन हेतु उपर्युक्त रचनाओं को मुख्य आधार बनाया जा सकता है। 'भग्नदूत' की समग्र कविता टेकयुक्त और टेकमुक्त गीत हैं। कवि ने कहीं अपनी इन कविताओं में मन की अवहेलना की टीस को उभारा है तो कहीं काँटों की चुभन की अभिव्यक्ति मिलती है। कहीं इनकी कविताओं में सूनेपन व अकलेपन की अनुभूति प्रखर दिखाई पड़ती है। भग्नदूत की अंतिम कविता में कवि अज्ञेय रूमनियत से हटकर जीवन के कवि होना चाहते हैं—

पर मैं अखिल विश्व की पीड़ा संचित कर रहा हूँ।

क्योंकि मैं जीवन का कवि हूँ।

अन्यत्र भी उनकी रचनाओं में जीवन के सत्य-रूप का चित्रण मिलता है—

अच्छे अनुभव की भट्टी में तपे हुए कण दो कण अंतर्दृष्टि के

झूठे नुस्खेवाद रूढ़ि, उपलब्धि परायी के प्रकाश से,

रूप शिव, रूप सत्य सृष्टि के।

इसके पश्चात् इनका काव्य 'बाबरा अहेरी' (1954) में प्रकाशित हुआ। प्रभु वेदना अहम और सामाजिक सामयिक समस्त प्रकार की चेतनाओं के स्वर इनके इस काव्य में सुने जा सकते हैं। एक उदाहरण देखिए—

है दीप अकेला स्नेह भरा

है गर्वभरा मदमाता पर इसको भी पंक्ति दे दो।

'सन् 1956 में 'इंद्रधनुष रौंदे हुए' नाम से इनका एक अन्य काव्य-संकलन प्रकाश में आया। सन् 1949 में 'अरी ओ करुणा प्रभामय' का प्रकाशन हुआ। 'आँगन के पार' द्वार नामक काव्यसंग्रह का प्रकाशन सन् 1961 में हुआ है। वस्तुतः उनके अभी तक के कवि-

व्यक्तित्व के विकास के तीन सोपान मिलते हैं—‘छायावादी, प्रयोगवादी और प्रौढ़ रचानाएँ। स्पष्ट होता है कि अज्ञेय जी के काव्य में व्यक्तिमन की पीड़ा उभरकर आयी है। एक टीस है, चुभन है, संत्रास है और है एक अहनिष्ठ व्यक्तिवाद। इनका काव्य जीवन-जगत् के सूक्ष्म-सूक्ष्म परिदृश्य का चित्रण करता है और समग्र जनमानस को यथार्थता से संप्रकृत करता है।

### निबंधकार के रूप में

अज्ञेय जी का निबंध-साहित्य भी आकार-प्रकार में स्वल्प है, लेकिन जो भी प्राप्त होता है उसका अपना पृथक् वैशिष्ट्य है। ‘काल-क्रम की दृष्टि से इनका सर्वप्रथम निबंध संग्रह ‘त्रिशंकू’ नाम से सन् 1945 में प्रकाशित हुआ। इसमें मुख्यतः सात और परिशिष्ट के रूप में छह और निबंध संकलित हैं। अज्ञेय जी ने इन निबंधों में संघर्ष-युग के साहित्य की अभिधा प्रदान की है। सन् 1960 में इनका द्वितीय निबंध-संग्रह ‘आत्मनेपद’ प्रकाशित हुआ। इस निबंध-संग्रह में पत्र, रेडियो, वार्ता, संस्मरण, इंटरव्यू-शैली के पाँच वर्गों में विभाजित अनेक निबंध संकलित हैं इसमें लेखक की वैयक्तिक मान्यताओं को प्रश्रय मिला है। सन् 1952 में ‘अरे यायावर रहेगा याद’ यात्रावृत्त प्रकाशित हुआ। इसमें 93 के लगभग सभी चित्रों को संकलित किया गया है, जोकि यात्रावृत्तांतों की सत्यता प्रमाणित करने के साथ-साथ उन्हें सटीक ओर रोचक बना देते हैं। इतना ही नहीं अज्ञेय जी ने अपनी पुस्तकों में, स्वयं के द्वारा संपादित तार सप्तक जैसी सर्जनाओं की भूमिका के रूप में भी अनेक निबंध रचे हैं। यह सत्य है कि अज्ञेय जी ने अपने निबंधों के माध्यम से वैचारिक दृष्टि में अपने विशिष्ट मानदंड स्थापित करने का प्रयत्न किया है।

### कहानीकार के रूप में अज्ञेय

अज्ञेय जी का कहानी साहित्य भी उनके काव्य-साहित्य के समान ही विशाल और समृद्ध है। ‘प्रकाशन-क्रम की दृष्टि से इनका ‘विपथगा’ सर्वप्रथम प्रकाशित कहानी संकलन है और इसका प्रकाशन सन् 1936 में हुआ था। इसके पश्चात् ‘परंपरा’ 1944 में प्रकाशित कहानी-संकलन है, जिसमें कवि ने खंड चित्रों के रूप में संपूर्ण मानवीय सभ्यता के चित्र रूपायित किए हैं। ‘कोठरी का बात’ कहानी संग्रह सन् 1945 में प्रकाशित हुआ। यह 12 कहानियों का संकलन है। इसमें क्रांतिकारियों के जीवन और वैचारिकता का चित्रण मिलता है। इनके कहानी-संग्रहों में ‘जयघोष’ सन् 1951 और दूसरा संस्करण सन् 1956 में प्रकाशित हुआ, जिसमें नारी-पुरुष के संबंधों का चित्रांकन किया गया है। ‘अमर वल्लरी और अन्य कहानियाँ’ 1954 ‘कड़ियाँ और अन्य कहानियाँ 1956 ‘ये तेरे प्रतिरूप’ 1961 आदि इनके सर्वश्रेष्ठ कहानी-संकलन हैं।’ अज्ञेय जी ने कहानी-संकलनों में अपनी लेखनी के माध्यम से स्मृति-चित्रण, स्वप्न-शैली और कथात्मक शैलियों को ही माध्यम बनाया है। इन्होंने युगजीवन, धर्म, इतिहास, राजनीति आदि समस्त चेतनाओं को व्यक्ति के माध्यम से रूपायित करने का प्रयास किया है।

### उपन्यासकार के रूप में अज्ञेय

यह दृष्टव्य होता है कि कवि के रूप में अज्ञेय जी का कृतित्व जितना अधिक वृहत और व्यापक है, उतना उपन्यासकार के रूप में नहीं। अभी तक हिंदी साहित्य को उनकी तीन-

चार औपन्यासिक कृतियाँ ही उपलब्ध हो पायी हैं। जीवनी या उपन्यास के रूप में उनका 'शेखर एक जीवनी' प्रमुख उपन्यास माना जाता है, जिसके दो भाग क्रमशः सन् 1941 एवं 1944 में प्रकाशित हुए। इसके तीसरे भाग की भी अनवरत प्रतीक्षा हुई। 'नदी के द्वीप' उनका दूसरा उपन्यास है। यह सन् 1952 में प्रकाशित हुआ। इसमें घटनाओं का अभाव एवं व्यक्ति-चरित्र की प्रमुखता मिलती है। 'अपने-अपने अजनबी' लेखक अज्ञेय का तीसरा उपन्यास है। अगर हम समग्र मूल्यांकन की बात करें तो उपन्यासकार के रूप में भी उन्हें विशेष प्रगति का सूचक माना जाता है, अतः इनके समस्त उपन्यास अपना अलग व्यक्तिगत और महत्त्व रखते हैं।

स्पष्ट होता है कि कवि अज्ञेय जी के साहित्य का प्रभाव जनमानस पर पूर्ण रूप से पड़ता है इनके कृतित्व ने निश्चय ही हिंदी साहित्य को नूतन गति और दिशा प्रदान की है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे मानव-जीवन की पीड़ा को और उसके यथार्थ पक्ष को उन्होंने अपने काव्य में उकेर दिया है। 'डॉ० केदार शर्मा के शब्दों में हम कह सकते हैं : 'अज्ञेय नवीनता के शौकीन हैं किंतु उनका शौक दुराग्रह के अधीन नहीं है। यह बात केवल इससे भी प्रमाणित हो जाती है कि वे परंपरा के विरोधी नहीं हैं।'

सारतः कह सकते हैं कि अज्ञेय जी नूतन युग के पुरोध, काव्यकार, प्रायोजक हैं, इतना ही नहीं वे उनके परिणामों से भी भली प्रकार परिचित बहुमुखी प्रतिभावाले कलाकार हैं। उनके काव्य से जीवन-जगत् की सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु भी प्रथक् नहीं रह पायी। कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं, जिसमें अज्ञेय जी ने प्रवेश न किया हो, और उसे अपने काव्य-फलक पर न उकेरा हो।

### संदर्भ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ० नगेंद्र, पृ० 634-635
2. नयी कविता मूल्य-मीमांसा, डॉ० बैजनाथ सिंहल, पृ० 139
3. इत्यलम्, अज्ञेय, पृ० 46
4. इंद्रधनुष रौंदे हुए, अज्ञेय, पृ० 94
5. बाबरा अहेरी, अज्ञेय, पृ० 54
6. वृहत साहित्यक निबंध, डॉ० नगेंद्र पृ० 634-635
7. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ० रामसागर त्रिपाठी व डॉ० शांतिस्वरूप गुप्त, पृ० 1038
8. वही, पृ० 1036-1038
9. वही, पृ० 1036
10. वृहत साहित्यक निबंध, ले० डॉ० रामसागर त्रिपाठी व डॉ० शांतिस्वरूप गुप्त, पृ० 1040

□ पुत्री श्री शांतिस्वरूप त्यागी  
ग्राम व पोस्ट वैरा फिरोजपुर  
तहसील स्याना, बुलंदशहर 245412  
मो० 9548715270



## सूरकाव्य में दार्शनिक चेतना

आशुतोष वाशिष्ठ, शोध-छात्र  
हिंदी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र  
डॉ० बाबूराम, शोध-निर्देशक  
एसो० प्रोफेसर, हिंदी विभाग  
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

मनुष्य एक चिंतनशील प्राणी है। सोचना मनुष्य का विशिष्ट गुण है। अरस्तु ने मनुष्य को विवेकशील प्राणी कहकर उसके स्वरूप को प्रकाशित किया है। मनुष्य की बौद्धिकता उसे अनेक प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए बाध्य करती रही है, विश्व का स्वरूप क्या है? आत्मा क्या है? ईश्वर कौन है? ठीक-ग़लत क्या है? दर्शन इन प्रश्नों का युक्तिपूर्वक उत्तर देने का प्रयास है। इन प्रश्नों का उत्तर मानव अनादिकाल से देता आ रहा है और भविष्य में देता रहेगा।

हमारा अंतर्जगत् भी उतना ही रहस्यपूर्ण है, जितना बाह्य जगत् विचित्र है। जीवन में ऐसे अनेक क्षण आते हैं, जब हम इस रहस्य के प्रति जागरूक हो जाते हैं। इसी जागरूकता का विश्लेषण है— दर्शन। दर्शन एक तथ्यपरक सत्य की खोज है।

### भारतीय मत :

भारत को दार्शनिकों का देश कहा जाता है। विद्वानों की बात तो दूर, भारत के अनपढ़, किसान, मज़दूर और साधारण आदमी भी यदा-कदा दार्शनिक सिद्धांतों की बातें करते हैं। युग-युगांतर से भारत का साहित्य-समाज अनेक प्रकार के दर्शनों से प्रभावित रहा है।

भारतीय परंपरा में दर्शन का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है— 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाए, वह दर्शन है। दर्शन शब्द 'दृश' धातु से बना है जिसका अर्थ भी वहीं है अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाए। भारतीय मत में दर्शन उस विद्या को कहते हैं, जिसके द्वारा तत्त्व का साक्षात्कार हो सके। भारत का दार्शनिक तत्त्व की अनुभूति प्राप्त करना चाहता है। प्रो० मैक्समूलर ने कहा है— 'भारत में दर्शन का अध्ययन मात्र ज्ञान प्राप्त करने के लिए नहीं, वरन् जीवन के चरम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जाता था।' <sup>1</sup>

भारतीय दर्शन की मुख्य विशेषता व्यावहारिकता है। यहाँ ज्ञान की चर्चा ज्ञान के लिए न होकर मोक्षानुभूति के लिए हुई है। अतः व्यावहारिकता और आध्यात्मिकता भारतीय दर्शन की विशेषताएँ हैं।

### पाश्चात्य मत :

पाश्चात्य जगत में 'दर्शन' शब्द के लिए 'फिलोसफी' शब्द का प्रयोग किया जाता है। फिलोसफी एक ग्रीक शब्द है। इसका निर्माण दो ग्रीक शब्दों के योग से हुआ है। ये शब्द हैं—

## फ़िलॉस+सौफ़िया

फ़िलॉस का अर्थ है प्रेम या अनुराग और सौफ़िया का कोशगत अर्थ है— ज्ञान, प्रज्ञा या विद्या। तो संपूर्ण फ़िलोसफ़ी शब्द का अर्थ हुआ—ज्ञान, प्रज्ञा या विद्या के प्रति अनुराग या प्रेम।

पश्चिमी दर्शन सैद्धांतिक है। पाश्चात्य दर्शन का आरंभ आश्चर्य एवं उत्सुकता से हुआ है। वहाँ का दार्शनिक अपनी जिज्ञासा को शांत करने के उद्देश्य से विश्व, ईश्वर और आत्मा के विषय में सोचने के लिए प्रेरित हुआ। पश्चिमी दर्शन वैज्ञानिक है। यहाँ धर्म की उपेक्षा की गई है। वैज्ञानिकता, सैद्धांतिकता, विश्लेषणात्मकता वहाँ के दर्शन की विशेषताएँ बतलाई गई हैं।<sup>2</sup> वहाँ के दार्शनिक विचारों में व्यावहारिकता एवं अध्यात्मिकता की कमी है।

### सूरदास की दार्शनिक विचारधारा :

सूरदास जी पर उनके प्रारंभिक जीवन में विनय के पदों में अनेक दर्शनों का प्रभाव देखा जा सकता है, किंतु जब वे आचार्य वल्लभ द्वारा वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित कर लिए गए तो उन पर वल्लभ संप्रदाय की दार्शनिक विचारधारा 'शुद्धाद्वैत' का प्रभाव पड़ा। शुद्धाद्वैत का अभिप्राय है : 'शुद्धं च तद्द्वैतं च' अर्थात् शुद्ध अद्वैत माया के संबंध से रहित है। आचार्य वल्लभ का मत जगद्गुरु शंकराचार्य के विचार अद्वैतवाद से भिन्न हैं। शंकर के माया और अविद्या रूप उपाधि से युक्त ब्रह्म को कारण और कार्य बताया है, परंतु वल्लभाचार्य ऐसा नहीं मानते—

माया-संबंध-रहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः।

कार्य-कारणरूपं हि शुद्धं ब्रह्मा न मायिकम्।<sup>3</sup>

इसी शुद्धाद्वैत को अविकृत-परिणामवाद कहा गया है, जिसका अर्थ है कि जगत् ब्रह्म का ही परिणाम है और विकाररहित है। जगत् भी ब्रह्मरूप है और जीव भी 'आत्मैव तदिदं सर्वं, ब्रह्मेव तदिदं तथा'<sup>4</sup> शुद्धाद्वैतवाद में माया उनकी आह्लादिनी शक्ति मानी जाती है। ब्रह्म का योगमाया के द्वारा ही आविर्भाव और तिरोभाव होता है।

### ब्रह्म :

ब्रह्म सच्चिदानंदस्वरूप है, जिसका विवेचन इस प्रकार है— सत्+चित्+आनंद सत् प्रकृति है जो जड़ है, चित् जीव है, जिसमें चेतना है, आनंद ब्रह्म है। जड़ प्रकृति में चित्त और आनंद का अभाव है। जीव में सत् भी है और चित्त भी, किंतु आनंद का अभाव है। ब्रह्म से ही प्रकृति और जीव में आनंद का आभास होता है। ब्रह्म योगमाया के द्वारा आविर्भूत होकर निराकार से साकार रूप धारण करता है। तब वह भगवान कहलाता है। भगवान् में छह ऐश्वर्य होते हैं, अनंत शक्ति, अनंत सौंदर्य, अनंत ऐश्वर्य, अनंत धन, अनंत वैराग्य और अनंत ज्ञान वल्लभ के मतानुसार श्रीकृष्ण ब्रह्म के अवतार हैं, जो सज्जनों की रक्षा के लिए, दुष्टों के विनाश के लिए धर्म की स्थापना हेतु युग-युग में अवतार लेते हैं—

यदा-यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।<sup>5</sup>

सूर के आराध्य देव श्रीकृष्ण है, जो सब आकर्षण का केंद्र हैं। सूरदास जी ने स्थान-स्थान पर हरि का स्मरण किया है। ब्रह्म का निरूपण सूरदास जी इस प्रकार करते हैं—

सोभा अमित अपार अखंडित आप आतमाराम।

पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम सब विधि पूरन काम।<sup>6</sup>

आदि सनातन एक अनूपम अविगत अल्प अहार।  
 ऊँकार आदि वेद-असुर हन निर्गुण सगुण अपार।  
 अंश और अंशी वाली बात को सूरदास ने कई बार दोहराया है—  
 पहले हौं ही हौं तब एक।  
 अमल अकल अज भेद विवर्जित सुनि विधि विमल विवेक  
 सों हौं एक अनेक माति करि सोभित नाना भेष।  
 ता पाछै इन गुनिन गए तैं, हौं राहे हौं अविशेष।<sup>7</sup>

**जीव :**

वल्लभ-संप्रदाय की मान्यता है कि सृष्टि के आदि में ब्रह्म से ही स्फुलिंग रूप से अनंत जीवों की उत्पत्ति हुई। जब जीव ब्रह्म की ओर उन्मुख होता है तो सब दुःखों से छूट जाता है। सूरदास जी ने भी जीव को गोपाल का अंश माना है और ब्रह्म की अद्वैत सत्ता को स्वीकार किया है। उन्होंने अविद्या और माया को विस्मृति का कारण बताया है 'यदि माया न हो तो ब्रह्म और जीव में कोई अंतर नहीं।' <sup>8</sup>

अपुनपौ आपुन ही विसरयौ।  
 जैसे स्वान काँच मंदिर में, भ्रमि-भ्रमि भूकि परयौ।<sup>9</sup>  
 ज्यों सौरभ भृग-नाभि बसत है, द्रुम तृन सूँधि फिरयौ।  
 सूरदास समुझे की यह गति, मनहीं मन मुसुकायौ।  
 कहि न जाइ या सुख की महिमा, ज्यों गूँगे गुर खायौ।<sup>10</sup>

**जगत और संसार :**

वल्लभ-संप्रदाय में जगत् और संसार अलग-अलग हैं। जगत् सत्य है, जो ब्रह्म द्वारा निर्मित है और संसार असत्य है जो जीव द्वारा बनाया गया है। सूरदास संसार को हरि की इच्छा का फल मानते हैं। उनकी इच्छा से प्रकट हुआ संसार स्वयं भी हरि रूप ही है—  
 हरि इच्छा करि जग प्रगटायौ।

अरु यह जगत् जदपि हरि रूप है तउ मायाकृत जानि।  
 तातें मन निकारि सब ठौं ते एक कृष्ण मन आनि।<sup>11</sup>

मैं मेरी यह हरि की माया।  
 सकल जीव जग यही नचाया।<sup>12</sup>

सूरदास जी के सिद्धांत के अनुसार सृष्टि विस्तार के 28 तत्त्व माने गए हैं—  
 आदि निरंजन, निराकार, कोऊ हुतौ न दूसर।  
 रचौं सृष्टि विस्तार, भई इच्छा एक औसर।  
 त्रिगुन प्रकृति तैं महत्त्व, महत्त्व है अहंकार।  
 मन-इंद्रि, सब्दादि पच, तातै कियौ विस्तार।  
 सब्दादिक तैं पंचभूत सुंदर प्रगताए।  
 पुनि सब कौ रचि अंड आयु में आपु समाए।<sup>13</sup>

**माया :**

माया उसे कहते हैं, जो दिखाई तो पड़ती है, लेकिन है नहीं। वल्लभ संप्रदाय में माया को योगमाया कहा गया है। उन्होंने माया को त्रिगुणात्मक माना है— सत्त्व, रज और तम उसके गुण हैं—

माधौ, नैकु हटकौ गाई।  
भ्रमत निसि-बासर अपथ-पथ, अगह गहि नहिं जाइ।  
छुधित अति न अघाति कबहूँ निगमद्रुमदलि खाइ।  
अष्ट दस-घट नीर अंचवति तृषातरु न बुझाई।<sup>14</sup>  
सबते परे कृष्ण भगवान।  
सो माया है हरि की दासी निसदिन आज्ञारी।<sup>15</sup>

सूरदास जी ने माया का अनेक रूपों में वर्णन किया है, परंतु माया के विषय में उन पर पुष्टिमार्ग का ही प्रभाव था।

**मोक्ष :**

वल्लभ संप्रदाय में मोक्ष को वैकुण्ठ, विष्णुलोक, गोलोक माना है। मुक्ति चार प्रकार की मानी गयी है— सारूप्य, सालोक्य, सायुज्य और सामीप्य।<sup>16</sup> सूरदास की भक्ति स्वतःपूर्ण है, जिसके प्राप्त होने पर कोई इच्छा नहीं रह जाती। पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के लीलाधाम में पहुंचने की इच्छा सूर के कई पदों में देखने को मिलती है

चकई री चलि चरन सरोवर, जहाँ न प्रेम वियोग।  
जहँ भ्रम निसा होति नहिं कबहूँ सोई सायर सुखजोग।<sup>17</sup>

वल्लभाचार्य की भाँति सूर ने भी सायुज्य मुक्ति को ही अपनाया है। सूरदास जी का वृंदावन नारायण के वैकुण्ठ से भी बढ़कर है—

मुरली धुनि बैकुण्ठ गई।  
नारायण-कमला सुनि दंपति, अति रुचि हृदय भई,  
सुना प्रिया यह बानी अद्भुत वृंदावन हरि देखौ।<sup>18</sup>

**गुरु का महत्त्व :**

सभी वैष्णव संप्रदायों में गुरु का बड़ा महत्त्व है। गुरु को भगवान के बराबर माना गया है। आचार्य वल्लभ ने सूरदास को वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित किया। जब सूरदास जी मरणासन्न थे तो चतुर्भुजदास ने सूरदास जी से पूछा कि उन्होंने इतने पद बनाए, पर श्री वल्लभाचार्य जी की प्रशस्ति में कोई पद नहीं लिखा, इसका कारण बताओ? तब सूरदास जी ने कहा कि मेरी दृष्टि में महाप्रभु और भगवान में कोई अंतर नहीं है। फिर आचार्य जी की प्रशस्ति में एक पद गाया—

भरोसौ दृढ़ इन चरनन केरौ।  
श्री बल्लभ नख-चंद्र-छटा बिनु, सब जग माँझ अँधेरौ।  
साधन और नहीं या कलि में जासौँ होत निबेरौ।  
सूर कहा कहै द्विविध आँधरौ, बिना मोल कौ चेरौ।<sup>19</sup>

इससे सूरदास जी की गुरुनिष्ठा प्रकट होती है। बल्लभ जी सूरदास जी के लिए एक प्रकाशस्तंभ थे।

**रास :**

सूरदास ने रास को आध्यात्मिक पक्ष प्रदान किया है और रास का विशद् वर्णन किया है। सूर की रासलीला 'रासपंचाध्यायी' को आधार मानकर लिखी गयी है। बल्लभ संप्रदाय में रास लीला में स्वकीया भाव को अपनाया गया है। आध्यात्मिक रूप में कृष्ण धन हैं एवं गोपियाँ दामनीस्वरूपा तथा भौतिक पक्ष में कृष्ण नायक और गोपियाँ नायिकाएँ। यह रास शाश्वत है—  
वृंदावन हरि यह विधि क्रीडत सदा राधिका संग।

भोर निसा कबहुँ नहिं जानत सदा रहत इक रंग।<sup>20</sup>

कहीं-कहीं उन्होंने राधा को कृष्ण की शक्ति: कहा है। बल्लभ-संप्रदाय में राधिका को कृष्ण की स्वामिनी माना है ।

सूरदास जी निश्चय ही शुद्धाद्वैतवाद की दार्शनिक परंपरा में दीक्षित हुए थे। अतः उन्होंने अपनी रचनाओं में बल्लभ संप्रदाय के शुद्धाद्वैत को समुचित स्थान दिया है। शुद्धाद्वैत के अनुसार ही उनकी रचनाओं में ब्रह्म, जीव, माया, जगत, संसार, वेणुगीत आदि दार्शनिक सिद्धांतों का दर्शन होता है। सूरदास जी का दर्शन प्रभु श्रीकृष्ण को समर्पित है।

#### संदर्भ

1. Six System of Indian philosophy, p. 370
2. प्रो० हिरियाना, Out line of Indian Philosophy, p. 18.19
3. शुद्धाद्वैत मार्तण्ड, गिरिधर, श्लोक 28
4. तत्वदीप निबंध, शास्त्रार्थ-प्रकरण, सर्वनिर्णय प्रकरण
5. श्रीमद्भगवत् गीता
6. सूरसारावली, पद 993, पृ० 34
7. सूरसागर, पद 385, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
8. सूरसागर, पद 622
9. सूरसागर, 369
10. सूरसागर, 407
11. सूरसागर सार
12. पारिख और मित्तल, सूर निर्णय, पृ० 197
13. सूरसागर पद, 379
14. सूरसागर, पद 56
15. सूर निर्णय
16. कल्याण कल्पतरु, डॉ० ब्रह्मानंद
17. सूरसागर पद 337
18. सूरसागर पद 1109
19. सूरसागर
20. सूरसागर, दशम स्कंध, रास पंचाध्यायी

## अपभ्रंश-साहित्य का महनीय ग्रंथ : 'अपभ्रंश-आलोक'

डॉ० श्रीरंजन सूरदेव

ईसा की छठी शती से संस्कृत-प्राकृत की उत्तराधिकारिणी के रूप में इतिहास-प्रतिष्ठ अपभ्रंश भाषा में साहित्य की रचना का प्रारंभ हुआ है। यद्यपि संस्कृत और प्राकृत भाषाएँ अपभ्रंश की पूर्वजा हैं, तो अपभ्रंश इन दोनों भाषाओं की वंशजा है, तथापि प्राकृत और अपभ्रंश में साहित्य की रचना समानांतर भाव से होती आई है। विशेषतया जैन-साहित्य तो इन दोनों ही भाषाओं में व्यापकता से निबद्ध हुआ है। प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिंदी के साहित्य की विवेचना में समप्रतिभ डॉ० आदित्य प्रचंडिया ने अपभ्रंश में रचित जैन-साहित्य का आकलन अपनी अपभ्रंश-आलोक' नाम की कृति में बड़े ही प्रामाणिक और विश्वसनीय ढंग से किया है। अवश्य ही डॉ० प्रचण्डिया अपभ्रंश के अधिकारी हस्ताक्षर हैं। इनकी इस कृति में सरल, प्रांजल शैली में स्वीकृत विषय को स्पष्ट करने का प्रशंसनीय प्रयास दृष्टिगत होता है। सच पूछिए तो अपभ्रंश साहित्य के जिज्ञासुओं के लिए इनकी यह कृति पथ-निर्देशिका की भूमिका का निर्वहण करती है।

डॉ० प्रचण्डिया ने अपनी इस महनीय कृति में अपभ्रंश-साहित्य की तद्युगीन परिस्थितियों का ऐतिहासिक आकलनपूर्वक उसके साहित्य की प्रकृति और प्रवृत्ति का अधिकाधिक विश्लेषण उपन्यस्त किया है। इन्होंने अपभ्रंश-साहित्य के निर्माकित प्रतिनिधि काव्यों की समीक्षा को मूल्य दिया है— पउमचरिउ (स्वयंभू), दोहाकोश (सिद्धकवि सरह), जसहरचरित्र, महापुराण (पुष्पदंत), भविसयत्तकहा (धनपाल), जंबूसामिचरिउ (महाकवि वीर), सुदंसणचरिउ (नयनंदी), करकंडचरिउ (मुनि कनकामर), परमात्मप्रकाश (जोइंदु) हेमचंद्र के दोहे (हेमचंद्र), संदेशरासक (अद्दहमाण)

उक्त महाकाव्यों की समीक्षा के क्रम में विद्वान समीक्षक ने तत्त्वाभिनवेशिनी दृष्टि से संबद्ध कवियों और उनके काव्यों का पुंखानुपुंख व्यालोचन किया है और फिर इन्होंने स्थूल हस्तावलेप की अपेक्षा स्वीकृत कवियों और उनके काव्यों का सही तत्त्वचिंतन किया है।

डॉ० प्रचण्डिया की आलोचना-दृष्टि 'कृति अच्छी है या बुरी' यह नहीं है अपितु 'कृति अच्छी क्यों है' इस पर अधिक केंद्रित है। मूल्यांकन के निर्णायक के आसन की जो महिमा होती है, उसकी बड़े ही मयादित ढंग से इन्होंने रक्षा की है। वस्तुतः आलोचना अपने विश्लेषात्मक रूप से सृजन की प्रक्रिया का ही अपरिहार्य अंग है। अतएव आलोचना उतना ही सृजन है, जितना किसी कृति का निर्माण प्राचीनकाल में जिनती टीकाएँ लिखी गई हैं, वे सभी स्वतंत्र टीका-ग्रंथ के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इसी प्रकार डॉ० आदित्य प्रचंडिया ने जितने अपभ्रंश

काव्यों की जैसी विवेचना की है, वह समग्र रूप में अपभ्रंश-साहित्य के स्वतंत्र आलोचना-ग्रंथ की इयत्ता करती है। अतः इस कृति की भूमिका एक स्वतंत्र ग्रंथ की है।

डॉ० प्रचण्डिया का यथाप्रस्तुत अपभ्रंशकाव्य-कृतियों का साहित्यलोचन इस अर्थ में विज्ञान है कि इन्होंने विशिष्ट कृतियों का परीक्षण किया है, उनका गुण-दोष-निरूपण किया है और आवश्यकतानुसार अपभ्रंशकाव्य-विषयक नवीन सिद्धांतों की उद्भावना भी की है। अतएव, यह कृति अपभ्रंश-काव्य के अध्ययन के निमित्त पाठकों के लिए उत्प्रेरक सिद्ध हुई है। डॉ० प्रचण्डिया 'काव्यं कुर्वन्ति कवयः, रसं जानन्ति पण्डिताः' इस उक्ति को इस अर्थ में सार्थक करते हैं कि इनके आलोचक व्यक्तित्व ने अपभ्रंश साहित्य सार्थक करते हैं कि इनके आलोचक व्यक्तित्व ने अपभ्रंश-साहित्य और उसके पाठक के बीच खड़ा होकर काव्यकार और उनकी काव्यकृतियों की व्याख्या की है।

डॉ० प्रचण्डिया द्वारा की गई अपभ्रंश-काव्यों की विवेचना पर गौर करें तो स्पष्ट होगा कि इन्होंने अपभ्रंश के उन कवियों की कवित्व-शक्ति और कवित्व को यथासंभव पूर्ण रूप से समझकर विवेचना की है, जिन्होंने यथोक्त अपभ्रंशकाव्यों का निर्मित की है। डॉ० प्रचण्डिया सैद्धांतिक और व्याख्यात्मक दोनों प्रकार की विवेचना-शक्ति से संपन्न हैं और इनकी विवेचना या आलोचना इनकी संवेदनशीलता का ही विकसित रूप है। इनकी विवेचना-शैली खंडनात्मक नहीं, मंडनात्मक है। विवेचना में इनकी श्रमसिक्त ईमानदारी की जितनी श्लाघा की जाएगी, कम होगी।

डॉ० प्रचण्डिया की विवेचना-दृष्टि जितनी गहरी है, उतनी व्यापक भी, इसीलिए इन्होंने अपभ्रंश के महाकाव्यों की विवेचना तक ही अपने को सीमित न रखकर अपभ्रंश के खंडकाव्य और मुक्तक काव्यों की विशिष्टता पर भी प्रकाश-निक्षेप किया है। सिद्धों के अपभ्रंश साहित्य का भी विवेचनात्मक अध्ययन किया है। और फिर, अपभ्रंश में निबद्ध बौद्धधर्मप्रधान रचनाओं के प्रयोग और प्रयोजन को भी अपनी विवेचना में सम्मिलित किया है। अपभ्रंश-कवियों की आत्मलघुता, यानी गर्वोक्ति के परिहारपूर्वक रचनाविधि का मध्ययुगीन हिंदी-काव्यधारा पर परंपरित प्रभाव का मनस्तात्त्विक विश्लेषण अपने-आपमें इस कृति का एक महनीय प्रकरण है। पुनः प्रसंगवश अपभ्रंश वाङ्मय में भगवान् पार्श्वनाथ की चर्चा अनपेक्षित नहीं, अपेक्षित ही प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त, अपभ्रंश वाङ्मय में व्यवहृत पारिभाषिक शब्दावली और उसका अर्थ-अभिप्राय, अपभ्रंश में स्वर-परिवर्तन, अपभ्रंश में सर्वनाम रूप, अपभ्रंश की प्रमुख प्रवृत्तियाँ जैसे भाषाशास्त्रीय विवेचन से इस ग्रंथ की शोधोपादेयता में ततोऽधिक वृद्धि हुई है।

सरल भाषा-शैली में गंभीर चिंतन के फलस्वरूप तत्त्व-निरूपण से समृद्ध प्रस्तुत पुस्तक में पूर्ववर्ती अपभ्रंश-विषयक विवेचनों का नूतन मूल्यांकन तो है ही, साथ ही अभिनव आयामों की उद्भावना और उनका व्यावहारिक निदर्शन भी है।

अपभ्रंश-महाकाव्यों की विवेचना विवरण-प्रधान नहीं है, वरन् यथोक्त महाकाव्यों की गहन मीमांसा की गई है, जिसमें शास्त्रीय अर्थगौरव के साथ विषयोचित सूक्ष्म विदग्धता भी है। फलतः अपभ्रंश के प्रमुख काव्यों को हृदयंगम करने में सहजता सुलभ हो गई है। ऐसी विवेचना को सर्वांगीण विवेचना कहना अत्युक्ति नहीं। अवश्य ही, इस विवेचना-पुस्तक से

अपभ्रंश-महाकाव्यों के प्रत्यभिज्ञान में नवीन आस्वाद की अनुभूति उपलब्ध होगी।

डॉ० प्रचण्डिया ने अपभ्रंश के जिन जैनकाव्यों की विवेचना की है, वे इनके कुलधर्म के और फिर सारस्वत संस्कार के भी अमुरूप हैं, इसलिए ये अपनी जैन-परंपरा के आलोक में यथास्वीकृत अपभ्रंश के कवियों और काव्यों के तत्त्वार्थ चिंतन में समुचित न्याय कर सके हैं और फिर इनमें सूक्ष्म चिंतन की शक्ति की भी कमी नहीं है। इसलिए ये अधिकारपूर्वक और निष्पक्षता से यह कहने में समर्थ हुए हैं कि 'वैष्णवधर्म में जैनों के समान तप और त्याग की वह कठोरता न थी, अतएव जनसामान्य ने इसे (वैष्णव धर्म को) सरलता और शीघ्रता से स्वीकार लिया।' और फिर इन्होंने अपभ्रंश-वाङ्मय में जैन संस्कृति से संबद्ध पारिभाषिक शब्दों की जो विवेचना की है, वह इनके-जैसा जैन-परंपरा का विद्वान ही कर सकता है।

डॉ० प्रचण्डिया की विवेचना से अपभ्रंश-काव्यों की अर्थ-संपत्ति में ततोऽधिक वृद्धि हुई है। इन्होंने अपनी विवेचना में कहीं भी कटीले शब्दों का व्यवहार नहीं किया है। ज्ञातव्य है कि प्रस्तुत कृति के लेखक ने जैन, अपभ्रंश और बौद्ध अपभ्रंश को समान मूल्य दिया है। इसलिए कि अपभ्रंश यानी प्राचीन हिंदी में निबद्ध जैन-साहित्य प्रायशः मध्यप्रदेश की पश्चिमी सीमा पर रचा गया था, तो बौद्ध-साहित्य इसकी पूर्वी सीमा पर, अतएव दोनों में समान रूप से प्रादेशिक भाषा-तत्त्व लक्षित होते हैं और इसीलिए दोनों में विस्मयजनक साम्य है। इस संदर्भ में डॉ० प्रचण्डिया ने भी अपनी बात में लिखा है कि हिंदी को समझने के लिए अपभ्रंश ही वह आर्यभाषा है, जो ईसा की लगभग सातवीं शती से तेरहवीं शती तक संपूर्ण उत्तर भारत के सामान्य लोकजीवन के परस्पर भाव-विनिमय और व्यवहार की बोली रही है इसमें एक और जैन मुनियों के चिंतन की चिंतामणि है तो दूसरी और बौद्ध सिद्धों की सहज साधना की सिद्धि भी है और फिर कृतविध मनीषी लेखक ने अपभ्रंश भाषा के सिद्ध-प्रसिद्ध साहित्यकारों में स्वयंभू पुष्पदंत, धनपाल, वीर, नयनंदी कनकामर, जोइन्दु, हेमचंद्र और अब्दुल रहमान के समानांतर बौद्ध-सिद्धकवि सरहपा और काणहपा को भी मूल्य दिया है, जो लेखक की संप्रदाय-निरपेक्ष सारस्वत उदारता का परिचायक है।

इतना ही नहीं, समन्वयवादी लेखक ने अपभ्रंश साहित्य को जैन, बौद्ध और शैवधर्म-प्रधान रचनाओं का समवाय माना है और सिद्ध किया है कि सिद्धों की रचनाओं की भाषा देशभाषा-मिश्रित अपभ्रंश अर्थात् पुरानी हिंदी की काव्यभाषा है। इसलिए आचार्यकल्प जैन काव्यकारों द्वारा प्रणीत अपभ्रंश-काव्यों के सामांतर बौद्ध-सिद्धाचार्यों की अपभ्रंश कविताओं में जन-गण-मन को आनंदित करने की अपूर्व और अद्भुत प्रभावोत्पादकता समहित है।

डॉ० प्रचण्डिया की प्रस्तुत आलोच्यमान कृति 'अपभ्रंश-आलोक' अपभ्रंश-साहित्य के अध्ययनार्थियों के लिए पथ-निर्देशक की भूमिका की निर्वाहिका है। प्राचीन हिंदी, यानी अपभ्रंश के साहित्य की नवीन समीक्षा की दृष्टि से लिखित इस कृति के प्रणेता के प्रति समग्र हिंदी-जगत विशेष रूप से कृतज्ञ रहेगा। यह पुस्तक अपभ्रंश-साहित्य की नवीन समीक्षा-कृतियों में अप्रतिम है।

□ 37 भारतीय स्टेट बैंक आफिसर्स कालोनी  
काली मंदिर मार्ग, हनुमान नगर  
कंकड़ बाग, पटना 800020



## हरिशंकर आदेश के प्रबंधकाव्य : प्रयोग और प्रयोजन

कनुप्रिया प्रचण्डिया, शोध छात्रा  
डॉ० महेश दिवाकर, डॉ०लिट्० शोध निर्देशक  
अध्यक्ष, हिंदी विभाग, गुलाबसिंह कॉलेज,  
चाँदपुर (उ० प्र०)

प्रबंधकाव्य वह छंदोबद्ध कथात्मक काव्यरूप है, जिसमें क्षिप्त कथा-प्रवाह या अलंकृत वर्णन अथवा मनोवैज्ञानिक चित्रण से युक्त ऐसा सुनियोजित, सांगोपांग और जीवंत लंबा कथानक हो, जो रसात्मकता या प्रभान्विति उत्पन्न करने में पूर्ण समर्थ हो सके, जिसमें यथार्थ, कल्पना या संभावना पर आधारित ऐसे चरित्र या चरित्रों के महत्त्वपूर्ण जीवनवृत्त का पूर्ण या आंशिक रूप में वर्णन हो, जो किसी युग के सामाजिक जीवन का किसी-न-किसी रूप में प्रतिनिधित्व कर सके, जिसमें किसी महत्प्रेरणा से अनुप्राणित होकर किसी महदुद्देश्य की सिद्धि के लिए किसी महत्त्वपूर्ण, गंभीर अथवा रहस्यमय और आश्चर्योत्पादक घटना या घटनाओं का आश्रय लेकर संश्लिष्ट और समन्वित रूप से जाति-विशेष या युग-विशेष के समस्त जीवन के विविध रूपों, पक्षों मानसिक अवस्थाओं और कार्यों का वर्णन और उद्घाटन किया गया हो और जिसकी शैली इतनी गरिमामयी और उदात्त हो कि युग-युगांतर तक प्रबंधकाव्य को जीवित रहने की शक्ति प्रदान कर सके।' आधुनिक युग में प्रबंधकाव्य में चरित्रों की कल्पना बहुत ही स्पष्ट और संपूर्ण रूप में की जाती है, अतः उनकी विभिन्न मनःस्थितियों और समस्याओं के चित्रण के कारण प्रबंधकाव्य में नाना प्रकार के दृश्यों और गुणों का चित्रण स्वभावतः हो जाता है। इस प्रकार इसमें समग्र जीवन के कार्यकलाप जीवन-कथा का रूप धारण कर लेते हैं। प्रबंधकाव्य की सफलता कवि की कल्पनाशक्ति और चरित्र-चित्रण पर निर्भर होती है। साहित्य, संगीत एवं दर्शन की त्रिवेणी के प्रतिरूप, अंतरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त प्रवासी साहित्यकार, जिनका जन्म भारत में सात अगस्त उन्नीस सौ छत्तीस ईसवी में हुआ, परंतु सवा चार दशकों से त्रिनिडाड (वेस्टइंडीज), कनाडा एवं अमेरिका को कर्मक्षेत्र बनानेवाले बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि, लेखक, कहानीकार, नाटककार, निबंधकार, समीक्षक, निर्देशक, गायक-वादक, वाग्गेयकार, संगीतकार, प्रवाचक, यायावर, संपादक शिक्षाशास्त्री तथा आध्यात्मिक गुरु के रूप में महत् योगदान देनेवाले महाकवि हरिशंकर आदेश विश्वनागरिक के रूप में भारतीय संस्कृति के प्रबल पोषक, उद्घोषक तथा पाश्चात्य जगत् में भारतीय दर्शन के प्रतिष्ठित प्रसारक हैं। हरिशंकर आदेश के चार प्रबंधकाव्य अनुराग (सन् 1983), शकुंतला (सन् 1997), महारानी दमयंती (सन् 2006), निर्वाण (सन् 2008) दृष्टिपथ पर आते हैं।

आदेश जी का प्रबंधकाव्य 'अनुराग' भारतेतर हिंदी-साहित्य का प्रथम महाकाव्य है।

प्रवासी भारतीय साहित्य एवं विश्व हिंदी-साहित्य दोनों के प्रतिनिधि के रूप में 'अनुराग' का महाकाव्यत्व निश्चय ही वैश्विक हिंदी की अमर एवं कालजयी कृति है। 'अनुराग' का कथा-संयोजन, शैली, भाषा, भाव, वस्तु-विन्यास, अभिव्यक्ति, रचना-कौशल आदि पूर्णरूपेण महाकाव्य के निकष पर खरा उतरता है। सप्त संगीत-ध्वनियों में पंचम ध्वनि 'प' अति कोमल एवं मधुरावृत्ति की होती है। ऋतुराज बसंत में कोयल की 'पिउ-पिउ की पुकार भी कर्णप्रिय होती है। स्यात् इसी भावना से 'अनुराग' के प्रत्येक सर्ग का नामकरण 'प' वर्ण से हुआ है, जो कि महाकवि आदेश की संगीतप्रियता का द्योतक है।<sup>2</sup> 'अनुराग' शृंगार काव्य होते हुए भी दुःखांत प्रबंध महाकाव्य है। जैसे भाव-प्रवणता की सीमा में प्रेमोर्मियों से युक्त प्रेमसागर है, जिसकी कथात्मक सीमा है। 'अनुराग' दो खंडों-पूर्वखंड और उत्तरखंड में विभाजित होते हुए भी क्रमशः छह (परिचय, परिणय, परिरंभ, परित्याग, परिताप, पुनर्मिलन) और दो (पुनर्विवाह, पर्यवसान) कुल आठ सर्गों में विस्तृत है। 'अनुराग' प्रबंधकाव्य कवि के तत्कालीन अनुरागी चित्त की प्रतिकृति ही नहीं, एक पावन अनवरत साधना भी है। इस प्रबंधकाव्य में गंगा तथा कालांतर में 'सत्यवती' (मत्स्यगंधा) के प्रति शांतनु के अनुराग को ही चित्रित किया गया है। यह शृंगारिक कथानक महाभारत के असीम कथा-कोश से लिया गया है, जिसमें काव्यकार के विवेक ने यत्र-तत्र अपनी कल्पना अथवा व्याख्या को तर्काधारित करके, घटनाओं तथा पात्रों को अधिकाधिक मानवीय बनाकर जीवन-धरातल के समीप लाने की चेष्टा की है। काव्यकार हरिशंकर 'आदेश' ने प्रेम को आधार बनाकर महाभारत के वस्तु-विन्यास पर 'अनुराग' का संदेश अति भौतिकवादी प्रांतरों में भी दिया है। जहाँ इन भूखंडों में अन्य प्रवासी भारतीयों ने अपने परिश्रम से 'कर्म ही पूजा है' को साध्य माना है, वहीं कवि आदेश 'प्रेम ही ईश्वर है इसीलिए वह अजर और अमर है' का प्रसादामृत वितरित करते हैं, जो कि उनके नाम एवं भारतीय संस्कृति का मिलन-बिंदु है, जिसे 'अनुराग' में उड़ला गया है। 'अनुराग' की अभिव्यंजना-प्रणाली नूतन भी है और पुरातन भी। यद्यपि छंदबद्ध कविता को ही आदेश जी अधिक महत्त्व देते हैं, किंतु अतुंकात रबर-छंदों तथा गद्य गीतों को भी हेय एवं अस्पृहणीय नहीं समझते। इसीलिए इस प्रबंधकाव्य में जहाँ अनेकानेक शास्त्रोक्त छंदों का प्रयोग हुआ है, वहीं आधुनिकतम गद्यगीतों के भी अभिदर्शन होते हैं। साथ ही हिंदी के अतिरिक्त उर्दू के गज़ल एवं अंग्रेज़ी के सॉनेट तथा सांग जैसे छंदों का प्रयोग भी इसमें विद्यमान है। काव्यकार 'आदेश' कला के क्षेत्र में किसी भी भौतिक बंधन को कभी स्वीकार नहीं करते। 'अनुराग' प्रबंधकाव्य में जहाँ आनुप्रासिकता के प्रवाह में संस्कृतनिष्ठ हिंदी के प्रयोग हैं, वहीं उर्दू अथवा सामान्य व्यवहार में आनेवाले बोलचाल के शब्द सहज आ गए हैं। रीतिकालीन नखशिख वर्णन-प्रणाली का परिपालन स्वतः हो गया है। काव्यकार 'आदेश' 'अनुराग' प्रबंधकाव्य के संदर्भ में 'दो शब्द' में कहते हैं— 'अनुराग स्वयंभू एवं शाश्वत जीवन-धर्म है, जिसका पालन चाहे-अचाहे हर प्राणी को करना पड़ता है। अनुराग जीवन का ऐसा चिरंतन सत्य है, जिसकी अवहेलना करना सर्वथा अशक्य है। जिस प्रकार भौतिक अनुराग की चरम परिणति वैराग्य में हो जाती है, वैसे साहित्य भी अंततोगत्वा दर्शन में परिणत हो जाता है।<sup>3</sup> आदेश जी 'अनुराग' प्रबंधकाव्य के अंत में इस कथा के अजर-अमर होने का उल्लेख इस प्रकार करते हैं— 'सभी हुए गत/ पर उनका/यह कथा/ पराग अजर है/ क्योंकि सभी/ नश्वर संसृति में/ बस अनुराग/

अमर है।<sup>4</sup>

‘रमणीयार्थ प्रतिपादक : शब्द : काव्यम्’ पंडितराज जगन्नाथ का यह अमर कथन कि रमणीय अर्थ की अभिव्यक्ति करनेवाले शब्द को काव्य कहते हैं, प्रायः सर्वमान्य है। रमणीय का अर्थ वह कल्पनारंजित भाव है, जो सहृदय के संस्कार में चिरस्थायी रहकर उसे आनंद की अनुभूति कराता है। इसी आनंद की अनुभूति का जन-जन में प्रसार करने के लिए प्रबंधकाव्यकार हरिशंकर ‘आदेश’ ने ‘शकुंतला’ नामक अपने दूसरे महाकाव्य की रचना की है। शकुंतला का कथानक चिर पुरातन होते हुए भी चिर नवीन है। इसका मूल स्रोत ‘महाभारत’ का आदिपर्व है, जो कि ‘शकुंतलोपाख्यान’ नाम से वर्णित है। विश्वप्रसिद्ध संस्कृत नाटककार महाकवि कालिदास ने इसी से प्रेरणा और आधार लेकर अपने ‘अभिज्ञानशाकुंतलम्’ नाटक की रचना की थी, जो कि आज तक संपूर्ण विश्व में श्रेष्ठता, उच्चता, महानता और लोकप्रियता का केतन फहराए हुए है। बौद्ध वाङ्मय के ‘कट्टहारी जातक’ में दुष्यंत शकुंतला का आख्यान मिलता है। प्रेम, विरह और पुनर्मिलन की रस-रजत्वपरक कथा के कारण ‘काव्येषु नाटकं रम्यं तत्रा रम्या शकुंतला’ कहा जाता है। हिंदी में सत्रहवीं शताब्दी में ब्रजभाषा में कवि नेवाज शकुंतला काव्यनाटक लिख चुके थे। राजा लक्ष्मणसिंह (सन् 1863) ने शकुंतला का हिंदी-अनुवाद किया। धोंकलराय मिश्र ने जननाट्य शैली में ‘शकुंतला’ (1799), मुहम्मद अब्दुल्ला ‘हाफिज’ (सन् 1886), गणेशप्रसाद (सन् 1890), मुंशी रामगुलाम लाल रसिकबिहारी (सन् 1908), मुहम्मद इब्राहिम ‘मशहर’ (सन् 1923) ने शकुंतला नाटक लिखे, जो तत्समय सिद्ध और प्रसिद्ध हुए। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने ‘शकुंतला’ काव्य लिखकर उसे आधुनिक राष्ट्रीय पहचान देने का कार्य किया। श्यामसुंदरदास (सन् 1912), सत्यनारायण कविरत्न (सन् 1918), विजयानंद त्रिपाठी (सन् 1921) ने शकुंतला नाटक पर अपनी कृतियों से जन-जन में प्रेम का संदेश दिया। इस प्रकार महाभारतकाल से लेकर आज तक शकुंतला-दुष्यंत-प्रेमाख्यानक-परंपरा चली आ रही है। शकुंतला की कथा यद्यपि भारत की सीमा कई शताब्दी पूर्व ही पार कर चुकी थी, तथापि हिंदी महाकाव्य के रूप में इसका सर्वप्रथम सफल प्रयोग प्रबंधकाव्यकार हरिशंकर आदेश ने अपनी सशक्त लेखनी से किया। इसकी रचना भारत, ट्रिनीडाड, अमेरिका और कनाडा की पवित्र धरती पर हुई तथा कुछ अंश तो निरभ्र आकाश में उड़ते हुए विमान में भी रचे गए। इसकी रचनावधि पंद्रह वर्ष है। आदेश जी के इस अभिनव और मौलिक प्रयोग ने ‘न भूतो न भविष्यति’ को चरितार्थ करते हुए हिंदीकाव्य जगत् की श्रीवृद्धि की है।

‘शकुंतला’ महाकाव्य दो खंडों में सृजित है। प्रथम पूर्व खंड, जिसमें उदय, विकास, प्रणय, प्रमोद, विदाई और उपेक्षा नामक कुल छह सर्ग हैं तथा द्वितीय उत्तर खंड में सर्वदमन, पुनस्मृति, विप्रलब्ध और संगम नामक चार सर्ग हैं। दस सर्गों के इस महाकाव्य में आदेश जी ने कथानक में सर्वाधिक नवीन शैली एवं शब्द का प्रयोग कर अपनी मौलिक काव्य-प्रतिभा को उजागर किया है। प्रबंधकाव्यकार ‘आदेश’ एक पुरातन आख्यान की संपूर्ण सांस्कृतिक गरिमा की रक्षा करते हैं और उसे अपने समय से जोड़कर भी देखते हैं। इस दृष्टि से शकुंतला प्रबंधकाव्य एक ओर शाश्वत मानवमूल्यों को रेखांकित करता है तो दूसरी ओर वर्तमान को भी प्रतिबिंबित करता है। शकुंतला-जैसा नारी-चरित्र संस्कृत, हिंदी एवं विभिन्न भारतीय भाषाओं में ही सर्वोपरि काव्यालंबन नहीं रहा, बल्कि विश्वभर के काव्यरसिकों को प्रेरित-प्रभावित

करता रहा है। दुष्यंत-शकुंतला के मिलन-बिछोह-मिलन का यह अनुपमेय आख्यान मनुष्य-हृदय को जिस प्रकार उद्वेलित करता है, वह अपने आपमें ही निरुपमेय निदर्शन है। तात्त्विक दृष्टि से देखा जाए तो यह महाकाव्य पुरुष और प्रकृति के सहज साहचर्य और जन्मजात आकर्षण की महागाथा है, जो कि विभिन्न छादिक शब्द स्वरलहरियों के माध्यम से मानव-जीवन और उसके समयानुकूल मनोवेगों को उजागर करता है। इस विशुद्ध प्रकृति काव्य में प्रकृति का जो रूप यहाँ चित्रित हुआ है, वह उभयपक्षी है—बाह्य और आंतरिक, साथ ही इसमें कल और आज का भी गहरा सामंजस्य है। आदेश जी स्वयं स्वीकारते हैं—‘मेनका-विश्वमित्र तथा शकुंतला-दुष्यंत की गाथाएँ केवल पुराणेतिहास और बीते कल की गाथाएँ ही नहीं हैं, प्रत्युत आज और आने वाले प्रत्येक कल की गाथाएँ हैं।’<sup>5</sup> प्रबंधकाव्यकार आदेश ने ‘शकुंतला’ प्रबंधकाव्य की रचना न तो किसी नीतिशास्त्र के लिए की है और न मन्मथशास्त्र की दृष्टि से, न तो खजुराहो, एलोरा, अजंता, कोणार्क के समान रति-प्रेरिता नग्न प्रतिमाएँ उत्कीर्ण की हैं और न किसी भव्य मसीत के विशाल भवन की कोरी प्रचीरों तथा गुंबदों का निर्माण किया। आदेश जी ने तो वही व्यक्त किया है, जो प्रत्येक सामान्य प्रेमी भावुक चित्त अनुभव करता है और सोचता है। भारतीय नारी के आदर्श का पूर्ण पालन करते हुए ‘शकुंतला’ प्रबंधकाव्य की शकुंतला मूक, पंगु, विचारशून्या, निष्क्रिय एवं नियतिवादी न होकर समय पड़ने पर पूर्ण मुखरा, चैतन्य, विदुषी, सचेष्ट, युग को चुनौती को स्वीकार करने वाली सुशिक्षिता, सक्रिय, एकनिष्ठ पतिव्रता आर्यनारी है। ‘शकुंतला’ शृंगाररस-प्रधान काव्य है। संयोग-वियोग की अवस्थाएँ, नख-शिख-वर्णन, अभिसार, मान-मनुहार, नायिकाभेद, षड्ऋतु वर्णन आदि के साथ-साथ शेष सभी रसों की झलक प्रबंधकाव्य के मिलती है। सर्वदमन सर्ग में जहाँ एक ओर भारतीय दर्शन, राजनीति तथा प्रबंधकाव्यकार के सपनों के समाज की संक्षिप्त रूप-रेखा प्रदान की गई है, संगीत के सूक्ष्म स्वरूप, ज्योतिष, शकुनशास्त्र संस्कार पर्वोत्सव, पुराण तथा इतिहास का अल्पवर्णन भी इसमें सुलभ है। संपूर्ण प्रबंधकाव्य ‘शकुंतला’ प्रकृति के सुरंग अंचल में उदित एवं अस्त हुआ है। कवित, सवैया, गीतिका, हरिगीतिका, कुंडलिया, छप्पय, दोहा, सोरठा, चौपाई, प्रतिभा, भुजंगप्रयात, त्रिभंगी, सारसी, नाटक, ग्रंथि, प्लवंगम तथा तोमर आदि अनेकानेक छंदों का प्रयोग हुआ है वहीं आधुनिक युग के आँसू छंद एवं विविध गीत-शैलियों के अतिरिक्त अत्याधुनिक रचना-शैलियों-तुकांत, अतुकांत युक्त एवं गद्य गीतादि को भी प्रबंधकाव्य ‘शकुंतला’ में प्रश्रय दिया गया है। अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति, असंगति विभावना, निदर्शना, दीपक, वीप्सा, पुनरुक्ति, प्रतीप, उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक आदि प्रमुख अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक है। तत्सम शब्दों के साथ-साथ तद्भव ब्रज, अवधी, उर्दू तथा नित्य दैनिक व्यवहार में आने वाले लोकभाषीय शब्दों, मुहावरों एवं लोकोक्तियों का आभास भी यत्र-तत्र ‘शकुंतला’ में परिलक्षित है। हिंदी का यह सुखांत प्रबंधकाव्य ‘शकुंतला’ वस्तुतः कालजयी रचना है। प्रबंधकाव्य ‘शकुंतला’ के अंत में आदेश जी इसकी महत्ता का बखान इस प्रकार कहते हैं— ‘युग कितनी ही करवट बदले/ आए कितना हलाचा/जब तक भारतवर्ष रहेगा/ अमर रहेगी शकुंतला’<sup>6</sup>

आज का युग नग्नवादिता, स्वेच्छाचारिता, सम-विषम लैंगिक मित्रता एवं यौन-उच्छृंखलता का युग बनता जा रहा है। अपेक्षित शिष्टाचार, अनुशासन एवं संस्कारों की अवहेलना मानव को

पशुत्व की ओर धकेल रही है। हरिशंकर आदेश ने 'महारानी दमयंती' नामक तीसरे प्रबंधकाव्य के परिसर में रसराज के मंदिर की स्थापना करने का प्रशंस्य प्रयास किया है। आश्रम एवं वर्ण-व्यवस्था के साथ-साथ विभिन्न संस्कारों, आदर्श राज्य एवं शासन का चित्रण, राजा के कर्तव्य एवं बाल शिक्षण-प्रशिक्षण आदि के अतिरिक्त मानव-जीवन के सर्वांगीण दर्शन की झलकियाँ भी 'महारानी दमयंती' प्रबंधकाव्य में दर्शित हैं। नल-दमयंती कथा भारतीय समाज में अत्यंत प्राचीनकाल से ही लोकप्रिय रही है। इन दंपती को प्रेम के अप्रतिम प्रतिमान के रूप में न केवल पुराणों एवं अभिजात्य साहित्य में ही मान्यता प्राप्त रही है, वरन 'ढोला' नाम से उत्तरी भारत में प्रसिद्ध लोकगीत-परंपरा में भी उसी कथा की अनुगूँज प्राप्त होती है। इस आख्यान का प्राचीनतम स्रोत महाभारत है। नल और दमयंती की कथा आधिकारिक कथा है, जिसमें हर्ष, शोक, सुख-दुख, मिलन-विरह, जय-पराजय और वैभव-पराभव जैसी सहज, स्वाभाविक एवं विपरीत जीवन-स्थितियों का यथोचित निर्वाह मिलता है। तत्कालीन राज्यों विदर्भ कौशल (अयोध्या) चेदि और निषध आदि के राजपरिवारों के विशद वर्णनों से कथा का ताना-बाना बुना गया है। देवताओं के प्रसंग, राजहंसों की कथा, नल के भाई पुष्कर की कहानी, सती सावित्री की कथा आदि प्रासंगिक कथाएँ हैं जो आधिकारिक कथा को अपेक्षित गति एवं दिशा प्रदान करती हैं। द्वापर, कलि एवं शनि की त्रयी द्वारा नल-दमयंती के मार्ग में प्रस्तुत किए गए विघ्न एवं अवरोध संपूर्ण कथा को सत् एवं असत् के शाश्वत संघर्ष का स्वरूप प्रदान करते हैं। संपूर्ण कथानक दस सर्गों-अभ्युदय, आकर्षण, स्वयंवर, संयोग, संतति, अरण्य, विप्रलंभ, स्मृति, मिलन तथा उपलब्धि सर्ग में विभक्त है, जिनके शीर्षक संबंधित सर्ग में वर्णित कथा के आधार पर निर्धारित किए गए हैं। 'महारानी दमयंती' की कथावस्तु में वैयक्तिक एवं सामाजिक आचार-संहिता का जैसा विशद निरूपण है वह न केवल त्रेता-युग की परिस्थितियों का परिचय देता है, वरन आज के युग के सामाजिक यथार्थ का भी प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है। कथानक में चामत्कारिक सौंदर्य लाने के लिए आदेश जी ने आकस्मिकता, संयोग और आद्भुत्य का प्रयोग स्थान-स्थान पर किया है। रूप-वर्णन के लिए नख-शिख पद्धति का प्रयोग तीन बार किया गया है। कटाक्ष-परिरंभन चुंबन एवं संभोग जैसे रति-सोपानों के चित्रण में आदेश जी ने शालीनता का पूरा ध्यान रखा है— 'अनुभावों में गति आई/ रतिभाव हो गया स्थायी/ भुज में भर निर्मल शशि को/ नल ने त्रिभुवन-निधि पाई। पहिना दी युगल उरों ने/ भुज अरविदों की माला/ दो इकाइयों ने मिलकर/ था योग एककर डाला/ प्रेमावतार ये दोनों/ रूपावतार ये दोनों/ गुण-कर्म-स्वभाव-साम्य था/ शीलावतार थे दोनों।'<sup>7</sup>

महारानी दमयंती में आदेश जी की भाषा की शाश्वत प्रकृति आनुप्रासिकता है। भाषा में शब्दों का अमिधेय प्रयोग स्वयमेव गौण हो गया है तथा लक्षणा एवं व्यंजना शब्द-शक्तियों का प्राधान्य हो गया है। भाषा के तीनों गुण-ओज, प्रसाद तथा माधुर्य सर्वत्र विद्यमान हैं। वीर, भयानक एवं रौद्ररस की निष्पत्ति में ओज का प्राधान्य है। शृंगार, करुण एवं शांतरस में माधुर्य तथा धन्य रसों की अभिव्यक्ति करते समय भाषा स्वतः प्रसादमयी हो गई है। भाषा भावों, पात्रों तथा प्रसंगों के अनुकूल है। इसमें अधिकतर सम तथा विषम मात्रिक छंदों का प्रयोग किया गया है। यत्र-तत्र वर्ण-वृत्त एवं अर्द्ध वर्ण-वृत्त छंदों को भी प्रयोग में लाया गया है। इंद्रवज्रा, उपेंद्रवज्रा, भुजंगप्रयात, चौपाई, दोहा, सोरठा, रोला, छप्पय, कुंडलिया आदि छंदों के अतिरिक्त

आधुनिकयुगीन विविध गीत, अत्याधुनिक गद्यगीत आदि शैलियों को भी अपनाया गया है। अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से ही हुआ है। शब्दालंकारों में अनुप्रास के बाहुल्य के अतिरिक्त यमक, श्लेष एवं वक्रोक्ति तथा अर्थालंकारों में रूपक, अनन्वय, प्रतीप, व्यतिरेक, भ्रांतिमान, संदेह, उल्लेख, दृष्टांत, उत्प्रेक्षा, विशेषोक्ति आदि का प्रयोग यत्र-तत्र हुआ है। प्रेम जीवन का व्यापकतम भाव होता है। लौकिक भावों में तो उसे उच्चतम स्थान प्राप्त है ही, आध्यात्मिक स्तर पर भी, वैष्णवमत में उसके विविध सोपानों, प्रीति, स्नेह, मान, राग, अनुराग, आदि की महिमा का विषद् स्थान उपलब्ध है। यथा—जब तक समय चक्र है गतिमय /वसुधा पर ऋतु खिले बसंती/अमर रहेगी प्रेम जगत में/ सदा महारानी दमयंती<sup>8</sup> सच्चा अनुराग प्राणी-मात्र के जीवन का मुख्य पाथेय होता है। हमारे जीवन, समाज तथा राष्ट्र की आधार-भित्ति में अनुराग ही निहित रहा है—‘प्रेम धर्म है, कर्म है, प्रेम त्रिजग सप्राट प्रेम सत्य में ब्रह्म है, प्रेम स्वरूप विराट’ यही कारण है कि हम सह स्राब्दियों एवं लक्षाब्दियों के उपरांत भी अपने नैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा पारिवारिक मूल्यों, परंपराओं एवं सिद्धांतों को अपने जीवन-आँचल में संजोकर सुरक्षित रख सके हैं।

हरिशंकर ‘आदेश’ का नवीनतम प्रबंधकाव्य है—‘निर्वाण’। ‘निर्वाण’ महात्माबुद्ध के जीवन पर आधृत है। आदेश जी को शिक्षणकाल से ही महात्मा बुद्ध का जीवन प्रभावित करता रहा है और मैथिलीशरण गुप्त की ‘यशोधरा’ में लिखी ये पंक्तियाँ तो उनके हृदय को छू गई थीं— अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी, आँचल में है दूध और आँखों में पानी।’ आदेश जी ने यशोधरा पर काव्य लिखने का संकल्प किया और ‘वनदेवी’ के रूप में कुछ अंश लिखा भी गया, किंतु कालांतर में महात्मा बुद्ध के विचार-दर्शन का गंभीरतापूर्ण अध्ययन-मनन करने पर यह प्रबंधकाव्य महात्मा बुद्ध के जीवन पर केंद्रित हो गया और ‘निर्वाण’ के रूप में वह एक महाकाव्य बन गया। महाकवि आदेश ने लिखा है कि उन्होंने इतिहास या दर्शन नहीं लिखा है, बल्कि इतिहास और दर्शन द्वारा समर्पित कल्पना जनित काव्य की रचना की है तथा इसका पूरा ध्यान रखा है कि महात्मा बुद्ध अथवा उनसे संबंधित व्यक्तियों की अस्मिता की रक्षा हो और उनके सिद्धांतों के विपरीत कुछ न लिखा जाए। महाकवि आदेश का मत है कि वेद के सिद्धांतों तथा बुद्ध द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों में कोई अंतर नहीं है तथा वेदानुयायी हिंदू तथा बौद्ध दो पृथक् लगने वाली वैचारिक प्रणालियाँ यथार्थ में एक ही हैं। वास्तव में दोनों का मूल एक ही है और वेदों का मध्यममार्गी मत ही बौद्धमत है। ‘निर्वाण’ महाकाव्य महात्मा बुद्ध के जन्म से लेकर उनके परिनिर्वाण प्राप्त करने तक की कथा पर आधारित है। कथानक को तीन पादों अर्थात् खंडों में तथा अठारह सर्गों में विभक्त किया गया है। प्रथम पाद अर्थात् पूर्व खंड में अवतरण, शैशव, कैशोर्थ, प्रेमानुभूति, विवाह, मिलन-महोत्सव, निमित्त चतुष्टयी तथा गृहत्याग नामक आठ सर्गों को निबद्ध किया गया है। इसमें राजकुमार सिद्धार्थ बुद्ध के जन्म से लेकर गृह त्याग तक की कथा वर्णित है। द्वितीय पाद अर्थात् मध्यखंड में प्रभंजन के पश्चात साधना के पथ पर राहुल, यशोधरा के आँसू, वनदेवी तथा निर्वाण नामक सर्गों को संयोजित किया गया है। इसमें राजकुमार सिद्धार्थ के गमनोपरांत कपिलवस्तु की स्थिति, सिद्धार्थ का साधना-संघर्ष, राहुल का शैशव, कथानक की मुख्य केंद्रबिंदु वियोगिनी यशोधरा के आँसुओं अर्थात् विरहावस्थावर्णन, सुजाता की खीर तथा राजकुमार सिद्धार्थ का निर्वाण प्राप्त करने तक

की कथा संयोजित की गई है। तृतीय पाद अर्थात् उत्तर खंड में बौद्धमत का प्रादुर्भाव, विलक्षण भिक्षु-धर्म-प्रसार तथा परिनिर्वाण सर्गों की रचना की गई है। इन सर्गों में बौद्धमत के प्रादुर्भाव, महात्मा बुद्ध का कपि वस्तु लौटकर यशोधरा से मिलन, नंद एवं राहुल की प्रवज्या, महात्मा बुद्ध का धर्मप्रसार एवं उनके परिनिर्वाण की कथा की परियोजना की गई है। कथानक के उपसंहार में त्रिकालदर्शी भगवान बुद्ध द्वारा उनके परिनिर्वाणोपरांत भारत एवं विश्व की दशा पर भी विहंगम दृष्टिपात किया गया है।

‘निर्वाण’ प्रबंधकाव्य महाकाव्यीय उदात्तता, गरिमा, काव्य-सौंदर्य तथा संदेश के कारण एक अनुपम काव्य-ग्रंथ है। महात्मा बुद्ध का जीवन, निर्वाण तथा बौद्धदर्शन शताब्दियों से मानवता को महाकरुणा का संदेश देता रहा है और दुखों कष्टों से मुक्ति का नया जीवन-दर्शन देकर विश्व के एक बहुत बड़े मानवीय समुदाय को जीवन में आनंद एवं आध्यात्मिकता की अनुभूति कराता रहा है। आज इक्कीसवीं सदी में महात्मा बुद्ध की महाकरुणा, वासनाओं से मुक्ति तथा मानवता की हित कामना वाला जीवन-दर्शन और भी उपयोगी हो गया है और विश्व में छाप महानाश से मानवता की रक्षा कर सकता है। प्रबंधकाव्य का यह संदेश हमें विश्व-मानव के कल्याणकारी मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता रहेगा। ‘निर्वाण’ की काव्य-संपदा, गीत-सौंदर्य, भाषा का अद्भुत प्रवाह कथा-संयोजन पात्रों का अंतर्द्वंद्व तथा इतिहास को जीवंत बनाने की कवि की अद्भुत क्षमता इस प्रबंध-काव्य को हिंदी महाकाव्यों की परंपरा में गौरवपूर्ण स्थान पर स्थापित करेगी।<sup>9</sup> निर्वाण की अग्रलिखित पंक्तियों में बुद्ध का संदेश मुखर है— सकल व्ययधर्मा है संसार/ करो जीवन व्यतीत अप्रमाद/ सकल व्ययधर्मा है संस्कार/ करो जीवन व्यतीत अप्रमाद।<sup>10</sup>

इस प्रकार प्रवासी महाकाव्यकार हरिशंकर ‘आदेश’ के चारों प्रबंधकाव्य अनुराग, शकुंतला, महारानी दमयंती तथा निर्वाण अत्यंत उच्चस्तर के महाकाव्य हैं, जिनमें महाकाव्यों के लक्षणों का पूर्ण निर्वाह हुआ है। अपनी अनूठी भाषा-शैली, महान कल्पना एवं समाहारशक्ति, सृजनधर्मिता तथा समन्यवादी दृष्टिकोण के कारण भारतीय कथानक होते हुए भी ये कथानक सार्वदेशीय और सार्वकालिक बन गए हैं। आदेश के प्रबंधकाव्यों में उपमा का जो सौष्ठव सुलभ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

### संदर्भ

1. संपादक धीरेंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश (भाग एक) ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी, तृतीय संस्करण, बसंत पंचमी 1985, पृ० 484
2. डॉ० कामता कमलेश, भूमिका, अनुराग, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ० 9
3. हरिशंकर आदेश, दो शब्द, अनुराग पृ० 12-13
4. अनुराग, पृ० 316
5. हरिशंकर आदेश, स्वागत, शकुंतला, शिल्पायन, दिल्ली, 1997, पृ० 9
6. शकुंतला पृ० 560
7. हरिशंकर आदेश, महारानी दमयंती, पृ० 223-224
8. महारानी दमयंती, पृ० 739
9. कमलकिशोर गोयनका, भूमिका, निर्वाण, नटराज प्रकाशन दिल्ली, 2008, पृ० 28
10. निर्वाण पृ० 705

## हरियाणवी लोककाव्य में शृंगार-योजना

सुनीता, शोध-छात्रा

हिंदी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

डॉ० बाबूराम, शोध-निर्देशक

एसो० प्रोफेसर, हिंदी विभाग

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

‘कामं जज्ञे प्रथमं... चैनं देवाः

कामं नमः इति करोमि।’

अर्थात् हे काम! तू सबसे प्रथम होकर देव, पितर और मर्त्य सबको प्राप्त हुआ। मैं तुझे नमस्कार करता हूँ। काम मानव-जीवन की प्रथम अनिवार्यता तथा सृष्टि-रचना का मूलाधार है। भूलोक पर ‘शृंगार’ ही काम का प्रतिनिधि बनकर जीवन की समस्त क्रियाओं को संचालित करता है।

साहित्य में नौ रस होते हैं, उनमें भी ‘शृंगार’ को रसरज अर्थात् सभी रसों का राजा कहा गया है। शृंगार ही मनुष्य में सौंदर्यबोध को जन्म देता है। यहीं से प्रेम का प्रस्फुटन होता है। यही प्रेम लौकिक धरातल से ऊँचा उठता हुआ प्रकृति-प्रेम, प्राणी-प्रेम से होकर परमेश्वर-प्रेम तक के सोपान का स्पर्श कर साधक को दिव्य आनंद प्रदान करता है। कवियों ने काव्यास्वाद को भी ‘ब्रह्मानंद सहोदर’ कहा है। काव्य के रसों में निमग्न व्यक्ति अलौकिक आनंद का अहसास कर सकता है।

चाहे संस्कृत साहित्य में कालिदास का जगविख्यात् नाटक ‘अभिज्ञान शाकुंतलम्’ हो या अंग्रेजी साहित्य का ‘रोमंटेसिज़्म’, हिंदी साहित्य का ‘रीतिकाल’ हो या ‘छायावाद’, सभी शृंगार रस की यशोगाथा एवं विजयपताका के प्रमाण हैं। सभी भाषाओं के साहित्य में ‘शृंगाररस’ को सर्वाधिक स्थान मिला है, इसमें कोई संदेह नहीं। हरियाणवी लोककवियों के काव्य में भी शृंगार रस की योजना बड़े मनमोहक रूप में हुई है। इन कवियों का मन प्रेम-प्रसंग-आधारित कथाओं में खूब रमा है। नौटंकी, चंदकिरण, खांडेराव परी, पद्मावत, हूर मेनका, शकुंतला-दुष्यंत, चंद्रहास, लीलो-चमन, हीरामल जमाल आदि कितने ही किस्से हैं, जिन पर हरियाणवी लोक कवियों का ध्यान विशेष रूप से केंद्रित रहा है। हरियाणवी जन-मानस ने भी इनके शृंगार में आकंट निमग्न होकर खूब गाते लगाए हैं। आज भी हरियाणवी रागनी कंपीटीशनों में शृंगार परक रचनाओं पर किलकारियों, सीटियों और उन्मुक्त हास्य-ध्वनियों की गुंजार दूर तक सुनी जा सकती है।



अत्यंत भोले-भाले, अनपढ़ एवं सादगी की प्रतिमूर्ति दिखाई देनेवाले हरियाणवी लोककवियों ने कथा-प्रसंगों में आए शृंगार-चित्रण में जवान हृदयों की धड़कनों को भी मात दे दी और सिद्ध कर दिखाया है कि 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि।' शृंगार के अंतर्गत रूप-सौंदर्य, नखशिख-वर्णन, प्रेम-संवाद तथा रूप-दर्शन की प्रतिक्रिया में उपजे भावों का चित्रण अभीष्ट होता है। लोककवि पं० सूबेराम का शृंगार-चित्रण अवलोकनीय है। छत पर द्रौपदी के रूप-सौंदर्य को देखकर कीचक की मनोदशा कुछ ऐसी होती है—

पणवासी के चंद्रमा-सी शान चौबारे पै।  
डावाँडोल हुई काया, गया ध्यान चौबारे पै।  
दिल में मर्ज बैठगी भारी, खोटी हो से इश्क बीमारी।  
तन्नै बैद कहुँ या पंसारी, दवा की खान चौबारे पै।  
मेरी बेमारी काटणिया लुकमान चौबारे पै।<sup>1</sup>

लोककवि-सम्राट पं० लखमीचंद ने अपने सांग 'कीचक पर्व' में अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से नारी-सौंदर्य के सभी लक्षण द्रौपदी के सौंदर्य में दिखाए हैं—

टखणे सब ढके होए, गोल पिंडली सडोल तेरी,  
कोकिला और कोयल कैसी मिट्ठी-मिट्ठी बोल तेरी,  
मुख की गोलाई कैसी चंद्रमा-सी गोल तेरी,  
गोरा-सा बदन, गात बीच में से तुका हुआ,  
गर्दन से नीचे का भाग, अगाड़ी को झुका हुआ,  
वस्त्र मलीन चाँद, बादलों में लुहका हुआ,  
घटा हटा झट पट घूँघट, कर मत घोर अंधेरे।<sup>2</sup>

पं० माँगेराम ने अपने सांग 'रुक्मण का ब्याह' में रुक्मणी के रूप-सौंदर्य का चित्रण कुछ इस प्रकार किया है—

बाल-बाल में मोती पोए, गल में मोहन माला हे।  
जड़े सितारे मुँह पर के, जणूँ ले रह्या चाँद उजाला हे।  
नाक सुआ-सा, मुँह बटुआ-सा, सब तै ढंग निराला हे।  
लांबी चोटी पड़ी कमर पै नाग लहरावै काला हे।<sup>3</sup>

'सत्यवान-सावित्री' के सांग में पं० भोलाराम ने सावित्री के सौंदर्य का चित्रण कुछ इस प्रकार किया है—

सावित्री के फोटू के रंग दुनिया तै न्यारे जी।  
रेशम कैसे केश शीश पै, उलटी जुलफ पड़ी,  
दो लटकें मुखड़े पै, जाणें डंक ठायां नाग खड़ी,  
नैन कटीले, पुतली मोटी जैसे फूलझड़ी,  
भौह दोनूँ बणी कटारे सी, दान्तां पै चोप जड़ी,  
व बेहमाता ने अजब घड़ी, छुटै चमकारे जी।<sup>4</sup>

पं० सरूपचंद को 'सरूपा' तथा 'रामसरूप' आदि नामों से भी जाना जाता है। इनका जनम गाँव दिसौर खेड़ी, जिला रोहतक में सन् 1890 में हुआ था। बाल्यकाल से ही उन्हें गाने—

बजाने का शौक था। वे जाति से पंडित थे। उन्हीं के परिवार में उनके चाचा गंगाबिशन थे, वे उन दिनों अच्छा गाते थे, किंतु सांगीत आदि नहीं करते थे। पं० सरूपचंद ने अपने चाचा गंगाबिशन को गुरु बनाया और उनसे गुरुमंत्र ग्रहण कर अपनी रुचि को बढ़ावा दिया और बाद में सांगीत के क्षेत्र में प्रवेश कर नाम कमाया। इनका शृंगार-चित्रण कुछ और ही तरह का है—

छूज का दे रह्या चाँद उजाला, दूर तै हाथ हिलारी थी,  
मैं करणा चाहूँ था दो बात प्रेम की पर वा शरमा री थी,  
अल्हड़ मस्त जवानी उसकी मन में मेरे बसगी,  
नागण बणके इश्क जहर का मेरे मन में डंसगी,  
कसगी नैन कटारी तै गज बणके मतवारी।<sup>5</sup>

हरदेवा स्यामी गोरड़ गाँव में जन्मे थे, पं० दीपचंद के शिष्य थे। अपनी प्रतिभा के बल पर सांग के क्षेत्र में खूब जमे। यों तो पं० दीपचंद की लीक पर चलना ही कठिन काम था, पर इन्होंने उस लीक पर चलकर नए मार्ग का अनुसंधान किया। उनकी सोच देखिए—

घड़ी बैठ के ठाल (खाली समय) में बेमाता ने कर्या कमाल है,  
इस गोरी का शरीर रूप चम्पे के सी डाल है।  
बालाँ की श्यामलता के आगै, अमावस की भी फीकीरात है,  
चंद्रमा-सा मस्तक चमके, भौंह बणी धनुष की ढाल है।  
मृग से नेत्र, नाक सुआ-सा, रुखसारों पै वा देखी धात है,  
होठ पेची हूद परी के, चावल तै भी धैले दाँत हैं  
चीता-सा लंक और मोर-सी गर्दन, हथनी कैसी चाल है।  
इस गौरी का शरीर, यू चम्पे कैसी डाल है।<sup>6</sup>

सांग के क्षेत्र में पं० लखमीचंद के पदार्पण से पूर्व बाजेभगत का डंका बजता था। उनके अधिकतर सांग सामाजिक थे, कुछ शृंगार-प्रधान भी थे। उनके सांग 'दुष्यंत-शकुंतला' में शकुंतला का सौंदर्य वर्णित है—

के बण री परी उर्वशी सै, के या नागराज की जाई,  
बिना घटा रही चमक बिजली, रूप की इसी रुसनाई,  
कड़ै तै या आई हूर कुदरती, चलै किसी मुरगाई सी तिरती,  
रूप की दमक लागै चेहरे में, ओढ़ै चीर आवै सै।<sup>7</sup>

गाँव निंदाणा (रोहतक) में जन्मे धनपतसिंह हरियाणा के ख्यातिप्राप्त सांगियों में गिने जाते हैं। सांग मंचित करते समय उनकी अंगुलियाँ तीर की तरह चलती थीं— 'धनपतसिंह निंदाणे का अंगुलियाँ के मारै तीर।'।

उनका एक शिष्य 'श्याम' नृत्यकला में असाधारण था। धनपतसिंह ने नायिका का सौंदर्य यों वर्णित किया—

मोटी-मोटी आँख चमकीली बीच पूतली काली सै,  
सौ हूरों में देखण लायक तिरछी अदा निराली सै,  
धन-धन इसकी माता नै जिन लाड़ लड़ाके पाली सै,  
कोए मुँह लाके पीलेगा यो मद की भरी प्याली सै।<sup>8</sup>

पं० लखमीचंद के शिष्य पं० माईचंद का नाम सांग के क्षेत्र में अति विख्यात है। सच तो यह है कि पं० लखमीचंद की ख्याति का बहुत अधिक श्रेय बबैल (पानीपत) निवासी माईचंद को जाता है। वह उच्चकोटि के नर्तक थे। उनकी पोरी-पोरी मटकती थी। पं० माईचंद ने छः सात सांगों की रचना की। उषा का रूप देखते ही अनिरुद्ध पर इस तरह असर होता है—

देखते ही रूप परी का मेरै नागणी-सी लड़गी,  
खाके पड़्या तिवाला एकदम बिजली-सी पड़गी,  
चमकती सूरज कैसी धूप बणा दिया सब तरियाँ वेकूफ,  
देख परी का रूप मेरे तन की लाली झड़गी।<sup>9</sup>

शृंगार के दो पक्ष होते हैं— संयोग शृंगार तथा वियोग शृंगार। संयोग के अंतर्गत रूप-सौंदर्य, नखशिख-वर्णन, मिलन तथा कामक्रीड़ा आदि का वर्णन आता है। वियोग शृंगार के अंतर्गत नायक-नायिका का एक-दूसरे से बिछुड़ जाने पर अथवा प्रथम दर्शन के बाद प्रेमासक्ति के भावों का चित्रण आता है। हरियाणवी लोककवियों ने जहाँ संयोग शृंगार के इंद्रधनुषी चित्र उकेरे हैं, वहीं वियोग शृंगार में भी बिछुड़ने का दर्द चरम सीमा तक अभिव्यक्त किया है। पं० माईराम ने अपने सांग 'उदयमान संतोषकुमारी' में नायक-नायिका के प्रथम दर्शन में ही नायिका की मनोदशा का चित्र यों खींचा है—

साल-गिरह की भेंट-भाट सब भूल गई संतोष।  
उदयमान की श्यान देख के होगी थी बेहोश।  
काम नशे में दिल डिगग्या संतोषकुमारी का।  
के सोच्या के बणग्या होग्या खेल मदारी का।  
ओट सकी ना वार प्रेम की चोट करारी का।<sup>10</sup>

कवि धनपतसिंह ने अपने सांग 'चंदा-सूरज' में नायक-नायिका के बिछुड़ जाने पर नायक की दशा का वर्णन इस प्रकार किया है—

चंदा आवै याद देखता बाट चौबारे में,  
बिन चंदा मेरी सूनी दिखै खाट चौबारे में,  
तेरे प्रेम में मस्त हुया, हो गया दिवाना मैं,  
मेरी शमा तू कित लहुकगी, जल गया पखाना मैं।<sup>11</sup>

लोककवि पं० कामसिंह के किस्से 'पवन-अंजना' में एक चकवी के वियोग को देखकर पवन के मन में अंजना की याद आती है तो विरहाकुल होकर सोचने लगता है—

बीर मर्द के प्यार का मन्ने आज पाटग्या बेरा।  
भीतर बड़-बड़ रोवती होगी का अंजना तीज-त्योहारौ नै,  
चकवी की ज्यों कर के याद वा मेरे किसे गँवारौ नै,  
धरती में पड़ सोवती होगी, तज के पिलंग निवारा नै,  
फोड़ गरै ना कदे महल की टक्कर मार दीवारौ नै,  
लोक व्यवहारौ ने देख-देख के कदे खो दे कुआ भोरा।<sup>12</sup>

मानवीय मनोभावों के महान चितरे पं० लखमीचंद ने अपने सांग 'पद्मावत' में वियोग शृंगार का अद्भुत कीर्तिमान स्थापित किया है। कोई अलौकिक सीमा तक गया व्यक्ति

ही ऐसा विरह-वर्णन कर सकता है। पद्मावत को स्वप्न में रणवीर दिखाई दे जाता है, आँखें खुलने पर कुछ हाथ नहीं। सखियाँ सावन में झूलने के लिए बुलाती हैं, तो वह अपनी मनोदशा को इस प्रकार व्यक्त करती है—

तीन रोज हो लिए तड़पती नै, कुछ ना खाई खेली।  
हे भाइयों की सौँह जी ज्यांगी, दिए दर्शन करा सहेली।  
इश्क का नाग लड्या मेरे तन में,  
जणूँ कित लुहकग्या डस के,  
मैं परसों की बेमार पड़ी, मेरी सारी काया चसके,  
जवानी का रंग कुछ ना देख्या, मनै पीहर के म्हं बसके,  
तुम गाओ गीत झूलल्यो हंस के, मैं बेशक मरूँ अकेली।<sup>13</sup>

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हरियाणवी लोककवि भी अन्य भाषाओं के महाकवियों की भाँति शृंगाररस की योजना में किसी से कम नहीं हैं। अत्यंत खेद, विडंबना एवं हरियाणवी भाषा के दुर्भाग्य का विषय है कि इन धरतीपुत्र लोककवियों के मस्तक पर अभिशाप की एक पट्टी जन्म से ही बँधी थी, जिस पर लिखा था—‘मैं अनपढ़ हूँ’ इन साधकों की जीवन-भर की साधना को आज के युग के लोगों ने अभी तक पहचानने, समझने और प्रकाश में लाने का प्रयास नहीं किया। अनपढ़ तो कबीर भी था, उसे प्रकाश में लानेवाले आचार्य हजारीप्रसाद ‘द्विवेदी’ जब मिल गए तो सारी दुनिया ने कबीर को नमन किया। वह समय दूर नहीं, जब इन धूल में छिपे हीरों के जौहरी इनकी चमक-दमक और कीमत को जन-जन तक पहुँचाएँगे और माँ भारती भी कबीर जैसे इन सैकड़ों की माँ होने का गर्व कर सकेगी।

#### संदर्भ

1. पं० सूबेराम (80 वर्ष), कुटानी रोड, पानीपत, साक्षात्कार (17.11.2010)
2. लक्ष्मीनारायण शर्मा ‘वत्स’, रत्न-कोष, पृ० 250
3. रघुबीरसिंह ‘मथाना’, पं० माँगेराम ग्रंथावली, पृ० 105
4. पं० भोलाराम, सांगीत : सत्यवान-सावित्री
5. डॉ० राममेहर सिंह, हरियाणवी सांगीत का उद्भव और विकास, पृ० 115
6. लोककवि हरदेवा स्यामी सांगीत : चंदकिरण
7. बाजेभगत, सांगीत : दुष्यंत-शकुंतला
8. लोककवि धनपतसिंह, सांगीत : बणदेवी
9. पं० माईचंद, सांगीत : उषा-अनिरुद्ध
10. पं० माईराम, सांगीत : उदयभान-संतोषकुमारी
11. लोककवि धनपत सिंह, सांगीत : चंदा-सूरज
12. पं० सूरतसिंह, सांगीत : पवन-अंजना
13. लक्ष्मीनारायण शर्मा ‘वत्स’, रत्नकोष, पृ० 277

## इक्कीसवीं शताब्दी के नाटकों में परिवर्तित रंगमंचीय स्वरूप

भागीरथ, शोध-छात्र

हिंदी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

डॉ० सरिता वशिष्ठ, शोध निदेशिका

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

इक्कीसवीं सदी तीव्रतर परिवर्तनों की सदी है, जिसमें प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन दिखाई दे रहा है। नाटक, साहित्य की अभिनय-प्रधान विधा है, जिसमें संवाद और दृश्यों के माध्यम से विभिन्न चरित्रों, स्थितियों और भावों को प्रदर्शित किया जाता है। 'रंगमंच कला का सर्वाधिक शक्तिशाली जनतांत्रिक स्वरूप है। रंगमंच का जनतांत्रिक होना ही उसके आस्वादन को आत्मीय और गहरा तथा उससे जुड़ाव उत्कृष्ट बनाता है।' नाटक के परंपरागत तत्त्वों— कथावस्तु, पात्र-योजना, रस, उद्देश्य, देशकाल, अभिनय, संवाद में नए-नए प्रयोगों के कारण परिवर्तन आता गया है। आज के नाटकों की यह स्थिति होती जा रही है कि वैज्ञानिक उपकरणों के अधिकाधिक प्रयोग से नाटक का 'कथा-तत्त्व' कम महत्वपूर्ण होता जा रहा है। अभिनय, संगीत, चित्रकला, रंग-मंच, सज्जा, प्रकाश-व्यवस्था आदि कथा-तत्त्व को ढक लेते हैं। कथावस्तु में जिन स्थितियों, उतार-चढ़ावों, नियम-मर्यादाओं का शास्त्रीय विधान संस्कृत नाट्य-शास्त्रीय ग्रंथों में निर्धारित किया गया, वह टूट सा गया है। समय की आवश्यकता को देखते हुए यह ठीक भी है। अत्यधिक जकड़बंदी से नाटक का मुक्त प्रवाह बाधित होता था। आज के नाट्य-कर्मियों ने भले ही पश्चिम के प्रभाव से नए-नए प्रयोग किए हों, लेकिन इनमें सफलता मिली है। इक्कीसवीं सदी के नाटकों में परिवर्तित रंगमंचीय स्वरूप को नाटक के तत्त्वों के माध्यम से दर्शाया गया है।

### दृश्य-विधान :

कथावस्तु के स्वरूप-निर्धारण में पात्र, स्थान, घटना और परिणाम— इन सभी अंशों का उचित योग रहता है। 21वीं सदी के नाटकों की कथावस्तु न तो अधिक विस्तृत ही है और न संक्षिप्त ही, वरन् उसमें घटनाएँ इस प्रकार से सगुंफित हैं कि मूल कथावस्तु भावनालोक से संबद्ध हो जाती है। 'दिल्ली-6'<sup>2</sup> नाटक की कथावस्तु को तीन अंकों में विभक्त किया गया है। नाटक का कथानक बहुत ही जाना-पहचाना सा लगता है। यानि एक प्रेमिका और दो प्रेमी उनके बीच पैदा होने वाली ग़लतफ़हमियों के कारण कथानक उलझता जाता है। भाषा

में रवानगी और उसी अनुपात में अभिनय में एक खास किस्म का खुलापन है, जो बहुत कुछ पारसी रंगमंच की याद दिलाता है। देवेंद्रराज अंकुर ने लिखा है कि हमारे यहाँ अच्छे हास्य नाटकों का नितांत अभाव है, 'दिल्ली-6' नाटक उस शिकायत को काफ़ी हद तक दूर करेगा।<sup>3</sup> 'दयाशंकर की डायरी'<sup>4</sup>, 'सकुबाई'<sup>4</sup> नाटकों में नादिरा जहीर बब्बर ने बिना अंकों के एक दृश्य-बंध में दिखाया है। रंगमंच की दृष्टि से यह एक नया प्रयोग है। 'जी, जैसी आपकी मर्जी'<sup>6</sup> नाटक एक अंक में प्रस्तुत किया गया है। नाटक समाज में नारी की स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन लाने की कथा को वर्णित करता है। 'यहीं कहीं बहुत दूर'<sup>7</sup> नाटक की वस्तु तीव्रता से बदलते हुए आज के सामाजिक परिवेश में मानवीय संबंधों में एकदम चौंकाने वाली है। समलैंगिकता इसी प्रकार का विषय है, जिसे हम चारों ओर देखते, अनुभव करते हैं। 'जरूरत इसी की थी'<sup>8</sup> में कृष्ण अभ्वष्ट ने सामाजिक विकृति-बालाश्रम, जो तमाम घोषणाओं और कानूनी कसरतों के बावजूद आज भी हमारे सामने भयावह रूप में उपस्थित है, को संवेदनशील भाषा और संतुलित रंग-संयोजन के माध्यम से दर्शाया है। 'आगरा बाज़ार'<sup>9</sup> हबीब तनवीर ने स्पष्ट किया है कि बाज़ार को परिचालित करने की ताक़त पैसा है। अमीर हो या गरीब यहाँ तक कि फ़कीर भी, मन से पैसे के लिए जोड़-तोड़ करते हैं। हबीब तनवीर रंगसज्जा बहुत सादगी भरी रखते हैं। आगरा बाज़ार की रंगसज्जा में यथार्थवादी ढाँचा तैयार किया गया है।<sup>10</sup> 'बहादुर कलारिन'<sup>11</sup> में सामंतवाद पर वार किया गया है। चर्चित नाटककार सुशीलकुमार सिंह ने देश-विभाजन की त्रासदी के साथ प्राप्त स्वतंत्रता का उल्लास 'अलख आज्ञादी की'<sup>12</sup> नाटक में दर्शाया है। दो ढाई सौ वर्षों के इतिहास को नाटक की शक्ति में मंच पर उतारा है। 'चार यारों की यार'<sup>13</sup> नाटक मुख्य पात्र बिंदिया की त्रासदी के गिर्द बना गया है। बिंदिया की कहानी इस देश के अनेकानेक औरतों की व्यथाकथा है। 21वीं सदी के नाटकों में केवल एक ही दृश्य-फलक पर संपूर्ण कथावस्तु को तीन या दो अंतरालों में विभक्त किया गया है, जो रंगमंच की दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त है।

#### पात्र-योजना :

नाटक में पात्रों की मुख्य भूमिका होती है। नाटक की कथावस्तु को गति पात्र ही प्रदान करते हैं। डॉ० सुशीला धीर के अनुसार 'नाटकों में पात्रों अथवा चरित्रों की प्रधानता रहती है। नाटक के सभी तत्त्व पात्र या नायक के ही आश्रित रहते हैं।'<sup>14</sup> 'गगन दमामो बाज्यो'<sup>15</sup> में पात्र बिस्मिल और भगत के चरित्र-चित्रण द्वारा राष्ट्रप्रेम को दर्शाया गया है। नाटक में चरित्र-चित्रण कथा के रूप में विश्लेषणात्मक ढंग से नहीं किया जाता, बल्कि अभिनयात्मक ढंग से होता है। 'अमली' नाटक में रमेसर और बुधिया के आपसी संवाद उनके चरित्र का उद्घाटित करते हैं।

बुधिया : का हुआ रे रमेसर? अब सूरज माथ ऊपर चढ़ेगा अडर तू आँगम में बइठा है?

रमेसर : माई तुम्हारी आँख की जोत तो भिनसार तक ठीक थी। घंटा-दू-घंटा में कइसे कम हो गई? <sup>16</sup>

'एक मामूली आदमी'<sup>17</sup> का मुख्य पात्र म्यूनिसिपैलिटी का एक साधारण-सा हैड क्लर्क है। तीन साल पहले उसकी पत्नी का देहांत हुआ था, तभी से ज़िंदगी में उसकी

दिलचस्पी भी जाती रही। नाटककार ने इस तथ्य पर बल दिया है कि साधारणता भी एक सार्थक और उल्लासमय जीवन का साधन बन सकती है। 'चुप हो जाओ पीटर' का नायक पीटर है। उसके अपने जीने के ढंग और मूल्य अलग हैं। रंगमंच एवं नाट्य-शिल्प की दृष्टि से नाटक सफल हैं, क्योंकि पात्र संख्या नाटक के आरंभ में दर्शा दी है जो मंच पर आसानी से नाटक को सफल बना सकती है।

वाटलीवाला : इसे मज़ाक मत समझो।

पीटर : तुम मेरी मारिया की तस्वीर के अलावा सब-कुछ ले जा सकते हो।

इस भगवान को भी। बड़ा अहसान होगा तुम्हारा।<sup>18</sup>

हबीब तनवीर के संपूर्ण रंगकर्म की विशेषता सादगी है। वे पात्रों से ऐसी बातें कह जाते हैं, जो गंभीरता में भी नहीं कही जाती है। 'आगरा बाज़ार' में फेरी वाले और दुकानदार भी रोटी के लिए जूझने वाले आदमी को ही पेश करते हैं। फ़कीरों के माध्यम से नाटककार ने कहलवाया भी है— 'हम तो न चाँद समझे, न सूरज हैं जानते बाबा, हमें तो ये नज़र आती है रोटियाँ।'<sup>19</sup>

'आज दर्शक यह चाहता है कि पात्र चाहे पौराणिक हो, ऐतिहासिक हो या समसामयिक, उसका मनुष्य और साधारण मनुष्य होना पहली शर्त है।'<sup>20</sup> इक्कीसवीं सदी के नाटकों में चरित्र-चित्रण का विधान आमूल-चूल बदल गया है। अब नाटक का नायक प्रत्येक स्थिति में अभिजात वर्ग का नहीं होता, वह हमारे समाज का जाना-पहचाना प्राणी होता है। वह अपने जीवन में सामाजिक स्तर पर अनेक परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ अथवा उनके अनुसार अपने को ढालता हुआ दिखाई पड़ता है। पात्रों की सजीव सृष्टि के लिए आवश्यक है कि उनकी संख्या सीमित हो। इस विचार से इक्कीसवीं शताब्दी के नाटक मंच के अनुकूल है, क्योंकि उनमें पात्रों की भीड़ से बचा गया है।

### संवाद या कथोकथन :

इक्कीसवीं सदी के नाटक संवाद की दृष्टि से रंगमंच के अनुकूल हैं, क्योंकि नाटककार ने संवादों को सरल, सहज और प्रभावोत्पादक रूप में प्रस्तुत किया है। कथोकथन का संबंध पात्रों के चरित्र-चित्रण एवं कथावस्तु के विकास से है। इन दोनों बातों को ध्यान में रखकर जो कथोकथन लिखे जाते हैं, वे सफल होते हैं। 'कॉफी होम' नाटक में शशिकिरण ने चुस्त, चुटीले और प्रसंगानुकूल संवाद प्रयोग किए हैं—

प्रोफेसर : आप ठीक कह रही हैं। ऐसा इसलिए हो रहा है, क्योंकि जनप्रतिनिधि सही मायने में प्रजातांत्रिक ढंग से चुने ही नहीं जाते।

कापाली : क्या यह व्यवस्था ऐसे ही चलती रहेगी? इसका कोई उपाय नहीं है?<sup>21</sup>

'जनवासा' में छोटे-छोटे और सरल संवादों का प्रयोग हुआ है। विरसा मुंडा के जीवन पर केंद्रित नाटक 'धरती आबा' में हृषिकेश सुलभ ने इतने सरल, मार्मिक, प्रसंग अनुकूल संवाद लिखे हैं, जिससे श्रोता भावविभोर हो जाता है—

विरसा : मुंडाओं के सुख के लिए मैं मरने को तैयार हूँ।

करमी : जा मेरे लाल, जा। जाकर पहाड़ के माथ पर चढ़ जा और पुकार सबको। बता दे कि तू इस धरती का आबा है।<sup>22</sup>

डॉ० शांति मलिक का कथन है कि नाटक के विभिन्न उपकरणों को एक सूत्र में पिरोकर नाटक का रूप प्रदान करने वाला तथा नाट्यशरीर में सजीवता का संचार करने वाला एक मात्र तत्त्व संवाद ही है।<sup>23</sup> 'रंग-राजतरंगिणी'<sup>24</sup> नाटक में प्रजा पर होने वाले अत्याचार, राजा के कुसंगी मित्र आदि आज के हालात जैसे प्रतीत होते हैं। पात्रों के आपसी बातचीत से नाटक की रंगमंचीय बढ़ जाती है। इक्कीसवीं सदी के नाटकों के संवादों में नाटकीय गति, दृश्य-लय और पैनी अर्थ-व्यंजना है। जिससे नाटकीय संवाद रंगमंच की दृष्टि से प्रभावोत्पादक हो सके।

### देशकाल और परिवेश :

नाटक में देशकाल और परिवेश का सबसे अधिक महत्त्व है, क्योंकि बिना उपयुक्त वातावरण का निर्माण किए नाटककार अपने वर्ण्य-विषय को संप्रेषित करने में असमर्थ रहता है। डॉ० विपिन गुप्त का कथन है कि 'कथानक और उसके संचालक पात्रों का सीधा संबंध देश, काल और जीवन की विविध सत्-असत् परिस्थितियों से होता है।'<sup>25</sup> आगरा बाज़ार में आगरे के बाज़ार का वातावरण नाटककार ने सफलता के साथ दर्शाया है। महेश आनंद ने लिखा है कि इस नाटक में कोई कहानी नहीं, तीन अंकीय ढाँचा नहीं, कोई नायक या मुख्य पात्र नहीं। बस एक बाज़ार के कुछ हिस्सों में रंग भरने थे। बाद में धीरे-धीरे स्पष्ट हुआ कि यही हिस्से बाज़ार का वातावरण बुनते हुए उसे एक पात्र बना देते हैं। यही नाटक का नायक है।<sup>26</sup> 'बहादुर कलारिन'<sup>27</sup> में सामंतवादी वातावरण को दर्शाया गया है कि किस प्रकार गाँव में सामंतवाद अपना प्रभाव रखता था। रंगमंच पर हबीब तनवीर का नाटक पूर्णतः सफल है। 'जी, जैसी आपकी मर्जी'<sup>28</sup> नाटक देशकाल और वातावरण की दृष्टि से रंगमंच पर सफल है, क्योंकि नाटक हमारे समाज की मानसिकता को बहुत सच्चाई से प्रतिबिंबित करता है, चाहे वे धार्मिक मान्यताएँ हों, जो स्त्री का दम घोट देती हैं या फिर हमारी रूढ़िवादी परंपराएँ। सर्वव्यापी भ्रष्टाचार के दौर में प्रदूषित राजनीतिक परिवेश का चित्रण 'दिल्ली-6' में किया गया है। डी०जी०पी० के माध्यम से नाटककार ने स्पष्ट किया है— हमारे देश की राजनीति एक नए मोड़ पर पहुँच रही है। शुरुआत में अधिक सच्चे देशभक्त और सच्चे इंसानों ने देश की बागडोर थाम रखी थी। उसके बाद बारी आई अनपढ़, जाहिलों, माफियों, खूनियों, डाकुओं, दलालों और मस्करों की सल्तनत।<sup>29</sup> इक्कीसवीं सदी के नाटककार अपने दायित्व के प्रति अत्यधिक सजग हैं। उनके नाटक मंच पर इस ढंग से प्रस्तुत किए जाते हैं कि दर्शक यह समझने लगते हैं कि वे किसी सच्ची घटना को प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

### भाषा :

नाटक की भाषा पात्रों द्वारा मंच पर दर्शकों के सामने बोली जाती है। नाटक की भाषा नाटकीय गुणों से युक्त अभिनय के हाव-भाव तथा नाटकीय मनोरंजकता लिए होती है। डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल का कथन है कि 'नाटक की भाषा सरल, सुबोध, प्रवाहयुक्त तथा प्रभावोत्पादक होनी चाहिए, जिससे प्रेक्षक नाटककार के भावों को भली-भाँति हृदयंगम कर सके।'<sup>30</sup> सुमन और सना में नाटककार ने सहज, मार्मिक और सरल भाषा में सांप्रदायिक नफरत की वजह से होने वाले दंगों का चित्रण किया है। भाषा की स्पष्टता ही नाटक की सफलता है। भाषा में गीतों का प्रयोग भी किया गया है, जो दर्शकों को बाँधे रखने में सहायक हैं—



नंद ऋषि : शिव है कण-कण में करता वास  
क्यों करते हो भेद  
हो आलिम तो खुद को पहचान  
यही साहिब से तेरा मिलना।<sup>31</sup>

‘एक मामूली आदमी’ में सामाजिक, पारिवारिक रिश्तों, नौकरशाही और मानवीय मूल्यों को जनसामान्य की चलती भाषा में प्रकट किया गया है।

उमेश : तुम बात ही ऐसी कर रही हो। छोटी-छोटी बातें। मामूली ज़िदगियों में कोई बड़ी बात नहीं हुआ करती, मैडम?

रमा : सिवाय मौत के।<sup>32</sup>

‘सफ़ेद घोड़े का सवार’<sup>33</sup> में नाटकार ने गाँव में घुस आई राजनीतिक तिकड़मों, अशिक्षा, नशा, सामंती-व्यवस्था पर प्रहार के साथ ही शिक्षित युवाओं के संघर्ष एवं आक्रोश को भी प्रभावपूर्ण शब्दावली में मंचित किया है। नैमिचंद्र जैन का विचार है कि ‘श्रेष्ठ नाटक की भाषा ऐसी होती है कि उसमें भाव, विचार और चित्र, तीनों के वहन करने की सामर्थ्य हो, फिर भी वह बोलचाल की भाषा से बहुत दूर ना हो।’<sup>34</sup> इक्कीसवीं सदी के नाटककारों ने भाषा के प्रति अत्यधिक सजगता दिखाई है, जिससे नाटकों की भाषा दृश्य-विधान, अभिनय, गति तथा अन्य रंगीन तत्वों से जुड़कर सत्याभास कराने में समर्थ हुई है। इक्कीसवीं सदी के नाटकों की भाषा भावों की सरलता के अनुरूप प्रवहमान है तथा नाटक को रंगमंचीय गति देने में समर्थ है।

### रस और उद्देश्य :

अभिनय देखते समय प्रेक्षकगण अभिनीत वस्तु के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लेने में जब अपना सर्वस्व भूलकर आनंदित हो उठते हैं अथवा अश्रु-प्रवाह करने लगते हैं, तो उनके भावों की यह लोकोत्तर आनंदानुभूति की स्थिति ही रस कहलाती है। ‘हुमा को उड़ जाने दो’ नाटक के अँगूठी वाले दृश्य में शृंगाररस का चित्रण किया गया है। आलोच्य नाटक रस की दृष्टि से रंगमंच के अनुकूल है।

हुमायूँ : (अँगूठी बढ़ाकर) हजूर यह हीरा भी आप ही की नजर है..

हमीदा बानो : (कुछ लजाकर प्रसन्न स्वर में) तो पहनाइए। (हमीदा बानो हाथ आगे बढ़ाती है तो हुमायूँ बहुत प्रेम से अँगूठी पहनाते हैं।)<sup>35</sup>

नाटक से मिलने वाले रस से सामाजिक को आनंद आता है, इसलिए कालिदास ने माना है कि ‘नाटक केवल साधारण व्यक्तियों को ही आनंद नहीं पहुँचाता, बल्कि देवताओं को प्रिय लगने वाला एक यज्ञ का काम भी करता है। नाटक ही एक ऐसा उत्सव है, जिसमें भिन्न-भिन्न रुचि वाले प्रत्येक व्यक्ति को एक-सा आनंद मिलता है।’<sup>36</sup> इक्कीसवीं सदी के हिंदी नाटकों में प्राचीन नाटकों के समान सामाजिक को रसानुभूति करने का प्रयास अवश्य रहता है, जिसके मूल में मानव-जीवन को उदात्त बनाने तथा उनकी रुचियों को परिष्कृत करने की भावना रहती है। ‘आगरा बाज़ार’<sup>37</sup> में आम आदमी की ज़िदगी और उसके रोज़मर्रा के सरोकारों को विषय बनाया गया है। ‘आगरा बाज़ार हिंदुस्तान के रंगमंच में एक मील का पत्थर साबित हुआ है।’<sup>38</sup>

इक्कीसवीं सदी के नाटक रंगमंच की दृष्टि से सफल कहे जा सकते हैं, क्योंकि

इनमें मानव के शाश्वत भाव, अनुभूतियों और समस्याओं को स्थान दिया गया है तथा इनका यथार्थ और आदर्श चित्रण ही प्रमुख रूप से किया गया है।

#### संकलनत्रय :

21वीं सदी के नाटकों का रंगमंचीय दृष्टि से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि उनमें समय, स्थान और कार्य की अन्वितियों का पालन हुआ है। बचनसिंह का कथन है— 'समय, स्थान और कार्य की ऐसी योजना होनी चाहिए कि वे दर्शकों को असंभावित न प्रतीत हों।' <sup>39</sup> 'धारा एक सौ चवालीस' <sup>40</sup> नाटक मंच को ध्यान में रखकर ही लिखा गया है। यह एक ऐसा नाटक है, जो एक साधारण मंच पर भी खेला जा सकता है, और खुले मंच पर भी। नाटक की मुख्य बात यही है कि सभी पात्रों के भीतर के आदमी को झाँककर देखने का प्रयास किया गया है, चाहे वह वृद्ध महिला हो, चाहे थानेदार। अनावश्यक रूप से न कोई क्रूर है और न कोई बेचारा। जो है वो है। 'जी, जैसी आपकी मर्जी', 'सकुबाई', 'दयाशंकर की डायरी', 'सुमन और सना' में संकलनत्रय का पालन किया गया है। रंगमंच की दृष्टि से ये नाटक सफल हैं। 'सकुबाई' <sup>41</sup> नाटक उच्चवर्गीय, सुसंस्कृत, पढ़े-लिखे और सामाजिक रूप से संवदेनशील समाज के पाखंड, ढोंग के बारे में सोचने को बाध्य करता है और साथ ही एक साधारण निम्नवर्गीय समाज की स्त्री के मनोबल और खुद की मदद करने की ताकत से सीख लेने की प्रेरणा देता है। काफ़ी होम नाटक की सारी घटनाएँ ऐसे रूप में प्रस्तुत की गई हैं कि उसकी अंतिम परिणति एक ही स्थान पर हुई है।

कैशियर : काफ़ी होम की शांति भंग मत करिए। यहाँ का वातावरण दूषित मत करिए। यह पार्लियामेंट नहीं है, बहुत कुछ सोचते हैं, चर्चा करते हैं, आप सब इस काफ़ी होम में, ज़रा सोचिए, से बात करने से क्या होगा? <sup>42</sup>

नाटक का कथानक और उसके संचालक पात्रों का सीधा संबंध देश, काल और जीवन की विविध परिस्थितियों से होता है। कथानक चाहे काल्पनिक हो, तब भी उसमें किसी न किसी देश, काल तथा स्थान की अवतारणा करनी पड़ती है। 21वीं सदी के नाटक संकलनत्रय विधान की दृष्टि से सफल हैं।

#### वर्तमान रंगमंचीय संकल्पना :

इक्कीसवीं सदी के नाटक रंगमंच के अनुकूल लिखे गए हैं। अमली, दिल्ली-6, धरती आबा, जी, जैसी आपकी मर्जी, आज का सच, चुप हो जाओ पीटर, आगरा बाज़ार, बहादुर कलारिन, सूखी नदी, ये आदमी ये चूहे, जाँच-पड़ताल, गगन दमामो बाज्यो, चार यारों की यार, हुमा को उड़ जाने दो आदि नाटक रंगमंच को अपने में समेटे हुए हैं। इन नाटकों में रंगमंच के विषय में एक नया उन्मेष दिखाई देता है। रंगमंच से संबंधित प्रत्येक दिशा-ध्वनि, प्रकाश-व्यवस्था और दृश्य सज्जा आदि की दृष्टि से इक्कीसवीं सदी के नाटक सफल हैं। नाटक की आत्मा और लेखक का संप्रेष्य रंगमंच पर ही मूर्त रूप ग्रहण करता है। नाटक का पूर्ण प्रस्फुटन और संप्रेषण रंगमंच पर अभिनेताओं द्वारा प्राण-प्रतिष्ठा के बिना नाटक को संपूर्णता प्राप्त नहीं होती। इसीलिए नेमिचंद्र जैन का कथन है कि 'रंगमंच से अलग करके नाटक का मूल्यांकन या उसके विविध अंगों और पक्षों पर विचार अपूर्ण ही नहीं, भ्रामक हो जाता है।' <sup>43</sup> 'जी, जैसी आपकी मर्जी'

नाटक रंगमंच की अनुकूलता को सहज ही दर्शा देता है। नाटक में चार स्त्री-पात्र हैं, जिनकी भूमिका को मंच पर देखकर दर्शक आसानी से नाटक के मूल भाव 'समाज में नारी का क्या महत्त्व है' को समझ जाते हैं। दीपा के माध्यम से नाटककार ने व्यक्त किया है— 'मैं हमेशा सोचती हूँ, ऐसा क्यों होता है? क्यों अम्मां को मार पड़ती है? क्यों हम बहनों को मार पड़ती है, क्यों भैया इंग्लिश मीडियम में और हम बहिनें हिंदी मीडियम में?'<sup>44</sup> हबीब तनवीर के 'आगरा बाज़ार'<sup>45</sup> में इतनी तारतम्यता दिखाई देती है कि लगभग सौ पात्र होने पर भी मंच शांत रहता है। उनके मंच पर कोई भी दृश्य, अभिनय का कोई भी हिस्सा, दृश्य-बंध का कोई भी सामान अनावश्यक दिखाई नहीं देता। 'दिल्ली-6'<sup>46</sup> अपनी सहजता और सरलता के कारण रंगमंचीयता से युक्त है। यह नाटक अलग-अलग मंडलियों द्वारा बार-बार खेला जाएगा, क्योंकि इसकी सबसे बड़ी सुविधा यह है कि इसे बिना किसी अतिरिक्त और भारी-भरकम तामझाम के किसी भी उपलब्ध प्रेक्षागृह में खेल सकते हैं। 21वीं सदी के नाटकों में रंगमंच-व्यवस्था के अंतर्गत मंचसज्जा, पट-व्यवस्था, नेपथ्य-व्यवस्था, प्रकाश-व्यवस्था, संगीत-व्यवस्था और ध्वनि-संबंधी आवश्यक निर्देशों का पालन किया गया है।

#### निष्कर्ष :

21वीं सदी का पहला एक दशक बीत जाने पर यह साफ़ तौर पर नज़र आ रहा है कि आज भारतीय रंगमंच में सीधी-सादी यथार्थवादी प्रस्तुतियों के लिए ज्यादा जगह नहीं बची है। यह सही है कि प्रस्तुतियाँ किसी भी शैली में हों, वह हमेशा अपने समय के यथार्थ को ही सामने लाती हैं। लेकिन इसका अर्थ यह कदापि न लिया जाए कि उसके प्रस्तुतीकरण की शैली भी मात्र यथार्थवादी होगी। इसमें कोई संदेह नहीं है कि पूरी तरह से यथार्थवादी प्रस्तुतियों ने भारतीय और विश्व रंगमंच में कम से कम पिछले सौ-डेढ़ सौ साल तक अपना वर्चस्व बनाए रखा। लेकिन इसके साथ-साथ सच्चाई यह भी है कि जब-जब निर्देशक और अभिनेता को उसे छोड़ने की आंतरिक ज़रूरत महसूस हुई तो उसने ज़रा भी देर नहीं लगाई। आज रंगमंच के अनुकूल जो नाटक लिखे जा रहे हैं, उनकी संख्या लगातार बढ़ रही है, परंतु जिस शिक्षित वर्ग को नाटककार ये नाटक दिखाना चाहता है, उसका तो इन नाटकों से परिचय ही नहीं है। यही रंगमंच की असफलता का कारण भी है। नाटक एक विशिष्ट विधा है, जो पहले रंगमंच की होती है और फिर अपने होने वाले प्रयोजन की पूर्णता सिद्ध करवाती है। इक्कीसवीं सदी का नाटककार मानवीय संवेदना के बहुविध रूपों को रंगमंचीय दृष्टि से पचाकार शिल्प-दृष्टि से पारंपरित और नवीन नाट्य-शैलियों का अद्भुत सम्मिश्रण कर रंगमंच को नयी दिशा दे रहा है।

#### संदर्भ

1. हृषिकेश सुलभ : रंगमंच का जनतंत्र, पृ० 13
2. ललितसिंह पोखरिया, दिल्ली-6
3. देवेंद्रराज अंकुर, सातवाँ-रंग, पृ० 128
4. वही, दयाशंकर की डायरी
5. नादिरा जहीर बब्बर, सकुबाई
6. वही, जी जैसी आपकी मर्जी
7. मोहन महर्षि, यहीं कहीं बहुत दूर

8. कृष्ण अम्बष्ठ, ज़रूरत इसी की थी
9. हबीब तनवीर, आगरा बाज़ार
10. नटरंग, पृ० 66, अंक 86-87, जुलाई-दिसंबर-2010
11. हबीब तनवीर, बहादुर कलारिन
12. सुशीलकुमार सिंह, अलख आज्ञादी की
13. वही, चार यारों की यार
14. डॉ० सुशीला धीर : भारतेंदुयुगीन नाटक, पृ० 30
15. पीयूष मिश्रा, गगन दमामो बाज्यो
16. हृषिकेश सुलभ, 'अमली' पृ० 32
17. अशोक लाल, एक मामूली आदमी
18. यादवेंद्र शर्मा चंद्र, चुप हो जाओ पीटर, पृ० 171
19. हबीब तनवीर, आगरा बाज़ार, पृ० 52
20. जयदेव तनेजा, समसामयिक हिंदी नाटकों में चरित्र-दृष्टि, पृ० 14
21. शशिकिरण, काफ़ी होम, पृ० 20
22. हृषिकेश सुलभ, धरती आबा, पृ० 35
23. डॉ० शांति मलिक, नाट्य-सिद्धांत विवेचन, पृ० 71
24. मोतीलाल क्यमु, रंग-राजतरंगिणी
25. डॉ० विपिन गुप्त, हिंदी नाटक में समसामयिक परिवेश, पृ० 47
26. महेश आनंद, नटरंग, अंक 86-84, पृ० 79, जुलाई-दिसंबर 2010
27. हबीब तनवीर, बहादुर कलारिन
28. नादिरा जहीर बब्बर, जी, जैसी आपकी मर्जी
29. ललितसिंह पोखरिया, दिल्ली-6, पृ० 34
30. डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, रंगमंच और नाटक की भूमिका, पृ० 120
31. नादिरा जहीर बब्बर, सुमन और सना, पृ० 35
32. अशोक लाल, एक मामूली आदमी, पृ० 19
33. महावीर रवांल्टा, सफ़ेद घोड़े का सवार
34. नैमिचंद्र जैन, रंग दर्शन, पृ० 43
35. मीराकांत, हुमा को उड़ जाने दो, पृ० 34
36. डॉ० दशरथ ओझा, हिंदी नाटक : उद्भव और विकास, पृ० 26
37. हबीब तनवीर, आगरा बाज़ार
38. नटरंग : पृ० 54, अंक 86-87, जुलाई-दिसंबर 2010
39. बचन सिंह, हिंदी नाटक, पृ० 211
40. किशोरकुमार सिन्हा, धारा एक सौ चवालीस
41. नादिरा जहीर बब्बर : सकुबाई
42. शशिकिरण, काफ़ी होम, पृ० 69
43. नैमिचंद्र जैन, रंगदर्शन, पृ० 21
44. नादिरा जहीर बब्बर : जी, जैसी अपनी मर्जी, पृ० 18-19
45. हबीब तनवीर, आगरा बाज़ार
46. ललितसिंह पोखरिया, दिल्ली-6

## लाला भगवानदीन दीन जी का समग्र प्रदेय

श्रीमती किरन मिश्रा

लाला भगवानदीन टीका-पद्धति के प्रतिनिधि समीक्षक थे। उन्होंने जो ग्रंथ संपादित किये हैं, उनमें लंबी-लंबी भूमिकाएँ प्राप्त होती हैं। लालाजी ने प्राचीन कवियों को बड़े मनोयोग के साथ पढ़ा था। उनके एक-एक छंद की विस्तृत टीका लिखी थी और उन पर महत्त्वपूर्ण समीक्षात्मक टिप्पणियाँ प्रस्तुत की थीं। उनके द्वारा संपादित ग्रंथ हैं—

1. सूर पंचरत्न
2. केशव पंचरत्न
3. रामचंद्रिका (केशव कौमुदी)
4. कविप्रिया (प्रियप्रकाश)
5. रसिकप्रिया की टीका
6. तुलसी पंचरत्न
7. भक्तिभवानी
8. रामचरणांक माला
9. विनय पत्रिका-टीका
10. दोहावली टीका
11. कवितावली-टीका
12. अरण्यकांड टीका
13. किष्किंधा कांड-टीका
14. सुंदरकांड टीका
15. अन्योक्ति कल्पद्रुम
16. ठाकुर ठसक
17. स्नेहसागर
18. राजविलास
19. विरह कवलास
20. सूक्ति-सरोवर
21. छत्रसाल दशक

इन ग्रंथों की भूमिकाओं में उन्होंने काव्य के विभिन्न उपादानों अथवा काव्यांगों पर दृष्टि रखते हुए इन रचनाकारों की विशेषताओं का मर्मोद्घाटन करते हुए उनकी रचनाओं के उत्कृष्ट उदाहरण देते हुए उनके काव्य के भाव-पक्ष पर व्याख्यात्मक शैली में काफी गहन और

गूढ मीमांसा की है।

इस चिंतन-क्रम में लालाजी ने उपर्युक्त सभी रचनाकारों के संबंध में स्थापित अवधारणाओं का परिविस्तार किया है। आवश्यकतानुसार कई परिवर्तन भी किए हैं। इनके कार्यों की समीक्षा करते हुए लालाजी ने जो सैद्धांतिक अथवा शास्त्रीय सूत्र प्रस्तुत दिए हैं, उनके आधार पर कहा जा सकता है कि वे मुख्यतः प्रभाववादी और निर्णयात्मक समीक्षा से प्रभावित रहे हैं। इस दृष्टि से उनके संपादित 'सूर पंचरत्न' की भूमिका दृष्टव्य है। उन्होंने महाकवि सूरदास की कृतियों, मुख्यतः सूरसागर का मंथन करते हुए, उनके पाँच पक्षों पर गहन मनन किया है।

1. सूर की विनय पदावली
2. वात्सल्यपरक पद
3. विप्रलभ शृंगार अथवा भ्रमरगीत से संबंधित रचनाएँ
4. लीलापद और पाँचवे दृष्टकूट।

लालाजी की स्थापना है कि विप्रलभ शृंगार और वात्सल्य में सूर के समक्ष दूसरा कोई कवि नहीं ठहर सकता। इसी प्रकार उन्होंने लीला-परंपरा में सूरदास को सर्वोपरि स्थापित किया है। लालाजी ने कृष्णभक्ति-परंपरा के अंतर्गत लीलातत्त्वों पर गंभीर प्रकाश डाला है। उन्होंने श्रीमद्भागवत में व्याख्यायित लीलातत्त्व का विस्तारपूर्वक दर्शन-दिग्दर्शन कराया है। सभी लीलाओं का वर्गीकरण किया है और उनसे संबंधित पदों की मौलिक मीमांसा की है। यही स्थिति 'केशव पंचरत्न' की है। उनके अनुसार आचार्य केशवदास ने जहाँ कवि-शिक्षा परंपरा से जुड़कर 'कविप्रिया' जैसे लक्षण-ग्रंथ लिखे हैं, वहीं रामचंद्रिका जैसा महाकाव्य रचकर रामकथा-परंपरा में कुछ ऐसी सामग्री जुटायी है, जो पूर्ववर्ती रामकाव्यों में नहीं प्राप्त होती। केशव ने जो प्रशस्तिपरक, साथ ही समकालीन इतिहास से संबंधित महाकाव्य रचे हैं, जैसे— जहाँगीर जसचंद्रिका और रतनबावनी, उन पर भी लालाजी की सूक्ष्म दृष्टि पड़ी है। आचार्य केशव का एक और महत्वपूर्ण पक्ष है, उनका अध्यात्मपरक काव्य। 'विज्ञानगीता' जैसे ग्रंथ की रचना करके आचार्य केशवदास से अपने पांडित्य का प्रमाण प्रस्तुत किया था, उसका तत्त्वोद्घाटन करके लालाजी ने अपना पांडित्य प्रदर्शित किया है।

लालाजी यों तो अलंकार-प्रेमी थे। स्वभावतः चमत्कारवादी थे और अंतःकरण से सुरसिक थे, किंतु काव्यक्षेत्र में वे किसी दुराग्रह से प्रेरित नहीं थे। इसीलिए जहाँ उन्हें सूर और केशव पसन्द आए, वहीं तुलसी भी उन्हें बहुत भाए। उनका तुलसी 'तुलसी पंचरत्न' नामक ग्रन्थ इस कथन का साक्षी है। यह सुविदित है कि तुलसी का रचना-संसार बड़ा व्यापक है। वे जहाँ प्रबंधकार रहे हैं, वहीं मुक्तककार भी। उन्होंने जो सफलता अवधि-रचना में प्राप्त की, उतनी ही सफलता ब्रजकाव्य में भी। गोस्वामी जी ने जहाँ मंगल, पार्वती मंगल आदि में शृंगार रस की निष्पत्ति की, उनकी दृष्टि लोकरीति-रीति पर भी रही और ज्योतिष पर भी। आत्मदर्शन और ब्रह्मांड-दर्शन दोनों में उनकी गति, मति, रति प्रदर्शित की है। कहने का तात्पर्य यह है कि तुलसी साहित्य का कोई पक्ष उनसे अनदेखा नहीं रहा।

लालाजी ने कई कवियों और कृतियों को प्रथम बार स्थापित करने का श्रेय प्राप्त किया है। उन्होंने हिंदी-जगत् में चर्चित असनी के ठाकुर और बुंदेलखंडी ठाकुर को

अलग-अलग करते हुए 'ठाकुर ठसक' नामक संग्रह से बुंदेलखंडी ठाकुर की जो पृथक् पहचान कराई है, वह निस्संदेह अत्यंत सराहनीय प्रयास है। इसी प्रकार बाबा दीनदयाल कृत 'अन्योक्ति कल्पद्रुम' का संपादन भी प्रशंसनीय कहा जा सकता है। उनके द्वारा संपादित अन्य संग्रहों— स्नेहसागर, राजविलास, विरहविलास और सूक्ति-सरोवर की अपनी विशिष्ट उपयोगिता है। इन कृतियों में लालाजी ने रीतियुगीन कवियों की चुनी हुई सर्वश्रेष्ठ उक्तियों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करके हिंदी की अनमोल काव्य-संपदा से जिस प्रकार हमें अवगत कराया है, वह उनकी चयनक्षमता का उत्कृष्ट प्रमाण है।

लाला जी ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका में समय-समय पर प्राचीन कवियों पर जो समालोचनात्मक निबंध लिखे हैं, वे ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। इन निबंधों में उन्होंने सूर, तुलसी, केशव, बिहारी, मतिराम आदि के अतिरिक्त अल्पख्यात रचनाकारों पर पर्याप्त मौलिक सामग्री प्रस्तुत की है। साथ ही, उनके मूल्यांकन की अपनी एक नयी कसौटी भी रखी है। 'लक्ष्मी' नामक पत्रिका का संपादन करते हुए उन्होंने प्राचीन कवियों के अध्ययन-अन्वेषण की नई दिशाओं का उद्घाटन किया है। वस्तुतः वे प्राचीन काव्य-परंपरा के कट्टर समर्थक थे।

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि लालाजी अपने युग के बड़े प्रबल प्रतापी समीक्षक थे। रीतिवादी आलोचना अथवा पारंपरिक समीक्षा में तीन चार विद्वानों का नामोल्लेख किया जाता है—

1. कन्हैयालाल पोद्दार, जिन्होंने 'अलंकार प्रकाश' और 'काव्यकल्पद्रुम' नामक दो ग्रन्थ लिखे थे।
2. अर्जुनदास केडिया, जिन्होंने 'भारतीभूषण' जैसा अलंकारशास्त्रीय ग्रंथ प्रस्तुत किया था। इसी क्रम में लाला भगवानदीन ने 'अलंकार-मंजूषा' और 'व्यंग्यार्थ-मंजूषा' की रचना करके आलंकारिक आचार्य के रूप में अपना स्थान बनाया।

इस पारंपरिक रीतिकाव्यशास्त्रीय चिंतन का प्रभाव लालाजी की समीक्षा पर भी पड़ा। उन्होंने केशव, बिहारी, सूर, तुलसी, रहीम सब पर लंबी-लंबी समीक्षाएँ लिखीं, लेकिन वे आचार्य रामचंद्र शुक्ल की स्पर्धा में ठहर नहीं पायीं। 'सूरपंचरत्न' की भूमिका उन्होंने लगभग डेढ़ सौ पृष्ठों में 1927 में प्रकाशित की, जबकि 1925 में शुक्ल जी द्वारा संपादित 'भ्रमरगीत सार' प्रकाश में आ चुका था। लालाजी ने अपनी भूमिका में भक्ति-आंदोलन के विकास-क्रम को लेकर जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे शुक्ल जी की स्थापनाओं से कहीं ज्यादा तर्कयुक्त दिखाई देते हैं। अंतर केवल यह है कि लालाजी की यह भूमिका भावात्मक शैली में लिखी गई है और यह रस, छंद, अलंकार में ज्यादा केंद्रित है। यही स्थिति बिहारी की समीक्षा की है। इस तुलनात्मक समीक्षा की शुरुआत पद्मसिंह शर्मा ने 1907 में 'सरस्वती' से की थी। उससे प्रेरित होकर कृष्णबिहारी मिश्र ने 1920 में अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'देव और बिहारी' लिखा था। उसके 6 वर्ष बाद लालाजी ने 'बिहारी और देव' का प्रकाशन कराया। इसके विश्लेषण में बारीकी तो है, किंतु साथ-साथ अतिवादी स्थापनाएँ हैं, कुतर्क है, असंसदीय भाषा है और बाल की खाल निकालने वाली प्रवृत्ति है। हिंदी-जगत् देव और बिहारी दोनों का सम्मान करता है। इन्हें तराजू के दो पलड़ों में रखकर तोलना और घटतौली करना न्यायोचित नहीं है। लालाजी भावुक बहुत थे, सामने होने पर मिश्रबंधुओं के चरण छूते थे और नेपथ्य में प्रहार करते रहते थे।

इससे कोई संदेह नहीं कि केशव, बिहारी और तुलसी के ग्रंथों की जितनी टीकाएँ उन्होंने लिखीं हैं, उनके आधार पर ब्रजभाषा में उनके गहन अधिकार, पूर्व परंपराओं के ज्ञान, अर्थोद्घाटन की क्षमता यानि उनके आचार्यत्व का प्रमाण मिलता है। इन टीकाओं द्वारा उन्होंने मध्ययुगीन काव्यों को जीवनदान दिया। छात्रों का विशेष उपकार किया, पर रस, छन्द, अलंकार, काव्यदोष, शब्दशक्ति आदि तक सीमित रह जाने के कारण वे इस साहित्य को नए संदर्भों से नहीं जोड़ पाए। शुक्ल जी यहीं उनसे बाजी मार ले गए। इस समय एक विपरीत स्थिति हिंदी समीक्षा-जगत् के सामने विद्यमान है। अब लोगों ने पाठ कर विचार करना ही बन्द कर दिया है। शुक्ल-शैली के हावी हो जाने और दीन शैली के उपेक्षित हो जाने का कुफल यह हुआ, कि साहित्येतर अवधारणाएँ समीक्षा में हावी हो गईं। उसमें लफ्फाजी भर गईं। शिविरबद्धता आ गई, जिससे समीक्षा की साख खत्म हो गई। यदि इन दोनों शैलियों का ग्राफ इतना नीचे न जाता, तो रचनाकार और पाठक के बीच समीक्षा का एक सुदृढ़ सेतु स्थापित हो जाता, समीक्षा की उपयोगिता खारिज न होती और 'क्लासिक' साहित्य की पठनीयता का ग्राफ इतना नीचे न जाता।

कवि रूप में लालाजी का योगदान अविस्मरणीय है। वे रीतिकाव्य की अंतिम कड़ी के रूप में दिखाई देते हैं। उनके ब्रजभाषा छंदों में श्लेष, यमक, रूपक, उपमा, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, विभावना अलंकारों आदि के चमत्कार भरे पड़े हैं। एक-एक छंद के चार-चार अर्थ निकलते हैं। अधिकतर छंद शृंगाररस से चुहचुहा रहे हैं। नखशिख वर्णन में उनकी विशेष रुचि है। जहाँ अवसर मिला, कुचों का वर्णन करते हुए लगभग दो दर्जन उत्प्रेक्षाएँ जुटा दीं। लेकिन यह दौर था आधुनिकता-बोध का। रीतिकालीन पच्चिकारी यानी काव्यकला और रीति बुझावल की लगभग ढाई सौ वर्षों की पुरानी परिपाटी से लोग ऊब गए थे। पश्चिमी प्रभाववश स्वच्छन्दतावाद, व्यक्तिवाद, प्रकृति चित्रण, यथार्थवाद, फैंन्टेसी, रहस्य चिंतन, विश्वदर्शन मानवतावाद आदि का प्रभाव हिंदी-कविता में विभिन्न वादों के साथ तेजी से बढ़ने लगा था। उस धारा में लालाजी का यह पारंपरिक काव्य नहीं ठहर पाया। उन्होंने खड़ीबोली में जो कविताएँ की, वे लोकप्रिय तो बहुत हुईं, लेकिन टिकाऊ नहीं सिद्ध हुईं। 'वीर पंचरत्न' में वाचिकता और मंचीयता के नए प्रयोग किए गए हैं। वीररस का अद्भुत प्रयोग है, किंतु काव्यकला की दृष्टि में सामान्य कोटि का है। लालाजी के सुशिष्य डॉ० कृष्णशंकर शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'आधुनिक हिन्दीकाव्य का इतिहास' के अंतर्गत एक प्रत्यक्ष द्रष्टा के रूप में उनकी काव्यकला पर काफ़ी विस्तार से लिखा है। यहाँ उनके शब्दों को यथावत उद्धृत किया जा रहा है—'आपकी खड़ीबोली की कविता का प्रधान विषय वीररस ही रहा। ये अपने नाजुक तन-मन में न जानें कहाँ वीरोल्लास छिपाए रहते थे। 'वीर क्षत्राणीध', 'वीर बालक', 'वीर माता', 'वीर पुत्री', वीर प्रताप' आदि आपकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। इन सबका संग्रह 'वीर पंचरत्न' नामक ग्रंथ में हुआ। आपका उद्देश्य लोगों को अपने इतिहास के वीर व्यक्तियों का परिचय कराना था। आप यह नहीं चाहते थे कि थोड़े से विद्वान ही आपकी पुस्तक का आनंद लें—

रस वीर का कुछ आवै मजा दिल में उजागर।  
आनंद लहै पढ़ते हो ग्रामीण व नागर।



इस पुस्तक का प्रचार भी वैसा ही हुआ, जैसा लालजी चाहते थे। आजकल के खड़ीबोली के जिन ग्रंथों को ग्रामों में पहुँचाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उनमें 'वीर पंचरत्न' भी है। इस पुस्तक ने आल्हा का स्थान ले लिया है। आप हिंदी भाषा-भाषी प्रांतों के ग्रामों के बड़े-बड़े मेलों में कहीं भी चले जाएँ; छोटे-छोटे डंडों से लोहे की कड़ियों को झंकारते हुए साधारण पुस्तक बेचने वाले इस प्रकार की वीर दर्प-पूर्ण कविता गाते मिलेंगे:-

यह दुर्दशा देश की लखके नीला मन में हुई अधीर।  
 क्रोध-सहित पति को ललकारा 'नाहक बनता है तू बीर'।  
 क्षत्री रक्त नसों में तेरे तनक नहीं खाता है जोश।  
 सुनता नहीं यवन क्या करते, कहाँ गया है तेरा होश।  
 वीर-कुमारी, वीर-बघूटी और वीर जननी की लाज।  
 जन्म-भूमि, कुल की मर्यादा रखना है क्षत्री का काज।  
 राजपूतों की कन्या, नारी, यवन लोग लेते हैं छीन।  
 इसे देख लज्जा से तेरा मुखड़ा होता नहीं मलीन।

लाला जी का हिंदी साहित्य का अध्ययन बहुत विस्तृत था। इनकी कविता में इसी कारण बहुत से अप्रचलित शब्दों का प्रयोग हो गया है। अनेक हथियारों का नाम, तलवार के भिन्न-भिन्न हाथों (मारने के ढंग) इत्यादि के नाम आपकी कविता में बहुत आए हैं। खड़ीबोली की शुद्धता के आदर्श के आप कायल नहीं थे। ब्रजभाषा इत्यादि प्रांतीय बोलियों के शब्द तथा प्रयोग आपने बेधड़क रखे हैं। मुसलमानों के प्रसंग में अरबी-फारसी शब्दों का भी प्रयोग किया है। एक उदाहरण-

बहुत दिनों से इशतियाक था कब हुजूर का होम।  
 नियाज बेनियाजाने मकसद मेरा पूरा किया।  
 बढ़ा एजाज सुनती हूँ अजहद को गाना सुनने का है शौक।  
 बंदी भी इस अपने फुन में रखती है औरों से फौक।

लालाजी की फुटकर कविताओं का संग्रह नवीन वीन या नदीमे दीन नामक पुस्तक में हुआ है। पुस्तक के इस नामकरण ही से आपकी प्रवृत्ति का पता लगाया जा सकता है। आप काव्य में चमत्कार का महत्त्व मानने वालों में से थे। केशवदास आपके आदर्श कवि थे। इस ग्रंथ में वसंत-वर्णन, प्रेमकली, आँसू, ताजमहल, चाँदनी, मेहँदी, मसान इत्यादि कविताएँ अच्छी बन पड़ी हैं। बिहार के प्रसिद्ध लेखक बा० शिवपूजन सहाय को सेतवा पंचक कविता सबसे अच्छी लगती है। मसान नामक कविता से कुछ पक्तियाँ नीचे दी जाती हैं-

खाक धूल में मिल जाती है जहाँ महाराजों की।  
 शान बस गूगे ही हो रहते हैं। जहाँ।  
 बड़े बागीश सुजान ख़ाली हाथ हिलाते आते।  
 कोटयाधीश जहाँ धनवान पोथी पत्रा जहाँ।  
 नहीं कुछ रख सकते सुविज्ञ विद्वान बकरी से।  
 सीधे हो जाते जहाँ पहुँचते ही बलवान 'दीन'।

कहै क्या महिमा तेरी जग के अंतिम मिश्र मसान।<sup>2</sup>

लालाजी ने प्राचीन कवियों के काव्यग्रंथों पर पांडित्यपूर्ण टीकाएँ प्रस्तुत कर साहित्य का अध्यापन का कार्य बहुत सुकर कर दिया है। केशव की टीकाओं के द्वारा वास्तव में आपने उस कवि का जीर्णोद्धार ही किया। इन टीकाओं में पद्यों का अलंकार-निर्णय भी किया गया है, जो परीक्षाओं के लिए ग्रंथ पढ़ने वालों के बहुत काम का है। आप हिंदी-भाषा तथा साहित्य के सफल और सुयोग्य अध्यापक थे। अपने विस्तृत ज्ञान का उपभाग आपने सदा शिष्य प्रस्तुत करने में किया। आपकी निरभिमान तथा विनोदपूर्ण प्रकृति के कारण विद्यार्थी निर्भय होकर अपनी त्रुटियों को आपके सम्मुख रखते थे और आप बड़ी उदारता तथा सहानुभूति से उनके प्रश्नों का उत्तर दिया करते थे।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि लालाजी श्रेष्ठ कवि थे, टीकाकार थे, समीक्षक थे, संपादक थे और सर्वतोभावेन भद्र शिक्षक थे। उनकी उपयोगिता आज छह क्षेत्रों में विशेष है—

1. हिंदी-कविता मुख्यतः प्राचीन काव्य के पाठ केंद्रित विवेचन में,
2. हिंदी के निजी, काव्यशास्त्र और निजी समीक्षा-पद्धति की खोज हेतु,
3. तुलनात्मक समीक्षा लिखकर इस विषय को विचारोत्तेजक अर्थात् पठनीय बनाकर,
4. कविता को वाचिक कला से जोड़कर मंचीय रूप देकर,
5. पारंपरिक कविता को पुनर्जीवित करके एवं
6. तन-मन-धन अर्पित करके एक आदर्श शिक्षक का दायित्व निभाकर।

इन सभी पक्षों में उनकी कुछ सीमाएँ रहीं हैं, पर उपलब्धियाँ ज़्यादा हैं। दोनों के समानुपातिक आकलन के बाद यही कहा जा सकता है कि लालाजी का कृतित्व सर्वथा महत् है।

#### संदर्भ

1. आधुनिक हिंदीकाव्य का इतिहास, डॉ० कृष्णशंकर शुक्ल, पृ० 112
2. नवीन वीन, पृ० 18

□ ग्राम धर्मपुर  
पो० नेबुआ राय गंज  
कुशीनगर (उ०प्र०)

## हिंदी-लघुकथा के विकास में रूप देवगुण का योगदान

भरतलाल, शोध-छात्र  
हिंदी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र  
डॉ० बाबूराम, शोध-निर्देशक  
एसो० प्रोफेसर, हिंदी विभाग  
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

राष्ट्र की साहित्यधारा में लघुकथा-लेखन के प्रति साहित्यकारों की प्रवृत्ति दिन-प्रतिदिन विकसित होती जा रही है। यह एक नई विधा है, परंतु बीज रूप में इसे वेदों में अंकुरित होते देखा जा सकता है। पंचतंत्र और हितोपदेश में तथा कुछ सीमा तक लोककथाओं में इसके आदिम रूप को देखा जा सकता है। डॉ० सुभाष रस्तोगी के अनुसार— 'अपने विकास-क्रम की इस यात्रा में लघुकथा ने दृष्टान्त, रूपक, लोककथा, बोध-कथा, नीति-कथा, व्यंग्य, चुटकले, संस्मरण ऐसी अनेक मंजिलें पार करते हुए वर्तमान रूप पाया है और अपने सामर्थ्य को गहरे अंकित किया है। वह अब किसी गहन तत्त्व को समझने, उपदेश देने, स्तब्ध करने, गुदगुदाने और चौंकाने का काम नहीं करती बल्कि समकालीन यथार्थ से जुड़कर हमारे चिंतन को धारदार भी बनाती है।'

### लघुकथा : परिभाषा एवं स्वरूप

लघुकथा का अर्थ क्या है, उसका स्वरूप क्या है? यह प्रश्न आज भी काफी हद तक विचारणीय है। लघुकथा का जहाँ तक शाब्दिक अर्थ है, वह इसके लघु कलेवर को व्यंजित करता है। डॉ० राजकुमार निजात इस संदर्भ में लिखते हैं, 'बहुत थोड़े शब्दों में आकर्षक एवं नपे-तुले वाक्यों में इतना कुछ कह जाना कि हमें एक समूचे अस्तित्व का मूल्यांकन करने के लिए बाध्य होना पड़े।'<sup>2</sup> डॉ० बाबूराम के शब्दों में, 'लघुकथा को संक्षिप्त या छोटे रूप में कहा जाता है, जिसमें तथ्य निहित रहता है। व्यर्थ का विस्तार अनावश्यक हो जाता है। लघुकथा बड़ी मर्मस्पर्शी होती है। गागर में सागर भरने वाली उक्ति लघुकथा के संदर्भ में चरितार्थ होती है।'<sup>3</sup> शंकर पुणतांबेकर के मतानुसार, 'साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा लघुकथा में कटु यथार्थ अत्यंत घने रूप में विद्यमान होता है, क्योंकि इसका आकार लघु है। तीव्र प्रभाव उसका प्राण है। लघुकथा में विचारान्विति होनी चाहिए।' उक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि लघुकथा संक्षिप्त किंतु प्रभावशाली भूमिका निभाती है। इसमें गंभीर अनछुए तत्त्वों से परिचय भी होता है।

## रूप देवगुण : एक परिचय

रूप देवगुण सिरसा (हरियाणा) के ऐसे लघुकथाकार हैं, जिन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। दीर्घकाल तक शिक्षा-जगत् से जुड़े रहने के कारण शिक्षा-संबंधी अनेक तथ्य इनकी लघुकथाओं में दिखाई देते हैं। ये बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। इन्होंने अब तक हिंदी-साहित्य को 9 काव्य-संग्रह तथा एक लघु काव्य-संग्रह, 6 कहानी-संग्रह, एक गज़ल-संग्रह तथा तीन एकल लघुकथा-संग्रह प्रदान किए हैं। 'हिंदी लघुकथा : उलझते-सुलझते प्रश्न' इनके द्वारा विरचित लघुकथा-सम्बंधी आलेख-संग्रह है, जबकि लघुकथा संपादन से संबंधित इनकी कृतियाँ हैं— 'चिनगारियाँ', 'आवाजें', 'हरियाणा का लघुकथा संसार' हिंदी की सषक्त लघुकथाएँ, शिक्षा-जगत की लघुकथाएँ, हरियाणा की प्रतिनिधि लघुकथा। यद्यपि देवगुण विभिन्न विधाओं में कुशलहस्त हैं, लेकिन लघुकथा के क्षेत्र में इनकी देन अविस्मरणीय है। लघुकथा के क्षेत्र में इनकी गणना राष्ट्रीय स्तर के लघुकथाकारों में होती है। हिंदी लघुकथा के विकास में इनके योगदान को सुगमता से समझने के लिए निम्न उपशीर्षकों में गूँथा जा सकता है—

### लघुकथाकार के रूप में

लघुकथाकार के रूप में इन्होंने तीन एकल लघुकथा-संग्रह प्रदान किए हैं। 'दूसरा सच' सन् 1990 में प्रकाशित इनका प्रथम एकल लघुकथा-संग्रह है, जिसमें 51 लघुकथाएँ संगृहीत हैं। इसमें जीवन के विविध पक्षों को लिया गया है। इसमें पारिवारिक संबंधों की गरमाहट है तथा सात्त्विक प्रेम की सूक्ष्मता भी विद्यमान है।

इन्होंने शिक्षा संस्थाओं तथा शिक्षकों के गिरते नैतिक स्तर, विद्यार्थियों के मन में गुरुओं के प्रति असम्मान भाव तथा सम्मान करने की आड़ में अपना काम निकलवाने की प्रवृत्ति को 'जिसकी लाठी उसकी भैंस', 'सिगरेट', 'उसे लगा', 'सूत्रधार', 'भाग्यविधाता', 'पराजय', 'युग प्रभाव' इत्यादि लघुकथाओं में बखूबी उकेरा है।

'यह मत पूछो' इनका दूसरा एकल लघुकथा-संग्रह है, जिसमें 48 लघुकथाएँ हैं। इसमें लेखक ने समाज से जुड़ी हुई अनेक समस्याओं को चित्रित किया है और साथ ही उनको दूर करने के लिए एक अभियान चलाया है। इस लघुकथा-संग्रह के 'दृष्टिकोण' में सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने की ओर संकेत किया गया है। अपनी सोच में परिवर्तन करने से दूसरों का कार्य अपना-सा लगने लगता है, साथ ही हर प्रकार की बेचैनी से बचा जा सकता है। हमें किसी से नाराज़ नहीं होना चाहिए— 'नाराज़ होने का अर्थ है, अपने भीतर कुढ़-कुढ़कर अपना मानसिक संतुलन ख़राब करना और मैं ऐसा नहीं करना चाहता।'<sup>5</sup>

'मेरी प्रिय लघुकथाएँ' इनका तीसरा लघुकथा-संग्रह है, जिसमें महानगरीय समस्याओं का चित्रण किया गया है। साथ ही मिटती मानवीय संवेदना को भी चित्रित किया है। 'और अब', 'चलेगा' लघुकथाएँ महानगरीय नगरीय सभ्यता से परिचय कराती हैं। घर आए मेहमान के प्रति महानगरों में कैसा बर्ताव किया जाता है, इन पंक्तियों में स्पष्ट है— बेटा, बहुत भूख लगी होगी। कहां तो बाज़ार से छोले-भटूरे मँगवा दूँ। इन्होंने पिक्चर देखने जाना था, सो चले गए।<sup>6</sup>

वर्तमान परिवेश में राजनीति से कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं रह गया है। भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार, स्वार्थ-सिद्धि जैसे विषय धीरे-धीरे सामान्य जनता में प्रवेश करते जा रहे हैं। राजनीति किसी समय धर्म माना जाता था, लेकिन इसके मायने ही बदल गए हैं। नेताओं के घड़ियाली आँसू देखकर जनता का हृदय द्रवित हो जाता है और उन्हें सत्ता सौंपकर स्वयं दर-दर की ठोकरें खाने को विवश हैं। शिक्षण-संस्थानों में भी राजनीतिक हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा है। छात्र-संघ की आड़ में अध्यापकवर्ग को विवश करने में छात्रों की भूमिका नित्य प्रति बढ़ती जा रही है। 'पराजय' लघुकथा में यही चित्रण किया गया है। छात्र संघ के प्रधान को प्राचार्य की ओर आता देखकर तथा उससे उत्पन्न द्वंद्व को देवगुण ने इन शब्दों में व्यक्त किया है— 'उसी समय मुझे छात्र-संघ का प्रधान उसी सोफे की ओर आता हुआ दिखाई दिया। मैं भीतर ही भीतर प्रिंसिपल की पराजय को भी महसूस करने लगा।', इसके अतिरिक्त 'अनुशासित पत्र', सिफ़ारिश जैसी कुवृत्ति को उजागर करती है तो 'सूराख' शिक्षण-संस्थानों में पक्षपात की भावना को व्यक्त करती है।

आर्थिक विवशता मनुष्य को भीतरी पीड़ा देती है। 'दुराव' लघुकथा की दुलारी आर्थिक विवशता की शिकार है। उसके मन में विद्रोह की चिंगारी सुलगती है लेकिन वह यही सोचकर कि 'कहीं इस काम से भी हाथ न धोना पड़े, वह 'अच्छाजी' कहकर चुपचाप करने लगी<sup>8</sup> रिशतों की आड़ में स्वार्थ-सिद्धि बढ़ती जा रही है। 'दूसरा सच' शीर्षक लघुकथा का सुजीत रिशतों की गहराइयों में जाकर अपनी वासना को शांत करना चाहता है। सुजीत के पड़ोसी उसकी बहुत प्रशंसा करते हैं, लेकिन उनकी बड़ी बेटी चुपचाप सारी बातें सुन लेती हैं। 'वह जानती थी कि इन सब कामों के बदले में वह बहुत कुछ प्राप्त करने की कोषिष करता रहता है।'<sup>9</sup>

'जागृति' में नेताओं का जनता के प्रति मिथ्या लगाव पर व्यंग्य किया गया है। जागृति लाने के नाम पर आमजन को बरगलाया जाता है। इस संदर्भ में पात्र घनश्याम का कथन नेताओं की दिखावा-वृत्ति की पोल खोलता नज़र आता है— 'लेकिन विरोधी पार्टियों के नेताओं के कहने पर और इसमें भी विरोधी पार्टियों के नेताओं का स्वार्थ था। नेताओं का स्वार्थ और दुकानदारों की मजबूरी। इसे तुम जागृति कहते हो।'<sup>10</sup>

व्यक्ति स्वार्थवश सामाजिक मर्यादाओं को भी लौंघ जाता है। मनुष्य की इस प्रकार की कुंठित विचारधारा को देवगुण इन शब्दों में व्यक्त करते हैं— 'ट्यूशन के तो 150 रुपए लेने पड़ते हैं, फिर घर में होगी तो एक वक़्त रसोई का काम भी तो करेगी ही। मैं सोचती हूँ, यह घाटे का सौदा नहीं है।'<sup>11</sup>

देवगुण अनेक प्राचीन मान्यताओं का विरोध करके समाज में परिवर्तन लाना चाहते हैं। समस्याएँ केवल समाज को बाह्य स्तर पर ही नहीं होतीं, अपितु मानव के अंतर्मन से उद्भूत भी हैं। कई बार मानव को अपनी परिस्थितियों से उद्वेलित होकर मानसिक संघर्ष का सामना भी करना पड़ता है।

### लघुकथा समीक्षक के रूप में

'हिंदी लघुकथा : उलझते-सुलझते प्रश्न' रूप देवगुण का लघुकथा से संबंधित

आलेख-संग्रह है। इस संग्रह को देवगुण ने दो भागों में विभाजित किया है—सैद्धांतिक पक्ष और क्रियात्मक पक्ष। सैद्धांतिक पक्ष के रूप में इन्होंने लघुकथा से संबंधित 16 आलेख दिए हैं। इन आलेखों में लघुकथा के स्वरूप, शीर्षक, विकास, कथानक, विषय-वैविध्य, लघुकथा की शैलियाँ व पात्रों की भूमिका इत्यादि पर विस्तृत चर्चा की गई है। क्रियात्मक पक्ष में इन्होंने क्रमशः पृथ्वीराज अरोड़ा के लघुकथा-संग्रह 'तीन न तेरह', कमल चोपड़ा के 'अभिप्राय', पारस दासोत के 'कदम बढ़ाती चूड़ियाँ', 'ईश्वर', 'एक और अभिमन्यु', 'परसु', 'पुस्तक की आवाज़', पवन शर्मा का 'जंग लगी कीलें', मधुकांत के 'तरकश', सुरेश जांगिड 'उदय' के 'यहीं-कहीं', प्रेमसिंह बरनालवी के 'देवता बीमार हैं', अनिल शूर आज़ाद के 'क्रांति मर गया' लघुकथा-संग्रहों की समीक्षा की है।

### लघुकथा-संपादक के रूप में

सम्पादन के क्षेत्र में 6 कृतियाँ हैं— 'चिनगारियाँ', 'आवाज़ें', 'हरियाणा का लघुकथा-संसार', 'हिंदी की सशक्त लघुकथाएँ', 'शिक्षा-जगत् की लघुकथाएँ', 'हरियाणा की प्रतिनिधि लघुकथा'। 'चिनगारियाँ' लघुकथा-संकलन के प्रधान संपादक रूप देवगुण हैं तथा इंद्रमोहन शर्मा संपादक हैं। रूप देवगुण ने इस संग्रह में अपने लेख 'लघुकथा : एक विहंगम दृष्टि' में लघुकथा-विधा में आलोचकों व समीक्षकों की कमी की चिंता व्यक्त करते हुए लघुकथा का दूसरी विधाओं से स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकारा है तथा साथ ही तीव्रता, सांकेतिकता, सहजता, व्यंग्यात्मकता, सारगर्भिता, तीव्र संप्रेषणीयता, तथ्य का उद्घाटन, शैली की सूक्ष्मता इत्यादि लघुकथा की विशेषताओं को रेखांकित किया है।

'आवाज़ें' लघुकथा-संग्रह का संपादन रूप देवगुण ने राजकुमार निजात के साथ मिलकर किया है। सारे भारत से एक साथ 127 लघुकथाकारों की चुनिंदा लघुकथाओं को संकलित कर संपादकद्वय द्वारा एक अच्छा प्रयास किया गया है। रूप देवगुण ने लघुकथा को स्वतंत्र विधा मानते हुए इस विधा में आंचलिकता, कथोपकथन व शैली की उपयोगिता, लघुकथा को लेकर गोष्ठियों व सम्मेलनों की महत्ता को भी स्वीकारा है।

'हरियाणा का लघुकथा-संसार' लघुकथा-संकलन का संपादन भी रूप देवगुण ने राजकुमार निजात के साथ मिलकर किया है। यह संकलन लघुकथा-साहित्यकारों की पहली पीढ़ी को समर्पित है।

'हिंदी की सशक्त लघुकथाएँ' रूप देवगुण द्वारा संपादित लघुकथा-संकलन है। इस संकलन में रूप देवगुण के संपादकीय लेख के अतिरिक्त लघुकथा से संबंधित तीन महत्वपूर्ण आलेख भी हैं। संपादक का संपादकीय लेख सुंदर व सशक्त बन पड़ा है। अपने इस लेख में इन्होंने संकलित सभी लघुकथाओं का सूक्ष्मता से विश्लेषण कर एक प्रशंसनीय कार्य किया है।

'शिक्षा जगत् की लघुकथाएँ' लघुकथा-संकलन का संपादन रूप देवगुण ने अनिल शूर आज़ाद के साथ मिलकर किया है। संपादन की दृष्टि से यह संकलन दूसरे संकलनों से अलग है। इसमें समस्त लघुकथाओं को विषयानुसार छह भागों में विभाजित किया गया है। यह प्रयास निश्चय ही सार्थक और प्रशंसा के योग्य है।

'हरियाणा की प्रतिनिधि लघुकथा' का संपादन रूप देवगुण ने किया है। इसमें

हरियाणा के ख्यातिप्राप्त लघुकथाकारों की रचनाओं को शामिल किया गया है। इनमें भ्रष्टाचार, बेरोज़गारी, मिटते मानवीय मूल्य, महँगाई आदि ज्वलंत मुद्दों को उठाया गया है। यह इनका सार्थक प्रयास है।

### लघुकथा के क्षेत्र में अन्य उपलब्धियाँ

रूप देवगुण ने लघुकथा के क्षेत्र में केवल लेखनी से ही काम नहीं किया, बल्कि इस आंदोलन को अत्यंत सक्रिय करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर सिरसा में तीन बार लघुकथा-सम्मेलन भी करवाए, जिसमें देशभर के लेखकों व आलोचकों को आमंत्रित किया। पटना, दिल्ली, करनाल, कपूरथला, पटियाला, कोटकपूरा व कई अन्य स्थानों पर लघुकथा-सम्मेलनों में भाग लेकर व लघुकथा से संबंधित अपने विचार व्यक्त कर लघुकथा की बढ़ोतरी में अपना अप्रतिम योगदान दिया। दूरदर्शन जालंधर तथा आकाशवाणी रोहतक व हिसार से इनकी लघुकथाओं का बहुत बार प्रसारण हो चुका है। इनकी लघुकथाएँ तो पुरस्कृत भी हुई हैं। बीस से ऊपर लघुकथा-संग्रहों व संकलनों की इन्होंने निष्पक्ष समीक्षा लिखी है। इसके अतिरिक्त लघुकथा को प्रोत्साहित करने के लिए उसे एक गति प्रदान करने के लिए इन्होंने लघुकथा प्रतियोगिताएँ भी करवाई हैं।

### निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि रूप देवगुण हरियाणा के वे लघुकथाकार हैं, जिन्होंने तीन एकल लघुकथा-संग्रह दिए तथा इनके हरियाणा में लघुकथा पर सबसे अधिक संपादक लघुकथा-संकलन हैं। इसके अतिरिक्त वे कुशल समीक्षक भी हैं जिन्होंने अपने मौलिक विचारों, अनुभवों को आलेखों का रूप प्रदान कर आलेख-संग्रह प्रकाशित करवाए हैं। इनके द्वारा प्रदत्त हिंदी लघुकथा साहित्य में योगदान को देखकर निःसंदेह कहा जा सकता है कि वे लघुकथा के प्रति समर्पित हस्ताक्षर हैं।

### संदर्भ

1. आवाज़ें, लघुकथा-संकलन, पृ० 18
2. वही, पृ० 17
3. हरिगंधा, लघुकथा-विशेषांक, पृ० 53
4. हरियाणा का लघुकथा-संसार, पृ० 46
5. रूप देवगुण, यह मत पूछो, पृ० 83
6. रूप देवगुण, मेरी प्रिय लघुकथाएँ, पृ० 41
7. रूप देवगुण, दूसरा सच, पृ० 68
8. वही, पृ० 40
9. रूप देवगुण, दूसरा सच, पृ० 58
10. रूप देवगुण, यह मत पूछो, पृ० 82
11. वही, पृ० 34

## भारतीय महिलाएँ-तब और अब : एक परिदृश्य

नमिता श्रीवास्तव

नारी पुरुष की पूर्णता है। सृष्टि की मूल है। उसके अभाव में मानवता की कल्पना भी असंभव है। प्राचीन भारत में महिलाओं को लक्ष्मी, दुर्गा और सरस्वती तीन देवियों के रूप में माना जाता था, जो कि धन, शक्ति व ज्ञान का भंडार हैं।" नारी माँ है, पत्नी है, प्रेयसी है और दानवी भी। पतिव्रता का अद्भुत आदर्श प्रस्तुत करनेवाली सती है। नाना रूपों में समाज को प्रभावित करने वाली नारी एक पहेली है, जिसकी उपेक्षा करके मानव-जीवन एक पग भी नहीं बढ़ा सकता है। उन्हें शक्ति ज्ञान व संपत्ति का प्रतीक माना जाता है। पुरुष-स्त्री एक-दूसरे के पूरक होते हैं। महिलाएँ परिवार की महत्वपूर्ण कड़ी होती हैं। उनका समाज में महत्वपूर्ण योगदान है तथा वे राष्ट्रीय योगदान में रीढ़ की हड्डी की तरह महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

### वैदिक काल

वैदिक काल में नारी को गौरवपूर्ण अधिकार प्राप्त थे। वह सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में पुरुष की सहभागिनी थी। प्रमाणस्वरूप में लोमश लोपमुद्रा आदि नारियों ने ;गवेद के अनेक सूक्तों की रचना की थी। युद्धभूमि में भी नारियाँ पुरुषों का साथ देती थीं। दशरथ के साथ कैकेयी के युद्ध में जाने और रथ के पहिये की धूरी टूट जाने पर अपनी शक्ति से उसे रोके रखने का प्रसंग सभी जानते हैं। रामायण युग में नारी की महिमा अक्षुण्ण रही। सीता, अनसुइया, सुलोचना आदि भारत की सती-नारी की आदर्श हैं। महाभारत काल में नारी पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक गतिविधियों को संचालित करने वाली केंद्रीय शक्ति रही है। शक्तिरूपा द्रौपदी ही महाभारत की मूल है। शिव की कल्पना अर्द्धनारीश्वर के रूप में हुई। नारी को गृहलक्ष्मी स्वीकार करके यह घोषित किया गया है 'गृहहि गृहणीहीनम् अरण्य सदृश मतम्' अर्थात् गृहणीविहीन घर निर्जन वन के समान है। मातृदेवोभव उस युग की प्रथम शिक्षा थी।'<sup>2</sup>

वैदिक काल में स्त्रियों को पुरुष के समान अधिकार प्राप्त थे। उन्हें अपना वर चुनने का अधिकार प्राप्त था। समाज में पर्दाप्रथा नहीं थी। समाज में उनका अपना स्थान था। इसलिए गोस्वामी तुलसीदास ने कहा था- 'एक नहीं दो दो मत्राएँ नर से भारी नारी'।

### उत्तर वैदिक काल

(600 ईसा पूर्व से 300 वर्ष बाद) उत्तर वैदिककाल में स्त्रियों को पूज्य मानकर उनसे स्नेह का व्यवहार किया जाता था। इसी काल में बौद्ध व जैनधर्म का प्रचार हुआ। इन धर्मों के पतन के बाद ही स्त्रियों का अपमान शुरू हुआ। मनुस्मृति में सर्वप्रथम स्त्रियों की



स्वतंत्रता में प्रतिबंध लगाया गया और कहा गया कि स्त्रियों को कभी स्वतंत्र नहीं होना चाहिए बाल्यकाल में उन्हें पिता के अधीन, यौवनावस्था में अपने आराध्य पति के अधीन तथा पति की मृत्युपरांत बेटों के अधीन रहना चाहिए। उन्हें वेदों के पढ़ने व यज्ञ करने से रोका गया तथा सामाजिक अधिकारों से वंचित किया जाने लगा।

### **धर्मकाल**

धर्मकाल में स्त्रियाँ परतंत्र और असहाय मानी जाने लगीं। उन्हें संपत्ति के अधिकार से वंचित किया जाने लगा। इस काल में स्त्री को एक वस्तु माना जाने लगा।

### **मध्यकाल में स्त्रियों का स्थान**

इस काल में धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के नाम पर स्त्रियों को अनेक अधिकारों से वंचित किया जाने लगा। गौतमबुद्ध द्वारा नारी को सम्मान दिए जाने पर भी बौद्धकाल में भारतीय नारी का हास होने लगा। फिर भी सामाजिक जीवन में वह स्वतंत्रतापूर्वक भाग लेती थी। इसी बीच मुसलमानों के आक्रमण हुए और सम्राट पृथ्वीराज चौहान की पराजय के साथ भारतीय नारी के जीवन की करुण गाथा का इतिहास आरंभ हुआ। कन्या के रूप में पिता द्वारा, पत्नी के रूप में पति द्वारा, वृद्धावस्था में पुत्र द्वारा रक्षित नारी पुरुष पर आश्रित होती चली गयी। शक्तिस्वरूपा भारतीय नारी अबला हो गयी।

अबला जीवन हाथ तुम्हारी यही कहानी।

आँचल में है दूध और आँखों में पानी। (मैथिलीशरण गुप्त)

### **ब्रिटिशकाल में स्त्रियों का स्थान**

इस काल में परिवार, समाज व राजनीति किसी भी क्षेत्र में स्त्रियों का कोई स्थान नहीं था। उन्हें केवल संतानोत्पत्ति एवं परिवार की सेवा के योग्य समझा जाने लगा था।

### **आधुनिककाल में स्त्रियों का स्थान**

पिछले 56 सालों में स्त्रियों की स्थिति में क्रांतिकारी बदलाव आया। डॉ॰ श्रीनिवास के अनुसार पश्चिमीकरण और जातीय गतिशीलता ने स्त्रियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार करने में योगदान दिया। महात्मा गांधी ने उनके चतुर्दिक विकास के लिए अधिक प्रयास किया। आधुनिक भारत में नारी पुनः मुक्त हुई। आज स्त्री प्रत्येक क्षेत्र में भाग ले रही है। आज वह आत्मनिर्भर हैं तथा पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर रथ के दो पहियों की तरह कार्य कर रही हैं।

### **प्रगति की ओर नारी के उठते कदम**

#### **1- शिक्षा के क्षेत्र में**

स्वतंत्रता के बाद स्त्री के जीवन में शिक्षा का व्यापक प्रसार हुआ। इसके पूर्व स्त्रियों की शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। सन् 1882 में 2054 शिक्षित महिलाएँ थीं, जिनकी संख्या 1971 में बढ़कर 5 करोड़ 94 लाख, 1981 में 7 करोड़ 615 लाख, 1991 में महिला साक्षरता 39.29 प्रतिशत एवं 2001 में बढ़कर 53.6 प्रतिशत हो गयी। सबसे अधिक साक्षरता वाला राज्य केरल 90.9 प्रतिशत है। राजस्थान में 43.9 प्रतिशत उत्तर प्रदेश में 42.2 प्रतिशत एवं बिहार में सबसे कम 33.1 प्रतिशत स्त्रियाँ शिक्षित हैं।'

## 2. आर्थिक क्षेत्र में

ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ किसी न किसी रूप में कार्यरत हैं। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में कुल आबादी की 48.27 प्रतिशत महिलाएँ हैं, जिसमें 31.6 प्रतिशत महिलाएँ कार्यरत हैं। आज नगरों में भी स्त्रियाँ कार्य करने को प्रेरित हैं। साधारणतः मध्यम एवं उच्च वर्गों की स्त्रियों का कोई भी कार्य करना बुरा नहीं माना जाता है। औद्योगीकरण एवं आधुनिकीकरण ने स्त्रियों की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता को कम करने एवं उनकी स्थिति को उच्च स्तर पर ले जाने में सहायता प्रदान की है। शिक्षा के प्रसार, नयी-नयी वस्तुओं के आकर्षण उच्च स्तर का जीवन-निर्वाह करने की बलवती इच्छा और बढ़ती कीमतों ने अनेक मध्यमवर्गीय एवं उच्चवर्गीय महिलाओं को रोजगार हेतु प्रेरित किया है। 1956 में हिंदू उत्तराधिकारी अधिनियम के अंतर्गत हिंदू-स्त्री को संपत्ति में अधिकार प्रदान किया गया है।

## 3. सामाजिक क्षेत्र में

वर्तमान नारी घर की चहारदीवारी से बाहर निकलना चाहती है। अब वह पर्दा-प्रथा को मानने से इंकार करती है। समाज में वह अपनी अलग पहचान बनाना चाहती है। अब वह रूढ़िवादी सामाजिक बंधनों से मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील है। आज समाज में स्त्री पुरुष दोनों को बराबर सम्मान दिया जाता है। वर्तमान नारी अब पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ना चाहती है। आज बच्चों की शिक्षा, आय का उपयोग, पारिवारिक अनुष्ठानों की व्यवस्था आदि में स्त्रियों की इच्छाओं को विशेष महत्व दिया जाता है। हिंदू विवाह अधिनियम 1955 व 1956 महिलाओं की दशा सुधारने के लिए बनाया गया था।

## 4. राजनीतिक क्षेत्र में

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् महिलाओं की राजनीतिक चेतना में वृद्धि हुई। भारत के नये संविधान के अनुसार 1950 में महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकार दिया गया। 1952 में महिलाएँ लोकसभा के लिए चुनी गयी थीं। 1999 में 43 महिलाएँ सांसद बनी थीं। ग्राम पंचायतों में व नगरपालिका में 33 प्रतिशत आरक्षण महिलाओं को दिए गए हैं और अब लोकसभा व विधानमंडलों में आरक्षण के प्रयास किए जा रहे हैं। आज स्त्रियाँ राष्ट्रपति, राज्यपाल, मंत्री, मुख्यमंत्री एवं प्रधानमंत्री पद तक को भी सुशोभित कर रही हैं। काँग्रेस की राष्ट्रीय अध्यक्ष श्रीमती सोनिया गांधी बसपा की राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं, उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री मायावती, सुषमा स्वराज आदि अनेक ऐसे ज्वलंत उदाहरण हैं, जिनकी भूमिकाओं से स्पष्ट है कि देज में स्त्रियों में राजनीतिक चेतना दिनों-दिन बढ़ती जा रही है।

## भारतीय नारी की समस्या

आज महिलाओं की सहभागिता प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ रही है। वे प्रत्येक कार्य को अच्छे ढंग से कर रही हैं। फिर भी समाज में उन्हें सम्मान नहीं मिल रहा है। आज भी हमारे तमाम शहर एवं गाँव हैं, जहाँ पर महिलाओं का शोषण किया जा रहा है। विशेषकर गाँव में, जहाँ शिक्षा का अभाव एवं रूढ़िवादिता का बोलबाला है। गरीबी की सीमारेखा के नीचे जीवन-यापन करनेवाले लाखों परिवारों की महिलाओं की दशा अत्यंत दयनीय है। भारत में अब भी महिला की सुरक्षा व सम्मान की कोई बात नहीं है। आज की नारी की सबसे बड़ी

समस्या है—

1. दहेजप्रथा

2. रूढ़िवादी परंपराएँ

### 1. दहेज-प्रथा

यह अत्यंत दुर्भाग्य और लज्जा का विषय है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भी हमारे समाज में दहेज-प्रथा का दानव न जाने कितनी स्त्रियों के स्वप्न महल को ध्वस्त करता हुआ कितनों की जीवन-लीला समाप्त कर चुका है। दहेज-प्रथा के कारण माँ-बाप बेटियों को बोझ समझते हैं। उन्हें पराया धन माना जाता है। दहेज के कारण महिलाओं को उच्चशिक्षा नहीं दी जाती है। प्रतिभाशाली होते हुए भी उन्हें अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर नहीं मिलता। दहेज की माँग के कारण अनेक महिलाओं को एकाकी जीवन व्यतीत करने पर विवश होना पड़ता है। इससे अनेक सहज स्वाभाविक, शारीरिक और मानसिक विकास में विकार आने लगता है।

### 2. रूढ़िवादी परंपरा

सामान्य रूप से भारतीय नारी दृढ़तर बंधनों में जकड़ती चली गयी। वर्षों से ग़रीबी, अज्ञानता, अंधविश्वास एवं घुटन-भरी परंपराओं तथा रीति-रिवाजों के वातावरण में मजबूरी-भरा जीवन जीती आई है। सामाजिक पूर्वाग्रह व निरीक्षण होने की वजह से उनकी निरंतर उपेक्षा की जाती है। भारत की जनसंख्या लगभग 106 करोड़ है। पुरुषों की तीन-चौथाई जनसंख्या शिक्षित है; किंतु महिलाओं की केवल आधी संख्या ही साक्षर है। भारत में यह मान्यता व्याप्त है कि बेटे ही वंश आगे बढ़ाते हैं तथा खानदान का नाम रौशन करते हैं। इस रूढ़िवादी परंपरा के कारण स्त्रियों को शिक्षा एवं बाह्य जगत से दूर रखा जाता है उन्हें केवल संतानोत्पत्ति के योग्य समझा जाता है। उसकी दशा पर करुणा को भी करुणा आती है।

### नारी-उत्थान हेतु उठाए गए नए कदम

अँग्रेजों के संपर्क में आकर भारत ने आधुनिकयुग में प्रवेश किया। पश्चिमीकरण, सभ्यता, संस्कृति तथा मूल्यों का प्रभाव महिलाओं के जीवन में बहुत परिवर्तन लाया है। भारतीय सामाजिक संरचना में भौतिक परिवर्तन आया है, क्योंकि अनेक कानूनों में परिवर्तन किया गया है। यह परिवर्तन समानता के सिद्धांत के आधार पर हमारे संविधान में लाया गया है। राष्ट्रीय महिला विकास निगमों की स्थापना की गयी। 31 जनवरी 1992 को जयंती पटनायक की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना की गयी, जो महिलाओं की समस्याओं को सुनने व उनको सुरक्षा प्रदान करने एवं कानूनी सहायता देने का कार्य करता है।

भारत में कई महिला-संगठन बने हैं। इन संगठनों ने कई मुद्दे उठाए गए हैं और आंदोलन भी किए गए हैं। महिलाओं ने बाहर ही नहीं, घर में भी समानता एवं अपने अधिकार की माँग की है।

सामाजिक कार्यकर्ता एवं संगठनों ने नारी-चेतना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 1971 में भारत सरकार ने स्त्रियों की स्थिति की जानकारी के लिए एक समिति का गठन किया जिससे 1974 में नारी-उत्थान हेतु कई सुझाव मिले।

बड़े-बड़े नगरों में कई उद्देश्यों को लेकर महिला-आंदोलन चलाए गए, किंतु ग्रामीण महिलाओं के लिए बहुत कम प्रयास हुए हैं। भारत में स्त्री की पहचान इन प्रयासों के

बाद भी एक व्यक्ति के रूप में नहीं हो पायी है। परिवार में उसे आज भी केवल पत्नी, बेटी, माँ, सास व बहू के रूप में पहचाना जाता है। पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की शिक्षा प्रशिक्षण एवं स्वास्थ्य आदि पर कम ध्यान दिया जाता है। स्त्रियों की मृत्युदर भी अधिक है। इसके लिए हमारा पुरुष-प्रधान समाज ही उत्तरदायी है।

स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने के लिए उन्हें शिक्षा एवं रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने होंगे। अपने अधिकार के लिए उन्हें संघर्ष करना होगा। एक साथ मिलकर शोषण एवं दमन के विरुद्ध लड़ाई लड़नी होगी। समाज में अपनी एक अलग पहचान बनानी होगी।

अनेक बाधाओं के बावजूद भारतीय महिलाओं ने आकाश की बुलंदियों को छुआ है। आज अनेक महिलाएँ अपने स्वयं के कारखाने चला रही हैं। वे प्रशासक, राजनेता एवं उच्च राजकीय सेवाओं में पुरुष के समकक्ष कार्य कर रही हैं। 1995 में कल्पना चावला को नासा के अंतरिक्ष यात्रीदल में चुना गया और वह अंतरिक्ष यात्रा के लिए भी गयीं। भारोत्तोलक कर्णम मलेश्वरी को 1995 में अर्जुन पुरस्कार मिला। चीन में विश्व भारोत्तोलन प्रतियोगिता में कर्णम मलेश्वरी को तीन स्वर्णपदक मिले।<sup>4</sup> सोनिया गांधी को लायन्स इंटरनेशनल ह्यूमेनिटेरियन का पुरस्कार एवं मदर टेरेसा को डॉ॰ विलियम केरी स्व इंदिरा गांधी पुरस्कार दिया गया।

इन सभी उपलब्धियों के बाद भी मानव-विकास रिपोर्ट के अनुसार भारत में महिला विकास मापदंड का स्थान 99 वां है तथा 116 देशों में आर्थिक व राजनीतिक निर्णयों में महिलाओं की भागीदारी की दृष्टि से भारत का स्थान 11 है। इससे स्पष्ट है कि भारतीय महिलाओं ने उन्नति की है, परंतु अब भी समाज में उन्हें वह स्थान नहीं प्राप्त है, जिसकी वे वास्तव में हकदार हैं। अतः भारतीय महिलाओं को समाज में समुचित स्थान दिलाने के लिए अब भी बहुत-कुछ करना शेष है।

#### संदर्भ

1. हिंदी नवनीत अड़तालीसवाँ संस्करण, आगरा 1960-67 पृ० 16
2. मनुस्मृति
3. मनुस्मृति
4. हिंदी नवनीत, अड़तालीसवाँ संस्करण, आगरा 1996-97

□ रूहटा, जौनपुर

## जनवादी कवि के रूप में नागार्जुन

डॉ० राजकुमार 'जमदग्नि'

सुप्रसिद्ध कवि नागार्जुन का वास्तविक नाम वैद्यनाथ मिश्र था। उनका जन्म बिहार प्रदेश के दरभंगा जिले के सतलखा नामक गाँव में सन् 1911 में हुआ। जब वे चार वर्ष के थे, तब इनकी माता का देहांत हो गया। परिणामतः इनका पालन-पोषण पिता के संरक्षण में हुआ, जो दरिद्र, कठोर और रूढ़िवादी विचारधारा के थे। नागार्जुन जी ने अपने जीवन के कटु संघर्षों की झाँकी इस प्रकार व्यक्त की है—

पैदा हुआ था मैं  
दीन-हीन अपठित किसी कृषक-कुल में  
आ रहा हूँ पीता अभाव का आसव ठेठ बचपन से  
कवि! मैं रूपक हूँ दबी हुई दूब का  
जीवन गुजरता प्रति पल संघर्ष में!!  
मेरा क्षुद्र व्यक्तित्व  
रुद्ध है, सीमित है.....

आटा, दाल, नमक, लकड़ी के जुगाड़ में।'

यूँ तो व्यक्तिगत जीवन के कटु संघर्षों ने नागार्जुन के जीवन को एक नया रूप दिया है, किंतु उसको निखारने में सहयोग दिया है स्वामी सहजानंद जी की दीक्षा ने। 'नागार्जुन' नाम से हिंदी में और 'यात्री' नाम से मैथिली भाषा में उन्होंने साहित्य-सृजन किया है। इनकी प्रारंभिक शिक्षा स्थानीय संस्कृत विद्यालय में हुई। सन् 1936 में श्रीलंका में जाकर इन्होंने बौद्धधर्म में दीक्षा ले ली। राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने के कारण अनेक बार जेल भी जाना पड़ा। संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा हिंदी सभी भाषाओं का इन्होंने गहरा अध्ययन किया। बाल्यावस्था में कष्टों और पीड़ाओं को भोगने के कारण इनके काव्य में पीड़ा का अधिक महत्त्व है। वैसे ये स्वभाव से फक्कड़, मस्तमौला तथा अपने मित्रों में नागा बाबा के नाम से जाने जाते हैं।

नागार्जुन की कविता में व्यंग्य की पैनी धार लक्षित होती है। प्रो० हरिनारायण मिश्र के शब्दों में— 'नागार्जुन की व्यंग्य-रचना में कबीर की तल्खी, भारतेंदु की करुणा और निराला की विनोदवक्रता का विलक्षण सामंजस्य है।'<sup>2</sup> अन्य व्यंग्यकारों से नागार्जुन की भिन्नता इस अर्थ में है कि जहाँ और लोग सोच-विचारकर किसी रचना को व्यंग्य-बहुल बनाते हैं, वहाँ नागार्जुन में व्यंग्य एक जन्मजात संस्कार के रूप में है अथवा यों कहें कि चुभाना इनका स्वभाव-सा है। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विसंगतियों पर उनके पैने व्यंग्य हिंदी-साहित्य की अमूल्य निधि है।<sup>8</sup> इस प्रकार की कविता का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

आओ रानी हम ढोएँगे पालकी  
यही हुई है राय जवाहर लाल की।<sup>3</sup>

नागार्जुन समाज में फैले हुए शोषण, अनाचार, वर्गभेद आदि पर तीखे व्यंग्य करते हैं। वस्तुतः वे धरती और जनता के गीत गानेवाले कवि हैं। इनको सही अर्थों में जनकवि कहा जा सकता है। इनकी कविताएँ व्यंग्य के लिए प्रसिद्ध हैं। पंचवर्षीय योजनाओं पर किया गया व्यंग्य देखिए—

आजादी की कलियाँ फूटीं, पाँच साल में होंगे फूल,  
पाँच साल में फल निकलेंगे, रहे पंत जी झूला-झूल,  
पाँच साल कम खाओ भैया, गम खाओ दस-पंद्रह साल,  
अपने ही हाथों से झोंको, यों अपनी आँखों में धूल।  
आजादी की कलियाँ फूटीं, पाँच साल में होंगे फूल।<sup>4</sup>

‘यह दंतुरित मुस्कान’ नागार्जुन की प्रमुख कविता है। इसमें उन्होंने छोटे बच्चे की अत्यंत आकर्षक मुसकान को देखकर मन में उमड़े हुए भावों को विविध बिंबों के माध्यम से व्यक्त किया है। कवि के मतानुसार इस सुंदरता में जीवन का संदेश है। बच्चे की मधुर मुसकान के सामने कठोर से कठोर हृदय भी पिघल जाता है। उसकी मुस्कान में अद्भुत शक्ति है, जो किसी मृतक में भी नया जीवन फूँक सकती है। धूल-मिट्टी में सना हुआ बच्चा तो ऐसा लगता है, मानो वह कमल का कोमल फूल हो, जो तालाब का जल त्यागकर उसकी झोंपड़ी में खिल उठा हो। उसे छूकर तो पत्थर भी जल बन जाता है। उसे छूकर शैफालिका के फूल झड़ने लगते हैं। पक्तियाँ देखिए—

तुम्हारी यह दंतुरित मुसकान  
मृतक में भी डाल देगी जान  
धूलि-धूसर तुम्हारे ये गात....  
छोड़कर तालाब मेरी झोंपड़ी में खिल रहे जलजात  
परस पाकर तुम्हारा ही प्राण,  
पिघलकर जल बन गया होगा कठिन पाषाण  
छू गया तुमसे कि झरने लगे बड़े शैफालिका के फूल  
बाँस था कि बबूल?<sup>5</sup>

कहते हैं कि उगते सूर्य को सभी सलाम करते हैं अर्थात् सफल व्यक्ति को सभी नमन करते हैं, लेकिन नागार्जुन जी ऐसे नहीं थे, क्योंकि वह जन-जन के कवि थे। इन्होंने अपनी कविता ‘उनको प्रणाम’ में सफल व्यक्तियों की अपेक्षा उन असफल वीरों तथा लोगों को प्रणाम किया है, जो लक्ष्यप्राप्ति के मार्ग में संघर्षरत रहकर साहस के साथ लड़ते रहे। साधनों का अभाव होने पर भी जो निरंतर डटे रहे तथा अंत में फाँसी के फंदे पर झूल गए। कवि ने यहाँ उन लोगों को नमन किया है, जिनके साधन मंजिल तक पहुँचने से पहले ही समाप्त हो गए और उन्हें असफल होना पड़ा, जिन्होंने विजयप्राप्ति के लिए बहुत प्रयास किए, अनेक कष्ट तथा यातनाएँ झेलीं, परंतु सफलता नहीं मिली। कवि का मानना है कि चाहे वे लोग सफल न हुए हों, परंतु उन्होंने सफलता की पृष्ठभूमि को अवश्य सुदृढ़ बनाया है। वे लोग

प्रचार और प्रसार से दूर रहे परंतु संसार के समक्ष उन्होंने अपने अदम्य साहस का उदाहरण प्रस्तुत किया। प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करते हुए वे लोग फाँसी के फंदे पर झूल गए। उन लोगों को कवि नमन करता है। कविता की पंक्तियाँ तो देखिए—

कृतकृत्य नहीं जो हो पाए,  
प्रत्युत् फाँसी पर गए झूल  
कुछ ही दिन बीते हैं, फिर भी  
यह दुनिया जिनको गई भूल।

— उनको प्रणाम।<sup>6</sup>

प्रगतिवादी कवियों में नागार्जुन सर्वाधिक मुखर कवि हैं। उनकी यथार्थ चेतना की शक्ति और सामर्थ्य उसके व्यंग्य में है। वे केवल सामाजिक विसंगतियों, कुरूपताओं का यथार्थ वर्णन ही नहीं करते, बल्कि व्यंग्य की धार से उसे भीतर तक कुरेद देते हैं। राजनीतिक अव्यवस्था, राजनेताओं का खोखलापन और धार्मिक अंधविश्वासों के प्रति उनकी यथार्थ चेतना उग्र और आवेशमयी हो गई है।

नागार्जुन की अधिकांश कविताएँ उनकी लोकचेतना की अत्यंत संवेदनात्मक अभिव्यक्ति हैं। 'सिंदूर तिलकित भाल', 'ओ गंगा मइया', 'अकाल और इसके बाद' जैसी कविताओं में नागार्जुन की लोकदृष्टि मिथिला के लोकजीवन से जुड़ी है। इन कविताओं में कवि की अपनी धरती, गाँव, खेत-खलिहान, बाग-बगीचे से गहरी लोकसंपृक्ति दिखाई पड़ती है। इतना ही नहीं, नागार्जुन ने अपनी काव्य-भाषा के उपकरण भी लोकजीवन से लिए हैं। लोकजीवन के बिंबों को पूरी सजीवता और गतिशीलता से व्यक्त किया है। लोकदृष्टि से नागार्जुन अपने देश, धरती और उसके लोगों की भाषा से जुड़े कवि हैं। 'आज मैं बीज हूँ' कविता में देखिए—

आज मैं बीज हूँ  
कल रहूँगा अंकुर  
बटुर-बटुर आएगी दुनिया, मुझे देखने को आतुर  
आज मैं बीज हूँ  
अलक्षित, ना-चीज हूँ  
शर्क हूँ धरती की जादुई कोख में।<sup>7</sup>

कवि कहता है कि बीज जब तक अंकुरित नहीं होता, तब तक वह धरती के गर्भ में छिपा रहता है। किसी व्यक्ति की दृष्टि उस पर नहीं पड़ती, परंतु जब वह अंकुरित हो जाता है तो वह हजारों व्यक्तियों की दृष्टि का केंद्र बन जाता है। इसी प्रकार दबे हुए व्यक्तियों को कोई महत्त्व नहीं मिलता, परंतु जब वह सफलता के स्वर्णिम शिखर को छूते हैं, तो हजारों लोगों के लिए उत्सुकता व प्रेरणा का केंद्र बन जाते हैं। जनसामान्य को ही सब-कुछ माननेवाले नागार्जुन जी सबसे पहले जनवंदना करते हैं, जो कि उनके लिए सर्वोपरि है। 'प्रेत का बयान', 'मूस का पूतला' तथा 'स्वदेशी शासन' कविताएँ भारत की दुर्दशा तथा उसके लिए उत्तरदायी शक्तियों की सच्ची पहचान कराती हैं। नागार्जुन जी का दूसरा काव्य-संग्रह 'सतरंगे पंखोंवाली' सन् 1954 में प्रकाशित हुआ। इस काव्य-संग्रह की कविताओं से लगता है कि कवि सामान्य जनता से और भी अधिक जुड़ता चला जा रहा है। 'यह कैसे होगा', 'ओ गंगा मइया', 'अकाल और उसके

बाद' तथा 'मिटे अमंगल' अपनी छाप छोड़ती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ कविताएँ दांपत्य प्रेम से जुड़ी हुई हैं। कुछ कविताएँ सहृदयता की परिचायक भी हैं।

नागार्जुन जी का तीसरा काव्य-संग्रह है 'प्यासी पथराई आँखें', जो सन् 1962 में प्रकाशित हुआ। यथार्थ की सच्ची परख करनेवाली इस काव्य-संग्रह की कविताएँ मुख्य रूप से 'तालाब की मछलियाँ', 'काली माई', 'भारती सिर पीट रही है' आदि का अपना विशेष स्थान है। नारीशोषण की कथा, जमींदारों की बुराइयों को नंगा करने तथा पुरुषों के विलासी भावों को बेनकाब करनेवाली ये कविताएँ पाठक को सोचने के लिए विवश कर देती हैं।

सन् 1980 में 'खिचड़ी', 'विप्लव देखा हमने' तथा 'तुमने कहा था' काव्य-संग्रह एक साथ ही प्रकाशित हुए। इन काव्य-संग्रहों की कविताएँ विशिष्ट तौर पर तत्कालीन इतिहास की तस्वीर प्रस्तुत करती हैं। कविता में इतनी कसावट नहीं जो 'प्यासी पथराई आँखें', 'सतरंगे पंखोंवाली' तथा 'युगधारा' में है।

परंतु 'सूरज समय पर उगेगा', 'नवेला', 'प्रतिबद्ध हूँ', 'शासन की बंदूक', 'घर के बाहर कैसे निकालेगी कैसे', 'ब्रजनदी' आदि सामाजिकता के धिनौनेपन तथा निकृष्टतम, चरित्र का पर्दाफाश करती हैं। शोषण, अत्याचार, अन्याय, पीड़ा, वेदना का वास्तविक साक्षात्कार ये कविताएँ करती हैं। उनका जीवन-दर्शन समाजवादी समाज से जुड़ा है। नागार्जुन को ऐसे समाज की स्थापना स्वीकार नहीं, जो पूँजीवाद को प्रश्रय देनेवाला है और जो अन्य सबको रौंदकर अपने स्वार्थ को साधता हो। कवि की राजनीति भी बिल्कुल साम्यवादी पार्टी की राजनीति है, राष्ट्र में हिंसात्मक क्रांति तथा विश्वशांति के प्रवर्तक हैं। राष्ट्रीय क्रांति के संदर्भ में उनकी उग्रता देखिए—

दानव है वह चाह रहा, जो एकाकी सोना बटोरना  
गीधों को ही आता लाशें अगोरना  
हमें नहीं करते पसंद हैं  
सड़े घाव में चीड़-फाड़ करना ही होगा।<sup>11</sup>

'टके की मुस्कान, करोड़ों का खर्चा' में कवि ने शिकार के शौकीन महाराजा द्वारा किए गए शिकार को व्यंग्य का शिकार बनाया है—

बीत गई सर्दी, बीत गया माघ,  
रानी के खसम ने मारा है बाघ  
टके की मुस्कान करोड़ों का खर्चा,  
इस ताम-झाम की कहाँ नहीं है चर्चा।<sup>12</sup>

शिकार के मामूली से व्यसन के लिए करोड़ों का खर्चा कर डालना भारत जैसे गरीब देश के लिए आश्चर्य और व्यंग्य का विषय है। वह समाज के शोषकों का अंत कर जन-जन में अपने प्राप्य के प्रति एक ज्वलंत चेतना उत्पन्न करने के हिमायती हैं। जैसे—

व्यक्ति-व्यक्ति दुख-दैन्य ग्रस्त है,  
दुविधा में समुदाय पस्त है  
लो मशाल अब घर-घर को आलोकित कर दो  
तुम किशोर तुम तरुण।<sup>13</sup>

नागार्जुन व्यक्ति पर सामाजिक नियंत्रण आवश्यक मानते हैं। सामाजिक प्रतिबंध को



इतना महत्त्व देते हैं। इसे अपनी रचनाओं में पिरोते हैं—सलिल को सुधा बनाएँ तटबंध। धरा को मुद्रित करें नियमित नदियाँ।<sup>14</sup>

नागार्जुन जी की यह विचारधारा उनके मार्क्सवादी विचार का ही पोषण करती है। व्यक्ति समाज की एक कड़ी होता है। कड़ी का योग ही समाज रूपी जंजीर बनाता है। जंजीर व्यवस्थित रहे, इसके लिए कड़ी को एक-दूसरे से मिलकर समायोजन करना होगा। नागार्जुन क्रांति के बाद भी जीवन में सतत संघर्ष आवश्यक मानते हैं। संघर्ष ही जीवन की धारणा को लेकर वे जीवन जीना चाहते हैं। एक कविता देखिए—

भौतिक भोगमात्र सुलभ हो भूरि-भूरि  
विवेक को कुंठित।  
तन हो कनकाय मन हो तिमिरावृत्त।  
कमलपत्री नेत्र हों बाहर-बाहर  
भीतर की आँखें निपट निमीलित  
यह कैसे होगा? यह क्यों कर होगा?<sup>15</sup>

भारतीय पुरुषप्रधान सामाजिक संरचना नारी को भोग्या बनाकर, शुचिता का आदर्श रखकर, पातिव्रत्य धर्म का उपदेश देकर समाज ने उसे खूब छला है। कवि नारी को उसका वास्तविक अधिकार दिलाना चाहता है। उनकी कविताएँ इनका शोषण बंद करने का बिगुल बजाती हैं जिसे मर्यादा पुरुषोत्तम राम के द्वारा कहलवाते हैं—

छूकर अब तुम्हारे दोनों पाँव, होता राघव राम प्रतिज्ञाबद्ध  
नारी के प्रति कभी न होगा क्रूर, नहीं करेगा वह दूसरा विवाह।<sup>16</sup>

कवि नागार्जुन ने अछूतों का यंत्रणापूर्वक जीवन देखा है समाज में उनके साथ अन्याय, अत्याचार, बर्बर और पाशविक आचरण होता है, वे निरीह हैं, असहाय हैं, कवि उनके बीच जाता है, उनकी सताई मानसिकता से जुड़ता है, निराकरण करना चाहता है। कवि ने निराशा को कभी प्रश्रय नहीं दिया है। वह 'हरिजन गाथा' में अपने इस भाव को व्यक्त करता है—

ऐसा तो कभी नहीं हुआ था  
हरिजन माताएँ अपने भ्रूणों के जनकों को  
खो चुकी हों एक पैशाचिक दुष्कांड में।<sup>17</sup>

'राष्ट्रीय गीत' की तर्ज पर 'राष्ट्रीय व्यंग्यगीत' लिखकर उन्होंने स्वतंत्र भारत में शिक्षा-पद्धति की उड़ रही धज्जियों की धज्जियाँ उड़ाई हैं—

खून-पसीना किया बाप ने एक, जुटाई फीस  
आँख निकल आई पढ़-पढ़कर, नंबर आए तीस  
शिक्षामंत्री ने सिनेट से कहा, अजी शाबास!  
सोना हो जाता हराम, यदि ज़्यादा होते पास  
फेल पूत का पिता दुखी है, सिर धुनती है माता  
जनगणमन अधिनायक जय हे, भारत भाग्य विधाता।<sup>18</sup>

नागार्जुन जी की एक छोटी-सी काव्य-पुस्तिका है- 'प्रेत का बयान'। इस बयान के माध्यम से उन्होंने व्यंग्यपूर्ण शैली में एक ऐसे व्यक्ति की जीवन-स्थिति चित्रित की है, जो

अर्थाभाव के कारण 'पेचिस' की बीमारी का भी उपचार न करा सका और मर गया। उस व्यक्ति का प्रेत यमराज के न्यायालय में उपस्थित होता है। यमराज उससे मरने का कारण पूछते हैं-

ओ रे प्रेत! कड़कर बोले नरक के स्वामी यमराज- / सच-सच बतला/ कैसे मरा तू? / भूख से? अकाल से? / वह उत्तर देता है- / सुनिए महाराज, / तनिक भी पीर नहीं / दुख नहीं, दुविधा नहीं / सरलतापूर्वक निकले थे प्राण / सह न सकी आँत पेचिश का हमला।<sup>19</sup>

समाजवादी जीवन-दर्शन के हिमायती नागार्जुन की रचनाओं का कथ्य शोषण और दुख में रहनेवाली जनता का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती है। कविता में करुणा का भाव सहज ही अपनी छाप छोड़ता प्रतीत होता है। करुणा की अनुभूति निम्न कविता में द्रष्टव्य है-

कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास  
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास  
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त  
दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद  
कौए न खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद।<sup>20</sup>

नागार्जुन की अन्य महत्त्वपूर्ण राजनीतिक व्यंग्य कविता है, 'तुम रह जाते दस साल', जो उन्होंने नेहरू जी की मृत्यु के पश्चात् लिखी थी। यह कविता नेहरू-शासन की सबसे तीखी आलोचना है।<sup>21</sup> इसके आगे की एक और कविता इन्होंने लिखी 'मंत्र'। इस कविता में नागार्जुन ने 'ओम्' मंत्र के माध्यम से देश के राजनीतिक-सामाजिक जीवन में व्याप्त वक्तव्य, उद्गार, घोषणाओं, भाषाणों, प्रवचनों, हुंकारों, फटकारों अर्थात् यों समझिए कि समूची राजकीय स्थिति को व्यंग्य का निशाना बनाया है, जिसमें मामूली से हास्य की सृष्टि भी होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नागार्जुन ने अपनी राजनीतिक व्यंग्य-कविताओं में समूचे राजनीतिक परिवेश में व्याप्त विसंगतियों को उभारा है और उन पर प्रहार भी किया है। नागार्जुन ने राजनीति की विडंबनाओं पर व्यंग्य करने के साथ-साथ सामाजिक और आर्थिक विसंगतियों को भी नहीं बख्शा। इन पर खुला और मुँहतोड़ व्यंग्य किया है।

'जयति नखरंजनी' कविता में कार से बाहर निकली उन सुसज्जित युवतियों पर व्यंग्य है, जो वोट डालने के लिए पोलिंग-बूथ तक जाती हैं, लेकिन इस भय से वोट नहीं डालती हैं कि वोट डालने से उनकी उँगली पर भी काला निशान लग जाएगा। यह है हमारे तथाकथित शिक्षितों और आधुनिकों की जनतांत्रिक चेतना। इसी विडंबना पर नागार्जुन ने उक्त कविता में व्यंग्य किया है। 'तो फिर क्या हुआ' में एक ऐसे सरकारी बुद्धिजीवी अफसर की तस्वीर है, जो महज स्वार्थी है और जिसे मात्र वेतन से सरोकार है। बड़ी से बड़ी घटना उसके तक़िया क़लाम 'तो फिर क्या हुआ' के नीचे दबकर मर जाती है-

नदी के पेट में चला गया है समूचा गाँव  
बेघर हो गए हैं हजारों लोग  
पगला गई है बूढ़ी गंडक...  
छोड़कर सिंगार का ढेर-ढेर धुँआ  
प्रज्ञाकर गुणनिधान प्रचार्य बोले-  
यह सब तो चलता ही रहेगा

कहाँ तक रोएंगे आप?<sup>22</sup>

आजकल शहरों का जीवन बड़ा कठिन हो गया है। वहाँ नित्यप्रति नए मकान बनते जाते हैं, किंतु उनका किराया इतना अधिक होता है कि निम्न क्या, मध्यम श्रेणी के व्यक्ति भी उन्हें लेने का साहस नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में अत्यंत साधारण अस्वास्थ्यकर छोटी-छोटी कोठरियों में उन्हें सपरिवार रहने को विवश होना पड़ता है। वे मकान नहीं होते, वास्तव में बड़े पिंजरे होते हैं। पिंजरों के सींखचों से वायु और प्रकाश तो आता है, किंतु इन 'घर' कहे जानेवाले पिंजरों में यह भी संभव नहीं होता। बंबई-कलकत्ता जैसे शहरों में ऐसे ही घरों में सहस्रों श्रमिकों एवं अन्य मध्यमवर्गीय व्यक्तियों को रहना पड़ता है। कवि ने ऐसे ही एक घर को 'आदम का तबेला' कहा है। उस तबेले की यह स्थिति है-

ऊपर देखते हैं बाल्टियों के ढेर

पितरों की प्यासी रूहें।

अँगूठा चूसती है नवजात बच्ची

खिड़की से लटका दिया है लाल खिलौना।<sup>23</sup>

'चौराहे के उस नुक्कड़ पर' कविता में काँटों का बिस्तरा बिछाकर तमाशा बनकर सोए हुए दाढ़ीवान साधु का पर्दाफाश किया गया है। लोग अपनी श्रद्धा के अनुसार पैसा, दो पैसे, पाँच पैसे अर्थात् जैसी श्रद्धा वैसे सिक्के डालकर आगे बढ़ जाते हैं, किंतु कवि इस श्रद्धा का नाता तिकड़म से उजागर करता हुआ स्थिति से समग्र व्यंग्य को उघाड़ देता है-

श्रद्धा का तिकड़म से नाता

जय हे भिक्षुक, जय हे दाता

पियो संतं हुगली का पानी

पैसा सच है, दुनिया फानी।<sup>24</sup>

नागार्जुन ने अपने व्यंग्य की पैनी धार दसों दिशाओं में फैली असंगतियों एवं लूट-खसोट पर घुमाई है। उनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है, उनके व्यंग्य में आक्रोश, अमर्ष, करुणा और हास्य का समुचित मिश्रण और कथ्य की गम्भीरता। इसी कारण नागार्जुन के व्यंग्य में जहाँ हास्य का पुट है, वहाँ भी वे तथाकथित हास्य-व्यंग्य के कवियों से बहुत अलग दिखते हैं और जहाँ करुणा है, वहाँ तथाकथित गंभीरतावाले कवियों से। ऊबड़खाबड़, किंतु चट्टान की-सी मजबूती रखने वाली, क्षिप्र और हथौड़ी-सी चोट करने वाली, बेतकल्लुफ़, फक्कड़ और निर्भीक व्यंग्य रचनाएँ लिखने के कारण नागार्जुन का स्थान अन्य व्यंग्यकारों की तुलना में हमेशा अलग रहेगा। नागार्जुन जी के काव्य-दर्शन के संबंध में यही कहा जा सकता है कि उनकी कविताओं में संवेदनशील अनुभूतियाँ व्यक्त हुई हैं। वे काव्य में सरल, सहज और स्पष्ट शैली के प्रयोग के पक्षधर हैं। पुराने विशेषज्ञों के प्रयोग से काव्य की शक्ति शिथिल होती जा रही है। वे नित्य नए विशेषज्ञों एवं प्रतिमानों के प्रत्यारोपण के हिमायती हैं।

जनकवि जनता का होता है, उसका जीवन-दर्शन, उनकी भाषा-शैली समग्रतः सामान्य जनमानस के लिए होती है। परिस्थितिवश भावुकता की स्थिति में वे जनता से थोड़ा कटते प्रतीत होते हैं, परंतु कभी-कभी उनकी जीवनदृष्टि सामान्यजन के साथ इस कदर जुड़ जाती है कि उनकी सामाजिक एवं राजनीतिक सोच पर फिर से लोगों को सोचने को मजबूर

कर देती है। परंतु कवि नागार्जुन सामान्यजन की सभी ग़लत-सही नीतियों का आँख मूँदकर समर्थन नहीं करते। इससे साहित्यजगत में उनकी स्थिति और भी मजबूत होती है। उनके जीवन दर्शन की सच्ची अभिव्यक्ति सर्वहारा को उचित दर्जा दिलाने की है। नागार्जुन के संबंध में डॉ॰ नामवरसिंह ठीक ही कहते हैं— 'तुलसी के बाद नागार्जुन ही ऐसे कवि हैं, जिनकी कविताओं की पहुँच किसानों की चौपाल से लेकर रसिकों की गोष्ठी तक है, नागार्जुन सच्चे अर्थों में स्वाधीन भारत के जनकवि हैं।' <sup>25</sup>

कुल मिलाकर नागार्जुन जी की कविताएँ अपनी संपूर्णता में अतीत के पचास वर्षों की भारतीय जीवन की तस्वीर है। नागार्जुन एक स्वाभिमानी, अपने उत्तरदायित्वों के प्रति सजग रहने वाले कवि हैं। वे स्पष्ट घोषणा करते हैं कि—

जनकवि हूँ, क्यों चाहूँगा मैं थूक तुम्हारा  
श्रमिकों पर क्यों चलने दूँ बंदूक तुम्हारी।<sup>26</sup>

#### संदर्भ

1. नई कविता नए कवि, पृ० 138
2. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी-कविता में व्यंग्य, डॉ॰ शेरजंग गर्ग, पृ० 282-283
3. प्रो॰ हरिनारायण मिश्र: नई कविता, संपादक डॉ॰ वासुदेवनंदन प्रसाद, पृ० 100
4. नई कविता: सं॰ वासुदेवनंदन प्रसाद, पृ० 100
5. प्रगतिवादी काव्य साहित्य, डॉ॰ कृष्णलाल 'हंस', पृ० 292
6. स्वातंत्र्य हिंदी-कविता में व्यंग्य, डॉ॰ शेरजंग गर्ग, पृ० 286
7. प्रतिवादी कविता में प्रकृति-प्रेम और सौंदर्य, डॉ॰ हीरालाल शर्मा, पृ० 86-87
8. वही, पृ० 84
9. वही, पृ० 84
10. वही, पृ० 84
11. शांति का मोची, हंस, सन् 1980
12. प्यासी पथराई आँखें, पृ० 60
13. आलोचना 1968 अगस्त, पृ० 69
14. यह कैसे होगा? जनकवि, सं॰ विजयबहादुर सिंह, पृ०-86
15. सतरंगे पंखोंवाली पृ० 13
16. पाषाणी उद्धृत, नागार्जुन की काव्ययात्रा, डॉ॰ रतनकुमार पांडेय, पृ० 45
17. हरिजन गाथा, जनकवि, सं॰ विजयबहादुर सिंह, पृ० 129
18. नई कविता सं॰ डॉ॰ वासुदेवनंदन प्रसाद, पृ० 101
19. युगधारा, प्रेत का बयान, पृ० 42
20. अकाल और उसके बाद, नागार्जुन, पृ० 30
21. नागार्जुन, चौखंबा दीवाली विशेषांक, नवंबर, 1964, पृ० 25
22. नागार्जुन : सतरंगे पंखोंवाली, पृ० 37
23. सतरंगे पंखोंवाली- 'आदम का तबेला', पृ० 18
24. प्यासी पथराई आँखें, पृ० 32
25. नागार्जुन : प्रतिनिधि कविताएँ, सं॰ नामवरसिंह, भूमिका से, पृ० 9
26. नागार्जुन की काव्ययात्रा, डॉ॰ रतनकुमार पांडेय, पृ० 138

## नारी-मुक्ति आंदोलन और स्त्री-लेखन

सुश्री स्नेहा सिंह

समकालीन आलोचना जगत् का सर्वाधिक विवादित विषय है—नारी-मुक्ति आंदोलन और स्त्री-लेखन की भूमिका। निश्चय ही यह महत्वपूर्ण प्रश्न है कि नारी-मुक्ति का अभिप्राय क्या है? स्त्री-लेखन का औचित्य क्या है? नारी की मुक्ति केवल देह से मुक्ति में है या फिर वर्गीय संस्कारों से मुक्त होने में? दरअसल, हमारे सामाजिक व्यवस्था का नियंता हमारी पितृसत्ता, जो चिरकाल से पुरुष-सत्ता को महिमामंडित करता हुआ, उसे उत्तराधिकारी घोषित करता हुआ, स्त्रियों की पतितावस्था एवं दीनावस्था का कारण बना हुआ है। सामाजिकता, नैतिकता, मर्यादावाद, आदर्शवाद और संस्कारिकता के नाम पर पितृसत्ता ने जो कानून और मानदंड तैयार किए वह वास्तव में एक तरफा था, पक्षपातपूर्ण था, एक ऐसी कानून-व्यवस्था, जो केवल स्त्रियों पर ही लागू होती है और उसका उल्लंघन करने पर दंड का विधान भी उसी के लिए निर्धारित किए गए हैं। पितृसत्ता ने कभी भी स्त्रियों को एक 'मनुष्य' का दर्जा नहीं दिया। उसकी अस्मिता, उसकी स्वतंत्रता, उसके स्वप्न, उसकी आस्था, उसकी जिजीविषा का सदैव हनन किया है। स्त्री-जीवन की त्रासदी का यथातथ्य संवेदनपूर्ण अंकन महिला कथाकारों ने अपनी रचनाओं में किया है। ऊषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, राजी सेठ, शशिप्रभा शास्त्री, प्रभा खेतान, महेरुन्निसा परवेज, नासिरा शर्मा, मृदुला गर्ग, सूर्यबाला, चंद्रकांता, अरुणा कपूर जैसे शीर्षस्थ महिला कथाकारों ने नारी-मुक्ति आंदोलन को नई दिशा दी है।

तथ्य है कि स्त्री-जीवन की त्रासदी को जितनी शिद्दत के साथ स्त्री कथाकारों ने अभिव्यक्ति दी है, उतनी आंतरिकता के साथ पुरुष लेखकों ने नहीं। आत्मपीड़ा का साक्षात्कार भुक्तभोगी द्वारा ही संभव है।

प्रभा खेतान का संदर्भित मंतव्य है—'आज भी महिला-लेखन में स्त्री वर्ग की शिकायतों, उसके प्रकट और अप्रकट क्रोध, छुपे हुए आक्रोश तथा जीवन के प्रति उसके विशिष्ट दृष्टिकोण को ज्यादा शिद्दत से अभिव्यक्त किया जा सकता है। रोज़मर्रा की ज़िंदगी, निजी घटनाओं का सटीक वर्णन जितना महिला-लेखन में प्रस्तुत किया जा सकता है, उतना पुरुष में नहीं।' (औरत : अस्तित्व और अस्मिता पृ०22)

स्त्री-लेखन ने नारी की दुर्दमनीय इच्छा शक्ति को क्रांतिकारी पहचान दी है। आधी आबादी पुरुष सत्ता की संपूरक है, शक्ति का प्रतिरूप, अनंत संभावनाओं का कोष। वस्तुतः स्त्री-लेखन का उद्देश्य स्त्री-जीवन के विभिन्न अध्यायों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन है। स्त्री

लेखन की सार्थकता की विवेचना करते हुए प्रभा खेतान खिलती हैं।

‘स्त्री अपनी मानवीय गरिमा और अधिकार को समझकर संरचनात्मक, सांस्कृतिक तथा मानवीय दृष्टिकोण के मूल तत्त्वों का विश्लेषण करे, अपने लेखन से उन तमाम स्त्रियों को शक्ति दे, जो संघर्षरत हैं तथा जो स्त्री-समाज के विकास में सक्रिय हैं, वे जो समाज की नज़रों से दूर, कहीं किसी कोने में सुबक रही हैं, जिनके पास मानवीय गरिमा के नाम पर अपना शरीर है, उनको भी शब्द प्रदान करे, जीवन जीने की प्रेरणा दे।’ (औरत : अस्तित्व और अस्मिता पृ०26)

औद्योगीकरण और मशीनीकरण सभ्यता के साथ कंधा से कंधा मिलाकर चलने के बावजूद हमने अपनी मानसिकता को जड़ ही बनाए रखा। शिक्षित और आर्थिक स्वावलंबिता प्राप्त करने के बाद भी स्त्री पुरुषवादी समाज के लिए भोग्या ही बनी रही। पितृसत्तात्मक संस्कारों ने सदियों से नारी को नारी को शारीरिक एवं मानसिक रूप से प्रताड़ना दी है और आज भी निरंतर प्रताड़ित ही करते आ रहे हैं। हमारे समाज में सारे समझौते स्त्रियों को ही करने पड़ते हैं। शशिप्रभा शास्त्री द्वारा लिखित अमलतास (1968) की नारी-पात्र भारतीय पत्नी की सभी मर्यादाओं का पालन करते हुए भी एक परित्यक्ता का जीवन निर्वाह करती है। मृदुला गर्ग नारी की इन मानसिक जटिलताओं से संवेदना के स्तर पर साक्षात् करती लक्षित होती हैं। उसके हिस्से की धूप (1975) की मनीषा का द्वंद्व आधुनिक नारी की अनेक समस्याओं पर प्रकाश डालती है। साथ ही नारी-मुक्ति आंदोलन को एक नई अर्थवत्ता भी प्रदान करती है। स्त्री जाति चाहे वह किसी भी प्रगतिशील देश या समाज की हो, स्त्री-अस्मिता का प्रश्न सर्वत्र ज्यों का त्यों बना ही है। क्या स्त्री अस्मिता का आशय आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने में है? या राजनीतिक-सामाजिक सत्ता में 50% की अधिकारिणी बनने में? क्या राष्ट्र की सत्ता में केवल पचास प्रतिशत की अधिकारिणी मात्र बनने से नारी-जाति की मुक्ति संभव है? उग्र नारीवाद केवल देह-मुक्ति असंभव है। मृदुला गर्ग कृत ‘कठगुलाब’ (1996) और चित्तकोबरा जैसे उपन्यासों ने नारी-मुक्ति की एक नवीन परिभाषा गढ़ी है। उनकी नारी-पात्रों ने स्मिता, मारियान, असीमा, नर्मदा, नीरजा, अत्याधिक प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने आत्माभिमान को टूटने नहीं दिया। स्त्री न तो अपनी इच्छा से किसी से प्रेम करने की अधिकारिणी है, न स्वेच्छा से पति का चुनाव ही कर सकती है। इतना ही नहीं हमारे सामाजिक ठेकेदारों और धर्म के ध्वजाधारियों ने सारे नैतिक प्रतिबंध स्त्रियों के लिए ही सूत्रबद्ध किया हैं, पाप-पुण्य का ब्योरा हमेशा स्त्री-समाज को ही देना पड़ता है, वह चाहे हिन्दू-समाज की व्यवस्था हो या मुस्लिम-समाज की व्यवस्था हो या फिर ईसाई समाज-व्यवस्था की। रेखा कस्तवार का विचारणीय मन्तव्य है—

‘विवाह परिवार एवं स्त्री-पुरुषों के अंतर्संबंध ऐसे सामाजिक घटक हैं जिन्हें किसी काजी, पंडित या पादरी या अन्य धर्म सत्ता के निर्णय द्वारा नहीं, लोतांत्रिक कानून के शासन एवं समतावादी समाज व्यवस्था द्वारा लागू किया जाना चाहिए।’ (स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ पृ०112)

मेहरुत्रिसा परवेज के ‘उसका घर’ (1972) की शोषित पात्र अपनी दयनीय स्थिति का अंकन करती हुई कहती है—

‘औरत तो जूठा खाने की आदी ही होती है, चाहे खाने के मामले में हो चाहे शारीरिक संबंध में हो।’ आँखों की दहलीज़ (1969) में लेखिका ने मुस्लिम समाज में निर्धारित पुरुषसत्ता का वर्चस्व दिखलाते हुए स्त्री के पतितावस्था की करुण गाथा संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। जहाँ किसी भी पुरुष का किसी भी स्त्री से बलात् यौन-संबंध बनाना कोई अपराध नहीं बल्कि ऐसी स्थिति में स्त्री को की कुल्टा और व्याभिचारिणी की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। ‘उसका घर’ (1977) नारी-शोषण के उत्पीड़न की ऐसी भाग्यगाथा है, जहाँ नारी के संरक्षक ही उसकी शारीरिक समृद्धि की कीमत लगा बैठते हैं। नारी-नियति की ऐसी भयावह विडंबना और क्या हो सकती है, जहाँ सगा भाई ही अपनी तलाक़शुदा बहन को दाँव पर लगा देता है।

पितृसत्ता ने उत्तराधिकार से ही आधी आबादी के साथ छल किया है। पूँजी और परिवार की बागडोर सदा उनके हाथों ही रही। नारी मात्र एक माध्यम है, या यँ कहिए कि पुरुषसत्ता की खेती करने का माध्यम, जो उनकी शक्ति और पूँजी को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करती है। इसी लक्ष्यसिद्धि के लिए समाज ने विवाह संस्था की स्थापना की। दरअसल, यह पितृसत्ता द्वारा बुना हुआ मकड़जाल है, जिसमें स्त्री दिन-प्रतिदिन रिशतों की मर्यादा में बंधती चली जाती है और इसी क्रम में वह अपना नाम तक भूल जाती है, अर्थात् अपने ‘स्व’ को पूर्णतः विसर्जित कर देती है किया है। ठीकरे की मंगनी (1989) में लेखिका का वक्तव्य है—

‘एक घर औरत का अपना भी तो हो सकता है, जो उसके बाप और शौहर के घर से अलग, उसकी मेहनत और पहचान का हो। सवाल रास्ता चुनने का और उस पर दृढ़तापूर्वक चलने का है। इस प्रक्रिया में कुछ अपने को हालात के हवाले कर देते हैं, कुछ सर झुका देते हैं, कुछ अपने को मिटा देते हैं और कुछ इस टूटन को एक नया अर्थ देकर यह बताते हैं, यही जीवन का अंतिम चौराहा नहीं है। इस लंबी जिंदगी में बहुत सारे चौराहे आपको मिलेंगे और आप होंगे, अपने रास्ते को पहचानते नाक की सीध में चलते हुए अपनी मंज़िल पर पहुँचेंगे।’

इस विज्ञान द्वारा लेखिका ने स्त्री की घुटन भरी त्रासदायी जिन्दगी से मुक्त होने की संकल्पना की है।

नारी-विमर्श के क्षेत्र में अपनी अद्वितीय प्रतिभा द्वारा नारी-मुक्ति आंदोलन को तेजस्विता प्रदान करने में चित्रा मुद्गल अन्यतम स्थान की अधिकारिणी हैं। नारीत्व, सतीत्व, मातृत्व दरअसल पितृसत्ता द्वारा बनाए गए नारी के उच्चतम आदर्श है बल्कि कहना चाहिए कि यह एक सीमारेखा है, जिसके बाहर उसकी कोई दुनिया नहीं। चित्रा मुद्गल ने अपने स्त्री चरित्रों द्वारा पितृसत्ता की अवस्थाओं पर कुठाराघात करती हुई नारी-विमुक्ति का आह्वान करती हैं— एक ज़मीन अपनी (1990) की स्त्री पात्र का कथन है—‘पुरुष से स्वतंत्र होना है तो पहले उन्हें सिन्दूर पोंछना होगा। बिछुए त्यागने होंगे। दासीत्व के प्रतीक चिह्न।’ वही पात्र अन्यत्र कहती है, ‘मैं पत्नी नहीं, सहचरी बनना चाहती हूँ। पत्नी शब्द में मुझे दासीत्व की बू आती है।’ ध्यातव्य है कि यहाँ लेखिका का विज्ञान स्त्री को पुरुष की सहचरी बनाने के पक्ष में है, उसकी जागीर नहीं अर्थात् वैयक्तिक-सामाजिक निर्वाह के लिए स्त्री-पुरुष का आपसी

सामंजस्य अनिवार्य है। ममता, गौमती, स्मिता जैसे चरित्रों द्वारा नारी-अस्मिता के प्रति लेखिका की वैचारिक प्रतिबद्धता दिखलाई पड़ती है। आवाँ (2000) की नमिता का संघर्ष दीप्तिमान है। पुरुषसत्ता ने अपनी वंश-परंपरा तथा पूंजी के उत्तराधिकार के लिए नमिता की कोख का इस्तेमाल करना चाहा। लेकिन स्त्रीत्व-शक्ति से संचरित नमिता की संघर्ष-क्षमता पितृसत्ता को चुनौती देती है। चित्रा मुद्गल की विशेषता है कि उन्होंने नारी विमुक्ति का प्रश्न पारिवारिक संदर्भ में भी उठाया है। स्त्री-पुरुष का आपसी सांमाजस्यपूर्ण निर्वाह ही सफल दांपत्य जीवन की शर्त है।

स्त्री-विमुक्ति का संबंध सामाजिक प्रगति से जोड़ते हुए रेखा कस्तवार लिखती हैं—  
 'स्त्री-विमुक्ति सामाजिक प्रगति का अनिवार्य हिस्सा है यह केवल स्त्रियों का मामला नहीं है। स्त्रियों की अधिकार सम्पन्नता न केवल स्वयं उनके जीवन को सकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकती है बल्कि वास्तव में, पुरुषों और उनकी सन्तानों पर भी प्रभाव डाल सकती है। जिन पर हमारे परिवार, समाज और राष्ट्र का भविष्य निर्भर करता है।'

(स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, पृ० 189)

नारी-विमर्श की सशक्त हस्ताक्षर सोबती ने उपभोक्ता-संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में निरंतर उपभोग की वस्तु बनती स्त्री, की कारुणिक परिणति की ओर दृष्टिपात किया है। पितृसत्तात्मक मूल्यों ने स्त्रियों के लिए न जाने कितनी संहिताओं का निर्माण किया है? कहीं पत्नी के रूप में स्वीकृत होते हुए भी वह कुंठा की शिकार है तो कहीं रखैल के रूप में अवहेलित, तिरस्कृत और अपमानित। दिलो दानिश (1993) में लेखिका ने एक तरफ हवेली की कुटुंबप्यारी का जीवन-यथार्थ प्रस्तुत किया है, तो दूसरी तरफ महक बानो के रूप में तथाकथित बाजारु औरत का यथार्थ जीवन। कुटुम्ब प्यारी अवैध यौन-संबंध बनाने और आत्महत्या करने की हद तक कुंठित है तो दूसरी तरफ परिस्थितियों से मजबूर महक बानो (रखैल) वकील साहब के बच्चों की माँ होने के बावजूद घर परिवार और समाज से तिरस्कृत। पत्नी से हुए बच्चे हवेली के वारिस हैं, लेकिन महक से हुए बच्चें नाजायज। सूरजमुखी अँधेरे के, में बचपन में ही बलात्कार की शिकार रत्ती का संघर्ष वास्तव में उन बेटियों की संघर्षगाथा है जिन्हें यह समाज फटकारते हुए कहता है— 'कलमुँही तू मर क्यों नहीं गई?' महानगर हो या कस्बा, घर या आफिस, नारी-सुरक्षा का प्रश्न आज और भी अधिक चिंतनीय बना है। रत्ती के चरित्र का विश्लेषण करते हुए राजेन्द्र यादव का कथन है—

'सूरजमुखी अँधेरे के' में कृष्णा जी की नारी एक खतरनाक दिशा की ओर मुड़ती दिखाई देती है। 'डार से बिछुड़ी' में आदमी ने औरत को 'चीज' की तरह इस्तेमाल किया था, यहाँ औरत आदमी को एक दूसरी दृष्टि से इस्तेमाल करती है।'

कृष्णा सोबती के अनुसार नारी विमुक्ति का पहला चरण है— मध्यमवर्गीय संस्कारों का विद्रोह। 'मित्रो मरजानी' (1967) की केन्द्रीय पात्र मित्रो परंपरागत स्त्रीत्व-मर्यादाओं को विध्वंस करती हुई स्वतंत्र विचरण करना चाहती है। मित्रो में आग की ऐसी धधक है, जिसकी तृप्ति एक पुरुष द्वारा संभव नहीं। आत्मतृप्ति ही एकमात्र उसका ध्येय है और इसके लिए वह कुछ भी करने को तैयार है। महिला-सशक्तीकरण को और भी गतिशील बनाने में हमारी महिला लेखिकाओं का अभूतपूर्व योगदान है।



स्त्रीत्ववादी-संघर्ष का शंखनाद करती हुई मैत्रेयी पुष्पा ने नारी-चेतना जागृति में, विशेषकर दलित-समुदायों में स्त्री-शोषण के विरुद्ध, विद्रोह का स्वर गुंजित करने में अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया है। 'इदन्नमम्' (1994) की मंदाकिनी, 'चाक' (1997) की सारंग और 'अल्मा कबूतरी' (2000) की अल्मा वस्तुतः ऐसे नारी-चरित्र हैं, जो अत्याचार, शोषण और दमन के विरुद्ध सत्ताधारियों, सफेदपोशों और कालाबाजारियों से सीधी टक्कर लेती हैं। सारंग द्वारा ग्राम पंचायत में प्रधान-पद के लिए नामांकन भरना तथा अल्मा का राजनीति में हस्तक्षेप वस्तुतः एक आह्वान है— पुरुषसत्ता के विरुद्ध, जो यह घोषित करती है कि स्त्री न केवल घर-गृहस्थी की बागडोर संभाल सकती है वरन् राष्ट्रीय सत्ता की बागडोर संभालने में भी वह पूर्णतः समर्थ हैं। मंदाकिनी, सारंग और अल्मा की क्रांतिकारिता वस्तुतः किसी न किसी रूप में वर्गीय चेतना को भी आंदोलित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं।

अरविंद जैन इन चरित्रों की नब्ज पहचानते हुए कहते हैं—

'इदन्नमम्' की प्रायः सभी प्रमुख महिला पात्र पुरुष-प्रधान द्वारा निर्धारित (सही-ग़लत, नैतिक-अनैतिक, वैध-अवैध) संबंधों की हर नैतिक मर्यादा पर प्रश्न चिह्न लगाती हुई, परिवार की परंपरागत चाहरदीवारी को तोड़ती-लाँघती, देह औरी धरती के आर पार देखती हैं—पुरुष पराधीनता से मुक्त, 'जो होगा देखा जाएगा' की चुनौती स्वीकारते हुए कदम-कदम पर लोक जीवन में यातना और उपेक्षा की शिकार होती यह औरत पराजित होकर समर्पण या समझौता नहीं करती। पुरुष-सत्ता की शतरंज, सम्पत्ति और संबंधों के समीकरण और मानसिक संस्कार के संकटों को साफ-साफ समझती-समझती 'आधी दुनिया', अपने मानवीय अधिकारों के हनन-दमन के विरुद्ध प्रतिरोधक शक्ति का संगठित और सुदृढ़ करने की कोशिश में चौपाल तक जा पहुँचती है।'

(औरत : अस्तित्व और अस्मिता, पृ० 102)

औरत बनने की प्रक्रिया शुरुआत जहाँ से होती है, उसके अस्तित्व के विध्वंस का सूत्रपात भी हो जाता है। शीर्षस्थ महिला कथाकार प्रभा खेतान कृत 'आओ पेपे घर चलें' (1990) की नारी पात्र आइलिन की संदर्भित उक्ति है— 'औरत कहाँ नहीं रोती और कब नहीं रोती? वह जितना भी रोती है उतनी ही औरत होती चली जाती है।'

विश्व का सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र अमेरिका, वैश्विक स्तर पर तमाम गतिविधियों में अग्रणी रहते हुए भी नारी के प्रति उदारवादी दृष्टि नहीं अपना सका। नामांकित उपन्यास द्वारा अमरीकी औरत के जीवन-यथार्थ पर आलोकपात करना ही लेखिका का ध्येय है। छिन्नमस्ता (1995), अपने अपने चेहरे, पीली आँधी आदि उपन्यासों में प्रभा खेतान का नारी दर्शन मुखर है। विवाह, पति और बच्चे से इतर अपने अस्तित्व की तलाश, परंपरागत नारी-संहिताओं को कुरेदती हुई नारी-सार्थकता के नए प्रतिमानों का अन्वेषण तथा निर्धारित सामाजिक मानदंडों का संशोधन कर नारी-समाज की प्रगतिशीलता के लिए प्रभा खेतान की प्रतिबद्धता दृष्टिगत होती है। पीली आँधी की सोमा और चित्रा तथा छिन्नमस्ता की प्रिया नारी सशक्तीकरण की बेजोड़ परिभाषा है, उनकी संकल्प शक्ति अदम्य है और दुर्दांत है उनकी जिजीविषा। पीली आँधी की सीमा और चित्रा दरअसल भावी स्त्री की प्रतिरूप हैं, अरविंद जैन लिखते हैं—

‘पीली आँधी’ भविष्य की स्त्री का सपना भी है और नए संविधान की रूपरेखा भी। विवाह संस्था और परिवार के विधान और अर्थशास्त्र को समझने-समझाने की दिशा में ‘पीली-आँधी’ सार्थक और महत्वपूर्ण भूमिका है।’

(औरत : अस्तित्व ओर अस्मिता, पृ० 66)

मध्यवर्गीय समाज में कामकाजी, अविवाहित स्त्रियों की इच्छा-अकांक्षा, पारिवारिक दायित्वों, परंपरित-मूल्यों के बीच संघर्षशील स्त्रियों के मर्म से साक्षात् कराने में उषा प्रियंवदा कृत ‘पचपन खंभे लाल दीवारें’ महत्वपूर्ण है। उपन्यास की नायिका सुषमा का अपने प्रेमी नील से दैहिक संबंध न केवल पितृसत्ताक-विवाह संस्था को चुनौती है वरन् आधुनिक नारी की साहसिकतापूर्ण आत्माभिव्यक्ति भी है।

आधुनिक परिवेश की जटिलताएँ दिनों-दिन बढ़ती ही जा रही हैं। महानगरीय परिवेश में संयुक्त परिवार तो क्या एकल परिवार की संकल्पना भी ध्वस्त हो रही है। संबंधों की यांत्रिकता, ऊब, विच्छेद एवं इस संश्लिष्ट त्रासदायी परिणति का मर्मस्पर्शी अंकन मन्नु भंडारी कृत ‘आपका बंटी’ (1971) में परिलक्षित होता है। पति-पत्नी के बीच अहर्निष्ठा की द्वंद्व में संवेदनशील शिशु पिसता जाता है। आपका बंटी का केंद्रीय पात्र बंटी की त्रासद स्थिति यह सोचने के लिए विवश करती है कि माता-पिता के तलाक लेने पर बंटी का भविष्य क्या होगा? तलाक के बाद शकुन द्वारा पुनर्विवाह करने पर भी उसका महसूस करना कि-‘जैसे एक सुरंग ने उसे दूसरी सुरंग के मुहाने पर छोड़ दिया है फिर एक और यात्रा- वैसा ही अंधकार वैसा ही अकेलापन।’ और दूसरी तरफ बंटी को लेकर शकुन का द्वंद्व। लेखिका ने बड़ी सूक्ष्मता से आधुनिक नारी (शकुन) की विवशता, तनाव और द्वंद्व को उभारा है। अरविंद जैन शकुन की मनोव्यथा इन शब्दों में अंकित करते हैं-

‘आपका बंटी’ की शेष व्यथा-कथा इसी ‘पराजित’ या ‘समर्पित’ शकुन के हारने, थकने, टूटने, बिखरने और खोने या खोते चले जाने की कहानी है, जिसका दुष्परिणाम सिर्फ बंटी ही नहीं, वह स्वयं भी भुगतती है। वह न बंटी की माँ की तरह ही जी पाती है और न ‘स्वतंत्र व्यक्तित्व’ वाली शकुन की तरह।’

(औरत : अस्तित्व और अस्मिता, पृ० 79)

महिला कथाकारों ने स्त्री-जीवन के एक-एक कटु अनुभव, आक्रोश, द्वंद्व, मानसिक जटिलताओं, तनाव, संघर्ष-क्षमता का अंकन करने के साथ-साथ भविष्य में उभरने वाली स्त्री की प्रतिछवि भी प्रस्तुत की हैं। भावी नारी का यह उग्र रूप न केवल पितृसत्ताक-मूल्यों को चुनौती दे रही हैं अपितु स्त्री-देह का बजारीकरण और नारी के प्रति उपभोक्तावादी मानसिकता पर भी प्रश्न चिह्न लगा रही हैं।

□ सिलीगुड़ी ( पं० बंगाल )

दाजिलिंग

09475396089

## पाषाण-युद्ध की निराली छटा : बग्वाल

डॉ० (श्रीमती) इला साह

उपाचार्य, समाजशास्त्र

कुमाऊँ विश्वविद्यालय,

सोबनसिंह जीना परिसर, अल्मोड़ा

हिमालय की गोद में बसा उत्तराखंड देवभूमि के रूप में सर्वत्र मान्य है। यह संपूर्ण भारतवर्ष में अपने प्राकृतिक, पौराणिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक वैविध्य के कारण अलग पहचान बनाए हुए है। सदा से ही देवी-देवताओं एवं ऋषि-मुनियों की तपोभूमि व कर्मभूमि के लिए विख्यात इस क्षेत्र के कण-कण एवं लोगों के जीवन में आध्यात्मिक आस्थाएँ निहित हैं, जिसका प्रतिबिंब यहाँ के पर्वोत्सवों एवं मेलों में आसानी से देखा जा सकता है। जो खुशी व उल्लास के प्रतीक, सांस्कृतिक विरासत के रक्षक व सजग प्रहरी तथा शारीरिक व मानसिक कष्टों से बच निकलने के सशक्त व आसान मार्ग भी होते हैं। उत्तराखंड के कुमाऊँ मंडल में मनाया जानेवाला सुप्रसिद्ध बग्वाल मेला भी इनमें से एक है।

मध्यहिमालय की सुंदर उपत्यकाओं के बीच कुमाऊँ मंडल के चंपावत मुख्यालय से लगभग 50 कि॰मी॰ की दूरी पर बसा है देवीधुरा क्षेत्र, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'देवी का वन पर्वत।' यह कुमाऊँ का एक ऐसा सुंदर ग्रामीण कस्बा है, जो अल्मोड़ा, नैनीताल, ऊधमसिंह नगर एवं चंपावत जिलों को एक-दूसरे से जोड़ता है। 'लगभग 7200 फीट ऊँचाई में स्थित इस स्थान के वनाच्छादित शैलशिखरों से नगाधिराज हिमालय का विहंगम दृश्य देखकर व्यक्ति ईश्वरीय सत्ता के चमत्कार को नमस्कार करने लगता है। अनादिकाल से पनार नदी इस देवी पर्वत के पाँव पखारती चली आ रही है। यहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य बरबस लोगों को अपने आगोश में बाँध लेता है।' (अमर उजाला-2004, पृ० 13)<sup>1</sup> यहीं तीन विशाल पत्थरों के मध्य बनी गब्युरी गुफा में विराजमान हैं आद्यशक्ति माँ बाराही देवी, जो विष्णु के बारह अवतार के दौरान अपने वाम अंग में स्थान देने से बाराही कहलाई। 'इस गब्युरी गुफा की अपनी चमत्कारी मान्यता है। सूखे के वक्त जब-जब त्राही मच जाती है, तब सच्चे मन से गब्युरी में जलाभिषेक करने से जब माँ भगवती प्रसन्न हो जाती हैं, तब एक लोटे मात्र से भर जाती है। अन्यथा यहाँ लाखों घड़े जल चढ़ाने से यह नहीं भरता। माँ भगवती के प्रसन्न होने पर धरती जलधारा से तृप्त हो जाती है।' (अमर उजाला, 2004, पृ० 13)<sup>2</sup>

देवीधुरा का बाराही देवी मंदिर आस्था का प्रमुख केंद्र है। जहाँ एक ओर ये महत्त्वपूर्ण स्थान पांडवों के वनवास से लेकर बौद्धों के हीनयान और महायान धर्म के प्रमाणों से जुड़ा हुआ है, वहीं दूसरी ओर आध्यात्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों को अपने में समेटे हुए है। इसी देवीधुरा में विराजमान माँ बाराही देवी की पूजा-अर्चना एवं प्रसन्नता के लिए प्रतिवर्ष लगता है यहाँ बग्वाल नाम का मेला।

बग्वाल के शाब्दिक अर्थ हैं 'पत्थरों की वर्षा' या 'पत्थरों को एक-दूसरे पर मारने

वाला मेला'। वर्तमान वैज्ञानिक युग के नए-नए घातक अस्त्रों के चमत्कारों के बीच अपनी लोककला व पुरातन संस्कृति को जीवित रख धरोहर के रूप में सँजोए हुए परमाणुयुग में पाषाण-युद्ध के लिए विख्यात यह मेला बगवाल मेले के रूप में अधिक जाना जाता है। इस मेले का प्रारंभ कबसे हुआ इस पर अलग-अलग मत प्रचलित हैं। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि 'इसका प्रारंभ आठवीं-नवीं सदी से हुआ, जबकि कुछ इसका संबंध खस जाति से जोड़ते हैं।'<sup>3</sup> कुछ विद्वानों का मानना है कि 'यह मेला युद्धप्रिय जाति से संबंधित है, जिसने महाभारत युद्ध में पांडवों की ओर से भाग लिया था, जबकि कुछ इतिहासकारों के अनुसार कुमाऊँ के चंदवंशीय राजाओं के समय बाराहीदेवी की रिद्धि-सिद्धि पीठ की स्थापना हुई थी'<sup>4</sup> कुछ लोग 'इसे मध्यकाल में कुमाऊँ के महर और फरत्याल नामक राजपूतों के युद्ध और पराक्रम की स्मृति में मनाया जानेवाला उत्सव मनाते हैं।'<sup>5</sup> कुछ 'इसे सामरिक पूर्वाभ्यास की प्रथा से भी जोड़ते हैं।'<sup>6</sup>

देवीधुरा का मुख्य आकर्षण यहाँ लगने वाला 'असाड़ी कौतिक' मेला है, जो प्रतिवर्ष श्रावण शुक्ल एकादशी को मंगलाचरण, स्वस्तिवाचन, सिंहासन डोला, सांगीपूजन आदि अनेक पद्धतियों से प्रारंभ होकर विविध आयामों से होता हुआ आषाढ़ शुक्ल पूर्णमासी को रक्षाबंधन के दिन बगवाल अर्थात् एक-दूसरे को पत्थर मारने के साथ समाप्त होता है। कहा जाता है कि प्राचीनकाल में यहाँ देवी के गणों को मनाने के लिए चिनार पद्धति से तंत्रविद्या साधने के लिए नरबलि दी जाती थी। बाद में इस कुप्रथा को रोकने के लिए तथा देवी को पारंपरिक रूप से पूर्ववत् प्रसन्न रखने के लिए एक नरबलि के बराबर रक्त निकलने तक पत्थर मार युद्ध का आयोजन होने लगा। इसको मनाने के पीछे कई लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है 'कि कुमाऊँ के चंदवंशीय राजाओं के शासनकाल में देवीधुरा की बाराहीदेवी नामक सिद्धपीठ में महाकाली व चंपादेवी की स्थापना हुई थी। महाकाली को प्रतिवर्ष पूर्णमासी को नरबलि देनी होती थी। धीरे-धीरे यह प्रथा समाप्त हो गई और इसके स्थान पर पत्थरों की मार से एक आदमी में संचित खून के बराबर रक्तपात होने पर बगवाल का समापन निश्चित किया गया। यह रक्त महाकाली को अर्पित किया जाता है।'<sup>7</sup> 'पौराणिक गाथाओं के अनुसार चमियाल खाम, लमगड़िया खाम, गहरवाल एवं वालिक खामों के लोगों में से प्रतिवर्ष एक व्यक्ति की बलि दी जाती थी। इस प्रकार एक दिन चमियाल खाम की वृद्धा के एकमात्र पौत्र की बारी आई, तो वंशनाश के डर से उसने शक्तिपीठ के पास माँ बाराही को मनाने के लिए तपस्या की। वृद्धा की तपस्या से प्रसन्न होकर माँ बाराही ने इसका अन्य विकल्प खोजने को कहा। वृद्धा चारों खामों के मुखियाओं के पास आई तथा देवी की कही बात को सबके सामने दोहराया, जिस पर चारों खामों के लोगों ने आपस में मिल बैठकर उपाय खोजा और यह तय किया गया कि चारों खामों के लोग आपस में दो दिलों में विभक्त होकर एक-दूसरे में पत्थरों की मार कर एक व्यक्ति के बराबर रक्त बहाकर माँ को प्रसन्न करेंगे।<sup>8</sup> तभी से माँ काली को नरबलि देकर प्रसन्न करने की प्रथा का भी अंत हो गया। 'ऐसा भी कहा जाता है कि पहले से यहाँ नरबलि होती थी। एक बार एक विधवा के इकलौते पौत्र की बारी आई तो उसने राजा से फरियाद की। तबसे यह फैसला हुआ कि एक मनुष्य के रक्त के बराबर खून बहाया जाए। तभी से लहू बहाने के लिए पत्थर मार की यह परंपरा चली। यह भी विश्वास किया जाता है कि खून बहने से देवी प्रसन्न हो जाती

हैं और इसमें चोट लगने से कोई हानि नहीं होती।<sup>9</sup> इन लोकोक्तियों से यह तो स्पष्ट होता है कि प्राचीनकाल में माँ बारही की पूजा-अर्चना हेतु नरबलि दी जाती थी, जिस पर वर्तमान में पूर्ण रूप से प्रतिबंध है।

इस मेले को मनाने की पद्धति अद्वितीय है। श्रावण मास की शुक्ल एकादशी को सांगी पूजन से बगवाल मेले का प्रारंभ होता है। एक ताम्रपेटी में विराजमान माँ बाराहीदेवी, माँ सरस्वती, माँ महाकाली की मूर्तियों को दुग्ध-स्नान कराने के बाद नए परिधान पहनाकर पूजा की विभिन्न सामाग्री के साथ देवी की पूजा-अर्चना की जाती है। इस प्रक्रिया को संपन्न करने वाला पुजारी आँखों में काली पट्टी बाँधकर तथा सिर पर कंबल ओढ़कर इस प्रक्रिया को संपन्न करता है। ताम्रपेटी में विराजमान ये मूर्तियाँ आवरण से ढकी हुई व रहस्यमयी हैं। यह कोई नहीं जानता कि वस्त्रों से आवृत्त यह प्रतिमा कैसी हैं, क्योंकि मान्यतानुसार इस मूर्ति को निर्वस्त्र देखनेवाला व्यक्ति अंधा हो जाता है और ऐसा करने से समाज का अहित होने की संभावना भी रहती है। अतः परंपरा की मर्यादा रखते हुए आज तक कोई भी इस पेटी में रखी गई मूर्तियों के दर्शन नहीं कर पाया है। पूजा-अर्चना के दौरान माँ बाराहीदेवी का डोला मंदिर प्रांगण में लाया जाता है। पुजारी, जिन्हें गुरु कहा जाता है, पूजन शुरू करते हैं। एक भैंसे व सात बकरों की बलि दी जाती है, जिसे अठवार कहा जाता है। उल्लेखनीय है कि माँ की मनौती स्वरूप और उसे प्रसन्न करने के लिए अठवार की यह परंपरा सदियों पुरानी है, जिसे रोकने के काफी प्रयासों के बाद भी प्रशासन असफल रहा है। अष्टबलि के इस मसले पर भी पुरानी व नवीन पीढ़ी के लोगों के विचारों में पृथक्ता पाई जाती है। जहाँ पुरानी पीढ़ी के लोग अष्टबलि को देवी का आहार मानते हैं, उनका मानना है कि सदियों से चली आ रही मान्यताओं के विपरीत अष्टबलि को रोककर देवी से उनका आहार छीना जाता है और यदि बलिप्रथा की पौराणिक मान्यता को रोकना ही हो तो पहले प्रतिदिन हजारों की संख्या में मारे जानेवाले पशुओं की बलि को रोका जाए। वहीं युवा पीढ़ी परंपराओं में बदलाव तथा सात्विक परंपरा की बात कहकर बलिप्रथा को कमजोर वर्ग पर बोझ की बात का समर्थन करती है। परंतु देखा गया है कि परंपराओं, आस्था एवं जनसमूह के समक्ष कई बार प्रशासन बौना साबित हुआ है।

देवीधुरा मेले का मुख्य आकर्षण बगवाल है। बगवाल में सहभागिता करनेवाले मुख्य रूप से चार खामों (दलों) के लोग होते हैं, जिन्हें चम्याल, वालिक, गहड़वाल और लमगड़िया नामों से जाना जाता है। ये सभी क्षत्रियवर्ग की उपजातियाँ हैं। चारों ही खामों में एक-एक मुखिया होता है, जिन्हें प्रधान कहा जाता है। प्रधान के लिए कोई चुनाव न होकर वंश-परंपरा चली आ रही है और इनकी भूमिका किसी सेनानायक से कम नहीं होती है। बगवाल खेलने से पूर्व चारों खामों के प्रधान ताँबे के संदूक में रखी देवी के विग्रह को घुमाते हैं और फिर डोले को मंदिर के प्रांगण में रखा जाता है। पूजा-अर्चना के बाद चारों प्रधान एक-दूसरे को बगवाल खेलने का न्यौता देते हैं और बगवाल शुरू होता है। बगवाल खेलनेवालों को 'द्योके' कहा जाता है।

बगवाल पूर्णमासी यानि कि रक्षाबंधन के दिन खेला जाता है। सभी दल एवं उनके मददगार खाम प्रधान के घर एकत्रित होते हैं। घर की महिलाएँ पारंपरिक परिधान एवं आभूषण

पहनकर इनका तिलक करती हैं। सभी बुजुर्गों द्वारा आशीर्वाद दिया जाता है और ढोल, नगाड़ों के साथ उसमें जोश लाने के लिए माँ का जयघोष करते हुए सभी रणबाँकुरों को रणक्षेत्र की ओर प्रस्थान कराया जाता है। कौनसा दल किस दिशा से रणक्षेत्र में आएगा, ये पूर्वनिर्धारित होता है, इसलिए पूर्व दिशा से गहड़वाल, पश्चिम दिशा से वालिक, उत्तर दिशा से लमगड़िया और दक्षिण दिशा से चम्याल मैदान में अपने-अपने सहयोगियों के साथ उतरते हैं। पत्थर मारने से पहले सभी लोग अपने-अपने पुजारी के साथ मंदिर के उत्तरी द्वार से परिक्रमा शुरू करते हुए दक्षिण-पश्चिम द्वार से बाहर निकलते हैं और बगवाल शुरू होने की घोषणा का इंतजार करते हैं। पत्थर-मार युद्ध मुख्य रूप से दो दलों के बीच होता है— वालिक व चम्याल खाम एक ओर व लमगड़िया और गहरवाल खामों के योद्धा दूसरी ओर होते हैं, जिसमें वास्तविक रूप से युद्ध वालिग खाम का चम्याल खाम से और लमगड़िया खाम का गहरवाल खाम से होता है। बगवाल प्रारंभ की घोषणा होते ही बिना किसी राग-द्वेष के साथ पत्थरों की वर्षा का क्रम शुरू हो जाता है। निकटतम नातेदार होने के बावजूद भी सभी दल अपनी प्रभुता बनाए रखने के लिए रणक्षेत्र में एक कुशल सैनिक की तरह प्रदर्शन करते हैं। बगवाल के समय बजने वाले यहाँ के प्रसिद्ध ढोल-नगाड़े तेज़ी से बजाकर रणबाँकुरों में जोश भरने का कार्य करते हैं।

युद्ध के दौरान योद्धाओं में ऐसा जुनून पैदा होता है कि ये एक-दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं। खाम की खाम से इस सामूहिक लड़ाई में किसी व्यक्ति-विशेष को निशाना नहीं बनाया जाता है। बगवाल में मूल खामों के लोग अपने बचाव के लिए फरें (बाँस की बनी गोल-सपाट छतरी जो ढालनुमा होती है) लिए हुए होते हैं, जबकि अन्य मददगार बिना ढाल के अपने खाम की सहायता करते हैं। इस दौरान बगवालियों का जोश देखने लायक होता है। कहा जाता है 'कि रणक्षेत्र में चौंसठ योगिनी बावन वीर आ गए हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार अदृश्य रहनेवाली योगिनियाँ (आत्माएँ) वातावरण को कंपित कर देती हैं, ठीक उसी प्रकार रणक्षेत्र में उतरे रणबाँकुरे भी धरती को थरथरा देने की क्षमता रखते हैं।'<sup>10</sup> एक-दूसरे पर पत्थर मारने का यह क्रम तब तक चलता रहता है, जब तक यह एक व्यक्ति में संचरित खून के बराबर रक्तपात होने का आभास पुजारी को नहीं हो जाता है। ऐसा होने पर पुजारी पीतवस्त्र के साथ ताँबे के छत्र व चँवर को झुलाते हुए मंदिर प्रांगण में प्रवेश करते हैं और बगवाल-समाप्ति की घोषणा के साथ एक छोर से दूसरे छोर की ओर आ रहे पत्थर मार का सिलसिला शंखनाद के साथ रुक जाता है। युद्ध की समाप्ति के बाद द्योके आपस में एक-दूसरे से गले मिलते हैं और दीर्घायु, स्वस्थ व सुखी जीवन की कामना करते हैं। इस प्रकार बगवाल-प्रक्रिया की समाप्ति होती है।

बगवाल के प्रति लोगों की अटूट आस्था को शब्दों में वर्णित करना मुश्किल है। इसमें कई ऐसे आश्चर्यजनक पहलू देखने को मिलते हैं, जिनमें विश्वास करना मुश्किल हो जाता है। बगवाल के दौरान फरें से बचाव के पश्चात् भी रणक्षेत्र में दर्जनों लोगों को गंभीर चोटें आने व लहुलुहान होने के बाद भी कोई चीत्कार का स्वर सुनाई नहीं देता और न ही इस रणबाँकुरों के साहस व धैर्य में कोई कमी आती है। दूसरी बात गंभीर रूप से चोटिल ये योद्धा रणक्षेत्र की मिट्टी, दिए का तेल व मैदान में उगी बिच्छू घास लगाकर स्वयं को स्वस्थ व हल्का महसूस करते हैं। वर्तमान समय में चारों ओर कानून-व्यवस्था बनाए रखने के लिए पुलिस

प्रशासन दल व साधन सहित मुस्तैद दिखाई देते हैं, लेकिन युद्ध के दौरान कोई भी इस खूनी दंगल में दखल देने की हिम्मत नहीं करता। स्वास्थ्य विभाग के विभिन्न शिविर चिकित्सा सुविधा हेतु लगाए जाते हैं, लेकिन अपनी मिट्टी, अपने माँ के मंदिर के दीए का तेल तथा बिच्छू घास के सामने चिकित्सा सुविधा बौनी दिखाई पड़ती है। इस रणयोद्धाओं के अतिरिक्त दर्शकदीर्घा में बैठे लोग भी चोटिल होते हैं।

रोंगटे खड़े कर देनेवाले इस पाषाण-युद्ध की समाप्ति का कोई निर्धारित समय नहीं होता। एक व्यक्ति के बराबर रक्त बह जाने का आभास होने पर पंडित द्वारा किए गए शंखनाद के बाद इसकी समाप्ति हो जाती है। लेकिन वर्तमान में पाषाण-युद्ध की इस क्रिया में समय अवधि घटती जा रही है। आँकड़ों के अनुसार वर्ष 1995 में सर्वाधिक 26 मिनट तक यह ऐतिहासिक युद्ध चला। सन् 1994 में 21 मिनट तक बगवाल हुई। इसके बाद इसका क्रम घटते गया।' (अमर उजाला-2008)<sup>11</sup> 2004 और 2007 में यह 12 मिनट तक चली, 2008 में यह केवल 7 मिनट तक चलकर समाप्त हो गई। इसे देखने के लिए देशी-विदेशी पर्यटक यहाँ आते हैं और खूनी युद्ध की इस उत्सुकता के भागीदार बनते हैं।

'ब्रिटिश शासन के दौरान अँग्रेजों ने इस खूनी युद्ध को रोकने के लिए पत्थरों की मार पर रोक लगाकर लोगों की आस्था व विश्वास को देखते हुए केवल गोबर व कपड़े की गंद बनाकर एक-दूसरे पर मारने का हुक्म दिया, लेकिन हुक्म देनेवाले अँग्रेज अफसर की कई जानलेवा बीमारियों से जकड़ने के बाद जब उस बीमारी को दैवीय प्रकोप बतलाया गया तो दैवीय शक्ति को अंधविश्वास मात्र माननेवाले इस अफसर को दैवीय आस्था पर विश्वास करना पड़ा।'<sup>12</sup> यही कारण है कि सदियों से चली आ रही पाषाण-युद्ध की यह ऐतिहासिक परंपरा आज भी जारी है।

कहा जाता है कि 'देवीधुरा के मंदिर में शताब्दियों से रखे हुए माँ के दुर्लभ आभूषण व चढ़ावे के रूप में आई नकदी में भी मुगल शासन के दौरान तुर्क आक्रमणकारियों की निगाह पड़ी और उन्होंने यहाँ के अनेक मठों, मंदिरों, मूर्तियों, कलाकृतियों एवं शिलालेखों को नष्ट कर दिया। उस दौरान एक पिटारे में रखी मूर्ति व आभूषणों को लूटकर जब तुर्क आक्रमणकारी ले जा रहे थे, तब कोटला गाँव के समीप लमगड़िया खाम के एक भक्त ने उनका पीछा किया। इस भक्त को माँ ने इतनी शक्ति दी कि इसने अकेले ही इन आतताइयों का सामना कर उन्हें मौत के घाट उतार दिया और उनके कब्जे से माँ का सिंहासन डोला वापस ले लिया।'<sup>13</sup>

'ब्रिटिश लेखक ई०टी० एटकिन्सन ने यहाँ के कुदरती नजारे का अपनी पुस्तक 'हिमालयन गजेटियर' में विशेष उल्लेख किया है। 'मैन इटर्स ऑफ़ कुमाऊँ' पुस्तक के लेखक एवं नामी साहसिक शिकारी जिम कार्बेट ने अपनी पुस्तक 'द टैपिल टाइगर' में लिखे वृत्तांत में इस स्थान में दैवीय शक्ति के प्रभाव से निर्मित मंदिर की भौगोलिक स्थिति के बारे में कहा है कि यह किसी अदृश्य शक्ति के चमत्कार से कम नहीं है। कहा जाता है कि यहाँ के देवी मंदिर में दस्तक देनेवाले देवी के वाहन शेर को जब जिम कार्बेट ने आदमखोर बाघ समझकर मारने का बीड़ा उठाया तो उस दौरान उसकी सदा आग उगलने वाली बंदूक ने धमाका करना बंद कर दिया। यह सिलसिला कई बार चला और अंततः कार्बेट को देवी शक्ति चमत्कार के

सम्मुख नतमस्तक होना पड़ा।' <sup>14</sup> यही कारण है कि माँ बाराहीदेवी का मंदिर न केवल स्थानीय बल्कि देश-विदेश के लोगों के लिए आस्था व श्रद्धा का केंद्र बना हुआ है।

बगवाल की समाप्ति पर प्रांगण में पूजा-अर्चना की जाती है। स्थानीय लोगों द्वारा भजन-कीर्तन व रात्रि जागरण होता है, मनौतियाँ माँगी जाती है, परिवार की कुशलता, स्वास्थ्य दीर्घायु की कामना कर अगले वर्ष फिर माँ के दर्शन के लिए आने की प्रार्थना की जाती है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि माँ के मंदिर में दैवीप्यमान अखंड दीपक के सामने हाथ में अक्षत लेकर एकाग्र मन से जागरण करने पर निसंतान को संतान व पुत्रहीन को पुत्र-सुख की प्राप्ति होती है। 'यह विश्वास देवी के प्रति उस समय से और भी बढ़ गया, जब 24 साल से निःसंतान लोहाघाट निवासी श्री औली को माँ की कृपा से पुत्र लाभ हुआ।' <sup>15</sup>

बगवाल समाप्त होने पर माँ बाराहीदेवी का डोला उठता है। परंपरागत रूप से चार खाम, सात थोक के प्रधान व अन्य श्रद्धालुओं के साथ जुलूस के रूप में माँ का जयघोष करते हुए माँ के डोले को मंदिर-प्रांगण से लगभग 300 मीटर दूर ऊँची पहाड़ी में स्थित मचवाल (मुचकुंद ऋषि आश्रम) तक ले जाया जाता है। कहा जाता है कि कालयवन राक्षस को मारने में देवी की मदद करनेवाले मुचकुंद ऋषि से प्रसन्न हो देवी आज के दिन खुद दर्शन देने मुचकुंद ऋषि के आश्रम पहुँचती हैं। 'पुराणों के अनुसार ऋषि को इच्छित निद्रा का वरदान था।' <sup>16</sup> यहाँ पहुँचने पर डोले को लेकर सभी श्रद्धालु परिक्रमा करते हैं और कुछ समय तक डोले को वहीं रखा जाता है और बाद में निर्धारित रास्ते में लाकर पहले से माँ के डोले की प्रतीक्षा कर रहे गहरवाल खाम के लोगों को मूर्ति सौंप दी जाती है, जिसे इनके द्वारा पुनः मंदिर में स्थापित कर फूलों से ढक दिया जाता है।

आज के वैज्ञानिक युग में यह बगवाल मेला अपनी अनूठी प्रथा-परंपरा, रीति-रिवाज व मिसाल को स्वयं में सँजोए हुए है। यह मेला अपने-आपमें दीपावली के प्रमुख त्यौहार से कम नहीं है। माँ बाराही के स्वागत हेतु यहाँ प्रत्येक घर में सफ़ाई, रंगाई, पुताई का काम कई दिन पहले से प्रारंभ होकर एकादशी तक समाप्त होता है। इसी के समान मध्य प्रदेश के पंधूना एवं सरगाँव में भी लोग अपनी परंपरा के अनुसार माँ चंडी को प्रसन्न करने के लिए एक-दूसरे पर पत्थरों की वर्षा कर माता को रक्त अर्पित करते हैं। वहाँ इस उत्सव को गोटमार मेले के रूप में जाना जाता है, लेकिन श्रावण मास में लाखों श्रद्धालुओं को आकर्षित करनेवाला पौराणिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं ऐतिहासिक देवीधुरा अनूठे तरह से पाषाण-युद्ध मेले के लिए भारत वर्ष में प्रसिद्ध होता जा रहा है।

बगवाल का अपना सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक व ऐतिहासिक महत्त्व है। जाति-विशेष से संबंधित होने के पश्चात् भी सभी जाति, धर्म, वर्ग के लोगों की इसमें सहभागिता होती है। आपसी सद्भाव, प्रेम, सौहार्द, एकता, सहयोग का प्रतीक बगवाल उन लोगों के लिए उदाहरण है, जो अपने या व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए सामाजिकता को कुचलने का प्रयास करते हैं। एक बुद्धिया के एकमात्र पौत्र को बचाने के लिए तथा वंश को आगे बढ़ाने के लिए चारों खामों के लोगों द्वारा अपना रक्त बहाकर किसी की जान बचाने का सामूहिक प्रयास सामाजिक एकता एवं व्यवस्था को जीवित रखने का ज्वलंत उदाहरण है। ये मेला लोगों में अपनी पर्वतीय संस्कृति के प्रति मोह पैदा करने, संस्कृति को लोककला से जोड़ने के लिए,



लुप्त होती हमारी संस्कृति को सुरक्षित रखने व जीवंतता प्रदान करने का सशक्त माध्यम है। आज भी यहाँ हमारे परंपरागत लोकगीत, झोड़ा, चांचरी, छपेली, न्यौली, बैर गानेवाले गायकों के मधुर स्वर स्थानीय जनमानस को सुखद अनुभूति प्रदान करने के साथ ही इनकी प्रतिभा, यहाँ की परंपरा यहाँ के रहन-सहन, कठिन परिस्थितियों सामयिक विषयों एवं समाज में व्याप्त असमानताओं आदि से भी हमारा परिचय कराते हैं।

इसके अतिरिक्त पर्यटन एवं व्यापार की दृष्टि से भी यह मेला अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। बगवाल की एक छटा देखने के लिए लाखों की संख्या में देश-विदेश से लोग यहाँ आते हैं और फिर आस-पास के अन्य दर्शनीय स्थलों का भी भ्रमण करते हैं। इनमें श्री पूर्णागिरी, श्यामताल, चंपावत, मायावती आश्रम, रीठा साहिब, बाणासुर का किला, पंचेश्वर तथा एबट माउंट प्रमुख हैं। कई अस्थायी दुकानों पर बिकनेवाली आकर्षक सामग्री, पूजा-अर्चना से संबंधित सामान बहुतायत में बिकता है। इसके साथ ही लोकगीत, लोकनृत्य, वैदिक/पौराणिक एवं साधनापरक अनुष्ठान, स्काउट/गाइड सेवा शिविर, असाड़ी चल वैजयंती टूर्नामेंट, पर्यावरण व ग्रामीण विकास चर्चा, विकलांग सेवा शिविर, जल-संरक्षण, शैक्षिक जागरूकता, नशा उन्मूलन आदि अनेक गंभीर समस्याओं से संबंधित नुक्कड़ नाटकों के माध्यम से ज्ञानवर्द्धक कार्यों के संचालन की व्यवस्था भी यहाँ रहती है।

इस मेले के माध्यम से मानव को नियम, नियंत्रण व अनुशासन का संदेश भी मिलता है, क्योंकि बगवाल में भागीदारी करनेवालों को यहाँ प्रचलित नियमों को मानने की बाध्यता होती है। इनमें कुछ नियम निम्नवत् हैं—

1. ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी अतिथि को देवतातुल्य समझा जाता है यही कारण है कि परंपरानुसार किसी भी अतिथि के आगमन पर सबसे पहले उसे भोजन कराने की परंपरा का निर्वाह किया जाता है, लेकिन श्रावण चतुर्दशी से बगवाल के दिन तक यदि घर में कोई मेहमान आ जाता है तो सर्वप्रथम बगवाली वीर को ही भोजन कराया जाता है, इसके पश्चात् ही अन्य पारिवारिक सदस्य भोजन करते हैं।
2. बगवाल के दिन यहाँ के गाँव-घरों में बगवाल के सिवा अन्य सभी सुख-दुख से संबंधित आयोजन गौण माने जाते हैं। किसी वीर के निकट संबंधी का विवाह होने, बीमार होने पर भी लोग पहले बगवाल खेलते हैं और किसी की मृत्यु होने पर अंतिम संस्कार भी बगवाल के पश्चात् होता है।
3. यहाँ इस अवधि में बगवाल खेलनेवाले वीरों के घरों में तवा नहीं देखा जाता अतः दाल-भात व उन चीजों का भोजन किया जाता है, जिसमें तवा प्रयोग नहीं किया जाता।
4. पूर्णमासी से पूर्व चतुर्दशी तक सभी वीरों के कपड़े साफ़ कर लिए जाते हैं और कोई भी वीर गंदे या बिना धुले कपड़े नहीं पहन सकता। बगवाल जाते वक्त ये लोग एक अतिरिक्त जोड़ा कपड़ा ले जाते हैं, जिसे रणक्षेत्र में जाने से पहले निर्धारित स्थान पर ही बदला जाता है।
5. प्रत्येक बगवाली वीर एक माह पूर्व से अपने खान-पान व व्यवहार को शुद्ध रखता है।

6. बगवाल के दिन सभी अपने खाम के मुखिया के घर एकत्रित होते हैं और अंत तक साथ रहते हैं।
7. घरों से जयकारा करते हुए पैदल देवीधुरा की ओर कूच करते हैं। किसी वाहन या अन्य सुविधा का प्रयोग वर्जित होता है।
8. खामों को पूर्वनिर्धारित परंपरागत रास्तों व दिशाओं से ही कूच करने की अनिवार्यता है।
9. सबसे आगे मुखिया, उसके पीछे फर्रेधारी वीर और इनके पीछे ढोल-नगाड़ों के साथ अन्य श्रद्धालुओं के चलने का क्रम रहता है। मुखिया से आगे चलने की अनुमति बगवाली योद्धा को नहीं होती है।

इस प्रकार इस मेले का ऐतिहासिक महत्त्व के साथ-साथ सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व भी परिलक्षित होता है।

### संदर्भ

1. गणेशदत्त पांडेय, माँ बाराही धाम देवीधुरा मेला, अमर उजाला बरेली 29 अगस्त 2004, पृ० 13
2. वही, पृ० 13
3. ललितकुमार वर्मा, कुमाऊँ के मेले, 1998, पृ० 97, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा
4. जंतवाल केड़ा सावित्री, उत्तरांचल के मेले और पर्व शताब्दी स्मारिका-1903-2003, पृ० 134, श्री रामसेवक सभा, नैनीताल
5. केशवदत्त रूबाली, कुमाऊँनी भाषा और संस्कृति, 1982, पृ० 111-116, ग्रंथायन, सर्वोदयनगर, अलीगढ़
6. दिवा भट्ट, हिमालयी लोकजीवन (कुमाऊँ एवं गढ़वाल) 1999, पृ० 96, आधारशीला प्रकाशन, हल्द्वानी
7. ललितकुमार वर्मा, कुमाऊँ के मेले, 1998, पृ० 97-98, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा
8. गणेशदत्त पांडेय, माँ बाराही धाम देवीधुरा मेला, 29 अगस्त 2004, पृ० 13, अमर उजाला बरेली
9. दिवा भट्ट, हिमालयी लोकजीवन (कुमाऊँ एवं गढ़वाल) 1999, पृ० 75, आधारशीला प्रकाशन, हल्द्वानी
10. गणेशदत्त पांडेय, माँ बाराही धाम देवीधुरा मेला, 29 अगस्त 2004, पृ० 13, अमर उजाला बरेली
11. 12 मिनट तक चली 'बगवाल' डेढ़ लाख लोगों ने देखा, 31 अगस्त 2004, पृ० 1, अमर उजाला, बरेली
12. 7 मिनट तक चली 'बगवाल', रविवार 17 अगस्त 2008, पृ० 18, अमर उजाला, बरेली
13. गणेशदत्त पांडेय, माँ बाराही धाम देवीधुरा मेला, 29 अगस्त 2004, पृ० 13, अमर उजाला बरेली
14. वही, पृ० 13
15. वही, पृ० 13
16. अमर उजाला, बरेली 2001, पृ० 3

□ शगुन भवन

लाला बाज़ार, अलमोड़ा (उत्तराखंड)

मो० 0941072730

## जयप्रकाश नारायण के राजनीतिक एवं सामाजिक विचार

डॉ० अशोककुमार सिंह  
रीडर, इतिहास विभाग,  
पी०जी० कॉलेज, गाज़ीपुर

जयप्रकाश नारायण के अंतःकरण में सत् और असत् के लिए वांछित व्यवहार करने की प्रेरणा उनके स्कूली शिक्षा के काल में उत्पन्न हो चुकी थी। पटना कालेज के तत्कालीन अंग्रेज़ प्रधानाध्यापक व्हीटमोर ने हिंदुओं के त्योहार रक्षाबंधन के दिन विद्यालय में अवकाश की घोषणा नहीं की, अतः जयप्रकाश ने अपने कुछ सहयोगियों के साथ कक्षा का बहिष्कार किया। जयप्रकाश के इस विरोधपूर्ण कार्य के लिए प्रधानाध्यापक व्हीटमोर द्वारा उन्हें दंडित भी किया गया। चूँकि जयप्रकाश का यह विरोध उनकी दृष्टि में न्यायसंगत था, अतः उन्होंने प्रधानाध्यापक द्वारा दिए गए दंड के लिए खेद प्रकट नहीं किया और न उससे रंचमात्र हतोत्साहित हुए।<sup>1</sup> अतः जयप्रकाश नारायण के जीवन में यह प्रथम प्रारंभिक विरोध की चिंगारी थी, जो अंग्रेज़ प्रधानाध्यापक के कृत्य के विरोध में प्रकट हुई।

इन्हीं दिनों जयप्रकाश नारायण का परिचय बिहार के दो ख्याति-प्राप्त बैरिस्टर्स से हुआ, जो काँग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ता थे। अपने बहनोई ब्रजबिहारी सहाय के साथ जयप्रकाश नारायण को एक दिन भारत के भावी राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद के निवास-स्थान पर जाने का अवसर प्राप्त हुआ। राजेंद्रप्रसाद के ही निवास-स्थान पर लगभग 18 वर्ष की अवस्था में जयप्रकाश नारायण का परिचय बिहार के एक अन्य प्रमुख बैरिस्टर एवं सीवान ज़िला के निकट श्रीनगर ग्राम के निवासी बाबू ब्रजकिशोर नारायण से हुआ। बिहार की राजनीति में ब्रजकिशोर बाबू का नाम काँग्रेस के लोकप्रिय नेता तथा स्वाधीनता-संग्राम के अग्रणी सेनानियों में था। राजेंद्रबाबू और ब्रजकिशोर नारायण उन दिनों के भारतीय राजनीतिक जीवन में सक्रिय थे और दोनों काँग्रेसी थे।<sup>2</sup>

इस प्रकार जयप्रकाश नारायण का संपर्क काँग्रेस के लोगों से होना आरंभ हो गया था, जिसका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव जयप्रकाश के मस्तिष्क पर पड़ता रहा। गांधीजी के सादगी तथा सत्याग्रह-संबंधी विचारों से जयप्रकाश नारायण पहले से ही प्रभावित हो चुके थे। इस अवधि में गांधीजी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौट चुके थे तथा भारतीय राजनीतिक जीवन में नई गति आ गई थी, जिससे राष्ट्रीय आंदोलन में प्रवेश हेतु जयप्रकाश की मानसिक तैयारी और परिपक्व होने लगी थी तथा 'महात्मा गांधी की जय' के नारे का प्रभाव पड़ने लगा था।<sup>3</sup>

जनवरी 1915 में दक्षिण अफ्रीका से महात्मा गांधी भारत लौट आए थे। गांधी जी ने गोखले के विचारों का अनुपालन करते हुए अपने कार्यक्रमों की शुरुआत के पूर्व एक वर्ष की अवधि भारत की राजनीतिक स्थिति से परिचित होने में लगाने का निश्चय किया। 25 मई 1915 को गांधीजी ने अहमदाबाद में साबरमती नदी के निकट अपना एक 'सत्याग्रह आश्रम' स्थापित किया।<sup>4</sup>

भारत लौटने पर दिसंबर 1916 में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के लखनऊ सम्मेलन के समय ब्रजकिशोर बाबू का प्रथम संपर्क गांधी जी से हुआ। गांधी जी से ब्रजकिशोर बाबू का प्रथम यह संपर्क अत्यधिक प्रभावपूर्ण नहीं रहा। किंतु कुछ समय बाद बिहार के मुजफ्फरपुर नामक स्थान पर बिहार के एक वकील रामनवमी बाबू के सहयोग से ब्रजकिशोर की दूसरी मुलाकात गांधी जी से हुई। इस बार गांधी जी ब्रजकिशोर बाबू की सादगी, विनम्रता तथा ईमानदारी से अत्यधिक प्रभावित हुए। यह देखकर उन्हें अच्छा लगा कि बिहार के प्रायः सभी वकील भी ब्रजकिशोर बाबू के प्रति सम्मान का भाव रखते थे। इस प्रकार गांधी जी और ब्रजकिशोर बाबू का संपर्क काँग्रेस के कार्यक्रमों को लेकर बढ़ता गया जो बाद में चलकर ब्रजकिशोर बाबू की पुत्री प्रभावती तथा जयप्रकाश नारायण के बीच पाणिग्रहण का कारण बना।

किसानों एवं मजदूरों की समस्याओं को लेकर गांधीजी और ब्रजकिशोर बाबू का संपर्क प्रायः होने लगा था। ब्रजकिशोर बाबू बिहार के दरभंगा नामक शहर में अपना आलीशान भवन निर्मित करा चुके थे, अतः उस क्षेत्र के चंपारन मोतिहारी जिले के किसानों की समस्याओं का दायित्व ब्रजकिशोर बाबू पर था। इसी अवधि में गांधीजी का चंपारन का दौरा हुआ तथा 1919 में एवं 1920 में प्रथम बार गांधी जी ब्रजकिशोर बाबू के दरभंगा स्थित निवास स्थान पर ठहरे। गांधी जी ने ब्रजकिशोर बाबू की पुत्री प्रभावती को अपनी पत्नी कस्तूरबा के साथ अहमदाबाद आश्रम में रखने का विचार व्यक्त किया, जिसकी स्मृति प्रभावती को भी रही है। किंतु प्रभावती की जब आयु बढ़ी तो ब्रजकिशोर बाबू बिना दहेज के किसी योग्य वर से विवाह करने का कार्यक्रम बनाने लगे। इस कार्य के लिए शंभूशरण वर्मा ने ब्रजकिशोर बाबू को जयप्रकाश का नाम सुझाया। ब्रजकिशोर बाबू को जयप्रकाश अत्यधिक अच्छे लगे। फलतः 1920 के अक्टूबर माह में जब जयप्रकाश 18 वर्ष के थे और प्रभावती 14 वर्ष की तो दोनों का वैवाहिक संबंध स्थापित हुआ।

इस वैवाहिक संबंध के एक माह पश्चात ब्रजकिशोर बाबू ने प्रभावती को गांधी के आश्रम में रहने के लिए भेज दिया। इस समय जयप्रकाश बिहार की सर्वप्रमुख शिक्षण संस्थान पटना कालेज में विज्ञान पढ़ने के लिए प्रवेश पा चुके थे तथा इंटर कक्षा के द्वितीय वर्ष के छात्र थे। वस्तुतः राजनीति की दुनिया से नारायण का संपर्क प्रमुख रूप से इसी घटनाचक्र के पश्चात होता है जबकि उनका विवाह प्रभावती से होता है। इस विवाह से जयप्रकाश को सहज ही एक धारा मिली तथा राजनीतिक जीवन के लिए क्षेत्र प्राप्त हुआ।<sup>5</sup>

यह भारतीय राजनीति के इतिहास में वह काल था, जबकि राष्ट्रीय स्तर से लेकर अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र तक समग्र विस्फोटक स्थिति थी। स्वतंत्रता तथा लोकतंत्र के लिए लड़े गए प्रथम विश्वयुद्ध की अग्नि बुझ चुकी थी, किंतु अभी भी साम्राज्यवादी शक्तियों की

रक्त-पिपासा शांत नहीं हुई थी। भारत भी जलियाँवालाबाग़ हत्याकांड और रोलेट एक्ट के नियमों से कराह रहा था।

भारत और ग्रेट ब्रिटेन नई परिस्थिति एवं नई समस्याओं से राजनीति के मोर्चे पर संघर्ष कर रहे थे।<sup>6</sup> जिस समय जयप्रकाश नारायण पटना कालेज में इंटर विज्ञान के छात्र थे, तब बिहार स्वतंत्रता के युद्ध में पूर्णरूपेण भाग ले चुका था। बिहार प्रांत में भिन्न-भिन्न स्थानों पर व्यापक पैमाने पर स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी जा रही थी। बिहार की राजनीति में दो परस्पर विरोधी धाराएँ स्वतंत्रता के लिए क्रियाशील थीं। बिहार प्रांत में सर्वप्रथम बम-विस्फोट हुआ और बिहार में ही राजनीतिक डकैती का रूप भी देखने को मिला। अर्जुनलाल सेठी ने शाहाबाद ज़िले में राजनीतिक डकैतियाँ डालीं।<sup>7</sup> बिहार में घटित हो रहे उन क्रांतिकारी क्रिया-कलापों का गहरा प्रभाव बिहार प्रांत के उदीयमान युवकों पर पड़ रहा था। किंतु दूसरी तरफ गांधी जी के सत्य और अहिंसा पर आधारित सत्याग्रही कार्यक्रम भी बिहार प्रांत के चंपारन, मोतीहारी इत्यादि स्थलों पर चलाए जा रहे थे, जिससे बिहार का युवावर्ग अप्रभावित नहीं था, बल्कि गांधीजी ने जिस प्रकार सत्य और अहिंसा द्वारा अँग्रेज निलहे साहब को चंपारन में कायल किया था, उससे युवावर्ग चौंक उठा था।

यद्यपि जयप्रकाश नारायण तटस्थ रहकर इन दो विरोधी धाराओं की भूमिका को पहचानने और मंथन करने में लगे थे, लेकिन इतना निर्विवाद था कि नारायण के मस्तिष्क में राष्ट्रीयता की भावना पनप चुकी थी तथा उन क्रांतिकारी विचारों के तरफ़ उनका झुकाव हो चुका था, जिसका बंगाल उस समय नेता था। देश में भी क्रांतिकारियों की तथा गांधीजी के असहयोग आंदोलन की दो धाराओं का प्रभाव व्याप्त था। बंगाल के क्रांतिकारियों के क्रिया-कलापों तथा रोमांचकारी घटनाओं ने जयप्रकाश के किशोर हृदय को आकर्षित तो किया ही था। इसके साथ ही जयप्रकाश के राष्ट्रीय आंदोलन में प्रवेश की मानसिक तैयारी में गांधीजी के सत्याग्रह की चर्चा ने भी उनके युवा हृदय को काफ़ी आकर्षित किया, जिसे जयप्रकाश नारायण स्वयं भी स्वीकार करते हैं।

इस तरह धीरे-धीरे राष्ट्रीय आंदोलन में जयप्रकाश द्वारा प्रवेश की मानसिक तैयारी होती जा रही थी। ब्रिटिश सरकार ने 10 दिसंबर 1917 को भारत में क्रांतिकारी आंदोलनों पर विचार करने के लिए समिति का गठन किया। इस समिति का अध्यक्ष इंग्लैंड के हाईकोर्ट आफ़ जस्टिस के न्यायाधीश रौलेट नियुक्त किए गए। इस समिति ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए निष्कर्ष दिया कि बंगाल में मध्यमवर्ग के शिक्षित युवक उपद्रवी थे, जो हत्या और डकैती का कार्य कर रहे थे। इस समिति ने बंबई तथा पंजाब के उपद्रवों की ओर संकेत किया, किंतु इसके अतिरिक्त भारत के अन्य प्रांतों में समिति के अनुसार उपद्रव का जन्म नहीं हुआ था।<sup>8</sup>

समिति के इस प्रतिवेदन पर भारत सरकार ने विधान परिषद् में दो विधेयक प्रस्तुत किए, जिसके अनुसार प्रांतीय सरकारों को तलाशी, बंदी बनाने तथा सुरक्षा की माँग करने का विशेष अधिकार दिया गया। यह विधेयक अनेक विरोधों के बावजूद 21 मार्च 1919 को कानून के रूप में पारित कर दिया गया।

इस कठोर कानून के क्रियान्वयन पर चारों तरफ़ से विरोध तथा भर्त्सना के स्वर उठे।

वायसराय के कार्यकारी समिति के सदस्य पंकरन नैय्यर ने भी इस कानून का विरोध किया। सदन में इस विधेयक पर बहस करते हुए उदारवादी सदस्यों ने भी अपना विरोध प्रकट करते हुए कहा कि ऐसी स्थिति में उत्तरदायी सरकार एक माखौल बनकर रह जाएगी।

मुस्लिम लीग के अध्यक्ष मिस्टर जिन्ना ने सदन में चेतावनी दी कि इस विधेयक के पारित होने के बाद संपूर्ण देश असंतोष और बगावत की स्थिति में आ सकता है।<sup>9</sup> किंतु सदन में प्रतिरोध के बावजूद यह विधेयक पारित हो गया, जिसके विरोध में जिन्ना, मालवीय एवं मसहरूल हक ने सदन से अपना त्यागपत्र दे दिया। जिन्ना ने कहा कि शांति की स्थिति में ऐसा कानून बनाने वाली कोई भी सरकार 'सभ्य सरकार' नहीं कही जा सकती। 'अमृत बाजार पत्रिका' में शांतिप्रिय कानून के प्रति प्रतिबद्ध लोगों को उग्र बनाने वाली वृहत भूल कहा। 'न्यू इंडिया' ने इस अधिनियम को 'राक्षस' कहा। 'पंजाबी' ने इसकी भर्त्सना करते हुए लिखा कि असीमित शक्ति द्वारा नागरिकों की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने वाला अधिनियम है। इसी प्रकार 'हिंदू' तथा 'बांबे क्रानिकल' ने भी इस अधिनियम की निंदा की। इस प्रकार रौलेट ऐक्ट का भारत के प्रत्येक कोने से विरोध हुआ, किंतु इस विरोध की सर्वाधिक विस्फोटक एवं भयावह स्थिति पंजाब में देखने को मिली। इस अधिनियम के विरोध में गांधी ने 6 अप्रैल 1919 को सत्याग्रह का आह्वान किया। उक्त अवसर पर विरोध में 13 अप्रैल को सायं 4.30 पर एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया था। पंजाब के गवर्नर ने 6 अप्रैल की देशव्यापी हड़ताल एवं विरोध पर चेतावनी देते हुए कहा था कि ऐसे आंदोलनों के घातक परिणाम होंगे।<sup>10</sup> ऐसी ही चेतावनियों एवं धमकियों की प्रतिक्रिया में 13 अप्रैल की संध्या में जलियाँवाला बाग में बैठक हो रही थी। जनरल डायर ने इसे एक चुनौती समझा, अतः उसने अपनी सेना के द्वारा बिना किसी चेतावनी के गोलियाँ चलवाना प्रारंभ किया। हज़ारों लोग हताहत हुए। इस वीभत्स कारनामे से संपूर्ण देश विद्रोहाग्नि में जल उठा।<sup>11</sup>

यद्यपि जलियाँवाला बाग कांड ब्रिटिश आतंकवादी नीति का एकमात्र उदाहरण नहीं था, किंतु इससे पंजाब सर्वाधिक हताहत हुआ। अमृतसर में 2 माह के लिए कर्फ्यू लगा दिया गया। पानी और बिजली की आपूर्ति पर रोक लगा दी गई। फलतः पंजाब एक ऐसी अलग स्थिति में पहुँच गया, जो गहन अंधकार और विष से युक्त था। जलियाँवाला बाग कांड ने संपूर्ण भारत को विद्रोह की स्थिति में ला दिया। इस कांड की प्रतिक्रियास्वरूप विद्रोह तथा हड़ताल की स्थिति में महात्मा गांधी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन की भूमिका तैयार हुई।

असहयोग आंदोलन की प्रारंभिक स्थिति में हिंदू और मुस्लिम एकता की भावना संपूर्ण भारत में अत्यधिक सबल हो चुकी थी, फलतः खिलाफत आंदोलन की भूमिका भारत में तैयार हुई। खिलाफत आंदोलन में भारतीय मुस्लिमों की यातनाओं पर हिंदुओं का भी सहयोग था। महात्मा गांधी ने भारतीय मुसलमानों के साथ सहयोग देना अपना कर्तव्य समझा। सन् 1920 के जुलाई माह में सिंध में खिलाफत सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसमें महात्मा गांधी भी सम्मिलित हुए। महात्मा गांधी ने ब्रिटिश सरकार के कारनामों की भर्त्सना करते हुए उसकी व्यवस्था के प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं रखने का निश्चय किया।<sup>12</sup> तथा 28 जुलाई को यह घोषणा की कि भूख-हड़ताल तथा प्रार्थना के साथ एक अगस्त को असहयोग आंदोलन प्रारंभ किया जाएगा। भारत में ब्रिटिश सरकार के प्रति असंतोष और निराशा की

भावना गांधी जी के अफ्रीका से लौटने के बाद शनैः शनैः धनीभूत होने लगी थी। खिलाफत आंदोलन को लेकर ब्रिटिश सरकार के प्रति असंतोष मुखरित हो उठा। लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में 4 सितंबर को कलकत्ता में काँग्रेस का सम्मेलन हुआ, जिसमें काँग्रेस द्वारा भी असहयोग आंदोलन के प्रस्ताव पर सहमति प्रदान की गई।<sup>13</sup>

असहयोग आंदोलन के कार्यक्रम में प्रमुख रूप से जो लक्ष्य निर्धारित किए गए उनमें निम्नलिखित सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे—

1. ब्रिटिश सरकार की देख-रेख तथा आर्थिक सहयोग से चलाई जा रही शिक्षण-संस्थाओं का बहिष्कार।
2. सरकारी कार्यालयों का बहिष्कार तथा पद एवं उपाधियों का परित्याग।
3. ब्रिटिश वस्तुओं का परित्याग तथा स्वदेशी वस्तु खादी इत्यादि को प्रोत्साहन।
4. विधानसभा तथा विधान परिषद् के चुनाव का बहिष्कार।

असहयोग आंदोलन के इस आह्वान पर संपूर्ण भारत में आश्चर्यजनक उत्साह की लहर उमड़ पड़ी। ख्यातिप्राप्त अधिवक्ता मोतीलाल नेहरू, सी०आर० दास, राजेंद्रप्रसाद, राजगोपालाचारी इत्यादि ने अपनी वकालत का परित्याग कर दिया तथा हजारों विद्यार्थियों ने सरकारी अनुदान से चलाए जा रहे विद्यालयों तथा महाविद्यालयों का परित्याग कर दिया। देश में स्वतंत्रता की भावना जगी तथा शोषण एवं निराशा की पूर्ववर्ती मनोदशा समाप्त सी हो गई। असहयोग आंदोलन ने भारतीयों में आत्म-विकास तथा आत्मविश्वास की भावना पैदा की। महात्मा गांधी ने भारतीयों में भारत के अंदर से तथा नागरिकों में अपने आत्मबल से शक्ति पैदा करने की प्रेरणा दी। फलस्वरूप संपूर्ण भारत में एक नई लहर पैदा हो गई, जिसका प्रभाव युवकों, छात्रों तथा नागरिकों पर चामत्कारिक रूप से पड़ा। जयप्रकाश नारायण के मानसिक धरातल पर इस स्थिति की रेखाएँ पहले से ही उभरने लगी थीं। बंगाल के क्रांतिकारी और बिहार के स्वतंत्रता के विचार से प्रभावित होकर राष्ट्रीय आंदोलन में उनके प्रवेश की मानसिक तैयारी अंकुरित होने लगी थी। गांधी के असहयोग आंदोलन ने जयप्रकाश नारायण की मानसिक तैयारी को प्रौढ़ बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया।

जयप्रकाश की इंटर की विज्ञान की परीक्षा एक माह के अंदर ही होनेवाली थी। भारत में जलियाँवाला बाग कांड तथा अँग्रेजी शासन की क्रूरता से विरोध की अग्नि जल उठी थी। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद तथा जवाहरलाल नेहरू ने पटना में एक सार्वजनिक सभा को संबोधन किए।<sup>14</sup> अबुल कलाम आज़ाद एक कुशल वक्ता थे। मौलाना आज़ाद ने प्रभावशाली ढंग से गांधी की अपील को प्रस्तुत करते हुए युवकों एवं विद्यार्थियों से अनुरोध किया कि वे उन विद्यालयों एवं महाविद्यालयों को, जो विदेशी सरकार से आर्थिक अनुदान प्राप्त करते हैं तथा उस शिक्षा-पद्धति को जो विद्यार्थियों को ब्रिटिश प्रशासन के लिए लिपिक तैयार करने का कार्य करती है त्याग कर दें। इस भाषण का व्यापक प्रभाव पड़ा।<sup>15</sup> इन्हीं दिनों गांधी जी का भी पटना आगमन हुआ। गांधी जी के असहयोग आंदोलन के आह्वान से जयप्रकाश का राष्ट्रीय विद्रोह में भाग लेने का सपना साकार हो उठा तथा इस राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने के लिए उनके मन में उत्साह उमड़ पड़ा। गांधी के इस आह्वान पर पटना कालेज के अनेक विद्यार्थियों ने अपना अध्ययन छोड़ने का निर्णय ले लिया। जयप्रकाश अतीत की उस

स्मृति को याद करते हुए कहते हैं कि मैं उन दिनों के हजारों युवा लोगों में एक था, जो तूफान में पत्ते के समान बह गए और क्षण-भर के लिए आकाश में उड़ चलो। इस प्रकार जयप्रकाश ने अपने इंटर विज्ञान की परीक्षा के बीस दिन पूर्व कालेज का परित्याग कर दिया तथा राष्ट्रीय आंदोलन के समर में कूद पड़े। इस तूफानी आंदोलन में जयप्रकाश की उड़ान के लघु अनुभव से उनके अंतःकरण पर एक महत्वपूर्ण छाप पड़ी।

गांधी के आह्वान पर असहयोग आंदोलन के समय एक तरफ जहाँ बड़े-बड़े वकीलों ने सरकारी अदालतों का बहिष्कार किया रवींद्रनाथ टैगोर, गांधी जी इत्यादि ने अपनी उपाधियों का परित्याग किया<sup>16</sup>, वही दूसरी ओर राष्ट्रीय आंदोलन की भावना से जयप्रकाश ने असहयोग आंदोलन के लिए छात्रों की सभा को संबोधित किया। हजारों छात्रों सरकारी अनुदान से चलाए जा रही शिक्षण-संस्थाओं का खुलकर विरोध किया। वे स्वयं आंदोलन में कूद पड़े। जयप्रकाश नारायण ने खादी बुनना तथा चरखा चलाना प्रारंभ कर दिया। बिहार विद्यापीठ को राष्ट्रीय आंदोलन में भाग ले रहे उन भारतीय छात्रों के लिए उन्हीं दिनों चलाया गया था, जिन्होंने सरकार से अनुदानित शिक्षण-संस्थाओं का परित्याग कर दिया था। जयप्रकाश नारायण ने विद्यापीठ से सम्मान के साथ इंटर की परीक्षा पास की किंतु विद्यापीठ में इंटर से अधिक अध्यापन की व्यवस्था नहीं थी। जयप्रकाश नारायण ने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में भी प्रवेश लेने से इंकार कर दिया, क्योंकि इस विश्वविद्यालय को सरकार से अनुदान प्राप्त हो रहा था तथा इस विद्यालय के संस्थापक मालवीय जी ने छात्रों को विद्यालयों तथा महाविद्यालयों के बहिष्कार करने संबंधी गांधी के प्रस्ताव का विरोध किया था।<sup>17</sup>

वस्तुतः जयप्रकाश की जीवन-यात्रा में यह एक ऐसा क्रांतिकारी मोड़ था, जिसने जयप्रकाश के मन में स्वतंत्रता के लिए गहरी आस्था पैदा कर दी और तभी स स्वतंत्रता उनके जीवन का प्रकाश-स्तंभ बन गई। किंतु इस स्थिति में जयप्रकाश के सामने आगे की कक्षाओं में अध्ययन के लिए समस्या उठ खड़ी हुई। उनके सामने भारत या ब्रिटेन में कोई ऐसा विकल्प नहीं था, जहाँ वे शिक्षा ग्रहण कर सकते थे, जयप्रकाश के तार्किक मस्तिष्क को यह बात उपयुक्त नहीं लगी कि भारत में ब्रिटिश सरकार के अनुदान पर चलाए जा रही शिक्षण-संस्थाओं का वे बहिष्कार करें और फिर उसी ब्रिटेन में जाकर शिक्षा प्राप्त करें।<sup>18</sup> वस्तुतः यही राष्ट्रीयता की वह भावना थी, जो दुर्लभ कही जा सकती है। आर्थिक दृष्टि से भी जयप्रकाश का परिवार आर्थिक रूप से इतना संपन्न नहीं था कि जयप्रकाश की विदेशी शिक्षा का भार वहन कर सके। किंतु इसी बीच जयप्रकाश नारायण को उनके एक मित्र भोलापंत द्वारा अमेरिका जाने के लिए प्रेरक शक्ति मिली। भोलादत्त पंत अमेरिका में जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से बाबू ब्रजकिशोर नारायण के पास सहायता के लिए आए हुए थे। जयप्रकाश से वहीं पर उनकी मित्रता हुई और जयप्रकाश भोलादत्त पंत के साथ अमेरिका जाने के लिए तैयार हो गए, किंतु इन्हीं दिनों समाचार पत्र में यह समाचार छपा कि अमेरिका में शिक्षा प्राप्त कर रहे छात्रों को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ रहा है। ऐसी स्थिति में भोलादत्त पंत के साथ जयप्रकाश को अमेरिका जाने से रोक लिया गया। किंतु भोलादत्त पंत ने अमेरिका से पत्र लिखा तथा समाचारपत्र के प्रकाशन का खंडन करते हुए जयप्रकाश को लिखा कि वे चाहें तो सपत्नीक आ सकते हैं। जयप्रकाश नारायण को एक नया बल मिला और कलकत्ता पहुँचकर



उन्होंने अमेरिका जाने के निमित्त 'वीसा' और 'पासपोर्ट' इत्यादि तैयार करा कर सारी औपचारिकताएँ पूरी कर लीं।

वस्तुतः असहयोग आंदोलन की हवा में युवा विद्यार्थियों में जयप्रकाश सबसे ऊँचे उड़े। इस उड़ान के लिए उनके मन में गांधी के नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धांतों का बहुत अधिक प्रभाव नहीं था। वास्तविकता यह थी कि जयप्रकाश नारायण में स्वतंत्रता की प्रबल निष्ठा तथा देश-प्रेम की गहरी भावना जागृत हो चुकी थी, किंतु जयप्रकाश का युवामन क्रांति की भावना से उद्वेलित होकर जी मसोसकर रह जाने के लिए बाध्य था। देश में हिंसा, दंगा तथा हत्या के वीभत्स कारनामों के कारण अहिंसा के पोषक गांधी जी ने अपना असहयोग आंदोलन वापस ले लिया। ऐसी विषम परिस्थिति में देशभक्त युवा जयप्रकाश ने अपनी उच्च शिक्षा के लिए 16 मई 1922 को अमेरिका के लिए प्रस्थान किया।<sup>19</sup>

**जयप्रकाश नारायण के प्रजातंत्र-संबंधी विचार :** जयप्रकाश नारायण प्रजातंत्र-संबंधी अपने विचार में एम०एन० राय और महात्मा गांधी से प्रभावित थे। जयप्रकाश का यह भी विचार था कि लिंकन के विचार का प्रजातंत्र व्यावहारिक रूप से कहीं देखने को नहीं मिलता। अतः जयप्रकाश के पाश्चात्य प्रजातंत्र की विचारधारा को 'डेमोक्रेटिक ओलिगार्ची' कहा। उन्होंने संसदीय प्रजातंत्र की आलोचना करते हुए सामुदायिक अर्थात् 'पार्टिसिपेटरी डेमोक्रेसी'<sup>20</sup> का समर्थन किया। संसदीय प्रजातंत्र की आलोचना करते हुए जयप्रकाश ने कहा कि इस पद्धति ने मनुष्य को समाज में स्वचलित कर दिया है। जयप्रकाश नारायण के अनुसार यह पद्धति समाज के वास्तविक स्वरूप तथा मनुष्य की सामाजिक प्रकृति को नकारती है। इसके अतिरिक्त इस पद्धति में प्रतिनिधि सरकार अल्पसंख्यकों की सरकार होती है। जयप्रकाश नारायण के अनुसार जहाँ कहीं भी दो से अधिक दलों हैं, ऐसा प्रायः होता है।

जयप्रकाश नारायण के अनुसार संसदीय प्रजातंत्र की पद्धति में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण त्रुटि वह प्रवृत्ति है, जो इसे केंद्रीयकरण की ओर ले जाती है। संसदीय प्रजातंत्र में व्यापक केंद्रित शक्ति के कारण केंद्रीय कार्यपालिका कार्यों के बोझ से लदी होती है, जो नौकरशाही की स्वेच्छाचारिता को बढ़ावा देती है। ऐसी व्यवस्था में जनता उत्तरदायित्वविहीन तथा निष्क्रिय हो जाती है।

संसदीय प्रजातंत्र में दलीय व्यवस्था की भी जयप्रकाश ने कटु आलोचना की है। उनके अनुसार दलीय पद्धति में आज जनता को भेड़ बना दिया गया है, जिसका उद्देश्य गड़रिए का समय-समय पर चयन करना है, जो उनके कल्याण की देखभाल करेंगे। अतः जयप्रकाश नारायण केंद्रीय दलीय सरकार को समाप्त करने में विश्वास करते हैं। जयप्रकाश नारायण ने सामुदायिक प्रजातंत्र का सिद्धांत प्रतिपादित किया उसमें यदि छिट-फुट रूप से दल होंगे भी तो उनका राज्य में महत्त्व नहीं के बराबर रहेगा। उनके अनुसार राजनीतिक दल अपने शारीरिक प्रभाव, धन, भ्रष्टाचार और धोखेधड़ी से जनतांत्रिक चुनाव के अर्थ और महत्त्व को भी समाप्त कर रहे हैं।<sup>21</sup>

इसप्रकार जयप्रकाश का निष्कर्ष है कि संसदीय प्रजातंत्र अपूर्ण है। यह जनता की सरकार हो सकती है, किंतु यह जनता के द्वारा सरकार नहीं है।

## संदर्भ

1. अजित भट्टाचार्य, पूर्वोक्त, पृ० 35
2. वही, पूर्वोक्त, पृ० 35
3. ओमप्रकाश अग्रवाल, पूर्वोक्त, पृ० 71
4. ताराचंद्र, पूर्वोक्त, पृ० 4761 एलन एंड वैण्डी, स्कार्फ, पृ० 401
5. लक्ष्मीनारायण लाल, पूर्वोक्त पृ० 35
6. ताराचंद्र, पूर्वोक्त, पृ० 470-75
7. भक्तराम पराश्या, जयप्रकाश : जीवन-दर्शन, किताब घर, गांधीनगर, दिल्ली 1979, पृ० 11
8. सैडीशन कमेटी की रिपोर्ट, पृ० 180
9. एम०ए० जिन्ना, लेजिस्लेटिव एसेंबली डिबेट ऑन दि रौलट एक्ट बिल, 7 फरवरी, 1919
10. प्रीसिडिंग आफ दि लेजिस्लेटिव कौंसिल ऑफ दि पंजाब 1919, जिल्द 10
11. सुरेंद्रनाथ बनर्जी, ए नेशन इन मेकिंग हंफरी मिल फोर्ड, लंदन पृ० 304
12. डी०जी० तेंदुलकर, महात्मा गांधी भाग-1, दि पब्लिकेशन डिवीजन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, पृ० 3651
13. डी०जी० तेंदुलकर, पूर्वोक्त, भाग 2, पृ० 12-15
14. अजित भट्टाचार्य, पूर्वोक्त, पृ० 37, भाग 4, 93-98
15. अजित भट्टाचार्य, पूर्वोक्त, पृ० 37 भाग 4, 93-98
16. ओंकार शरद, पूर्वोक्त, पृ० 30
17. अजित भट्टाचार्य, पूर्वोक्त, पृ० 38
18. अजित भट्टाचार्य, पूर्वोक्त पृ० 38
19. बिजेंद्रप्रताप गौतम, समाजवादी चिंतन का इतिहास, उ०प्र० हिंदी संस्थान, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ 1978 पृ० 453
20. भोलासिंह, पूर्वोक्त, पृ० 92
21. जयप्रकाश नारायण, टोटल रीवोलेशन (वाराणसी) अखिल भारत सर्व सेवा संघ प्रकाशन 1975, पृ० 44-45

## उच्च शिक्षा में प्रचलित परीक्षा-प्रणाली के प्रति शिक्षकों के दृष्टिकोण का अध्ययन

डॉ० अशोककुमार सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष शिक्षा संकाय

हॉडिया पोस्टग्रेजुएट कालेज

हॉडिया, इलाहाबाद (उ०प्र०)

शिक्षा एक विकासात्मक प्रक्रिया है। शिक्षा के प्रत्येक स्तर एवं आयाम में नित परिवर्तन एवं विकास दृष्टिगत हो रहे हैं। शिक्षा का उच्च स्तर प्रत्यक्ष रूप में बालक के भावी जीवन की आधारशिला है, क्योंकि उच्च शिक्षा के बाद बालक के कार्य-क्षेत्र का निर्धारण हो जाता है। उच्च शिक्षा के विभिन्न आयामों जैसे-पाठ्यक्रम, शिक्षण-सामग्री, परीक्षा-प्रणाली एवं मूल्यांकन-प्रणाली पर विभिन्न आयोगों एवं समितियों का गठन करके इसमें तथ्यात्मकता एवं सार्थकता लाने का प्रयास किया जाता रहा है। डी०एन० सन सनवाल (2005) ने आई०ए० टी०ई० द्वारा आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी इलाहाबाद में कहा कि उच्च शिक्षा के शिक्षण एवं प्रशिक्षण में सूचना एवं संचार-माध्यमों का प्रयोग अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए।

आज शिक्षा में गुणात्मक सुधार की आवश्यकता है, जिसका एक प्रमुख पक्ष परीक्षा-प्रणाली है। परीक्षा-प्रणाली द्वारा छात्रों की शैक्षिक प्रगति का मापन एवं मूल्यांकन किया जाता है तथा उसे उन्नत बनाने हेतु प्रयास किया जाता है। वर्तमान में प्रचलित परीक्षा-प्रणाली के प्रति छात्रों में असंतोष दिखाई पड़ता है, क्योंकि वे इसे अरुचिकर एवं गुणवत्ताविहीन मानते हैं। अतः आवश्यकता एक ऐसी मूल्यांकन-प्रणाली विकसित करने की है, जो छात्रों की प्रगति का निष्पक्षता के साथ विश्वसनीय एवं वैध ढंग से मूल्यांकन करने में सक्षम हो। गुण शेखरन (1997) ने अपने अध्ययन 'कंस्ट्रक्टेड ए स्टडी आन इवैल्यूएशन सिस्टम इन आटोनामस एण्ड नान आटोनामस कालेजेज इन साउदर्न रीजन' में पाया की स्वायत्तशासी कॉलेजों की अपेक्षा अस्वायत्तशासी कॉलेजों की मूल्यांकन-प्रणाली उत्तम है। सुरेंद्रकुमार (2005) ने अपने अध्ययन 'बी०एड० प्रवेश परीक्षा की पूर्व कथनात्मक वैधता' का अध्ययन में पाया कि स्ववित्तपोषित कॉलेजों के छात्रों के प्रवेश-परीक्षा के प्राप्तांकों एवं प्रयोगात्मक परीक्षा के प्राप्तांकों के मध्य सार्थक सहसंबंध नहीं है।

वर्तमान समय में प्रचलित मूल्यांकन-प्रणाली कुछ संशोधनों के साथ उसी रूप में प्रचलित है, जिसकी नींव सन् 1835 ई० में लार्ड मैकाले ने रखी थी। वर्तमान समय में प्रचलित

परीक्षा प्रणाली उपयोगी सिद्ध नहीं हो पा रही है। वर्तमान समय में छात्रों की शैक्षिक प्रगति के मापन हेतु वैश्विक स्तर पर अनेक प्रकार की प्रणालियों को अपनाया जा रहा है, जिनमें कुछ मूल्यांकन-प्रणालियाँ एक परिस्थिति में उपयुक्त हैं तो कुछ दूसरी परिस्थितियों में जैसे-जहाँ परीक्षार्थियों की संख्या बहुत अधिक होती है, वहाँ मौखिक परीक्षा द्वारा छात्रों का मूल्यांकन समय की दृष्टि से उपयुक्त नहीं होता, वहाँ लिखित परीक्षा-प्रणाली ही उपयुक्त है। इसी प्रकार जहाँ शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी के ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं मनोचालक पक्षों का विकास करना होता है, वहाँ मूल्यांकन में सम्मिलित रूप से प्रायोगिक परीक्षा लिखित परीक्षा एवं मौखिक परीक्षा का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान समय में प्रचलित परीक्षा-प्रणाली में विश्वसनीय एवं वैधता का अभाव दिखाई पड़ता है। छात्रों में परीक्षा-प्रणाली के प्रति असंतोष है। शिक्षक भी इस शैक्षिक प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण घटक है और उसका दृष्टिकोण छात्र-विकास से सीधे जुड़ा हुआ है। अतः छात्रों में विकासात्मक गुणों हेतु शिक्षक भी वर्तमान परीक्षा-प्रणाली के प्रति पूर्णतः संतुष्ट नहीं है। वर्तमान समय में प्रचलित परीक्षा-प्रणाली के प्रति छात्रों का दृष्टिकोण क्या है? इसी जिज्ञासा से यह शोधपरक अध्ययन किया गया है।

### अध्ययन के उद्देश्य

1. उच्च शिक्षा में प्रचलित परीक्षा-प्रणाली के प्रति शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
2. उच्च शिक्षा में प्रचलित परीक्षा-प्रणाली के प्रति वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित कॉलेजों के शिक्षकों के दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
3. उच्च शिक्षा में प्रचलित परीक्षा-प्रणाली के प्रति कला एवं विज्ञान वर्ग के शिक्षकों के दृष्टिकोण का अध्ययन करना।

### परिकल्पनाएँ

1. उच्च शिक्षा में प्रचलित परीक्षा प्रणाली के प्रति शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के दृष्टिकोण में सार्थक अंतर नहीं है।
2. उच्च शिक्षा में प्रचलित परीक्षा प्रणाली के प्रति वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित कॉलेजों के शिक्षकों के दृष्टिकोण में सार्थक अंतर नहीं है।
3. उच्च शिक्षा में प्रचलित परीक्षा प्रणाली के प्रति कला एवं विज्ञान वर्ग के शिक्षकों के दृष्टिकोण में सार्थक अंतर नहीं है।

### शोध-विधि

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि पर आधारित है, जिसमें इलाहाबाद जनपद के दो वित्तपोषित एवं दो स्ववित्तपोषित कॉलेजों के विज्ञान एवं कला वर्ग के 50-20 शिक्षकों एवं विज्ञान एवं कला वर्ग की 25-25 कुल 50 शिक्षिकाओं का चयन यादृच्छिक न्यादर्श प्रतिचयन विधि से किया गया है। प्रदत्त संकलन हेतु स्वनिर्मित शिक्षक दृष्टिकोण मापनी का प्रयोग किया गया है। प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-अनुपात ज्ञात किया गया है।

**परिणाम तथा विवेचन :**

**सारणी 1**

**परीक्षा-प्रणाली के प्रति शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं के दृष्टिकोण में अंतर दर्शाते मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-अनुपात**

प्रतिदर्श	N	M	S.D.	D	$\sigma D$	t	सार्थकता
शिक्षक	50	40.17	6.43	1.09	1.36	0.80	.05*
शिक्षिकाएँ	50	39.08	7.18				

.05 स्तर पर असार्थक (1.98)

उपर्युक्त सारणी-1 से स्पष्ट है कि परिगणित टी-अनुपात 0.80 मान स्वतंत्र्यांश 98 के लिए 0.05 स्तर पर टी अनुपात सारणीमान 1.98 से कम है जो असार्थक है। अतः उच्च शिक्षा में प्रचलित परीक्षा-प्रणाली के प्रति शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के दृष्टिकोण में सार्थक अंतर नहीं है अर्थात् दोनों के दृष्टिकोण समान हैं। इससे यह आशय निकलता है कि वर्तमान उच्च शिक्षा में प्रचलित परीक्षा-प्रणाली के प्रति शिक्षक एवं शिक्षिकाएँ दोनों संतुष्ट नहीं है।

**सारणी-2**

**परीक्षा-प्रणाली के प्रति वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित कॉलेजों के शिक्षकों के दृष्टिकोण में अंतर दर्शाते मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-अनुपात**

प्रतिदर्श	N	M	S.D.	D	$\sigma D$	t	सार्थकता
स्ववित्तपोषित कॉलेज के शिक्षक	50	39.2	6.98	3.48	1.35	2.57	.05*
वित्तपोषित कॉलेज के शिक्षक	50	42.75	6.52				

.05 स्तर पर सार्थक (1.98) 0.01 स्तर असार्थक (2.63)

उपर्युक्त सारणी-2 से स्पष्ट है कि परिगणित टी-अनुपात 2.57 मान स्वतंत्र्यांश 98 के लिए 0.05 स्तर पर टी अनुपात सारणीमान 1.98 से अधिक है, जो सार्थक है, किंतु 0.01 स्तर पर टी सारणीमान 2.63 से कम है, जो असार्थक है। अतः 95 प्रतिशत विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित कॉलेजों के शिक्षकों की उच्च शिक्षा में प्रचलित परीक्षा-प्रणाली के प्रति दृष्टिकोण में अंतर है अर्थात् वित्तपोषित कॉलेजों के शिक्षकों का परीक्षा-प्रणाली के प्रति दृष्टिकोण स्ववित्तपोषित कॉलेजों की अपेक्षा अधिक सकारात्मक

है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान परीक्षा-प्रणाली के प्रति वित्तपोषित कॉलेजों के शिक्षक अधिक संतुष्ट हैं, क्योंकि अधिकांश शिक्षकों का पुरानी परीक्षा-प्रणाली एवं मूल्यांकन-प्रणाली के प्रति अनुभव के कारण वे इसे परिवर्तित किए जाने एवं नवीन प्रणाली को अपनाए जाने के प्रति सहमत नहीं हैं।

सारणी-3

परीक्षा-प्रणाली के प्रति कला एवं विज्ञान वर्ग के शिक्षकों के दृष्टिकोण में अंतर दर्शाते मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-अनुपात

प्रतिदर्श	N	M	S.D.	D	$\sigma D$	t	सार्थकता
विज्ञान वर्ग के शिक्षक	50	41.38	5.97	1.53	1.27	1.20	.05*
कला वर्ग के शिक्षक	50	39.85	6.73				

.05 स्तर पर असार्थक (1.98)

उपर्युक्त सारणी-3 से स्पष्ट है कि परिगणित टी-अनुपात 1.20 मान स्वतंत्र्यांश 98 के लिए 0.05 स्तर पर टी अनुपात सारणीमान 1.98 से कम है, जो असार्थक है। अतः विज्ञान एवं कला वर्ग के शिक्षकों में वर्तमान परीक्षा-प्रणाली के प्रति दृष्टिकोण में सार्थक अंतर नहीं है। अर्थात् दोनों वर्गों के शिक्षकों की वर्तमान उच्च शिक्षा की परीक्षा-प्रणाली के प्रति दृष्टिकोण समान है।

**निष्कर्ष :**

1. उच्च शिक्षा में प्रचलित परीक्षा-प्रणाली के प्रति शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं का दृष्टिकोण समान है।
2. उच्च शिक्षा में प्रचलित परीक्षा-प्रणाली के प्रति वित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों का दृष्टिकोण स्ववित्तपोषित विद्यालय के शिक्षकों से उच्च है।
3. उच्च शिक्षा में प्रचलित परीक्षा-प्रणाली के प्रति विज्ञान एवं कला वर्ग के शिक्षकों के दृष्टिकोणों में समानता पाई गई है।

उपर्युक्त परिणामों से स्पष्ट है कि शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं का दृष्टिकोण समान पाया गया है, परंतु वित्तपोषित कॉलेजों के शिक्षकों का दृष्टिकोण स्ववित्तपोषित कॉलेजों के शिक्षकों की अपेक्षा अधिक सकारात्मक पाया गया है। इसका कारण वित्तपोषित कॉलेजों के शिक्षकों की मूल्यांकन प्रणाली में सहभागिता हो सकता है। अतः स्ववित्त पोषित कॉलेजों के योग्य शिक्षकों को भी मूल्यांकन-प्रणाली में सहभागिता को सुनिश्चित किया जाना चाहिए। उच्च शिक्षा में प्रचलित परीक्षा-प्रणाली के प्रति शिक्षकों द्वारा प्राप्त प्राप्तांकों के माध्यमान बहुत ही कम है, जो इस बात की ओर इंगित कर रहा है कि प्रचलित परीक्षा-प्रणाली से शिक्षक

संतुष्ट नहीं है। अतः आवश्यकता है कि किसी ऐसी परीक्षा-प्रणाली का विकास किया जाए, जो पूर्णतः वैध, विश्वसनीय, पारदर्शी एवं संतोषजनक हो।

#### संदर्भ

1. एस०पी० गुप्ता एवं अलका गुप्ता, भारतीय शिक्षा का इतिहास विकास तथा समस्याएँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
2. प्रतिभा उपाध्याय, भारतीय शिक्षा में उदयमान प्रवृत्तियाँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
3. एस०पी० एवं अलका गुप्ता, आधुनिक भारतीय शिक्षा की समस्याएँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
4. मालती सारस्वत, शिक्षा मनोविज्ञान, आलोक प्रकाशन, लखनऊ
5. रमनबिहारी लाल, भारतीय शिक्षा की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

## सामान्य बी०टी०सी० एवं विशिष्ट बी०टी०सी० प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

प्रदीपकुमार सिंह

किसी भी राष्ट्र व समाज के विकास का महत्वपूर्ण साधन मानव है। शिक्षा ही मानव को समाज में स्थापित करती है। कोई भी राष्ट्र तब तक उन्नति नहीं कर सकता, जब तक उस राष्ट्र के मानव को विकास का सुअवसर प्राप्त न हो जाए। मानव-जाति के विकास का आधार शिक्षा है। छात्रों के सर्वांगीण विकास का मुख्य श्रेय शिक्षक को ही है, क्योंकि वह अपने निर्देशन से कुसमायोजित छात्र को समायोजित तथा शिक्षा-मनोविज्ञान की सहायता से छात्रों की पहचान कर, उत्तम शिक्षण-विधि का प्रयोग कर छात्रों को स्वयं, सुयोग्य, सक्षम प्राणी बनाता है तथा राष्ट्र के कल्याण हेतु तैयार करता है।

एक योग्य शिक्षक भौतिक साधनों के अभाव में भी विद्यार्थियों को उत्तम शिक्षा प्रदान कर सकता है। शिक्षक के शिक्षण-कार्य को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख कारक शिक्षक की व्यावसायिक संतुष्टि है, क्योंकि यदि शिक्षक की व्यावसायिक संतुष्टि शिक्षण-व्यवसाय में उच्च होगी, तभी शिक्षक प्रभावी शिक्षण कर सकता है, जिसके द्वारा शिक्षा में सकारात्मक विकास किया जा सकता है। परंतु शैक्षिक प्रक्रिया के विकास के क्षेत्र में वर्तमान शिक्षक की स्थिति सर्वथा भिन्न है। वह निर्धनता, उपेक्षा, असुरक्षा तथा अनुशासनहीनता से पीड़ित है। अतः उसकी कार्य-संलग्नता तथा रुचि में कमी है। फलतः व्यावसायिक संतुष्टि की अनुभूति में निरंतर कम होती जा रही है। शिक्षकों की इन समस्याओं का अध्ययन कर उसमें अपेक्षित सुधार आवश्यक है ताकि वे अपने उत्तरदायित्वों का निष्ठापूर्वक निर्वाह कर सकें और शिक्षा में परिवर्तन एवं परिमार्जन कर समाज एवं राष्ट्र को उन्नति के शिक्षर पर पहुँचा सकें।

भावी व वर्तमान शिक्षकों की गुणवत्ता में अभिवृद्धि के लिए उनकी व्यावसायिक संतुष्टि का होना आवश्यक है। प्रश्न यह है कि शिक्षक-व्यवसाय के प्रति असंतोष को उत्पन्न करने वाले कौन-कौन से प्रमुख कारण हैं। उपर्युक्त विवरणों से प्रेरित होकर अध्ययनकर्ता के मन-मस्तिष्क में अकस्मात् यह प्रश्न उठा। उ०प्र० में तत्कालीन भाजपा सरकार ने प्राथमिक शिक्षा के विकास एवं शिक्षकों की कमी की पूर्ति हेतु सन् 1998-1999 में बी०एड० प्रशिक्षणार्थियों का मैरिट के आधार पर चयन किया तथा उनको विशिष्ट बी०टी०सी० का संक्षिप्त प्रशिक्षण देकर स्कूलों में बी०टी०सी० प्राप्त शिक्षकों के साथ तैनात कर दिया।



अध्ययनकर्ता के मस्तिष्क में यह विचार आया कि सरकार का यह कदम कहाँ तक सफल है, क्योंकि विशिष्ट बी०टी० सी० प्रशिक्षण-प्राप्त शिक्षक स्नातक या स्नातकोत्तर की डिग्री प्राप्त है, जबकि पूर्व के बी०टी०सी० प्रशिक्षण-प्राप्त अधिकांश अध्यापक इंटरमीडिएट स्तर की डिग्री प्राप्त हैं। अध्ययनकर्ता यह परीक्षण करना चाहता है कि एक वर्ग उच्च शिक्षा प्राप्त है तथा दूसरा वर्ग सामान्यतया इंटरमीडिएट बी०टी०सी० प्राप्त है, क्या इन दोनों वर्गों के अध्यापकों में उपयुक्त व्यावसायिक संतुष्टि है या आज की बेरोजगारी को देखते हुए उन्होंने व्यवसाय का चयन किया है। प्रश्न यह है कि शिक्षण-व्यवसाय को प्रभावित करने वाले कौन-कौन कारक हैं? प्रस्तुत शोध प्रपत्र का उद्देश्य व्यावसायिक संतुष्टि से संबंधित तत्त्वों का अध्ययन करना है तथा सामान्य बी०टी०सी० एवं विशिष्ट बी०टी०सी० शिक्षकों में व्यावसायिक संतुष्टि का स्तर क्या है? अध्ययनकर्ता को अपने संबंधित साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि संबंधित विषय में अत्यल्प कार्य हुए हैं। इसलिए अध्ययनकर्ता को प्रस्तुत शोध-कार्य करने की आवश्यकता महसूस हुई।

#### अध्ययन के उद्देश्य :

प्रस्तुत शोध हेतु निम्नलिखित उद्देश्यों का निर्माण किया गया है—

1. सामान्य बी०टी०सी० एवं विशिष्ट बी०टी०सी० प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि का अध्ययन करना।
2. सामान्य बी०टी०सी० एवं विशिष्ट बी०टी०सी० प्रशिक्षित अध्यापिकाओं की व्यावसायिक संतुष्टि का अध्ययन करना।
3. सामान्य एवं विशिष्ट बी०टी०सी० प्रशिक्षित अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की व्यावसायिक संतुष्टि से सह-संबंध का अध्ययन करना।

#### शोध-परिकल्पना

1. सामान्य बी०टी०सी० एवं विशिष्ट बी०टी०सी० प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि में सार्थक अंतर नहीं है।
2. सामान्य बी०टी०सी० एवं विशिष्ट बी०टी०सी० प्रशिक्षित अध्यापिकाओं की व्यावसायिक संतुष्टि में सार्थक अंतर नहीं है।
3. सामान्य एवं विशिष्ट बी०टी०सी० प्रशिक्षित अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की व्यावसायिक संतुष्टि में कोई सह-संबंध नहीं है।

#### शोध-विधि

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि पर आधारित है, जिसमें इलाहाबाद जनपद के प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत सामान्य एवं विशिष्ट बी०टी०सी० प्रशिक्षित अध्यापकों को जनसंख्या के रूप में लिया गया है। चयनित न्यायदर्श के रूप में हण्डिया तहसील के प्राथमिक विद्यालयों से 25 सामान्य बी०टी०सी० एवं 25 विशिष्ट बी०टी०सी० शिक्षकों का चयन यादृच्छिक न्यायदर्श प्रतिचयन विधि से किया गया है। प्रदत्त संकलन हेतु डॉ० मीरा दीक्षित द्वारा निर्मित व्यावसायिक संतुष्टि मापनी का प्रयोग किया गया है। प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-अनुपात तथा सह-संबंध गुणांक ज्ञात किया गया है।

**प्रदत्तों की गणना**

सारणी-1

**सामान्य एवं विशिष्ट बी०टी०सी० प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि का संख्यकी विश्लेषण**

माध्यम	N	M	S.D.	D	$\sigma D$	t	सार्थकता
सामान्य बी०टी०सी० शिक्षक	25	203.78	14.78	9.9	2.40	4.12	.01*
विशिष्ट बी०टी०सी० शिक्षक	25	193.40	14.02				

.01 स्तर पर सार्थक (2.64)

**विश्लेषण :**

उक्त सारणी संख्या 1 से स्पष्ट है कि सामान्य बी०टी०सी० शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि के प्राप्तांकों का मध्यमान 203.78 है तथा मानक विचलन 14.78 है, जबकि विशिष्ट बी०टी०सी० शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि के प्राप्तांकों का मध्यमान 193.40 तथा मानक विचलन 14.02 है। परिगणित टी-अनुपात 4.12 है, जो स्वतंत्र्यांश 48 के लिए सार्थकता स्तर .01 पर टी-सारणीमान 2.64 से अधिक है, जो सार्थक है। चूँकि सामान्य बी०टी०सी० शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि के प्राप्तांकों का मध्यमान 203.78, विशिष्ट बी०टी०सी० शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि के प्राप्तांकों का मध्यमान 193.40 से अधिक है। अतः सामान्य बी०टी०सी० प्रशिक्षित शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि विशिष्ट बी०टी०सी० प्रशिक्षित शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि से अधिक है।

**व्याख्या**

सामान्य बी०टी०सी० प्रशिक्षित शिक्षकों की शैक्षिक योग्यता का बहुत अधिक न होना, उनका चयन अपने गृह जनपद में स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप होना तथा उनके शैक्षिक अनुभव आदि उनकी व्यावसायिक संतुष्टि की अधिकता के कारण हो सकते हैं।

सारणी-2

**सामान्य एवं विशिष्ट बी०टी०सी० प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि का संख्यकी विश्लेषण**

माध्यम	N	M	S.D.	D	$\sigma D$	t	सार्थकता
सामान्य बी०टी०सी० शिक्षिका	25	199.41	14.24	0.51	2.38	0.21.	01*
विशिष्ट बी०टी०सी० शिक्षिका	25	199.91	14.20				

.01 स्तर पर असार्थक (2.64)

### विश्लेषण :

उक्त सारणी संख्या 2 से स्पष्ट है कि सामान्य बी०टी०सी० शिक्षिकाओं की व्यावसायिक संतुष्टि के प्राप्तांकों का मध्यमान 199.41 है तथा मानक विचलन 14.24 है जबकि विशिष्ट बी०टी०सी० शिक्षिकाओं की व्यावसायिक संतुष्टि के प्राप्तांकों का मध्यमान 199.91 तथा मानक विचलन 14.20 है। परिगणित टी-अनुपात 0.21 है जो स्वतंत्र्यांश 48 के लिए सार्थकता स्तर .01 पर टी-सारणीमान .01 पर टी-सारणीमान 2.64 से बहुत कम है, जो असार्थक है। चूँकि विशिष्ट बी०टी०सी० शिक्षिकाओं की व्यावसायिक संतुष्टि के प्राप्तांकों का मध्यमान 199.91 सामान्य बी०टी०सी० शिक्षिकाओं की व्यावसायिक संतुष्टि के प्राप्तांकों का मध्यमान 199.41 से अधिक है। अतः विशिष्ट बी०टी०सी० प्रशिक्षित शिक्षिकाओं की व्यावसायिक संतुष्टि सामान्य बी०टी०सी० प्रशिक्षित शिक्षिकाओं की व्यावसायिक संतुष्टि से अधिक है। किंतु सार्थकता स्तर पर यह मान नगण्य है, अर्थात् सामान्य एवं विशिष्ट बी०टी०सी० चयनित शिक्षिकाओं की व्यावसायिक संतुष्टि समान है।

### व्याख्या

विशिष्ट बी०टी०सी० प्रशिक्षित शिक्षिकाओं की शैक्षिक योग्यता का उच्च होना, उनकी संबंधित व्यावसाय में सुरक्षा का दृष्टिकोण सम्मानजनक वेतनमान बी०एड० प्रशिक्षण के साथ-साथ विशिष्ट बी०टी० सी० का प्रशिक्षण प्राप्त करना आदि हो सकता है।

सारणी-3

सामान्य एवं विशिष्ट बी०टी०सी० प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यावसायिक संतुष्टि का संख्यकी विश्लेषण

माध्यम	N	M	S.D.	t
सामान्य एवं विशिष्ट बी०टी०सी० शिक्षक	50	198.59	28.18	0.21
सामान्य एवं विशिष्ट बी०टी०सी० शिक्षिका		199.66	28.60	

### विश्लेषण :

उक्त सारणी संख्या-3 से स्पष्ट है कि सामान्य एवं विशिष्ट बी०टी०सी० शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि प्राप्तांकों का मध्यमान 198.59 तथा मानक विचलन 28.18 है, जबकि सामान्य एवं विशिष्ट बी०टी०सी० शिक्षिकाओं की व्यावसायिक संतुष्टि प्राप्तांकों का मध्यमान 199.66 तथा मानक विचलन 28.60 है। परिगणित सह-संबंध गुणांक .2 है, जो निम्न घनात्मक सह-संबंध गुणांक की श्रेणी में आता है।

### व्याख्या :

उक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सामान्य एवं विशिष्ट बी०टी०सी० शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि तथा सामान्य एवं विशिष्ट बी०टी०सी० शिक्षिकाओं की व्यावसायिक

संतुष्टि धनात्मक रूप से अंतर संबंधित है अर्थात् जिन सामान्य एवं विशिष्ट बी०टी०सी० शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं की व्यावसायिक संतुष्टि में धनात्मक सह-संबंध है, इसका संभावित कारण व्यवसायगत गुण एवं शिक्षकों में इसके समान दृष्टिकोण हो सकते हैं।

#### संदर्भ

1. मालती सारस्वत, शिक्षा मनोविज्ञान, आलोक प्रकाशन, लखनऊ
2. एस० पी० गुप्ता, उदीयमान भारतीय सामज में शिक्षक, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
3. गैरेट, हेनरी, मनोविज्ञान एवं शिक्षा में सांख्यिकी, वैकलिस फेफर एंड सिमंस प्रा०लि०, बंबई
4. प्रतिभा उपाध्याय, भारतीय शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियाँ, शारदा, पुस्तक भवन, इलाहाबाद
5. एस० पी० गुप्ता, जाब सैटिसफैक्शन एंड द टीचर, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद

□ द्वारा डॉ० अशोककुमार सिंह  
वार्ड नं० 10, स्टेशन रोड  
टाउन एरिया, स्टेशन रोड  
हंडिया, इलाहाबाद 221503

## इलाहाबाद जनपद के प्राथमिक विद्यालयों में कक्षा-प्रबंध का अध्ययन

गीता कुशवाहा

### भूमिका

पारस्परिक रूप से शिक्षा तथा ज्ञानार्जन को व्यक्तिगत रुचि एवं प्रयासों का प्रतिफल माना जाता था। परंतु आजकल, शिक्षा को व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकता तथा सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास का प्रथम सोपान माना जाता है। शिक्षा के उत्तरोत्तर विकास एवं सामाजीकरण से, कक्षा एवं विद्यालयों का प्रादुर्भाव हुआ। कक्षा शैक्षणिक उद्देश्यों की प्राप्ति का एक माध्यम है। शिक्षक एवं छात्र-छात्राएँ कक्षा के वातावरण में आपसी संबंधों, क्रियाओं एवं व्यवहार से शैक्षणिक उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर अग्रसर होते हैं।

कक्षा-प्रबंध के बारे में विचार करते समय, कक्षा में शिक्षकों के विभिन्न क्रियाकलापों में समय वितरण एवं गतिविधियों पर विचार करने पर हम पाते हैं कि सामान्य रूप से शिक्षक अपना अधिकतर समय एवं प्रयास विद्यार्थियों को विभिन्न बातों पर सलाह एवं निर्देश देने, कक्षा में अनुशासन बनाए रखने एवं शैक्षणिक कार्यों में व्यय करते हैं। शिक्षक को छात्रों का सलाहकार, अनुशासनकर्ता तथा शैक्षणिक प्रक्रिया का केंद्रबिंदु माना जाता है।

पहले ऐसा माना जाता था कि सफल शिक्षक पैदा होते हैं, सफल शिक्षक के व्यक्तित्व का आकर्षण एवं करिश्मा उनको जन्मजात प्राप्त होता है, परंतु आजकल इस मत को पूर्ण रूप से सही नहीं माना जाता। आजकल यह माना जाता है कि अच्छे कक्षा-प्रबंध, परिश्रम और आचरण से शिक्षा-प्रक्रिया में उत्तरोत्तर सुधार की दृढ़ संभावनाएँ हैं। कक्षा के पूर्व नियोजन, व्यवस्था एवं प्रभावशाली प्रबंध से शिक्षण एवं सीखने की प्रक्रिया को अधिकाधिक सरल एवं सफल बनाया जा सकता है। कक्षा के माध्यम से, शिक्षण के उद्देश्यों की अधिकतम प्राप्ति में कक्षा-प्रबंध अपेक्षाकृत नया विषय है। इससे न केवल शिक्षक एवं छात्रों को शिक्षण एवं सीखने की प्रक्रिया में आत्मसंतोष की प्राप्ति होती है, अपितु दोनों पक्षों को शिक्षण-प्रक्रिया में अपनी पूरी भागीदारी का अनुभव होता है, तथा शिक्षण-प्रक्रिया के पूरे होने पर उद्देश्यों की प्राप्ति और कमियों का भी आभास होता है। इससे भविष्य में प्रक्रिया के और अधिक उन्नत होने की संभावनाएँ बनती हैं।

उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत शोध-अध्ययन में इलाहाबाद जनपद के प्राथमिक विद्यालयों में, कक्षा-प्रबंध से संबंधित गतिविधियों का अध्ययन किया गया है।

### अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्त्व

‘भारत के भविष्य का निर्माण इसकी कक्षाओं में होता है’ शिक्षा आयोग के इस

कथन से स्पष्ट है कि शैक्षिक प्रक्रिया के समुचित संचालन में कक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षक अपने विशिष्ट ज्ञान को छात्रों में तभी संप्रेषित कर सकता है, जब इसके लिए अनुकूल कक्षा-परिस्थितियाँ उपलब्ध हों। विशिष्ट ज्ञान का संप्रेषण समुचित कक्षा-प्रबंध के माध्यम से ही संभव है।

शोधकर्त्री को अपने विद्यार्थी जीवन में, यह निरंतर अनुभव होता रहा है कि उसके विद्यालय और उसकी कक्षा का प्रबंध जीवंत नहीं है। कई विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत शोधकर्त्री के मन में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि कक्षा-प्रबंध जैसा महत्वपूर्ण पक्ष, आखिर उपेक्षित क्यों है? कई छोटे-बड़े विद्यालयों में यदा-कदा जाने पर एवं उन विद्यालयों के विद्यार्थियों से बातचीत करने पर, यह बात स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आई कि हमारा कक्षा-प्रबंध निरंतर उपेक्षित है। यह समस्या केवल एक-दो विद्यालयों की नहीं है, बल्कि वर्तमान में सभी सरकारी, गैर-सरकारी एवं अँग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में दृष्टिगोचर होती है और वर्तमान समय में एक भयावह समस्या के रूप में समाज के सामने उपस्थित है।

कक्षा-प्रबंध शैक्षिक प्रक्रिया का एक अनिवार्य अंग है। कक्षा में शिक्षण एवं सीखने की प्रक्रिया की जीवंतता को बनाए रखने एवं शिक्षण के उद्देश्यों की अधिकतम प्राप्ति के लिए इसका उपयोग महत्वपूर्ण है। इसके उपयोग से, कक्षा की उपयोगिता एवं शिक्षक की सफलता को नए आयाम मिल सकते हैं। यह सर्वमान्य तथ्य है कि भारतवर्ष में स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् जिस त्वरित गति से विद्यालयों व महाविद्यालयों का विस्तार हुआ, उसकी तुलना में विद्यालयों/महाविद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि कक्षा-प्रबंध को निरंतर उपेक्षित किया गया। जैसे-तैसे कक्षा में जाकर कुछ पढ़ा देना मात्र ही शिक्षक ने अपना कर्तव्य मान लिया। फलस्वरूप दोषपूर्ण कक्षा-प्रबंध के चलते, क्षमतावान एवं कार्यकुशल विद्यार्थी तैयार नहीं हो पा रहे हैं। इस दृष्टि से कक्षा-प्रबंध का अध्ययन एक समसामयिक और प्रासंगिक विषय है। चूँकि उत्तम कक्षा-प्रबंध से छात्रों की सफलता अत्यधिक बढ़ जाती है, इस दृष्टि से कक्षा के प्रथम स्तर, प्राथमिक स्तर पर, कक्षा-प्रबंध के वर्तमान स्वरूप का अध्ययन अधिक महत्त्व रखता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में स्पष्ट संकेत दिया गया है कि भविष्य में भारत में प्रत्येक स्तर पर दी जाने वाली शिक्षा, गुणवत्ता-प्रधान होगी न कि संख्या-प्रधान। कक्षा-प्रबंध के अभाव में, शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रश्न चिह्न लग रहा है, जो कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में निहित भावना के प्रतिकूल है। अब तक केवल संख्या-प्रधान शिक्षा पर बल दिया जाता रहा है, शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने हेतु वाँछित प्रयास, किसी भी स्तर पर नहीं किए गए हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रभाव डालने वाले, कक्षा-प्रबंध जैसे महत्वपूर्ण विषय पर शोध करने की संकल्पना शोधकर्त्री ने की है, जिसका शिक्षा के भविष्य के लिए महत्वपूर्ण योगदान हो सकेगा।

### **समस्या कथन**

यद्यपि कक्षा-प्रबंध की समस्या, सभी स्तरों (प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा) की शिक्षा में है, लेकिन शोधकर्त्री ने प्राथमिक शिक्षा के स्तर को ही अध्ययन-हेतु चुना है, तथा शोध का विषय इलाहाबाद जनपद के प्राथमिक विद्यालयों में कक्षा-प्रबंध का अध्ययन

रखा गया है।

### **शोध अध्ययन में प्रयुक्त संप्रत्ययों एवं शब्दों का परिभाषीकरण**

प्रस्तुत शोध का शीर्षक, 'इलाहाबाद जनपद के प्राथमिक विद्यालयों में कक्षा-प्रबंध का अध्ययन' है। इसमें इलाहाबाद जनपद, प्राथमिक विद्यालय, कक्षा-प्रबंध तथा अध्ययन शब्दों का प्रयोग किया गया है, इनका स्पष्टीकरण निम्नवत है—

#### **इलाहाबाद जनपद**

इलाहाबाद जनपद से तात्पर्य, उत्तर प्रदेश के जनपद, इलाहाबाद से है। पवित्र गंगा और यमुना नदियों के संगम-स्थल, इलाहाबाद को प्रयाग के नाम से भी जाना जाता है।

#### **प्राथमिक विद्यालय**

प्राथमिक विद्यालयों से तात्पर्य, बेसिक शिक्षा परिषद् उ०प्र० द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों से है, जिनमें कक्षा 1 से 5 तक की कक्षाएँ चलती हैं तथा इनके शिक्षकों का वेतन, राजकीय कोषागार के माध्यम से मिलता है।

#### **कक्षा-प्रबंध**

कक्षा-प्रबंध से तात्पर्य ऐसे प्रबंध से है, जिसके फलस्वरूप कक्षा में शिक्षण एवं सीखने की प्रक्रिया जीवंत और आनंदमयी हो तथा शिक्षण के उद्देश्यों की अधिकतम प्राप्ति हो। इसके अंतर्गत, कक्षा के भौतिक, सामाजिक और शैक्षिक वातावरण को अधिगम प्रक्रिया के अनुकूल बनाया जाता है। साथ ही शिक्षक के व्यवहार तथा गुणों के मनोवैज्ञानिक प्रयोग, माडर्लिंग तथा पूर्व नियोजन आदि द्वारा शिक्षण के उद्देश्यों की अधिकतम प्राप्ति की जाती है।

#### **अध्ययन**

अध्ययन से तात्पर्य, किसी समस्या से संबंधित सभी तथ्यों को सम्यक रूप से जानना और उसका समाधान प्रस्तुत करना है।

#### **अध्ययन के उद्देश्य**

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. कक्षा के भौतिक, सामाजिक और शैक्षिक वातावरण का अध्ययन करना।
2. कक्षा में शिक्षक के लिए आवश्यक गुणों (व्यवहार-कुशलता, स्थिरता एवं निष्पक्षता, निर्देशों एवं कार्यों में स्पष्टता, स्वीकारोक्ति एवं सम्मान, प्रशंसा दृढ़ता एवं लचीलापन आदि) की उपलब्धता का अध्ययन करना।
3. कक्षा में माडर्लिंग के अनुप्रयोग का अध्ययन करना।
4. कक्षा में समस्यात्मक परिस्थितियों तथा उनके समाधान की विधियों का अध्ययन करना।
5. कक्षा प्रबंध में कमियों का अध्ययन करना।

#### **शोध-विधि**

शोध-विधि शोध-प्रक्रिया का महत्वपूर्ण बिंदु है। इसका निर्धारण शोध की प्रकृति पर निर्भर करता है। शोधकर्ता द्वारा अपनी शोध-समस्या के अनुरूप वर्णनात्मक अनुसंधान विधि के अंतर्गत सर्वेक्षण-विधि का प्रयोग किया गया है।

## शोध समष्टि या जनसंख्या तथा न्यादर्श

समष्टि का तात्पर्य इकाइयों के उस संपूर्ण समूह से है जिसके लिए चर का मान ज्ञात किया जाता है। समष्टि का सबसे प्रमुख गुण यह है कि इस पर किए गए अध्ययन से जो परिणाम प्राप्त होते हैं वे प्रतिनिधिकारी, विशुद्ध एवं विश्वसनीय हुआ करते हैं। इकाइयों के समूचे समूह का, जिसके लिए चर का मान निकालना अभीष्ट है, जनसंख्या कहते हैं।

शोधछात्रा द्वारा अपने शोध-अध्ययन की समस्या के अनुरूप बेसिक शिक्षा परिषद् उ०प्र० द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में से इलाहाबाद जनपद के संपूर्ण प्राथमिक विद्यालयों को शोध समष्टि के रूप में चयनित किया गया है तथा अपने अध्ययन हेतु 50 प्राथमिक विद्यालयों का चयन यादृच्छिक विधि से किया है। इन विद्यालयों के कक्षा-प्रबंध का अध्ययन शोध-उद्देश्यों के अनुसार किया गया है। न्यादर्श में चयनित 50 प्राथमिक विद्यालयों तथा इनमें कार्यरत 150 अध्यापकों एवं 14275 विद्यार्थियों को प्रदत्त संकलन हेतु चयनित किया गया है।

## शोध-उपकरण

शोध-छात्रा द्वारा अपने शोध-अध्ययन हेतु, प्रदत्त संकलन के लिए निम्नलिखित शोध-उपकरणों का प्रयोग किया है।

1. कक्षा-प्रबंध अनुसूची (स्वनिर्मित)
2. साक्षात्कार (संचरित)
3. विद्यालय अभिलेख

## सांख्यिकीय विधि

शोधछात्रा द्वारा अपने शोध की प्रकृति के अनुसार प्रदत्तों का विश्लेषण करने तथा निष्कर्ष प्राप्त करने हेतु वर्णनात्मक सांख्यिकी जैसे औसत, प्रतिशत इत्यादि का अनुप्रयोग किया गया है।

## निष्कर्ष एवं व्याख्या

अध्ययन के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ती द्वारा इलाहाबाद जनपद के चयनित प्राथमिक विद्यालयों का सर्वेक्षण किया गया। प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण कर, परिणाम प्राप्त किए गए हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

1. केवल 44 प्रतिशत विद्यालयों में ही, अलग-अलग कक्षाओं के लिए अलग-अलग कमरे उपलब्ध हैं। 56 प्रतिशत विद्यालयों में, एक से अधिक कक्षाओं के बच्चों को एक ही कमरे में अथवा बरामदे में बैठाकर शिक्षण कार्य किया जाता है, जिससे कक्षा-प्रबंध की व्यवस्था कुप्रभावित होती है।

2. केवल 42 प्रतिशत कक्षाओं में ही छात्र-संख्या, शिक्षा आयोग की संस्तुति के अनुरूप (अधिकतम 50) है। शेष 58 प्रतिशत कक्षाओं में छात्र-संख्या 50 से अधिक है। इन कक्षाओं में विद्यार्थी एक दूसरे से सटकर बैठते हैं तथा कक्षा में चलने फिरने एवं शिक्षक की कुर्सी-मेज के लिए भी जगह नहीं मिलती, जिससे शैक्षिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

3. कक्षा-कक्षों में महापुरुषों की फोटो, शैक्षिक चार्ट तथा नक्शे टाँगने के प्रति शिक्षकों में कोई विशेष रुचि नहीं पाई गई। 18 प्रतिशत कमरों में अशैक्षिक सामान भी देखा



गया, जिससे स्पष्ट है कि शिक्षकगण, कक्षा के वातावरण को शिक्षण कार्य के अनुकूल बनाने के प्रति अधिक संवेदनशील नहीं हैं, जिसका स्पष्ट प्रभाव शिक्षण कार्य की प्रभावशीलता पर पड़ता है तथा यह कक्षा के कुप्रबंधन का भी सूचक है।

4. 93 प्रतिशत कक्षा-कक्षाओं में श्यामपट्ट बने हैं, परंतु केवल 44 प्रतिशत कक्षा-कक्षाओं में ही श्यामपट्ट अच्छी गुणवत्ता के पाए गए। खराब श्याम पट्टों पर लिखने में शिक्षक को काफी कठिनाई होती है तथा लिखावट अस्पष्ट होने के कारण छात्रों को भी श्यामपट्ट कार्य को उतारने में दिक्कत आती है।

5. 65 प्रतिशत कक्षाएँ शोरगुल से प्रभावित पाई गईं। शोर का प्रमुख कारण कक्षाओं में छात्रों की अधिक संख्या तथा अध्यापकों की कमी है। यदि प्रत्येक कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या, शिक्षा आयोग द्वारा सुझाए गए मानकों के अनुसार सीमित रखी जाए, प्रत्येक कक्षा के लिए पृथक कमरे की व्यवस्था हो तथा शिक्षकों की कमी को दूर कर दिया जाए तो कक्षाओं में होने वाले शोर में काफी हद तक कमी हो सकती है।

6. परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों की कक्षाओं का सामाजिक वातावरण, अनुसूचित जातियों एवं पिछड़ी जातियों के छात्रों से मिलकर बना है। निम्नस्तरीय शिक्षण-व्यवस्था के कारण सामान्य तौर पर उच्च जातियों के आर्थिक रूप से संपन्न लोग अपने बच्चों को इन विद्यालयों में पढ़ाना पसंद नहीं करते हैं। इसके विपरीत अनुसूचित जातियों एवं पिछड़ी जातियों के लिए सरकार से मिलने वाली छात्रवृत्ति एवं दोपहर के भोजन की व्यवस्था को देखकर बच्चों का नामांकन इन विद्यालयों में करा देते हैं। शिक्षा की व्यवस्था एवं उसके स्तर से संभवतः उनका बहुत अधिक सरोकार नहीं है।

7. अधिकांश विद्यार्थी, विद्यालय आने पर अपने शिक्षकों को आदरसूचक अभिवादन करते हैं। परंतु छात्रों के अभिवादन को शिक्षकों द्वारा प्रायः नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। वस्तुतः शिक्षक छात्र-अध्यापक संबंधों के मनोवैज्ञानिक महत्त्व से परिचित नहीं हैं।

8. प्राथमिक विद्यालयों में केवल 10 प्रतिशत शिक्षकों द्वारा ही प्रायः शिक्षण सहायक सामग्री का प्रयोग किया जाता है। 42 प्रतिशत शिक्षक यदा-कदा शिक्षण सहायक सामग्री का प्रयोग करते हैं। शिक्षकों द्वारा सहायक सामग्री का अनुप्रयोग न किए जाने के कारण कक्षा का वातावरण अत्यंत नीरस हो जाता है तथा छात्र भी अरुचिपूर्ण ढंग से शिक्षण को ग्रहण करते हैं।

9. केवल 10 प्रतिशत शिक्षक ही कक्षा में पाठ प्रस्तुत करने से पूर्व पहले पढ़ाए गए पाठ के संबंध में छात्रों को जानकारी देते हैं। 26 प्रतिशत शिक्षक उक्त जानकारी यदा-कदा ही छात्रों को देते हैं, जबकि 64 प्रतिशत शिक्षक पिछले पाठ की जानकारी छात्रों को नहीं देते हैं।

10. पाठ्यवस्तु को जीवन के अनुभवों के साथ जोड़कर पाठ में रोचकता उत्पन्न करने की आदत अधिकांश शिक्षकों में नहीं है। केवल 28 प्रतिशत शिक्षक यदा-कदा ही इस प्रक्रिया का अनजाने में प्रयोग करते हैं। पाठ्यवस्तु को जीवन के अनुभवों के साथ जोड़ देने से पाठ रोचक हो जाता है और छात्र उसे समझने में अधिक रुचि लेते हैं जिससे शिक्षक का कार्य आसान हो जाता है परंतु अधिकांश शिक्षक इस मनोवैज्ञानिक विधि एवं इसके प्रभाव से परिचित नहीं हैं।

11. केवल 12 प्रतिशत शिक्षक ही कक्षा में छात्रों को तर्क-वितर्क करने को प्रेरित

करते हैं। 56 प्रतिशत शिक्षक कक्षा में तर्क-वितर्क करने वाले छात्रों को निरुत्साहित करते हैं। जबकि तर्क करने से छात्रों के अंदर प्रतियोगी भावना का विकास होता है तथा जिज्ञासा की प्रवृत्ति प्रबल होती है।

12. केवल 42 प्रतिशत शिक्षक ही छात्रों के प्रति संवेदनशील हैं। कोई पाठ समझ में न आने पर छात्र द्वारा पुनः पूछे जाने पर वे उसकी मदद करने को तत्पर रहते हैं। 48 प्रतिशत शिक्षक छात्रों की समस्याओं के प्रति यदा-कदा ही ध्यान देते हैं। 10 प्रतिशत शिक्षक छात्र-समस्याओं के प्रति पूर्णतः उदासीन पाए गए।

13. शिक्षणकार्य में पूर्व नियोजन के प्रभाव से प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षक अवगत नहीं हैं।

14. 78 प्रतिशत शिक्षक प्रायः अपने छात्रों का नाम न लेकर, 'तुम बताओ', 'तू खड़ा हो' आदि वाक्यों का प्रयोग करते हैं, जिससे यह परिलक्षित होता है कि अधिकांश शिक्षक विद्यार्थियों के प्रति उदासीन रहते हैं, यहाँ तक कि बिना हाजिरी रजिस्टर देखे शिक्षक अपनी कक्षा के कुछ ही विद्यार्थियों के नाम याद रख पाते हैं।

15. अधिकांश शिक्षक विकलांग तथा मानसिक रूप से पिछड़े हुए छात्रों, अनुसूचित जातियों और पिछड़ी जातियों के छात्रों की शैक्षिक उन्नति के प्रति प्रायः उदासीनता का भाव रखते हैं। प्राथमिक विद्यालयों में जाति और धर्म के आधार पर छात्रों के साथ भेदभाव किया जाता है। जिससे छात्रों के मन में असंतोष की भावना अनुभव की गई। छात्रों के प्रति शिक्षकों की उदासीनता तथा जाति और धर्म की विसंगतियों आदि कारणों से कक्षाओं का वातावरण कुप्रभावित होता है।

16. प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षक अच्छे कार्यों के लिए किसी विद्यार्थी की प्रशंसा करने के मनोवैज्ञानिक प्रभाव से परिचित न होने के कारण प्रायः इस गुण का उपयोग नहीं करते हैं।

17. 94 प्रतिशत शिक्षक, स्वयं लिए गए निर्णयों एवं कक्षा-नियमों के प्रति स्थिर नहीं रहते हैं। इस विषय में अधिकांश शिक्षकों की मान्यता है कि दृढ़ता के आधार पर सभी छात्रों पर नियंत्रण नहीं पाया जा सकता।

18. शिक्षक प्रायः पाठ्य पुस्तकों में दी गई सामग्री ही कक्षा में पढ़ाते हैं। कुछ अपवादों को छोड़कर पाठ्य पुस्तकों से बाहर की जानकारी छात्रों को नहीं दी जाती है।

19. केवल 30 प्रतिशत अध्यापक यह सोचते हैं कि उनके छात्र भविष्य में महान बनें। परंतु केवल 20 प्रतिशत अध्यापकों द्वारा ही अपने छात्रों को भविष्य में नेक, ईमानदार एवं महान व्यक्ति बनाने हेतु प्रयास किया जाता है।

20. विद्यालयों के अवलोकन से शोधकर्त्ता को यह अनुभव हुआ कि विद्यार्थियों के मन में अपने शिक्षकों के प्रति विश्वास एवं सम्मान की भावना कम है। साक्षात्कार से छात्रों ने अपने शिक्षकों में कुछ कमियों की तरफ संकेत भी किया, जैसे शिक्षकों का समय पर कक्षा में न आना, कक्षा में अनर्गल बातें करना, बात-बात पर डाँटना फटकारना, छोटी-छोटी बातों पर छड़ी से पीटना, मुर्गा बनाना तथा अपशब्दों का प्रयोग करते हुए डाँटने की जानकारी भी विद्यार्थियों द्वारा दी गई।

प्रस्तुत शोध अध्ययन भावी अध्येताओं के लिए आधारभूत, उपयोगी एवं मार्गदर्शक सिद्ध होगा, ऐसा शोधकर्त्री का विश्वास है।

### संदर्भ

1. जी०एस० वर्मा, भारत में शैक्षिक प्रणाली का विकास, इंटरनेशनल पब्लिसिंग हाउस, मेरठ
2. के०के० वशिष्ठ, विद्यालय-संगठन एवं शिक्षा की समस्याएँ
3. एस०पी० गुप्ता, शिक्षा का ताना-बाना, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
4. जॉन डब्ल्यू० वेस्ट, रिसर्च इन एजुकेशन, प्रिंटिंग हाल ऑफ इंडिया प्रा०लि०, नई दिल्ली
5. डॉ० राजबली यादव, कक्षा-प्रबंध और उसकी समस्याएँ, नवजीवन प्रकाशन, इलाहाबाद
6. पारसनाथ राय, अनुसंधान परिचय, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा
7. डॉ० एस०पी० गुप्ता, सांख्यिकीय विधियाँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
8. विद्या अग्रवाल, शैक्षिक प्रशासन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
9. मालती सारस्वत एवं एस०एल० गौतम भारत में शैक्षिक प्रणाली का विकास, आलोक प्रकाशन, लखनऊ
10. एम०बी० बुच, रिसर्च इन एजुकेशन प्रथम सर्वे, बडौदा ऑफ एडवांस स्टडी इन एजुकेशन, एम० एस० यूनिवर्सिटी

□ 30-ए/11 अमरनाथ झा मार्ग  
जार्ज टाउन, इलाहाबाद  
मो० 9450586894

## रवींद्रनाथ टैगोर के व्यक्तित्व से प्रभावित ओबामा

डॉ० (श्रीमती) कुमुद दुबे

व्याख्याता

शासकीय शिक्षा महाविद्यालय, जबलपुर (म०प्र०)

दिनांक 8.11.10 को अमेरिका के राष्ट्रपति ओबामा ने भारतीय संसद को संबोधित करते हुए महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानंद, रवींद्रनाथ टैगोर से लेकर संविधान-निर्माता भीमराव अम्बेडकर के नामों का बार-बार जिक्र किया।

रवींद्रनाथ टैगोर को याद करते हुए ओबामा ने कहा, मैं उस ज़मीन पर खड़ा हूँ, जहाँ दिमाग वगैर भय के, और सिर ऊँचा रहता है। ओबामा टैगोर के व्यक्तित्व से अधिक प्रभावित हैं।<sup>1</sup>

टैगोर एक कवि, चित्रकार, दार्शनिक, लेखक, शिक्षाविद्, अभिनेता, गायक, संस्कृतिज्ञ एवं देश-प्रेमी थे। टैगोर के व्यक्तित्व का अनुमान लगाया जा सकता है, उनकी कविताओं से नाटकों से, उपन्यासों से एवं शिक्षा के आदर्शों से। टैगोर की सोच समस्त मानव-जाति के लिए थी। मानव के प्रबल समवर्धक होने के नाते उनके चिंतन में समस्त विश्व समाहित था। टैगोर के लिए सच्ची स्वतंत्रता आत्मा की स्वतंत्रता है। 'आत्मिक सत्ता पर समान रूप से स्थापित होने के कारण विश्व के सभी मानव समान हैं, अतः टैगोर एक अंतर्राष्ट्रीयवादी थे। वे कहते हैं कि भारतीय आत्मा का विकास, समस्त विश्व में प्रसारित होता है।'

टैगोर के अंतर्राष्ट्रीयतावाद को आध्यात्मिक मानववाद की संज्ञा प्रदान करना न्यायोचित प्रतीत होता है। वे प्रत्येक मनुष्य को विश्वनागरिक मानते थे। उनके विशाल हृदय और देश-काल की संकीर्णता की सहज मनोवैज्ञानिक भावनाएँ एवं संवेदनाएँ देश-काल की परिधि से युक्त हैं और संवेदनाओं तथा अनुभूतियों के धरातल पर समस्त मानव समुदाय एक ही है। इसलिए 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' का सिद्धांत उनको सर्वाधिक प्रिय था।

टैगोर ने आधुनिक भारत को विश्व एवं जीवन-स्वीकृति का दर्शन दिया है। उन्होंने नैतिकता को परंपराओं तथा धर्मशास्त्रीय विधानों से मुक्त करने का प्रयत्न किया। उनके दर्शन के अनुसार जातिधर्म के प्रति भावना नैतिक आचरण का मूल नहीं है। उसका आधार ईश्वरीय साम्रज्य एवं प्रेम की पहचान है। अपनी अंतःप्रज्ञात्मक सिद्धियों और जीवन के मूल्यों के आधार पर उन्होंने विश्व के संदर्भ में एक नैतिक दर्शन का विकास किया है। अमेरिका के वर्तमान राष्ट्रपति ओबामा पर टैगोर के विश्व जीवन का प्रभाव पड़ा।

टैगोर स्वभाव से आशावादी विचारक एवं दार्शनिक थे। उन्होंने कुंठाग्रस्त राष्ट्र को विभिन्न कुंठाओं से मुक्त करने का प्रयास किया। उनका विचार था कि संकीर्ण भावनाओं से

संबद्ध कुंठाओं के कारण हम वास्तविक सत्य की अनुभूति में असमर्थ हैं। वे मानवीय भावनाओं के पूर्ण सम्मान पर बल देते थे।

टैगोर शैक्षिक सिद्धांत की अवधारणा में आशावादी है। उनके विभिन्न शैक्षिक लेखों और व्याख्यानों में आदर्शवादी लक्ष्य दृष्टिगोचर होता है। टैगोर एक आदर्शवादी विचारक हैं। वे मानव की एक ससीम असीम प्राणी के रूप में प्रकृति और आत्मा को समाविष्ट करते हैं। मनुष्य पृथ्वी की संतान है, परंतु आकाश का उत्तराधिकारी भी एक छोर पर उनका प्राणी मनुष्य निर्जीव वस्तुओं के साथ है, दूसरी रफ़ वह सभी से अलग है।

टैगोर प्रकृति से प्रेम करते थे और अपने चारों ओर के संसार से तदानुभूतिक आंतरिक मिलन के भाव के महत्त्व पर बल देते थे। अपने एक लेख में जिसका शीर्षक था 'poet's school', वे लिखते हैं, 'हम इस संसार में आए हैं, इसे स्वीकार करने के लिए न कि केवल जानने के लिए। यह ज्ञान शक्तिशाली हो सकता है, किंतु हम पूर्णता सहानुभूति से ही प्राप्त करते हैं। सबसे उत्तम शिक्षा वह है, जो केवल सूचना ही नहीं देती वरन् हमारे जीवन को समरसता और सह आस्तित्व प्रदान करती है।

टैगोर ने प्रकृति के साथ निकटता और साहचर्य पर बल दिया। वे कहते थे कि 'सभी वर्तमान संपदाओं का आश्रय-स्थल ईंट और गारा है, शिक्षा ईंट और चूने से बने मकान की भाँति नहीं है, जिसका नक्शा मिस्त्री पहले से ही तैयार कर सकता है। शिक्षा तो वृक्ष की भाँति है, जो अपने जीवन के साथ ताल मिलाकर और उसके अनुरूप विकसित होती है, शिक्षा किसी भी देश की समृद्धि और शक्ति का सशक्त आधार एवं राष्ट्रीय विकास का मापदंड है, शिक्षा के साथ-साथ राष्ट्रीय विकास का सीधा संबंध उस देश की शैक्षिक औद्योगिक अभिकरणों से होता है।'<sup>2</sup>

टैगोर के स्कूली दिनों में लड़कों को क्रियाकलापों से आनंद पाने की स्वतंत्रता नहीं थी, वे नियंत्रित और कैद में रखे जाते थे, जिससे आगे चलकर बाल-मन की संवेदनशीलता नष्ट हो जाती थी, ये बालक जो प्रथम दृष्टया प्रकृति से ज्ञान प्राप्त के लिए सदा सजग, बेचैन तथा उत्सुक रहते थे, निराश्रित थे।<sup>3</sup> वास्तव में टैगोर सभी चरम सीमाओं में सामंजस्य चाहते थे। वर्तमान विश्व के राजनीतिक पटल पर ओबामा भी चाहते हैं कि पूरे विश्व में विश्वबंधुत्व की भावना का विकास हो।

टैगोर के दर्शन की विवेचना करते समय, यह बात भी स्पष्टता से सामने आती है। टैगोर के मन में मनुष्य के प्रति असीम निष्ठा है। टैगोर की कविता मानवतावाद की ओर लाती है—

सीमार माझे असीम तुम बाजाओ आपन सुर  
आभार माझे तो मार प्रकाश ताई एतो मधुर  
कतों वर्णे कतों रांचे कतों गने कतों छंदे  
अरूप तोमर रूप रे, लीलाए जानो हृदय मधुर।<sup>4</sup>

Kathleen M.O. Cunnell के अनुसार टैगोर भारतीयों में से एक ऐसे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने मानववादी शैक्षिक व्यवस्था स्थापित करने पर बल दिया, जो वातावरण के संपर्क में हो, और व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास उसका ध्येय हो।

टैगोर मूल रूप से विशालहृदय, रहस्यवादी कवि एवं साहित्यकार थे, परंतु तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं से अभिन्न रूप से संबद्ध रहे। उन्होंने देश की राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय भाग नहीं लिया, परंतु गांधी, नेहरू एवं अन्य राष्ट्रवादी नेता टैगोर के विचारों तथा आदर्शों से अत्यधिक प्रभावित थे और उनसे प्रेरणा ग्रहण करते थे। गांधी जी ने रविंद्र नाथ टैगोर के प्रति अत्याधिक श्रद्धा एवं आदर भाव के कारण उन्हें 'गुरुदेव' की उपाधि से विभूषित किया था। स्मरणीय है कि उनके गुरुत्व को युगपुरुष गांधी ने स्वीकार किया था। निःसंदेह, टैगोर ने गुरु की भूमिका का सदैव निर्वाह भी किया। नेहरू जी ने एक बार कहा था कि भावना के क्षेत्र में वे स्वयं को गांधी जी की अपेक्षा टैगोर के अधिक निकट पाते हैं।<sup>5</sup>

‘टैगोर अपने स्वयं के व्यक्तिगत रूप में एक जीवित प्रतिमा थे।’

ओबामा टैगोर के संसार से तदानुभूतिक आंतरिक मिलन के भाव से अत्यंत प्रभावित हैं। व्यक्ति की संपूर्ण संभावनाओं को उजागर करती शिक्षा न केवल सूचना का माध्यम मात्र है, वरन् वह हमारे जीवन को समरसता एवं सहअस्तित्व का भाव प्रदान करती है। किसी देश की समृद्धि का आधार होने के साथ साथ शिक्षा मानसिक विकास का हेतु है।

ओबामा भी आज के परिदृश्य में विश्व में वैश्विक बंधुत्व-भाव का विकास चाहते हैं, इसीलिए वे टैगोर के विचारों के निकट अपने-आपको स्वाभाविक रूप से पाते हैं, सीमाओं से बंधे एवं आत्मकेंद्रित विकास की प्रतिस्पर्धा अंततः विनाश की ओर ले जाने वाली है। इससे कटु सच्चाई से भला एक विकसित एवं विश्वराजनीति की अगुआई कर रहे राष्ट्र का प्रमुख भला कैसे अंजान रह सकता है, अतः मानवविकास के सीमांत पुरोधा भारत की ओर देखना, विश्व की मजबूरी है।

अपने व्यक्तित्व के हर पहलू में टैगोर वैश्विक मानवतावादी थे, और यही कारण है कि ओबामा ने भारतीय संसद को संबोधित करते हुए उनके नाम का अपने भाषण में विशेष रूप से उल्लेख किया।

### संदर्भ ग्रंथ

1. National News, New Delhi, dt. 8.11.10
2. O.C. Personalaty, Page 84,
3. “All the modern civilization have their crades of brick and mortar” R.N. Tagore Page 4 O.C.
4. R.N. Tagore Gitanjali, Page 28 Tr by outhor macmillan v co. 1 Tel, London, 1913.
5. R.N. Tagor Sadhana, Page 69.
6. Gyan Vani

□ 768, नार्थ सिविल लाइन  
पी.एस.एम.कैम्पस,  
मो. 09424925634

## माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता हास के आर्थिक कारणों के प्रति शिक्षकों, छात्रों एवं अभिभावकों के दृष्टिकोण का अध्ययन

विनोदकुमार यादव

शिक्षा किसी राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि की सूचक होती है और शिक्षा पर ही देश की अर्थव्यवस्था निर्भर करती है। भारत जैसे विकासशील देश में आर्थिक समृद्धि हेतु शिक्षा का उन्नयन एवं क्वास किया जाना अत्यंत आवश्यक है। शिक्षा के विभिन्न स्तरों में माध्यमिक शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि उत्पादक जनसंख्या का अधिकांश भाग माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद व्यावसायिक एवं नौकरी से जुड़ जाता है। इसलिए माध्यमिक शिक्षा का विकास इस रूप में होना चाहिए जो राष्ट्र के समस्त नागरिकों में उत्पादक क्षमता का विकास कर सकें। वर्तमान में माध्यमिक शिक्षा की सीति संतोषप्रद नहीं दिखायी पड़ रही है क्योंकि माध्यमिक शिक्षा प्राप्त देश के अधिकांश युवा बेरोजगारी का दंश झेल रहे हैं। माध्यमिक शिक्षा की इस गुणवत्ता के हास में उत्तरदायी कारकों पर दृष्टिपात करें तो इसकी जड़ में शैक्षिक कारक के रूप में दिखलाई पड़ता है क्योंकि अर्थव्यवस्था की अल्प उपलब्धता के कारण के कारण ही स्ववित्तपोषित संस्थाओं को मान्यता प्रदान की गई जो आर्थिक शोषण एवं धनार्जन का केंद्र बनते गए। माध्यमिक शिक्षा की इस गुणवत्ता हास में आर्थिक कारकों का योगदान किस सीमा तक है तथा शिक्षकों, छात्रों एवं अभिभावकों का इसके प्रति दृष्टिकोण कैसा है इसी जिज्ञासा से प्रस्तुत शोध प्रपत्र को तैयार किया है।

### उद्देश्य :

1. विद्यालयों में विभिन्न शुल्कों एवं अन्य देयकों के प्रति शिक्षकों, छात्रों एवं अभिभावकों के दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
2. विद्यालयी सुविधाओं की उपलब्धता के प्रति शिक्षकों, छात्रों एवं अभिभावकों के दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
3. शिक्षकों को प्राप्त होने वाले वेतन एवं विद्यालय को प्राप्त आर्थिक सहायता के प्रति शिक्षकों, छात्रों एवं अभिभावकों के दृष्टिकोण का अध्ययन करना।

### शोध विधि :

प्रस्तुत अध्ययन वर्णानात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि पर आधारित है जिसमें इलाहाबाद जनपद के माध्यमिक विद्यालयों को जनसंख्या के रूप में लिया गया है। इन्हीं विद्यालयों में से माध्यमिक स्तर के शिक्षकों, छात्रों एवं उनके संबंधित अभिभावकों का चयन

उद्देश्यपरक न्यादर्श प्रतिचयन विधि से किया गया है। प्रदत्त के विश्लेषण हेतु औसतमान ज्ञात किया गया है।

**परिणाम विवेचन :**

माध्यमिक स्तर की शिक्षा में गुणवत्ता के ह्रास से संबंधित  
'आर्थिक कारणों' के प्रतिशत मान की तालिका

क्र.सं.	प्रश्न	अध्यापक उत्तर प्रतिशत		छात्र उत्तर प्रतिशत		अभिभावक उत्तर प्रतिशत	
		हाँ	नहीं	हाँ	नहीं	हाँ	नहीं
		1.	छात्रों से केवल शासन द्वारा निर्धारित शुल्क प्रतिमाह के हिसाब से लिया जाता है।	93	7	35	65
2.	निर्धारित परीक्षा, टीसी शुल्क प्रति छात्र की दर से लिया जाता है।	96	4	32	68	46	56
3.	भवन की मरम्मत, सहायता सामान के लिए शासन से पर्याप्त धन मिलता है।	16	84	46	54	32	68
4.	अनु० एवं पिछड़ी जाति तथा अल्पसंख्यकों को प्रतिवर्ष छात्रवृत्ति वितरित की जाती है।	92	8	64	36	76	24
5.	प्रधानाचार्य एवं प्राधिकृत अध्यापक भगत से छात्रों को पूरी छात्रवृत्ति नहीं दी जाती है।	6	94	26	74	32	68
6.	छात्रवृत्ति देने से पहले विद्यालय द्वारा पहले रुपया ले लिया जाता है।	4	96	28	72	40	60
7.	स्ववित्तपोषित विद्यालयों के अध्यापकों को पर्याप्त वेतन मिलता है।	19	81	38	62	20	80
8.	स्थानीय जनप्रतिनिधियों द्वारा विद्यालय को आर्थिक सहायता दी जाती है।	83	17	42	58	46	54
9.	अध्यापकों के वेतन निर्धारण में पैसा लिया जाता है।	14	86	24	76	42	58
10.	विद्यालय विकास हेतु प्राप्त धनराशि का पूर्ण सदुपयोग होता है।	87	13	54	46	32	68



उक्त तालिका से स्पष्ट है कि शासन द्वारा निर्धारित शुल्क के संदर्भ में 93 प्रतिशत शिक्षकों ने 'हाँ' तथा 7 प्रतिशत शिक्षकों ने 'नहीं' में प्रतिउत्तर दिया जबकि छात्रों का दृष्टिकोण 35 प्रतिशत 'हाँ' तथा 65 प्रतिशत 'नहीं' में प्राप्त हुआ जबकि 48 प्रतिशत अभिभावकों ने 'हाँ' में तथा 52 प्रतिशत अभिभावकों ने 'नहीं' में अपना प्रति उत्तर दिया। इससे यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान शुल्क के प्रति शिक्षकों का दृष्टिकोण सकारात्मक, जबकि छात्र एवं अभिभावक का दृष्टिकोण नकारात्मक है। अर्थात् छात्र एवं अभिभावक निर्धारित शुल्क से अधिक शुल्क वसूल किए जाने की समस्या से प्रभावित है। निर्धारित परीक्षा शुल्क टी० सी० शुल्क क्रीडाशुल्क आदि के संबंध में 96 प्रतिशत शिक्षकों ने 'हाँ' जबकि 4 प्रतिशत शिक्षकों ने 'नहीं' में एवं 32 प्रतिशत छात्रों ने 'हाँ' में जबकि 68 प्रतिशत छात्रों ने 'नहीं' प्रति उत्तर दिया। 46 प्रतिशत अभिभावकों ने 'हाँ' में तथा 56 प्रतिशत अभिभावकों ने 'नहीं' में उत्तर दिया जो यह इंगित करता है कि विद्यालयों में परीक्षा, टी० सी०, क्रीडा आदि शुल्क से संबंधित समस्याएँ दिखाई पड़ती हैं। भवन की मरम्मत तथा सहायता सामग्री एवं अन्य विद्यालयी आवश्यकता के सामग्रियों के लिए शासन से प्राप्त धन के संबंध में 16 प्रतिशत शिक्षकों ने 'हाँ' जबकि 84 प्रतिशत 'नहीं' में उत्तर दिया जबकि 46 प्रतिशत छात्रों ने 'हाँ' तथा 54 प्रतिशत छात्रों ने 'नहीं' में उत्तर दिया। 32 प्रतिशत अभिभावकों ने 'हाँ' में तथा 68 प्रतिशत अभिभावकों ने 'नहीं' में उत्तर दिया जो यह दर्शाता है कि विद्यालयी गुणवत्ता आर्थिक कमी के कारण न्यून हो जाती है। अनु० एवं पिछड़ी जाति तथा अल्पसंख्यकों को छात्रवृत्ति प्रदान करने तथा छात्रवृत्ति प्रदान करने से पूर्व विद्यालय द्वारा धन लेने के संबंध में 4 प्रतिशत शिक्षकों ने 'हाँ' जबकि 96 प्रतिशत 'नहीं' में उत्तर दिया जबकि 28 प्रतिशत छात्रों ने 'हाँ' तथा 72 प्रतिशत छात्रों ने 'नहीं' में उत्तर दिया। 40 प्रतिशत अभिभावकों ने 'हाँ' में तथा 60 प्रतिशत अभिभावकों ने 'नहीं' में उत्तर दिया जो यह संकेत करता है कि विद्यालयों में छात्रवृत्ति के संबंध में छात्र एवं अभिभावक संतुष्ट नहीं हैं तथा वे इसे विद्यालय के आर्थिक शोषण का साधन मानते हैं जबकि शिक्षक छात्रवृत्ति की इस व्यवस्था संतुष्ट हैं। स्थानीय जनप्रतिनिधियों द्वारा विद्यालय को आर्थिक सहायता प्रदान करने तथा विद्यालय द्वारा प्राप्त धनराशि का पूर्ण सदुपयोग करने के संबंध में 87 प्रतिशत शिक्षकों ने 'हाँ' जबकि 13 प्रतिशत 'नहीं' में उत्तर दिया जबकि 54 प्रतिशत छात्रों ने 'हाँ' तथा 46 प्रतिशत छात्रों ने 'नहीं' में उत्तर दिया। 32 प्रतिशत अभिभावकों ने 'हाँ' में तथा 68 प्रतिशत अभिभावकों ने 'नहीं' में उत्तर दिया जो यह दर्शाता है कि स्थानीय प्रतिनिधियों एवं समाज द्वारा प्राप्त धनराशि का विद्यालयों में पूर्ण सदुपयोग नहीं हो पाता जिसके कारण धनराशि का उपभोग प्रशासकों द्वारा करने से विद्यालये की गुणवत्ता में हास होता जाता है। स्ववित्तपोषित विद्यालयों के अध्यापकों को पर्याप्त वेतन प्रदान करने तथा उनके वेतन निर्धारण में धन लेने संबंधी कारक के रूप में 19 प्रतिशत शिक्षकों ने 'हाँ' जबकि 82 प्रतिशत 'नहीं' में उत्तर दिया जबकि 38 प्रतिशत छात्रों ने 'हाँ' तथा 62 प्रतिशत छात्रों ने 'नहीं' में उत्तर दिया। 20 प्रतिशत अभिभावकों ने 'हाँ' में तथा 80 प्रतिशत अभिभावकों ने 'नहीं' में उत्तर दिया जो माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षकों के शोषण एवं उनकी स्थिति का वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत करता है। पर्याप्त वेतन न मिलने के कारण शिक्षकों की शिक्षण गुणवत्ता में हास होता है।

### **निष्कर्ष :**

निष्कर्षतः शिक्षा की गुणवत्ता शिक्षा की गुणवत्ता-हास में आर्थिक कारक को एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। छात्रों से अधिक शुल्क वसूल करना तथा उन्हें छात्रवृत्ति पूरे रूप में प्रदान न करने तथा टी०सी०, क्रीड़ा आदि के नाम पर शुल्क वसूल करने जैसे आर्थिक कारकों से छात्र एवं अभिभावक परेशान दिखाई पड़े, जबकि अध्यापकों में वेतन विसंगति एवं वेतन-निर्धारण में प्रशासकों द्वारा धन लिए जाने से संबंधित समस्याएँ दिखाई पड़ी। इससे यह स्पष्ट है कि माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता-हास को रोकने तथा इसके गुणवत्ता-संवर्धन हेतु आर्थिक सुचिता एवं पारदर्शिता लाए जाने की आवश्यकता है।

### **संदर्भ**

1. प्रतिभा उपाध्याय, भारतीय शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियाँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद 2005
2. एस०पी० गुप्ता एवं अलका गुप्ता, आधुनिक भारतीय शिक्षा की समस्याएँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
3. एस०पी० गुप्ता, जाब सैटिसफैक्शन एंड द टीचर, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
4. एच०के० कपिल, सांख्यिकी के मूल तत्त्व, आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

## जयप्रकाश नारायण और उनके आंदोलन

डॉ० अशोककुमार सिंह

रीडर इतिहास विभाग, पी०जी० कॉलेज

आलोक सिंह, शोध छात्र,

इतिहास विभाग, पी०जी० कॉलेज

जब कुछ ही दिनों में गुजरात में व्यापक पैमाने पर छात्र-आंदोलन शुरू हो गया तो वहाँ के सर्वोदयी एवं अन्य कार्यकर्ताओं का एक प्रतिनिधि मंडल दिल्ली जाकर जयप्रकाश नारायण जी से मिला और उनसे गुजरात आने का आग्रह किया, वे तुरंत गुजरात चले गए। साबरमती आश्रम में 13 फरवरी को जयप्रकाश नारायण ने कार्यकर्ताओं के सम्मेलन में कहा, 'यह एक ऐतिहासिक अवसर है। इसे आपने या मैंने पैदा नहीं किया, परिस्थिति ने पैदा किया है। जो परिस्थिति आज सारे देश में फैली हुई है, उसने गुजरात में इस प्रकार का रूप लिया। अन्यत्र उसका दूसरा भी स्वरूप हो सकता है। आज परिस्थिति का तकाजा है। एक क्रांतिकारी परिस्थिति है, उसमें एक माँग है परिवर्तन की! मैं स्वास्थ्य के कारण लाचार हूँ। दिल में हिम्मत है, लेकिन नाजूक स्वास्थ्य के कारण हिचकता हूँ। वरना विद्यार्थियों का आह्वान करता हूँ कि एक वर्ष के लिए कालेज छोड़कर निकल पड़ो चलो हमारे साथ। इस देश में हम लोकतंत्र का एक नया ढाँचा खड़ा करें।'

जयप्रकाश नारायण ने 14 फरवरी को गुजरात विश्वविद्यालय के छात्रों की सभा में युवकों का आह्वान किया कि वे राष्ट्र की मौजूदा चुनौतियों को स्वीकार कर संघर्ष छेड़ें। जयप्रकाश नारायण अहमदाबाद में भी चार दिन रहे, जहाँ विभिन्न सभाओं में भाषण हुए, जिसमें उन्होंने देश की वर्तमान राजनीति, चुनाव-पद्धति, आर्थिक नीति, भ्रष्टाचार एवं बेरोजगारी जैसे मुद्दों पर करारी चोट की। उन भाषणों में वे हरिवंशराय बच्चन की एक पंक्ति बराबर उद्धृत करते थे, 'आज लहरों में निमंत्रण, तीर पर कैसे रुकूँ मैं' इसी से यह प्रमाणित हो जाता है कि जयप्रकाश नदी-किनारे खड़े होकर देश की किशती को डूबते नहीं देख सकते थे, जैसा कि सन् 1968 में जयप्रकाश नारायण ने शेख अब्दुल्ला को जवाब दिया था। जयप्रकाश नारायण को ऐसा आभास हो रहा था कि देश में कोई व्यापक राजनीतिक परिवर्तन होने वाला है। गुजरात आंदोलन को युवकों के नवनिर्माण-आंदोलन का नाम दिया था। इसलिए जयप्रकाश नारायण ने युवकों को सलाह दी कि चुनाव-पद्धति में सुधार आवश्यक है। इसलिए विधानसभा भंग होने के पश्चात जो चुनाव हो, उसमें मतदाता परिषद् और ग्रामसभा प्रतिनिधि परिषद् द्वारा लोक उम्मीदवार खड़े किए जाएँ, जो किसी दल के नहीं हों यह आंदोलन उतना फैल नहीं पाया, किंतु उनकी नज़र में उसका बहुत महत्त्व था, क्योंकि पहली बार युवकों व विद्यार्थियों ने अपने वर्ग की माँगों से अलग हटकर जनता के हित के लिए संघर्ष किया। इसके

साथ ही स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद देश में पहली बार लोकशक्ति के दबाव में राज्य सरकार का इस्तीफा और विधानसभा का विसर्जन हो पाया। इससे यह प्रमाणित हुआ कि राज्यशक्ति से जनशक्ति ऊपर है। बिहार में भी स्थिति विस्फोटक बनती जा रही थी। श्रमदान, भूदान, ग्रामदान और जीवनदान रूपी वटवृक्ष के सहारे सर्वोदय की जिस चेतना को जयप्रकाश नारायण मुखरित और प्रस्फुटित करने में उद्यत थे, उस पर उन्हें हर ओर से प्रहार होते दिखाई दिए। एक विषम स्थिति का कोहरा संपूर्ण 'सर्वोदय-चेतना' को निष्प्रभावी करने में उद्यत था। कहीं से कहीं तक भी सही और पूर्ण राह दिखाई नहीं दे रही थी। इस निराशाजनक स्थिति में ज्वालामुखी बनकर विरोध से विद्रोह करने की आकुलता जयप्रकाश नारायण की चेतना का हिस्सा बन गई और सर्वोदयी-क्रांति के चरम सीमा के रूप में उन्हें 'संपूर्ण-क्रांति' का आह्वान किया। 'वे एक लंबी, पीड़युक्त भूलभुलैया से गुजरे हुए अपने जीवन की आखिरी सालों में राजनीतिक धर्म की इस संपूर्ण परिभाषा की देहलीज पर पहुँचे थे। एक बार यहाँ पहुँच कर उनका संपूर्ण संशय, हताशा, ऊहापोह सुबह की धुंध की तरह बिखर गया। यह जयप्रकाश नारायण का साहस और हमारा सौभाग्य था कि इस देहरी के परे उन्होंने संपूर्ण क्रांति का अभियान प्रारंभ किया। जयप्रकाश नारायण शायद पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने भारतीय राजनीति के शिखर पर पाप और दुराचार (ईविल) को पनपते देखा था। ऐसा नहीं कि इंदिरा गांधी से पूर्व भारतीय राजनीति पाप से मुक्त थी, परंतु इंदिरा अपने आचरण और व्यक्तित्व में पाप की सामान्य परिभाषा को अभिव्यक्त करती थीं, जिसका सामना केवल 'संपूर्ण-क्रांति' से ही संभव था।<sup>4</sup>

बिहार के छात्र-आंदोलन से ही संपूर्ण क्रांति का सूत्रपात हुआ। 1974 में व 18 फरवरी को पटना में पटना विश्वविद्यालय छात्रसंघ ने बिहार के सभी छात्रों और छात्र-संगठनों का सम्मेलन आयोजित किया, जिसमें पूरे राज्य के 70 महाविद्यालयों के लगभग 250 प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। उक्त सम्मेलन में यह तय हुआ कि छात्रों की ओर से बारह सूत्रीय माँगें सरकार के समक्ष रखी जाएँ और इन माँगों का पूरा करने के लिए संघर्ष किया जाए बारह सूत्रीय माँगें निम्न थीं।

1. बिहार के प्रत्येक विद्यालय/महाविद्यालय में अनिवार्य सदस्यता प्राप्त प्रत्यक्ष चुनाव वाले छात्रसंघों की स्थापना की जाए।
2. शिक्षा-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन कर इसे अविलंब रोजगारोन्मुख बनाया जाए।
3. राष्ट्रीय बैंकों से शिक्षित बेरोजगारी को डिग्री के आधार पर व्यवसाय करने हेतु कर्ज दिया जाए।
4. शिक्षित बेरोजगारों को काम दिया जाए, अन्यथा बेरोजगारी भत्ता दिया जाए।
5. महँगाई पर तुरंत रोक लगाई जाए। मुनाफाखोरों, जमाखोरों को सरकार पकड़े तथा विद्यार्थियों को कम मूल्य पर राशन, किताब एवं अन्य स्टेशनरी के सामान की व्यवस्था करें।
6. छात्रावास की व्यवस्था बिहार के प्रत्येक महाविद्यालय में की जाए।
7. छात्रवृत्ति की राशि का सूचकांक के आधार पर पुनः मूल्यांकन किया जाय तथा छात्रवृत्तियों की संख्या भी बढ़ाई जाए।
8. विश्वविद्यालय की नीति-निर्धारण समितियों, सीनेट, सिण्डिकेट तथा एकेडेमिक

कौंसिल में छात्रों को प्रभावी प्रतिनिधित्व दिया जाए।

9. मेडिकल प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वालों के लिए अंकों की अनविर्यता समाप्त की जाए।

10. आयुर्वेदिक स्नातकों को बिहार में आधुनिक चिकित्सकों जैसे अधिकार एवं सुविधाओं के साथ ही सरकारी अस्पतालों में आयुर्वेद विभाग की स्थापना की जाए।

11. होमियोपैथी शिक्षा के स्नातकों को भी आधुनिक चिकित्सकों जैसी सुविधाएँ प्रदान हों तथा होमियोपैथी शिक्षा का समुचित विकास कर छात्रों की समस्याओं का निवारण किया जाए।

12. गिरफ्तार किए गए सभी छात्रों, नौजवानों एवं नागरिकों को बिना शर्त रिहा किया जाए एवं उन पर चलाए जा रहे सभी मुकदमें वापस लिए जाएँ।

बिहार में हुए इस सम्मेलन के बाद छात्र दो वर्गों में बँट गए। गैर-साम्यवादी छात्र-संगठनों ने बिहार प्रदेश छात्र-संघर्ष समिति के गठन की उद्घोषणा की। वामपंथियों ने बिहार राज्य छात्र नौजवान मोर्चा का गठन किया। इस प्रकार दोनों छात्र गुटों ने अलग-अलग कार्य करना प्रारंभ कर दिया। बिहार प्रदेश छात्र-संघर्ष समिति ने फैसला किया कि वह इशतहारों, पैफलेटों और नुक्कड़ सभाओं के द्वारा लोगों को अपनी माँगों से अवगत कराएगा। आंदोलन का नेतृत्व करने के लिए एक बारह सदस्यीय समिति गठित की गई। बाद में कुछ लोग उसमें शामिल हो गए। बिहार छात्र संघर्ष समिति ने अपनी संयुक्त अपील में मदद करें<sup>5</sup> बिहार प्रदेश छात्र संघर्ष समिति ने विधानसभा का घेराव करने का फैसला किया और 18 मार्च को केवल चार-पाँच सौ की संख्या में विद्यार्थी पटना विश्वविद्यालय से विधानसभा का घेराव करने के उद्देश्य से जुलूस लेकर निकले। उन लोगों ने यह कल्पना नहीं की थी कि इतनी अधिक संख्या में लोग इस जुलूस में शामिल होंगे, किंतु स्टेशन पहुँचते-पहुँचते हजारों विद्यार्थी इस जुलूस में शामिल हो गए जो आरा, बक्सर, गया, भागलपुर आदि स्थानों से आए थे। अपनी बारह सूत्री माँगों के समर्थन में प्रदर्शनकारी छात्रों ने विधानसभा के सामने राज्यपाल के मार्ग में धरना दिया और उन्हें भाषण देने से रोका। इस बीच पुलिस और छात्रों के बीच चार-पाँच घंटे तक झड़प हुई। अंत में तंग आकर पुलिस को आँसू गैस के गोले का सहारा लेना पड़ा, लाठी चार्ज भी किया गया तथा गोलियाँ भी चलानी पड़ीं, जिससे काफ़ी छात्रों की मौके पर ही मृत्यु हो गई। शहर में बड़े स्तर पर हिंसा और आगजनी की घटनाएँ हुईं, होटलों एवं समाचार पत्रों के कार्यालयों पर भी हमले किए गए<sup>6</sup> अभी छात्र अपने-अपने गंतव्य-स्थलों पर पहुँच भी नहीं पाए थे कि शहर में कर्फ्यू लगा दिया गया।

इसी बीच बड़े छात्र-नेताओं ने जयप्रकाश नारायण से मिलकर आंदोलन का नेतृत्व स्वीकार करने का आग्रह किया, परंतु उन्होंने नेतृत्व करना स्वीकार नहीं किया, किंतु एक वक्तव्य के माध्यम से उन्होंने पुलिस फायरिंग की निंदा की। जयप्रकाश नारायण का कथन था कि मुख्यमंत्री श्री अब्दुल गफूर को छात्रों से बात करनी चाहिए थी, जो विकल्प अब भी है। असामाजिक तत्वों द्वारा होटलों और प्रेस कार्यालयों में की गई आगजनी में कई निर्दोष छात्र मारे गए, जो निंदनीय है। वक्तव्य में उन्होंने आगे कहा, 'पहले यह जरूरी है कि सरकार अपने तंत्र को दुरुस्त करे, भ्रष्ट अफसरों तथा मंत्रियों को बर्खास्त करें, प्रशासन को चुस्त बनाए तथा

कालाबाजारियों, जमाखोरों, मुनाफाखोरों से सख्ती से पेश आए, भुखमरी से राहत देने की व्यवस्था करे और छात्रों की समस्या को सहानुभूतिपूर्वक सुने तथा विचार-विमर्श करके इसका समाधान निकाले।' 'सरकार को यह जान लेना चाहिए कि (उसके रवैये से) अभी हर आदमी के दिल में हिंसा की आग सुलगने लगी है।... 'जहाँ तक मेरी बात है, मैं कुशासन, भ्रष्टाचार आदि के प्रति मौन तटस्थ दृष्टा बनकर नहीं रह सकता, चाहे वह दुःस्थितियाँ पटना में हों या दिल्ली में या और कहीं। देश की ऐसी दुर्दशा के लिए कम से कम मैंने स्वतंत्रता की लड़ाई नहीं लड़ी थी।'<sup>7</sup>

पुणे में 31 मार्च को भाषण करते हुए जयप्रकाश नारायण ने कहा कि जनतंत्र इंदिरा के हाथों खतरे में है। सोवियत अधिनायकवाद का आतंक यहाँ भी हो चला है। भुवनेश्वर में 1 अप्रैल को संबोधन करते हुए श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा, 'काँग्रेस वालों पर भ्रष्टाचार के आरोप लगाए जाते हैं। अगर विरोधी पक्ष वाले लोग ऐसा आरोप लगाते हैं तो मैं उन्हें समझ सकती हूँ। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि अब सर्वोदय वाले भी ऐसा आरोप लगाने लगे हैं। धनवालों के साथ स्थाई संबंध रखने वाले और उनकी कृपा-दृष्टि चाहने वाले ऐसे लोग भ्रष्टाचार की बात करने की हिम्मत कैसे करते होंगे?'<sup>8</sup> पुनः 3 अप्रैल को बिहार के सांसदों को संबोधित करते हुए श्रीमती गांधी ने कहा कि कुछ लोगों को एक ऊँचे नैतिक स्तर पर सलाह देते रहने की आदत होती है। हालाँकि वे खुद तो बड़े उद्योगपतियों के वैभवपूर्ण अतिथि भवनों में रहते हैं। उनके यात्रा खर्च और दूसरे खर्च भी ये उद्योगपति ही दिया करते हैं। ऐसा विचार व्यक्त करते हुए श्रीमती इंदिरा गांधी ने किसी भी व्यक्ति-विशेष का नाम नहीं लिया, परंतु जयप्रकाश नारायण यह एक सीधा प्रहार था। समाचार-पत्रों में भी यही प्रकाशित हुआ कि श्रीमती इंदिरा गाँधी ने जयप्रकाश की ओर स्पष्ट इशारा करते हुए ए आरोप लगाए। जयप्रकाश ने 3 अप्रैल को इन आरोपों को नानसेंस कहते हुए कहा कि इंदिरा जी मुखों के संवर्ग में रही हैं। स्वयं द्वारा संपादित पत्रिका 'एवरीमेंस' में जयप्रकाश नारायण ने इसका विस्तृत ब्यौरा दिया कि वे अपना निजी खर्च किस तरह चलाते हैं। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि जिस व्यक्ति के पास आमदनी का कोई स्वतंत्र नहीं होता, ऐसे किसी भी सामाजिक कार्यकर्ता के लिए अपने मित्रों व करीबियों से आजीविका के लिए व्यापक आर्थिक सहायता लेना एक मजबूरी है। वैसे यदि इंदिरा जी का पैमाना माना जाए, तब तो महात्मा गांधी जी सबसे अधिक भ्रष्टाचारी सिद्ध होंगे, क्योंकि उनका संपूर्ण खर्च उनके धनिक प्रशासकों की सहायता से चलता था।

18 मार्च को प्रारंभ हुआ यह छात्र आंदोलन पूर्णतया अव्यवस्थित व अराजक था। प्रशासनिक व राजनीतिक विरोध से उसमें हिंसा का तत्त्व भी प्रवेश कर चुका था। जयप्रकाश नारायण ने एक घोर हिंसा के माहौल को सुविचारित अहिंसक आंदोलन में परिवर्तित करने की दृष्टि से 8 अप्रैल को पटना में एक मौन जुलूस निकालने का निर्णय लिया। जुलूस निकालने से पूर्व पटना की जनता के नाम एक अपील प्रसारित करते हुए जयप्रकाश नारायण ने कहा, 'यह जुलूस मौन इसलिए है कि जनता तथा शासन के सामने यह प्रकट करे कि हमारा आंदोलन पूर्णतया शांतिमय है और हिंसावादियों, तोड़-फोड़, आगजनी आदि करने वालों से अलग है, और इसमें शामिल सभी संगठन व तत्त्व ऐसे कार्यों की निंदा करते हैं और जनता

से मूक प्रार्थना करते हैं कि ऐसे आत्मघाती दुष्कृत्यों से दूर रहें और उनका शांतिपूर्ण मुकाबला करें। जुलूस में एक हज़ार से अधिक लोग नहीं होंगे और जो भी इसमें हिस्सा लेंगे वे शांतिमय संघर्ष और त्याग के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होंगे। इसलिए पटना के नागरिकों से मेरी अपील है कि जुलूस में शामिल होने की कोशिश न करें। सड़कों के दोनों किनारों पर बिना आवागमन सेवा बंद किए शांति से खड़े रहें और स्वयं कोई नारा न लगाए।<sup>9</sup> मौन जुलूस निकालने के लिए सर्वोदय मंडल ने दंडाधिकारी से अनुमति माँगी, किंतु अनुमति नहीं दी गई, परंतु जयप्रकाश नारायण ने कहा कि जब अनुमति नहीं दी तो हम कर्पूर तोड़ेंगे। इस प्रकार यह विशाल मौन जुलूस 8 अप्रैल को निकला, जिसमें छात्रा, शिक्षक, वकील, साहित्यकार, सर्वोदयी कार्यकर्ता एवं अन्य लोग शामिल हुए। सभी लोगों के हाथ पीछे बँधे हुए थे, मुँह पर काली पट्टी लगी थी और गलों में तख़्तीयाँ थीं, जिन पर लिखा था :

हिंसा से अहिंसा की ओर इस आंदोलन को ले जाने में जयप्रकाश के महत्त्व का पता उसे ही चल सकता है, जिसने 18 मार्च 1974 के पटना को देखा था। गांधी मैदान में 9 अप्रैल को एक जनसभा का आयोजन किया गया, जिसमें विद्यार्थियों ने जयप्रकाश नारायण को 'लोकनायक' की उपाधि से विभूषित किया। इसी सभा में जयप्रकाश नारायण ने कहा, 'यह शांतिपूर्ण जन-आंदोलन का प्रारंभ है और आगे हमें सत्याग्रही की भूमिका में काम करना है। मेरा सारा जीवन देश की सेवा में बीता और आज तक मैं सेवा करता रहा हूँ, जब तक भी शरीर में शक्ति है, जब तक गिर नहीं जाऊँगा, सेवा करता ही रहूँगा।'

'एक सरकार जाएगी और दूसरी सरकार आएगी, इतने मात्र से भ्रष्टाचार समाप्त नहीं होगा और न बेकारी दूरी होगी, न ही शिक्षा में कोई बुनियादी परिवर्तन आएगा। ऐसी उथल-पुथल तो 1967 से 1972 तक कई बार हुई। परंतु उससे क्या फ़र्क पड़ा? इसलिए हमें रोगों की जड़ में जाना है। नहीं तो कोल्हू के बैल की तरह इसी व्यवस्था में चक्कर लगाते रहने से जनता को कभी भी राहत नहीं मिलने वाली है। नागनाथ जाएँगे, सापनाथ आएँगे। आज हमारे सामने चुनौती तो यह है कि जनता के असंतोष को और रोष को हम सही दिशा दें। एक जन-आंदोलन उभर रहा है। मैंने अपने बारे में तो सोच लिया है, संकल्प कर लिया है। मैं आपके सामने कार्यक्रम रखूँगा। परंतु यह लंबी यात्रा है। यह किसी मंत्रिमंडल को गिराने का आंदोलन नहीं है, न इसमें मेरी कोई रुचि है।<sup>10</sup> वह मौन जुलूस और यह आम सभा छात्रों के आंदोलन को हिंसक तत्त्वों से बचाने और उसे शांति के तत्त्वों से जोड़ने की दिशा में एक प्रयास था, परंतु बिहार सरकार ने अपना रवैया नहीं बदला। बिहार सरकार तो छात्रों के आंदोलन को कुचल डालना चाहती थी। गया में 2 अप्रैल को छात्रों के प्रदर्शन पर पुलिस ने तीन स्थानों पर गोलियाँ चलाई जिसमें पाँच मरे और 25 घायल हुए, जयप्रकाश नारायण ने तुरंत वहाँ जागकर पाँच प्रतिष्ठित नागरिकों की जाँच समिति का गठन किया, जिसने बाद में रिपोर्ट में पुलिस फायरिंग को अनावश्यक और अनुचित बताया। राज्य सरकार ने भी एक अधिकारी को जाँच के लिए वहाँ भेजा, जिसने एक दिन में ही रिपोर्ट दे दी कि फायरिंग उचित थी। जयप्रकाश नारायण तिलमिला उठे और उन्होंने कहा कि यह सरकार झूठ और हिंसा के सहारे चल रही है, जिसकी एक ही ताकत है पुलिस, फौज और टैंक। जयप्रकाश नारायण ने कहा कि यह सरकार 'एंटी पीपुल' बन गई है, इसलिए अब इस सरकार को जाना चाहिए,

इस तरह बिहार-आंदोलन में विधान-सभा को भंग करने की माँग जुड़ गई।<sup>11</sup> जयप्रकाश नारायण अभी तक छात्रों से यही कहते आ रहे थे कि वे अपने आंदोलन का नेतृत्व स्वयं करें, स्वयं नेता बनें, अपने सारे निर्णय स्वयं करें और उसकी पूरी-पूरी जिम्मेदारी वे लोग ही उठाएँ, लेकिन अब उन्हें लगा कि उनको नेतृत्व स्वीकार करना पड़ेगा। तब 23 अप्रैल को औपचारिक रूप से आंदोलन का नेतृत्व उन्होंने स्वीकार भी किर लिया। इसके संबंध में जयप्रकाश नारायण ने स्वयं कहा, 'तरुणों से' छात्रों से बराबर कहता रहा हूँ जब पहला हमने आह्वान किया था 'यूथ फार डेमोक्रेसी (का) लोकतंत्र में युवकों का क्या रोल है, यह हमने जो बताया था उसमें लिखा था और उसके बाद बराबर कहता रहा हूँ संचालन समिति में बहस करता रहूँ हम बूढ़े हो गए, हमारी सलाह लीजिए। हम दूसरी पीढ़ी के हो गए। आप नई पीढ़ी के लोग हैं, देश की बागडोर एवं भविष्य आपके हाथों में है। आप शक्ति एवं उत्साह से सुदृढ़ है, आपके अंदर जवानी है, आप अपने अंदर के नेता को जगाइए और स्वयं नेता बनिए, ताकि राष्ट्र का कल्याण हो सके। मैं आपको सलाह दूँगा। इस पर छात्रों ने कहा—जयप्रकाश जी मार्गदर्शन से काम नहीं चलेगा, आप को नेतृत्व स्वीकार करना पड़ेगा। मैं आलता रहा, टालता रहा। लेकिन अंत में (बेल्लोर) जाते समय 12 उनके आग्रह को स्वीकार किया।<sup>13</sup>

जय प्रकाश ने नेतृत्व स्वीकार करने से पूर्व दो शर्तें रखी पहली शर्त यह थी कि आंदोलन पूरी तरह से शांतिपूर्ण होगा, किसी भी परिस्थिति में आवेश में आकर हिंसा का आश्रय नहीं लेना है और दूसरी शर्त यह थी कि सभी उनके नेतृत्व को मानेंगे। जयप्रकाश नारायण ने कहा, 'केवल नाम मात्र के लिए मुझे नेता नहीं बनना है। मुझे समाने खड़ा करके और कोई पीछे डिक्लेट करे कि यह करना है तुम्हें, तो इस नेतृत्व को मैं आज ही छोड़ देना चाहूँगा। मैं सबकी सलाह लूँगा, उसकी बात सुनूँगा, जितना भी ज़्यादा होगा, जितना भी समय मेरे पास होगा, सबसे बहस करूँगा, बात समझूँगा, लेकिन फैसला मेरा होगा और इस फैसले को आपको मानना होगा। तब तो इस नेतृत्व को कोई मतलब है। छात्र भी कोई ऐसी बात करें जो मेरे गले न उतरे, मेरे विचारों से जिसका मेल न हो, तो मैं उन्हें कह दूँगा कि इस विषय में मैं आपके साथ नहीं रह सकूँगा।'<sup>14</sup>

बेल्लोर की यात्रा करते समय जयप्रकाश नारायण ने सर्वोदय के अपने चार<sup>15</sup> वरिष्ठ सहयोगियों को आंदोलन का नेतृत्व सौंप दिया। उन्होंने आंदोलन का पाँच सप्ताह का विशेष विस्तृत कार्यक्रम भी अपने उन सहयोगियों को दिया, जिसमें प्रत्येक सप्ताह अलग-अलग कार्यों के लिए निर्धारित किया गया था, जो निम्न प्रकार से था—

1. जनजागरण-सप्ताह, 2. संगठन-सप्ताह, 3. विधानसभा भंग करो सप्ताह, 4. मितव्ययिता सप्ताह और 5. शिक्षा में क्रांति एवं बेरोजगारी।

मद्रास व कलकत्ता होते हुए जयप्रकाश नारायण 2 जून को वापस पटना पहुँचे। इस दौरान उनके अनुसार बिहार में आंदोलन अपनी जड़ें फैला चुका था। आंदोलनकारियों ने मुनाफ़ाखोरी, जमाखोरी एवं कालाबाजारी के खिलाफ़ अलग-अलग स्थानों पर कार्यवाही की। कई जगहों पर आंदोलनकारियों ने व्यापारियों को जीवनोपयोगी वस्तुओं को निश्चित मूल्य पर बेचते हेतु मजबूर भी किया। जनता छापों की कार्यवाही में काफ़ी संख्या में जाली व फ़र्जी राशन कार्ड पकड़े गए। कई स्थानों पर भारी संख्या में छात्रों का जत्थेवार अनशन चलता रहा।



विधानसभा भंग के लिए हस्ताक्षर-अभियान भी चलाया गया। परिणामस्वरूप महामाया प्रसाद सिन्हा ने 22 अप्रैल को विधानसभा से अपना त्यागपत्र दे दिया। जनसंघ के भी 9 विधायकों ने 8 मई को अपना इस्तीफा दे दिया जो विधानसभा अध्यक्ष द्वारा स्वीकार कर लिया गया। राज्य के गैर सरकारी माध्यमिक स्कूलों के लगभग 38 हजार शिक्षकों एवं कर्मचारियों ने 24 अप्रैल से राज्यव्यापी हड़ताल शुरू कर दी। देशव्यापी रेल हड़ताल भी 7 मई से प्रारंभ हो गई थी। इस प्रकार स्थिति काफी अनियंत्रित व विस्फोटक होती चली जा रही थी। आगे बढ़ी संख्या में गिरफ्तारियाँ हुईं। कई बड़े नेताओं व आंदोलनकारियों को भी गिरफ्तार किया गया। जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में एक ऐतिहासिक जुलूस 5 जून, 1974 को विधानसभा के विघटन की माँग को लेकर निकाला गया, जिसमें सबसे आगे टुक था, विघटन के पक्ष में लाखों लोगों के हस्ताक्षर वाले पत्र पड़े थे। उसके पीछे जयप्रकाश नारायण की जीप थी और उसके पीछे काफी लंबा (लगभग 5-6 किमी लंबा) जुलूस था। इस जुलूस के दौरान जयप्रकाश नारायण व छात्र नेताओं ने माननीय राज्यपाल महोदय को एक ज्ञापन दिया। राजभवन से वापस लौटते समय इंदिरा गांधी बिग्रेड के कार्यकर्ताओं ने जुलूस पर गोलियाँ चलाई, जिससे कई लोग घायल हो गए। इस दुस्साहसिक घटना के तुरंत बाद जिला प्रशासन की ओर से वहाँ छापा मारा गया और छह लोगों को हथियारों के साथ रंगे हाथ पकड़ा गया। सायंकाल गांधी मैदान में एक विशाल जनसभा को संबोधित करते हुए पहली बार जयप्रकाश नारायण ने संपूर्ण क्रांति शब्द का प्रयोग किया। संबोधन करते हुए उन्होंने कहा—‘यह छात्र-आंदोलन संघर्ष समिति की मात्र 10-12 माँगों की पूर्ति के लिए ही नहीं, यह संपूर्ण क्रांति की शुरुआत है।’<sup>16</sup> व्याख्या करते हुए जयप्रकाश नारायण ने कहा कि संपूर्ण क्रांति उस युग की पुकार है, जो समता, स्वतंत्रता और भातृत्व के आधार पर नवीन समाज व नवीन मानव के निर्माण का आह्वान करती है। उसके उद्देश्य दूरगामी हो सकते हैं। यह भारतीय लोकतंत्र को वास्तविक बनाना चाहती है, यह जनता का सच्चा राज स्थापित करना चाहती है, यह एक नैतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक क्रांति कर नवीन भारत का निर्माण करना चाहती है। संपूर्ण क्रांति कोई गद्दी छीनने की, सत्ता हथियाने की लड़ाई नहीं है, बल्कि व्यवस्था-परिवर्तन, प्रक्रिया-परिवर्तन और नव-निर्माण की बात है। यह संपूर्ण क्रांति समस्त जनता की क्रांति है। उनका मोर्चा कवेल राजधानियों में नहीं है, बल्कि हर गाँव और शहर में है, हर कार्यालय, विद्यालय और कारखाने में है, यहाँ तक कि हर परिवार में है। इन सब मोर्चों पर संपूर्ण क्रांति की लड़ाई हमें लड़नी है। जहाँ-जहाँ लोग समूह में रहते और काम करते हैं तथा जहाँ लोगों के परस्पर संबंध आते हैं, ऐसी सब जगह लड़ाई का मोर्चा है और यह मोर्चा हर व्यक्ति के अपने अंदर भी है। क्योंकि अपने पुराने और ग्लत संस्कारों से भी हमें लड़ना है। यही हमारी संपूर्ण क्रांति है। हम नया समाज बनाना चाहते हैं, इसलिए हम सरकार और समाज, शिक्षा और चुनाव, बाजार और विकास की योजना हर चीज में परिवर्तन चाहते हैं। बेकारी, मँहगाई आदि सभी समस्याओं का समाधान भी तब तक नहीं हो सकेगा, जब तक कि तिलक-दहेज, छुआछूत, ऊँच-नीच के भेदभाव दूर नहीं होते और जब तक हम अच्छी तरह नहीं समझ लेते कि खुदगर्जी के स्थान पर पारस्परिक मदद और सहयोग से ही हम सब ऊँचे उठ सकते हैं। तब तक न सामाजिक न्याय हासिल हो सकेगा, न भ्रष्टाचार मिट सकेगा। शिक्षा में क्रांति के

उद्देश्य भी तब तक पूरे नहीं हो सकेंगे। ये सब सवाल आज की व्यवस्था के साथ और एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। इन सबमें परिवर्तन लाए बिना संपूर्ण क्रांति कदापि नहीं होने वाली है।<sup>17</sup>

जयप्रकाश नारायण के अनुसार इस संपूर्ण एवं समग्र क्रांति का संचालन करने वाली सरकार नहीं, बल्कि जनता है। आज तक शासन के द्वारा कहीं भी विश्व में इस प्रकार की समग्र क्रांति न हुई है, न ही होगी। महात्मा गाँधी का हमेशा यही स्वप्न रहा कि लोकशक्ति जाग्रत हो, क्योंकि जाग्रत लोकशक्ति के माध्यम से ही सामाजिक नवनिर्माण का कार्य संपादित किया जा सकता है। इस नवनिर्माण को बलपूर्वक समाज पर थोपा नहीं जा सकता, वह तो समाज द्वारा स्वतः उत्पन्न होता है, और यदि ऐसा है तो यही लोकशक्ति नवनिर्माण का कार्य पूर्ण करने की क्षमता रखती है। महात्मा गाँधी जी की तरह जयप्रकाश नारायण का भी मानना था कि एक अच्छे चरित्रवाले समाज के समता व बंधुत्व बुनियादी तत्व है। अतः एक उत्कृष्ट समाज की संरचना में इन तत्वों का होना अपरिहार्य है और यदि ये तत्व विद्यमान न हो तो उन्हें शिक्षा अथवा सत्याग्रह के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। यह कार्य राज्यसत्ता का नहीं, और न इस क्रांति के संपादन के लिए ही राज्यसत्ता को हथियाना आवश्यक है। इसके लिए लोकजागृति और लोकनीति की आवश्यकता है। महात्मा गाँधी ने उन प्रभावशाली जनशक्ति की रूपरेखा की नींव रखी जो समाज में कमजोर लोगों के हित के लिए कार्य करें तथा सामाजिक कल्याण के लिए राजसत्ता पर सार्थक तरीके से दबाव डाल सके तथा जिसके नियंत्रण में राजसत्ता अपनी शक्तियों का कमजोर लोगों द्वारा दुरुपयोग न कर सके। महात्मा गाँधी के इन्हीं विचारों का अनुसरण करते हुए जयप्रकाश नारायण ने कहा, 'बापू के स्वतंत्रता-संग्राम का मैं एक सिपाही रहा हूँ और उन्हीं से यह सीखा हूँ क्रांति सरकारी शक्ति से नहीं, जनशक्ति से होगी।'<sup>18</sup>

प्रजातंत्र से भय खाने वाले सत्ताधारी प्रहरियों से जयप्रकाश नारायण ने कहा 'आप जनता से घबराते हैं? जनता के आप प्रतिनिधि है किसकी तरफ से शासन करने बैठें हैं? आपकी यह हिम्मत कि लोगों को पटना आने से रोक ले? उनकी राजधानी है। आप की राजधानी है। यह पुलिस वालों का देश है या जनता का देश है। अगर कोई डेमोक्रेसी का दुश्मन है तो वह लोगों का दुश्मन है। जो जनता के शांति कार्यक्रमों में बाधा डालते हैं, उनकी गिरफ्तारी करते हैं, उनपर लाठियाँ भँजते हैं, गोलियाँ चलाते हैं।'<sup>19</sup> उन्होंने संपूर्ण क्रांति का आह्वान करते हुए कहा— 'यह क्रांति है मित्रो! और संपूर्ण क्रांति है। यह कोई विधान सभा के विघटन का आंदोलन नहीं है, वह तो एक मंजिल है, जो रास्ते में है। दूर जाना है, दूर जाना है।'

'अभी न जाने कितने मीलों इस देश की जनता को जाना है, उस स्वराज्य को प्राप्त करने के लिए जिसके लिए देश के हज़ारों-लाखों जवानों ने कुरबानियाँ की हैं, लेकिन आज 27-28 वर्षों के बाद का जो स्वराज्य है, उसमें जनता कराह रही है। भूख है, मँहगाई है, भ्रष्टाचार है। कोई काम नहीं निकलता है, जनता का बतौर रिश्वत दिए।'<sup>20</sup> आगे जयप्रकाश नारायण ने कहा कि इस जुलूस में बिहार के भिन्न-भिन्न हिस्से से आ रहे लोगों और छात्रों को पुलिस ने जहाँ तक रोका है, बिना कारण उनको पीटा है और गिरफ्तार किया है और जो

लोग जनता से घबड़ाते हैं, वे जनता के प्रतिनिधि नहीं हो सकते। उन्होंने माँग की कि यदि इस सरकार ने विधानसभा की संपत्ति से यह सब किया है, तो विधानसभा का विघटन होना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि विधानसभा की संपत्ति से सरकार चल रही है। अगर ऐसा नहीं है तो 18 मार्च से इस सरकार ने जो भी काम किया है, काँग्रेस पार्टी उनकी निंदा करे और दूसरा मंत्रिमंडल बनाने की घोषणा करे। जयप्रकाश नारायण ने चुनाव-पद्धति में सुधार तथा दलविहीन लोकतंत्र की स्थापना पर बल देते हुए स्पष्ट किया कि झगड़ा किसी व्यक्ति से नहीं, अपितु नीतियों से है।<sup>21</sup> जयप्रकाश नारायण ने जनता का आह्वान किया कि विधानसभा के सामने सत्याग्रह करें, विधायकों के निवासस्थानों का घेराव करें। जहाँ तक संभव हो, जनता की कोई हानि इस कार्यक्रम से न हो, और सरकार के प्रति असहयोग उजागर कर इसे ठप कर दें।<sup>22</sup>

### संदर्भ

1. डॉ॰ अमरनाथ सिन्हा, जयप्रकाश आंदोलन की पृष्ठभूमि, पृ॰ 85
2. सुधांशु रंजन, जयप्रकाश नारायण, बुक ट्रस्ट इंडिया नई दिल्ली, पृ॰ 155
3. गुजरात के आंदोलन पर नवयुवकों के आह्वान पर तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री चिमनभाई पटेल को पदच्युत होना पड़ा था।
4. निर्मल वर्मा, संपूर्ण पार के विरुद्ध सहारा समय, 11 अक्टूबर 2003 पृ॰ 181
5. लालूप्रसाद, सुशीलकुमार मोदी, रामजतन सिन्हा, नरेंद्रसिंह आदि।
6. पटना का प्रदीप सर्चलाइट प्रेस पूरी तरह जल गया था।
7. डॉ॰ अमरनाथ सिन्हा, जयप्रकाश आंदोलन की पृष्ठभूमि (ज्योत्स्ना) पृ॰ 87
8. नारायण एवं कांतिशाह देसाई, वही पृ॰ 455
9. जयप्रकाश नारायण, मेरी विचार-यात्रा, भाग दा, पृ॰ 19-20
10. जयप्रकाश नारायण, मेरी विचार-यात्रा, भाग-दो, पृ॰ 20
11. जयप्रकाश नारायण, मेरी विचार-यात्रा, भाग-दो, पृ॰ 21
12. जयप्रकाश नारायण की प्रोस्टेट की तकलीफ़ बढ़ गई थी और उन्हें बेल्लोर जाकर इसका आपरेशन कराना था।
13. जयप्रकाश नारायण, संपूर्ण क्रांति के लिए आह्वान, सर्वसेवा संघ, गजघाट वाराणसी, पृ॰ 9
14. जयप्रकाश नारायण, मेरी विचार-यात्रा, भाग दो पृ॰ 24
15. आचार्य राममूर्ति, नारायण देसाई, मनमोहन चौधरी एवं त्रिपुरारी शरण।
16. जयप्रकाश नारायण, संपूर्ण क्रांति, सर्वसेवामंच प्रकाशन, राजघाट वाराणसी पृ॰ 5
17. उपर्युक्त पृ॰ 6
18. जयप्रकाश नारायण, संपूर्ण क्रांति, वाराणसी पृ॰ 7
19. जयप्रकाश नारायण, संपूर्ण क्रांति के लिए आह्वान, पृ॰ 6
20. उपर्युक्त पृ॰ 6
21. जयप्रकाशनारायण, मेरी विचार यात्रा, भाग-दो पृ॰ 23

## जयप्रकाश नारायण के सामाजिक विचार

डॉ० अशोककुमार सिंह, शोध निदेशक

रीडर, इतिहास विभाग, पी०जी० कालेज, गाजीपुर

आलोकसिंह शोध छात्र,

इतिहास विभाग पी०जी० कालेज गाजीपुर

1933 में बनारस में कमलापति त्रिपाठी, त्रपद भट्टाचार्या और संपूर्णानंद ने समाजवादी दल का संगठन किया। केरल और दिल्ली में भी इस तरह के दल का रूप देखने को मिला। संपूर्ण देश में समाजवादी विचार का संगठन इस बात का द्योतक था कि राष्ट्रवादी काँग्रेस के अंतर्गत काँग्रेस के कार्यक्रमों में तीव्रता तथा नवीनता लाने का भाव प्रबल हो चुका था। जहाँ तक आर्थिक परिप्रेक्ष्य में वर्गचेतना फैलाने का प्रश्न था, वहाँ समाजवादी दल के रूप में एक समूह साम्यवादियों के साथ बनाया जा सकता था, किंतु समस्या यह थी कि यह नया दबाव समूह राष्ट्रीय परिवेश में एक भिन्न..... का प्रयोग करना था। काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के विचारकों की यह राय थी कि राष्ट्रवाद के साथ ही सामाजिक क्रांति भी की जा सकती है। समाजवादी यह भी अनुभव कर रहे थे कि निम्न मध्यमवर्ग चेतना फैलाने के लिए भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस में रहना आवश्यक है। काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के विचारक अपने को मुख्य राष्ट्रीय धारा से अलग नहीं करना चाहते थे। हिंदुस्तान में समाजवाद 1934 तक कोई नई बात नहीं रह गई थी जयप्रकाश के सामने उसका पिछले एक युग का इतिहास भी था, जिसकी छानबीन के बाद ही कोई नई समाजवादी पार्टी बनाई जा सकती थी।<sup>1</sup> 1920 में मानवेंद्रनाथ राय ने इंडियन कम्युनिस्ट पार्टी की आधारशिला रखी थी तथा 1925 में साम्यवादी पार्टी ऑफ इंडिया की स्थापना हुई थी। 1921 के असहयोग आंदोलन के समय कुछ हिंदुस्तानी नवयुवक रूस की ओर गए थे, जिनमें श्री शिवनाथ बनर्जी और शौकत उस्मानी प्रमुख थे। कोमिन्टर्न की ओर से इन नवयुवकों को समाजवादी विचारधारा में दीक्षित और शिक्षित करने का प्रयत्न हुआ और वे अपने देश में आकर भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में समाजवादी विचारों का प्रचार एवं मजदूरों का संगठन करने लगे।<sup>2</sup> 1925 से 1928 के लगभग बंगाल, बंबई, पंजाब उत्तरप्रदेश में अनेक किसान-मजदूर पार्टियाँ इस नए दल में शामिल हुईं। 1927 में जब मेरठ षडयंत्र केस हुआ तो लोगों को यह आभास हुआ कि हिंदुस्तान में समाजवाद शुरू हो रहा था। उसी समय रूस में कोमिन्टर्न में आपस में झगड़े चल रहे थे। लेनिन की मृत्यु के बाद रूस का समाजवाद दो टुकड़ों में विभक्त हो गया था, एक का नेता स्टालिन था और दूसरे का नेता ट्रैवेल्की था। रूस पर स्टालिन का अन्ततः प्रभुत्व था।

श्री एम०एन० राय पहले कोमिन्टर्न में पूर्वी देशों के प्रभारी के रूप में थे। चीन की

क्रांति में उनकी अदूरदर्शिता के चलते हानि हो चुकी थी। चीन में समाजवाद बदनाम हो चुका था। स्टालिन के इस झगड़े के कारण उन्हें भी कोमिन्टर्न से हटाया गया। तदुपरांत राय भारत आए और राय ग्रुप के नाम से एक समाजवादी दल संगठित करने की चेष्टा की परंतु उनको गिरफ्तार कर लिया गया। इस समय तक जवाहरलाल नेहरू जैसे देशभक्त समाजवाद का खुलेआम प्रचार करने लगे थे। द्वितीय असहयोग आंदोलन की 1931 में समाप्ति और जनवरी 1932 में विरोध की शुरुआत की अवधि के बीच कुछ कांग्रेसी जो समाजवादी विचारधारा के थे, समाजवादी दल के संगठन की पहल किए। जयप्रकाश नारायण, बी०पी० वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, राहुल सांकृत्यायन, अब्दुल बारी, ए०जी० सिन्हा, गंगाशरण सिन्हा इत्यादि ने सितंबर 1931 में बिहार में एक समाजवादी पार्टी की स्थापना की। यह भारत का प्रथम संगठन था, जो समाजवादी विचार के आधार पर कांग्रेस के अंदर संगठित किया गया। 1931 में सुभाषचंद्र बोस तथा जवाहरलाल के नेतृत्व में 'आल इंडिया फार इंडिया लीग' की स्थापना की गई। जिसका लक्ष्य सामाजिक राजनीतिक तथा आर्थिक आजादी हासिल करना था। यह समय नेहरू की तरुणामयी का था। अतः उन्होंने इलाहाबाद फूलपुर, टांडा तथा अन्य क्षेत्रों के किसान-आंदोलन का नेतृत्व भी किया। यह बात अलग है कि इसके बाद उन्होंने किसानों की ओर ध्यान नहीं दिया। आर्यसमाजी स्वामी सहजानंद सरस्वती ने बिहार तथा उत्तर प्रदेश के किसानों में घूम-घूमकर इसका प्रचार किया। 1930 में किसानसभाओं की स्थापना की। इसी के फलस्वरूप सितंबर 1931 में बिहार में सोशलिस्ट पार्टी का प्रसार हुआ।<sup>3</sup> यह एक ऐसा अद्भुत संयोग था कि जिन दिनों भारतीय राष्ट्रवादियों में समाजवादी एवं साम्यवादी विचारधारा आड़ोलित हो रही थी उन्हीं दिनों इस विचारधारा के कुछ प्रमुख प्रणेताओं को नासिक सेन्ट्रल जेल में विचार-विमर्श करने का अवसर प्राप्त हुआ। इस वातावरण को गति देने की दृष्टि से जयप्रकाश नारायण जो उन दिनों नासिक सेन्ट्रल जेल में जिन प्रमुख नेताओं को कांग्रेस के अन्तर्गत समाजवादी दल के संगठन का निर्णय लिया, उनमें जयप्रकाश के अतिरिक्त एम०आर० मसानी, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, एन०जी० गोरे एस०एम० जोशी तथा एम०एल० दाँतेवाला प्रमुख थे।<sup>4</sup> इसी तरह अन्य जेलों में आचार्य नरेंद्रदेव, डॉ० राममनोहर लोहिया, डॉ० संपूर्णानंद, मेहरअली, पुरुषोत्तम टिकमदास, नानासाहब गोरे, गंगाशरण सिंह, नवकृष्ण चौधरी, फरीदुल अंसारी, दामोदरस्वरूप सेठ, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, के०के० मेनन, सुरेंद्रनाथ द्विवेदी, मुंशी अहमद दीन तथा शिवनाथ बनर्जी आदि लोग इतिहास, राजनीति, धर्मपुराण, ज्योतिष और दर्शन में व्यापक मानवीय सत्य को तलाशने लगे, भारतीय मध्यम वर्ग में पहली क्रांतिकारी चेतना का इस रूप में उदय होने लगा। कांग्रेस के अंदर एक क्रांतिकारी चेतना सविनय अवज्ञा से आगे बढ़कर व्यापकता और गहराई में कार्य करने लगी। यहीं से भारतीय समाजवादी आंदोलन का आरंभ हुआ। जयप्रकाश के मानसतल पर स्वभावतः एक छाप रेखांकित हो चुकी थी कि आजाद देश की राष्ट्रीयता पूँजीवादी प्रसार का भले ही बन जाए, परंतु गुलाम देश की राष्ट्रीयता एक क्रांतिकारी शक्ति होती है। इस क्रांतिकारी शक्ति से दूर रहकर समाजवाद को एक कदम भी आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। हमारी कांग्रेस इसी क्रांतिकारी शक्ति का संगठित रूप है। इसलिए यह क्रांतिकारी संस्था है और इस क्रांतिकारी संस्था से संपर्क रखकर ही भारतीय समाजवाद जनता के निकट तुरंत पहुंच सकता है।<sup>5</sup> समाजवाद के साथ राष्ट्रीयता के इस

गठबंधन को साम्यवादियों ने इस तरह तिरस्कृत किया था कि जहाँ बिहार के सदस्यों ने पार्टी में शामिल होने के लिए कांग्रेस की सदस्यता को ही काफ़ी समझा था, वहीं जयप्रकाश नारायण ने पार्टी के नाम के साथ कांग्रेस का नाम जोड़ना भी आवश्यक समझा, जिससे कांग्रेस का महत्व हमेशा उनके सामने रह सके। यद्यपि कांग्रेस सोशलिस्ट के नाम को लेकर स्टालिन के भारतीय प्रतिनिधियों ने अप्रसन्नता व्यक्त की, किंतु बाद में वे स्वयं इस दल में शामिल हुए और निकाले भी गए थे।

जयप्रकाश जेल में ही समाजवादी विचारकों के साथ नियमित क्लास भी लगाया करते थे। अन्ततः विचार-विमर्श के उपरांत चार प्रमुख प्रश्न उभरकर सामने आए—<sup>6</sup>

1. गांधी के नेतृत्व के प्रति असंतोष,
2. सविनय अवज्ञा की असफलता,
3. वर्ग-विश्लेषण की पद्धति लागू करने की इच्छा,
4. कृषक मजदूर से जुड़ जाने की आकांक्षा।

जयप्रकाश के राजनीतिक जीवन का अभिध्येय सामाजिक न्याय के आधारशिला पर समाज की संरचना रहा है। उन्होंने सामाजिक न्याय के दोनों पक्षों स्वतंत्रता और समानता का अध्ययन किया, परंतु यह विदेशी शासन से मुक्ति और सामाजिक व्यवस्था की पुनर्रचना द्वारा ही संभव था। समाजवादी समाज में जयप्रकाश को जीवन की सफलता प्रतीत हो रही थी।

जेल से मुक्त होने पर जयप्रकाश ने अन्य सहयोगियों के साथ सक्रिय रूप से कार्य करना प्रारंभ कर दिया और मीनू मसानी के साथ नेहरू से मिलकर सहयोग के लिए निवेदन किया। नेहरू ने काँग्रेस के अंतर्गत इस दल के संगठन का स्वागत किया और सहयोग के लिए भी आश्वासन दिया, किंतु सदस्यता से इन्कार किया। काँग्रेस समाजवादी पार्टी पिछले दोनों राष्ट्रीय युद्धों का परिणाम था, अंतिम सत्याग्रह आंदोलन के बाद समाजवादियों को यह महसूस हुआ कि राष्ट्रीय आंदोलन को नए तरीके से निश्चित करने तथा परिवर्तन करने की आवश्यकता है। यह स्वभावतः वही काँग्रेसजन थे, जिन पर मार्क्स द्वारा परिवर्तित समाजवाद का प्रभाव पड़ चुका था। अतः स्वाभाविक था कि ये लोग समाजवादी कहलाते और काँग्रेस शब्द इस संस्था और राष्ट्रीय आंदोलन के अतीत वर्तमान और भविष्य के अविच्छेदित संबंध को प्रकट करता है। समाजवादी विचारधारा के इस संगठन को शीघ्र ही दो-तीन महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार करना पड़ा। सर्वप्रथम वे साम्यवादी दल को साथ लेकर चले कि उसको अपने संगठन के साथ जोड़ लें। इस विषय पर साम्यवादियों के साथ मिलकर कार्य करेंगे, किंतु उनका संगठन खुले तौर पर वैध रूप से कार्य करेगा।<sup>7</sup> उनके सामने दूसरी समस्या थी कि वे काँग्रेस को एक बुजुर्वा संगठन मानते थे। अतः अनेक सदस्य इस समाजवादी दल को काँग्रेस से अलग करने के पक्ष में थे। किंतु विचार-विमर्श के पश्चात जयप्रकाश नारायण, नरेंद्र देव इत्यादि ने इसे काँग्रेस की शाखा के रूप में संगठित करने का निश्चय किया तथा इसे काँग्रेस समाजवादी दल के नाम से स्थापित किया गया।

जयप्रकाश नारायण भारतीय साम्यवादियों से पूर्णतया संतुष्ट नहीं थे तथापि समाजवादी कार्यक्रम चलाने हेतु साम्यवादियों से उन्हें गठबंधन करना पड़ा। जयप्रकाश ने अपने घनिष्ठ मित्रों पर प्रभाव डालकर उन्हें अपने को मार्क्सवादी लेनिनवादी मानने के लिए राजी कर लिया

था, इसलिए बराबर विचार-विनिमय करते रहते कि उनका भारतीय साम्यवादियों से क्या संबंध होगा। अशोक मेहता ने दावा किया था कि उन्होंने अपने को लेनिनवादी कभी नहीं माना। गांधी जी का यह विश्वास था कि वह धनवानों को यह बात समझाकर अपनी सामाजिक क्रांति का समर्थन करने के लिए राजी कर लेंगे। इसलिए गांधी जी का कहना था कि यह ज़रूरी नहीं है कि धनवानों के विशेषाधिकार को राज्य उनसे छीन ले। गांधी जी का यह मत जयप्रकाश और उनके समर्थन एक राय से अस्वीकार करते थे। इन लोगों को लगता था कि काँग्रेस के पुराने नेताओं में से किसी का भी दृष्टिकोण आधुनिक नहीं है, लेकिन काँग्रेस के प्रति इनकी वफ़ादारी के विषय में ज़रा भी संदेह नहीं हो सकता था। ये लोग मानते थे कि काँग्रेस ही एकमात्र ऐसा संगठन है, जो राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत है। जयप्रकाश नारायण यह सोचते थे कि सोशलिज़्म के संबंध में प्रचलित सिद्धांतों में एक मार्क्सवाद ही ऐसा है जिसे स्वीकार किया जा सकता है, उनको ब्रिटिश मजदूर पार्टी की संवैधानिक कार्यनीति तथा राष्ट्रपति रुजवेल्ट के न्यूडील कार्यक्रम की सफलता पर जितना कम भरोसा था उतना ही कम विश्वास गांधी जी के ट्रस्टीशिप सिद्धांत पर था।

नारायण मानते थे कि केवल सोवियत संघ में सोशलिज़्म की रचना सफलतापूर्वक हो रही है और अगर रूस अपने जाहिल कट्टर तंग-नज़र खुदगर्ज किसानों को लेकर खेती का सामूहीकरण कर सकता है तो भारत भी ऐसा कर सकता है। उत्पादन वितरण तथा विनिमय के साधनों की सरकारी सम्पत्ति के विषय में रूसी प्रयोग का भारत भी अनुकरण करें। जयप्रकाश का कहना था कि भारत को धीरे-धीरे ऐसा करना चाहिए। दबाव के बजाय भारत में प्रोत्साहन व प्रोन्नति की नीति से काम लेना चाहिए चूँकि भारत के पास भूमि अधिक नहीं है अतः ऐसे तरीकों से अधिक काम लेना होगा, जिसमें अधिक आदमी भाग ले सकें।

ऐसी परिस्थिति में भारतीय साम्यवादी दल में सम्मिलित होना तर्कसंगत और लाभदायक भी प्रतीत होता था। लेकिन 1934 में भारत में साम्यवादी पार्टी के सदस्यों की संख्या बीस से अधिक नहीं थी और इनमें से अधिकतर जेलों में बंद थे या मेरठ में राजद्रोह के अपराध में सजा पा चुके थे। फिर भी थोड़े साम्यवादी ऐसे अवश्य थे, जो कारागार से मुक्त थे और साम्यवादी कार्यक्रम चला रहे थे। जब 1929 में सरकार ने भारत में साम्यवादियों की सरगमियों को रोकने के लिए क़दम उठाए तो केवल 32 लोगों पर मुकदमा चलाया जा सका, जिनमें एस० ए० डांगे, शौकत उस्मानी, मुजफ्फर अहमद, अवनीदास गुप्त तथा तीन इंग्लैंड से आए मजदूर कार्यकर्ता भी शामिल थे।<sup>8</sup>

नासिक जेल से छूटने के बाद जयप्रकाश अभियुक्तों की अपील में सहायता करने लगे, क्योंकि विश्वास था कि मुकदमे में इन्साफ़ नहीं हुआ है और इस पर उन्हें शिकायत भी थी। अन्ततः उनके विचार सही सिद्ध हुए और अभियुक्तों की सजाओं को कम कर दिया गया, क्योंकि पहले काले पानी की सजा हुई थी। जयप्रकाश के मार्क्सवादी-लेनिनवादी मित्रों की इच्छा थी कि वे इस महान देश से ग़रीबी, अन्याय, गंदगी, आलस्य तथा अज्ञान को मिटा दें। लेकिन छोटी-सी साम्यवादी पार्टी की राजनीति अंतरराष्ट्रीय साम्यवादी संघ की नीतियों का अनुकरण करना था। जयप्रकाश नारायण ने जब गहराई से अध्ययन किया तो उन्हें लगा कि भारत की साम्यवादी पार्टी रूस की कठपुतली है, मास्को से ही उसके सूत्र का संचालन होता

है और वहीं के इशारे पर ये लोग नाचते हैं। साम्यवादियों का रास्ता बहुत पेचीदा था और जयप्रकाश सीधी-सादी आज़ादी के दीवाने थे। आगे चलकर 1934 के बाद से साम्यवादी दल ने काँग्रेस के स्वतंत्रता-संग्राम का समर्थन किया, लेकिन 1928 से 1934 तक इस दल ने ऐसा राष्ट्रीय कार्य करने में कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं दिया।

समीक्षात्मक रूप से जयप्रकाश और भारतीय साम्यवादियों के बीच तालमेल पर जब हम चिंतन करते हैं तो ऐसा विदित होता है कि जयप्रकाश का यह प्रयास विफल रहा। वस्तुतः जयप्रकाश ने जिस मार्क्सवाद के सैद्धांतिक स्वरूप को परखा और पहचाना था उसका व्यावहारिक रूप अत्यंत वीभत्स और डरावना था।

भारतीय साम्यवादी दल के साथ तालमेल का अनुभव उसके लिए कटु रहा। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के लिए भारतीय साम्यवादी अपना निर्देश तृतीय साम्यवादी अंतर्राष्ट्रीय (थर्ड कम्युनिस्ट इंटरनेशनल) से प्राप्त करते थे। भारतीय आंदोलन की एक अपनी भूमिका थी और उसका एक अलग उद्देश्य था। फलतः जयप्रकाश के मन में साम्यवादियों के प्रति एक विद्रोह एक विलगाव का भाव भर गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय भारतीय साम्यवादियों ने साम्राज्यवादी शक्तियों के विषय में जिस-जिस तरह साम्यवादी रुख में परिवर्तन किया,<sup>9</sup> उससे जयप्रकाश के वैचारिक चिंतन की धारा ही बदल गई और शनैः शनैः मार्क्सवादी जयप्रकाश गांधी की ओर बढ़ने लगे। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक 18 मई 1934 को पटना में आयोजित हुई। इस अवधि तक कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी एक नए संगठन का रूप ले चुकी थी, अतः इसी अवसर पर कांग्रेस समाजवादी दल वालों ने अपना सम्मेलन भी आयोजित करने का निर्णय लिया। जयप्रकाश नारायण बिहार के समाजवादी दल की ओर से इस सम्मेलन के प्रमुख संगठनकर्ता थे।

काँग्रेस समाजवादी पार्टी का प्रथम अधिवेशन पटना में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में 17 मई 1934 (अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी की बैठक के एक दिन पूर्व) आहूत हुआ, जिसमें बिहार, यू०पी०, केरल, मद्रास, बंगाल इत्यादि से लगभग 100 लोगों ने भाग लिया। स्वागत समिति के अध्यक्ष अब्दुल बारी तथा सम्मेलन के अध्यक्ष आचार्य नरेन्द्रदेव ने स्वराज की समस्या तथा देश में समाजवाद की महत्ता पर क्रमशः प्रकाश डाला। नरेन्द्रदेव ने समाजवादी विचारधारा के लोगों को कांग्रेस के अंतर्गत आर्थिक कार्यक्रमों के लिए आवाज़ उठाने को प्रेरित किया।<sup>10</sup>

इस प्रकार अधिवेशन के प्रतिनिधियों ने काँग्रेस समाजवादी पार्टी के लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए अखिल भारतीय काँग्रेस के कार्यक्रम तथा संविधान का मसविदा तैयार करने हेतु एक समिति गठित की, जिसके अध्यक्ष आचार्य नरेन्द्रदेव तथा जयप्रकाश नारायण सचिव चुने गए। इसके सदस्यों में अब्दुल बारी, एम०आर० मसानी, संपूर्णानंद, सी०सी० बनर्जी, फरीदुल हक इत्यादि शामिल थे।

इस प्रकार काँग्रेस समाजवादी दल के नेताओं ने पटना सम्मेलन के साथ एक अच्छी शुरुआत की। जयप्रकाश नारायण ने पूरे उत्साह के साथ एक प्रांत से दूसरे प्रांत का दौरा करते हुए सर्वत्र काँग्रेस समाजवादी दल के संगठन के लिए स्तुत्य प्रयास किया। उन्होंने जब समाज को यह समझाने का प्रयास किया कि मात्र स्वराज से जनता की समस्याओं का अंत नहीं होगा,



जब तक कि समाज के आर्थिक संगठनों में मूलभूत परिवर्तन नहीं लाया जाता। जयप्रकाश नारायण के अथक् प्रयास का यह परिणाम हुआ कि द्वितीय सम्मेलन के समय तक लगभग सभी प्रांतों में समाजवादी दल का संगठन स्थापित हो चला। आचार्य नरेंद्रदेव काशी विद्यापीठ के प्रिंसिपल के रूप में काफी ख्याति प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने सम्मेलन में पहली बार राजनीतिक और सामाजिक ज्ञान की ऊँचाई का अनुमान लगाया। यह समाजवादी निष्ठा से युक्त कार्यकर्ताओं की पहली बैठक थी। सम्मेलन ने अंतर्राष्ट्रीय स्थिति का निरीक्षण करते हुए फासिज़्म की बढ़ती हुई ताकत और उसके खतरे की ओर इंगित किया। निकट भविष्य में ही एक युद्ध की अनिवार्यता की भविष्यवाणी करते हुए उस युद्ध में अंग्रेज़ी साम्राज्य की सहायता नहीं करने को कहा गया। रूस के समाजवादियों ने नवनिर्माण का अभिनंदन किया। काँग्रेस में विधानवादी प्रवृत्ति की वृद्धि पर चिंता प्रकट की गई और सीधे मोर्चे की लड़ाई को ही स्वतंत्रता-प्राप्ति का एकमात्र रास्ता बताया गया। इसके लिए किसान-मजदूरों के संगठन की आवश्यकता बताया गया। अंत में हिंदुस्तान में एक समाजवादी पार्टी के संगठन की अनिवार्यता स्वीकार करते हुए इसके लिए एक अस्थायी समिति बनाई गई, जिसका प्रधानमंत्री जयप्रकाश को चुना गया।<sup>11</sup>

अध्यक्ष पद से नरेंद्रदेव ने कहा 'साम्राज्य शासित राष्ट्र के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता समाजवाद की पहली मंज़िल है। मध्यवर्गीय जनतांत्रिक क्रांति के काल में समाजवादी शक्तियों का राष्ट्रीय आंदोलन से अलग रहना घातक होगा। उद्देश्य की सफलता की दृष्टि से यह सम्मेलन काफी महत्वपूर्ण साबित हुआ था। उन्होंने समाजवादियों से द्वंद्वत्मक पद्धति से पत्र-व्यवहार करने की निम्न मध्यवर्ग को सामान्यजन से जोड़ने की तथा प्रचार संगठन के माध्यम से वर्ग-चेतना जगाने की अपील की।

जयप्रकाश नारायण, जो इसके महासचिव थे, देश के विभिन्न स्थानों में दलगत इकाइयों को स्थापित करने के उद्देश्य से समूचे देश की यात्रा की और जगह-जगह पहुँचकर किसानों और मजदूरों को अपने दल की नीति और क्रियाकलापों से अवगत कराने लगे। अखिल भारतीय काँग्रेस समाजवादी पार्टी का प्रथम खुला अधिवेशन 21 एवं 22 अक्टूबर 1934 को बांबे में हुआ। इस सम्मेलन के प्रमुख व्यक्तियों में बिहार के जयप्रकाश नारायण, दिल्ली से फरिदुल हक अंसारी, उत्तर प्रदेश से संपूर्णानंद, मोहनलाल गौतम एवं नरेंद्रदेव, पूना से पी०के० पिल्ले, महाराष्ट्र से अच्युत पटवर्धन, बांबे से एम०आर० मसानी, एस०ए० बरेलवी, कमलादेवी, चट्टोपाध्याय इत्यादि ने भाग लिया।<sup>12</sup> इस पार्टी का पटना सम्मेलन एक प्रारंभिक स्थल था। वस्तुतः नियमित काँग्रेस समाजवादी पार्टी का रूप बांबे सम्मेलन में ही अपना आकार ग्रहण कर सका। इस सम्मेलन में भी संसदीय कार्य-पद्धति के प्रति निराशा व्यक्त की गई तथा मजदूरों और किसानों को संगठित करने पर बल दिया गया।

इस सम्मेलन की अध्यक्षता संपूर्णानंद ने की। इस अधिवेशन के द्वारा पार्टी के संविधान-निर्मात्री समिति द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव को स्वीकार किया गया तथा पार्टी का लक्ष्य स्वतंत्रता-प्राप्ति के साथ समाजवादी राज्य की स्थापना निर्धारित की गई। अधिवेशन के द्वारा प्रचार सह-समिति तथा मजदूर संगठन सह-समिति नामक दो समितियों का गठन किया गया, जिनका लक्ष्य पार्टी के कार्यक्रम को प्रभावशाली बनाना था। 1935 में जयप्रकाश ने काँग्रेस

समाजवादी पक्ष का घोषणा-पत्र प्रकाशित किया 'समाजवाद क्यों'। इस लेख में गांधी जी की कार्य-पद्धति की आलोचना भी की। इसके कारण वे समाजवादी दल के सबसे प्रबल प्रवक्ता बन गए। 'समाजवाद क्यों' समस्त विषमता और सामाजिक अन्याय का ऐतिहासिक विरोध-पत्र था।

1. समाजवाद का आधार,
2. कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी क्या है,
3. विकल्प,
4. उपाय और तरीके

इन लेखों में जयप्रकाश ने सी०एस०पी० के विषय में जानकारी के साथ ही मार्क्स के सिद्धांतों की निकटता का भी उल्लेख किया। अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों पर वे सोवियत संघ की विचारधारा से प्रभावित भी हुए, और उनका विचार था कि उत्पादन के साधनों पर वैयक्तिक अधिकार कभी नहीं रहना चाहिए। इस बात पर पंडित नेहरू भी सहमति दी थी।

जयप्रकाश समाजवाद की दिशा में तीव्रता से चल रहे थे। कांग्रेस का शीर्ष नेतृत्व समाजवादियों की गतिविधि से संतुष्ट नहीं था, किंतु देश में समाजवाद ऐतिहासिक शक्ति के रूप में उभर रहा था।

काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का द्वितीय सम्मेलन मेरठ में जनवरी 1936 में हुआ था, जिसकी अध्यक्षता कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने की। तीसरा अधिवेशन फैजपुर में दिसंबर 1936 में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में हुआ था और चौथा अधिवेशन लाहौर में अप्रैल 1938 में श्री मीनू मसानी के सभापतित्व में हुआ। पार्टी के प्रधानमंत्री का भार हमेशा ही जयप्रकाश के कंधों पर ही रहा और वही इसके नीति-रीति के प्रधान संचालक रहे।

### संदर्भ

1. रामवृक्ष बेनीपुरी, जयप्रकाश नारायण, बेनीपुरी प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, पृ० 88
2. रामवृक्ष बेनीपुरी, पूर्वोक्त पृ० 89
3. प्रकाश, पूर्वोक्त, पृ० 311
4. यूसुफ महर अली, इंट्रोडक्शन टू जयप्रकाश नारायण, टुवार्ड्स इस्ट्रगल, पृ० 9
5. रामवृक्ष बेनीपुरी, पूर्वोक्त, पृ० 32
6. रामवृक्ष बेनीपुरी, पूर्वोक्त, पृ० 32
7. गिरिजाशंकर, पूर्वोक्त, पृ० 86
8. जनता, जुलाई 5, 1953
9. जयप्रकाश नारायण, फ्राम सोशलिज्म टू सर्वोदय, पृ० 15-17
10. आचार्य नेरेंद्रदेव, सोशलिज्म एंड नेशन रिवोल्यूशन पृ० 5
11. रामवृक्ष बेनीपुरी, पूर्वोक्त, पृ० 99
12. इंडियन एनुअल रजिस्टर भाग 11 पृ० 293, 1934

## लव जिहाद : एक समालोचना

राजेंद्रप्रसाद शुक्ल

श्री महेशचंद्र द्विवेदी द्वारा रचित कहानी-संग्रह 'लव-जिहाद' मेरे समक्ष है। कहानी-संग्रह का शीर्षक पढ़ते ही मेरे हिंदी समर्थक मन को कुछ अटपटा-सा लगा। सोचने लगा कि क्या हिंदी शब्दकोश इतना कंगाल हो गया है जो कहानी-संग्रह का नाम अँग्रेजी-उर्दू के शब्दों से गढ़ा जाए। परंतु तभी मेरे मन ने सचेत किया कि पुस्तक को बिना पढ़े ही राय बनाना उचित नहीं। तब मैंने संपूर्ण पुस्तक को पढ़ा और पाया कि 'लव जिहाद' नामक कहानी में कथाकार ने बड़ी गंभीरता से एक ऐसी उभरती सामाजिक समस्या की ओर ध्यान आकर्षित किया है, जो भविष्य में विस्फोटक सिद्ध हो सकती है। इसका शीर्षक संपूर्ण कहानी के कथ्य को समेटने में सक्षम है। इन दोनों शब्दों में कथानक का जो मर्म छिपा हुआ है, वह इस कहानी के शीर्षक को सार्थक बनाता है एवं अपनी नवीनता एवं अनोखेपन के कारण कहानी-संग्रह का शीर्षक होने की योग्यता रखता है एवं भले ही हिंदी के न हों, पर वे हिंदीभाषियों के लिए अद्भुत होते हुए भी सार्थक भाव से भरे हुए हैं।

कहानी-संग्रह की अन्य 12 कहानियों के विषय, कथानक एवं प्रस्तुतिकरण में एक रोचक वैविध्य है जो प्रत्येक रूचि के पाठक के मन को कहीं न कहीं उद्वेलित करता है और बाँधे रखता है। मुझे लगभग सभी कहानियाँ अपने में विशेष लगींजिनमें से मन को गहराइयों तक छू लेने वाली कतिपय कहानियों के विषय में अपने विचार लिख रहा हूँ।

'आई॰एस॰आई॰ एजेंट' शीर्षक प्रथम कहानी में एक पाकिस्तानी गुप्तचर लड़की की कोमल भावनाओं एवं सहृदयता का अनोखा चित्रण है, जो आई॰ एस॰ आई॰ के गुप्तचरों के प्रति जनमानस में व्याप्त दुर्भावना को नकारता है और हमें शत्रु के प्रति भी मानवीय दृष्टिकोण से सोचने को प्रेरित करता है।

'राम की जल-समाधि' शीर्षक कहानी पढ़कर मेरा कट्टर सनातनी मन तिलमिला उठा और उस तिलमिलाहट ने कहानी को एक बार पुनः पढ़ने को बाध्य किया। पुनर्पाठ करने पर मैं कटु सत्य को स्वीकार्य एवं सहनीय बनाकर उजागर करने की लेखक की क्षमता से अभिभूत हुए बिना न रह सका। लेखक जिस चतुराई एवं शब्द-कौशल से सीतापति राम को कटघरे में खड़ा करने एवं फिर पश्चात्तापग्रस्त कराने में सफल हुआ है, वह श्लाघनीय है। कहानी की विशेषता यह है कि राम का अनन्य भक्त होते हुए भी मैं राम पर आक्षेप करने वाले लेखक पर किसी प्रकार का आरोप लगाने में अपने को अक्षम पाता हूँ।

'लंगडूँ' कहानी में हमारे समाज के स्वार्थ तथा हृदयहीनता को मार्मिकता से उंकेरा

गया है। इस कहानी को पढ़ते ही मुझे गत ग्राम पंचायत चुनाव के दौरान की एक घटना याद आ गई। मैं एक व्यक्तिगत कार्य हेतु नगला आशाराम गया था। वहाँ एक व्यक्ति अपने समर्थकों की टोली के साथ वोट माँग रहा था। एक दरवाजे पर मैं चारपाई पर बैठा था कि एक विकलांग बीस वर्षीय युवा मात्र दो रुपये की याचना करता हुआ उस व्यक्ति के पैर दबाने लगा। उस व्यक्ति ने उसे गालियाँ देते हुए वहाँ से भगा दिया। उसी समय एक हट्टे-कट्टे नवजवान ने वोटों का लंबा-चौड़ा वादा करके उस व्यक्ति से दो सौ रुपये शराब के लिए प्राप्त कर लिए। कथाकार द्विवेदी जी को मैं कोटिशः साधुवाद दूँगा, जिन्होंने इस शक्तिशाली कहानी के माध्यम से समाज को इस विद्रूपता से मुक्त होने के लिए प्रेरित किया है।

द्विवेदी जी की अधिकांश कहानियों में सामान्य से अधिक गतिशीलता है तथापि कथाकार ने अनेक कहानियों में जीवन के सिद्धांतों का विचारपूर्ण निरूपण भी किया है। 'चिर-अनुतरित' कहानी में चिंता की प्रवृत्ति पर कहानीकार ने लिखा है— चिंता की प्रकृति है कि वह दुखद घटना की आशंका से उग्र होती है, यद्यपि दुर्घटना के घटित हो जाने के बाद स्वतः उसका शमन होने लगता है। 'एक और सतिया' में परसराम के आत्माभिमान की स्थिति का विश्लेषण देखिए—'इस संसार में सभी कुछ सापेक्ष है—गरीब की सामाजिक स्थिति की तरह उसके पुरुषत्व का अभिमान भी छोटा होता है।'

ईश्वरत्व की प्राप्ति कहानी में लेखक ने मनुष्य के ईश्वर में विश्वास के विषय में सिद्धांत निरूपित किया है—'मनुष्य में ईश्वरीय आस्था बहुत कुछ ज्ञान सापेक्ष होती है। जहाँ मानवीय ज्ञान की सीमा-रेखा आ जाती है और अज्ञान के अंधकार का साम्राज्य प्रारंभ होता है, वहीं मानव ईश्वर का अवलंब प्राप्त करने को आतुर हो जाता है और ईश्वरीय आस्था का साम्राज्य प्रारंभ हो जाता है।'.....'ज्ञान एक प्रकाश है, जो मानव को शक्ति एवं साहस देता है, परंतु साथ ही प्रायः उसके अहम् की वृद्धि करता है। अज्ञान ऐसा अंधकार है, जो मानव को शक्तिहीन एवं भयभीत करता है, परंतु साथ ही उसे उसकी सीमाओं का स्मरण कराते हुए ईश्वरीय महानता का आभास कराता रहता है और उसमें विनम्रता उत्पन्न करता है।'

स्वर्णमाला में पिरोए हुए हीरक कणों की तरह जीवन के ये सिद्धांत कहानियों में अतिरिक्त आकर्षण भर देते हैं। कतिपय कहानियों में कथानक की आवश्यकतानुसार काम कला का जीवंत चित्रण किया गया है, जिसने कहानियों को और रसमय बना दिया है।

सारांश में कहा जा सकता है कि 'लव जिहाद' की अधिकांश कहानियाँ सार्थक संदेश देनेवाली, मर्मस्पर्शी एवं युगानुकूल हैं। पृष्ठभूमि की आवश्यकतानुसार कहानियों में आंचलिक भाषा का भी प्रयोग किया गया है, जो अंचल-विशेष के उद्गारों का चित्रण करने में सफल हुई हैं। शब्द संगुंफन में लालित्य दृष्टव्य है। कहानियाँ शीर्षक, कथानक, चरित्र-चित्रण, शैली, संप्रेषण आदि मानकों पर सफल हैं और कहानीकार श्री द्विवेदी इस हेतु बधाई के पात्र हैं।

□ पूर्व प्रधानाचार्य

एस०ए०वी० इंटर कालेज

बृजराज नगर, भरथना (इटावा)

दूरभाष : 05680-225185,

मो० 9457286858

## गुज़रना एक ग्रामगंधी रचना से

डॉ० प्रवीणकुमार वर्मा

कहानी आजकल साहित्य की एक प्रकार से केंद्रीय विधा ही बनती जा रही है, क्योंकि वह 'गागर में सागर' भरने का कार्य कर रही है। फिर अपने समय के तापमान की भी प्रामाणिक जानकारी वह दे रही है। अभी-अभी धर्मचंद्र विद्यालंकार का पाँचवाँ कहानी-संग्रह प्रकाशित हुआ है शीर्षक है—'जिंदगी के हाशिये पर'। यह कथा-संग्रह दलितों से भी अतिदलित फुटपाथिया लोगों को अपनी रचना का केंद्रबिंदु बनाता है। साथ में स्त्रियों की व्यथा-कथा में भी गोते लगवाता है। तभी तो 'बिसात' और 'पराया धन' तथा 'अपनी धरती' जैसी कहानियों में उसके अभाव अभियोग मूलक चित्र यहाँ पर उकेरे गए हैं। धरती की शन्नो केवल धरती की भाँति वासना का बीज ग्रहण कर संतान उत्पन्न करने वाली धात्री ही नहीं अपितु वह एक ममतालु माँ भी है। 'बिसात' की सविता भी संतान की 'ममता का मूल्य' अपने जीवन से समझौता करके चुकाती है। 'पराया धन' की रुक्मिणी स्वयं को परधन मानने के लिए उद्यत नहीं है। अस्तु, डॉ० धर्मचंद्र विद्यालंकार ने नारी-जीवन के घात-प्रतिघातों को गहराई के साथ रेखांकित किया है।

जो दूसरी प्रमुख सहानुभूति इस कथाकृति में रचनाकार की रही है, वह दलितातिदलित हाशिए के लोगों के प्रति रही है। जैसे कि 'कबाड़ का' गाड़िया लुहार रिसालसिंह किस प्रकार से स्वयं को पिछड़ने पर विस्थापन के कारण गरीब और असहाय अनुभव करता है। नगर ने उससे गाँव छीन लिए हैं, साथ में ट्रेक्टरों ने उसका अपना बैलों का व्यापार भी हड़प लिया है, जिसके चलते कबाड़ से लोहे की कील-पत्ती खरीदकर उन्हीं से वह तवा-परात, चिमटादि बनाकर और फुटपाथ पर बैठकर उनको बेचकर जैसे-तैसे अपना निर्वाह करता है। यहाँ पर नगरीकरण और औद्योगीकरण के कारण जो विस्थापन हुआ है और उससे जो बेकारी एवं भूख उपजी है, उसका बेबाक चित्रण है।

'जिंदगी की गेंद' भी इस प्रकार की हाशियाकृत जीवन की कष्टकथा है, तो 'ठेले वाली' और 'पतिहंता' एवं 'असली घर' में नारी-जीवन की विसंगतियों और विद्रूपताओं का ही उन्मुक्त उद्घाटन विद्यालंकार जी ने किया है। 'असली घर' में यदि वह दर-दर की ठोकें खाती है, तो कामधेनु में वह व्यक्ति से वस्तु में बदल जाती है। 'आधुनिक कुंती' में वह अवैध संतान को जन्म देकर आजीवन अनैतिकता और अजनबीपन के दुर्वह भार से दबी रहती है। 'रेडीमेड' की पिकी पराए पिता से बजाय प्यार-दुलार के उपपत्नी का सम्मान ही पाती है। 'नरमेध' की सिख स्त्री सरदारनी 1984 के सिख-विरोधी दंगों में पति को खोकर स्वयं कुआँ

खोदकर पानी पीती है, तो बड़े और एकमात्र सहारे ज्येष्ठ पुत्र से भी हाथ धो बैठती है, जोकि घर छोड़कर कहीं भाग गया है। इस प्रकार से नारी-जीवन के सभी कोनों-अंतरों का अगम्य अवगाहन रचनाकार ने किया है। यहाँ पर यह कहना अनुचित नहीं होगा कि डॉ० धर्मचंद्र विद्यालंकार अंबेडकरवादी जीवन-दृष्टि के चलते स्त्री और दलित को समस्थानीय मानकर ही चलते हैं।

‘डरे वाली’ यदि एक अनव्याही और कृत्य कुँवारी युवती की कष्ट-कथा है, तो उसकी पूरे ही परिवार के यायावर जीवन की दुःखांतिकी भी यहाँ पर वर्णित है। किस प्रकार से दलित एवं जनजातियों के लोग बजाय व्यवस्था-विरोध के परस्पर ही राग-द्वेष में उलझकर एक-दूसरे का अहित करते हैं, यही इस कहानी में दिखाया गया है। ‘छाजू भगत’ एक कुंभकार प्रजापति जाति का ऐसा दुर्लभ प्राणी है, जो स्वयं भी निर्धन है, फिर भी अपनी आजीविका के एकमात्र आधार अपने गधों को बेचकर अपनी ग्रामीण बहन का भात भरकर उसके सम्मान की रक्षा करता है। वह हरनंदी के लिए नरसी जैसा भाती बनकर आता है। यह कहानी ग्राम गंध से समग्रतः सराबोर है। ‘सोने का सिल्ला’ भी मुस्लिम परिवेश की ऐसी ही कहानी है, जिसमें सांप्रदायिक सद्भाव दर्शाया गया है।

दलिततादलित और हाशियाकृत जीवन-संदर्भों को उकेरती ‘जिंदगी के हाशिए पर’ कहानी इस संग्रह की एक प्रकार से केंद्रीय कथा ही है, क्योंकि इस कहानी में परिधि पर पड़े हुए जीवन की सारी निरीहता और असहायता ही उजागर हुई है। देशी दवाइयों की फुटपाथ पर दुकान लगानेवाला एक ठाकुर दैन्य अभाव के चलते और प्रशासन के कारण अपने इकलौते पुत्र से भी हाथ धो बैठता है। ‘मोती की मृत्यु’ भी एक वृद्ध व्यक्ति की ही व्यथा को उकेरती है, जोकि निसंतान होने के कारण मोती नामक कुत्ते का स्वसंतानवत् ही पालन-पोषण करता है और उसे पूरा प्यार और दुलार देता है, उसकी अकाल मृत्यु से वह और भी अकेला और असहाय हो जाता है। इस प्रकार से प्रत्येक व्यक्ति की व्यथा को विद्यालंकार जी ने परकाया प्रवेश करके ही गंभीरता से उकेरा है।

कृषक और उनके राजनीतिक जीवन की कहानियाँ भी इस संग्रह में हैं। जैसे कि ‘जिब्राल्टर की चट्टान’ कथा के नायक चौ० छोटूराम जी मुस्लिम-बहुल संयुक्त पंजाब में जिन्ना और उनकी मुस्लिम लीग का डटकर मुकाबला करते हैं और अपने जीते-जी उनके पैर पंजाब की पवित्र भूमि पर नहीं जमने देते हैं। वे जिन्ना के सामने जिब्राल्टर की चट्टान की भाँति मजबूती से खड़े रहकर अपनी सुदृढ़ संकल्पशीलता का परिचय देकर सांप्रदायिक सद्भाव की सुरक्षा करते हैं। ‘गाँव की बेटी’ नामक कहानी में ज़मीन-जायदाद को लेकर ग्रामीण किसान परस्पर रक्तिम संघर्ष में उलझ जाते हैं, कोर्ट-कचहरी तक भी मामला पहुँच जाता है और एक सिंह समान पराक्रमी शेरसिंह नामक किसान को पाँच वर्ष की सजा भी बोल दी जाती है, तब भी उसके विरोधी उसकी सयानी बेटी का विवाह करके ग्रामीण भाई-चारे और साँझा इज्जत का ही प्रगाढ़ परिचय देते हैं।

‘सृजन और संघर्ष’ कथा का परिवेश मध्यकालीन सामंती युग है। इसमें भरतपुर नरेश महाराजा सूरजमल, जोकि संघर्ष के स्थान पर सृजन को अधिमान देते हैं और डींग व भरतपुर में कलात्मक राजभवन बनवाना चाहते हैं, लेकिन उनकी परमप्रिय परंतु वीरागंगा पत्नी महारानी

किशोरी उन्हें बजाय कलात्मकता के सुदृढ़ता की ही मंत्रणा देती है, क्योंकि वह नीतिकुशल है। उस समय मराठा लोग आठ-दिन राजस्थान और उत्तरी-पश्चिमी भारत पर चौथ वसूलने के लिए आक्रमण करते रहते थे। अतएव यहाँ पर सृजन और संघर्ष के मध्य एक प्रकार का अंतर्द्वंद्व विद्यालंकार जी ने दिखाया है। 'पुष्कर-स्नान' भी लगभग उसी सामंती संदर्भ की कहानी है। मध्यकाल में किसान जातियों एवं स्त्रियों व शूद्रों को पुष्कर-स्नान का निषेध था। महारानी किशोरी अपने परम प्रतापी पुत्र जवाहरसिंह से पुष्कर स्नान का त्रियाहठ ठानती है, वह इसे कृषक जातियों एवं नारियों के सम्मान का प्रश्न बना लेती है। पुष्कर के घाट पर वे स्नान-संतरण तो सुचारु रूप से कर लेती हैं, लेकिन इस प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिए उनको दसियों सहस्र सैनिकों की बलि रणचंडी को भेंट करनी होती है, क्योंकि जयपुर का राजा माधवसिंह एकाएक आक्रमण करके भरपुर की सेना को घेर लेता है, जिसमें दोनों ओर से दसियों हजार सैनिक हताहत होते हैं, लेकिन शूद्र जातियों (किसानों) की इस विजय से उन्हें सामंती क्षत्रिय समाज में पुनः प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

'सूरा ताहि सराहियै' जैसी कहानी भी इस संग्रह की सामंती शोषण से ही संबंधित है, जिसमें सामंत किसानों का जमकर रक्तपान करते हैं, वे उन्हें कोई सभा-सोसाइटी भी नहीं करने देते हैं, जमींदार-जागीरदार लोग, क्योंकि मूल भूस्वामी वही है, अतएव वहाँ पर किसानों को किसी प्रकार के राजनीतिक और सामाजिक अधिकार उपलब्ध नहीं थे। इस कहानी में मारवाड़ अंचल के जाट-किसान अपने सम्मान के लिए रक्त-रंजित संघर्ष करके विजयश्री प्राप्त करते हैं। शेखावटी से लेकर मारवाड़ तक किसानों ने स्वतंत्रतापूर्वकाल में ऐसे ही रक्तम संघर्ष किए हैं।

डॉ० धर्मचंद्र विद्यालंकार की नारियाँ निरी-निरीह मृणमयी मूर्तियाँ ही नहीं हैं, वे जहाँ पर किशोरी जैसी वीरांगना और वीरप्रसूता हैं, वहीं पर शेफाली जैसी आधुनिक शिक्षित-दीक्षित परंतु जाँबाज नारियाँ भी हैं। शेफाली एक किसान परिवार की पुत्री है, जोकि वायुसेना में पायलट है, वह परहित में स्वजीवनोत्सर्ग को ही अपना एकमात्र ध्येय बनाकर चलती है। अपने विभाग की पत्रिका में भी उसने इसी प्रकार की शोकान्तिक कविता छपवाई थी कि उसके जीवन का प्रत्येक पल और शरीर का प्रत्येक अंग-प्रत्यंग समाज के काम आए। आसाम की भरेली नदी में वह अपनी दो वयोवृद्ध पदाधिकारी पत्नियों को डूबने से बचा लेती है, लेकिन शारीरिक शक्ति निःशेष होने से उसकी अपनी जीवन-लीला ही समाप्त हो जाती है। इस प्रकार से शेफाली किशोरी की भाँति इस कथा-संग्रह की सर्वाधिक तेजोदीप्त नारी-पात्र है। 'न्याय का नाटक' नामक कहानी में आप ग्रामीण जीवन की राजनीतिक उठा-पटक और घात-प्रतिघातों को भी 'गाँव की बेटा' में देख सकते हैं, जिसमें खाप पंचायतों के तुगलकी फ़रमानों के विरुद्ध विद्यालंकार जी ने अपने कथानायकों से विद्रोह ही करवाया है।

'जिंदगी के हाशिए पर' का नामकरण हाशिए की जिंदगी भी हो सकता था। नामकरण भले ही थोड़ा इस संग्रह का अवश्य ही अखरता है, लेकिन ग्रामीण और परिधि के जीवन को जिस बारीक़ी और बेवाकी के साथ कहानीकार विद्यालंकार ने उकेरा है, वह सराहनीय है। इस विषय में पुस्तक का प्रकाशकीय पठनीय है। हिंदी साहित्य के सुपरिचित कथाकार डॉ० धर्मचंद्र विद्यालंकार के प्रस्तुत कहानी-संग्रह 'जिंदगी के हाशिए पर' को पढ़ना

कहानी के देशकाल से होकर गुज़रना है। इसलिए उनकी कहानियों में जहाँ एक ओर जातीय समाजिक वास्तविकताएँ और ग्रामीण यथार्थ है, वहीं दूसरी ओर यह उन मानवीय अनुभवों या स्थितियों का रेखांकन भी है, जो हमारे राष्ट्रीय जीवन की मुख्यधारा में अप्रासंगिक और हाशियाकृत हैं।' (फ्लैप मेटर-1)

यदि कहानियों की भाषा और शैली पर बात न की जाए तो चर्चा अधूरी होगी। डॉ॰ विद्यालंकार जी का हिंदी की हरयाणवी, ब्रज, कौरवी और मेवाती लगभग सभी बालियों पर समान भाव से असाधारण अधिकार है, इसलिए उन्होंने पात्रानुकूल एवं यथावसर भाषा का उपयोग किया है। भाषा में सृजनात्मकता झलकती है, जैसा कि प्रकाशकीय वक्तव्य में भी रेखांकित किया गया है—

‘इन कहानियों की एक अन्यतम विशेषता है, भाषा-शैली की सहजता, संप्रेषणीयता और सरलता जो पाठक को अपने साथ ही बाँधे ही नहीं रखती, वरन् उसे कुछ सोचने-समझने को बाध्य भी करती है। इसलिए ये कहानियाँ देर तक और दूर तक पाठक को अपने साथ लिए चलती हैं। यानी भाषाई दृष्टिकोण से बेहद सरल एवं सहज और व्यावहारिक घटनाओं के साथ क्रिस्सागोई शैली में गढ़ी गई ये कहानियाँ पाठक को पूरी तरह अपने से जोड़े रखने की क्षमता रखती हैं। बात भले ही नई न हो, परंतु अत्यंत रोचकता से अपनी बात कहने में डॉ॰ धर्मचंद्र विद्यालंकार के इस कहानी-संग्रह का उनके अन्य कथा-संग्रहों की भाँति हिंदी कथा-साहित्य में समुचित समादर ही होगा।’

अतएव ‘ज़िंदगी के हाशिए पर’ की कहानियों को पढ़ना एक ग्रामगंधी रचना से होकर गुज़रना ही है।

□ एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी विभाग  
गो॰ग॰द॰स॰ धर्म ( पी॰जी॰ ) कॉलेज,  
पलवल-121102



**हिन्दी साहित्य निकेतन**  
**16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०)**  
फोन : 01342-263232, 09368141411

ई-मेल :

giriraj3100@rediffmail.com  
giriraj@hindisahityaniketan.com

वेबसाइट :

www.hindisahityaniketan.com

**महत्त्वपूर्ण कोश एवं संदर्भ ग्रंथ**

गुजल और उसका व्याकरण/निश्तर खानकाही एवं डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-1/डॉ० गिरिराजशरण, डॉ० मीना अग्रवाल	495.00
हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-2/डॉ० गिरिराजशरण, डॉ० मीना अग्रवाल	700.00
शोधसंदर्भ-भाग-1/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ० मीना अग्रवाल	500.00
शोधसंदर्भ-भाग-2/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ० मीना अग्रवाल	550.00
शोधसंदर्भ-भाग-3/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ० मीना अग्रवाल	525.00
शोधसंदर्भ-भाग-4/ डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ० मीना अग्रवाल	595.00
शोधसंदर्भ-भाग-5/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ० मीना अग्रवाल	895.00
तुकांत कोश/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ० मीना अग्रवाल	300.00

**समीक्षा एवं समालोचना**

वादविवाद प्रतियोगिता : पक्ष और विपक्ष/डॉ० गिरिराजशरण, डॉ० मीना अग्रवाल	200.00
डॉ० कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रतीक विधान/डॉ० अंजु भटनागर	500.00
मृदुला गर्ग कृत अनित्य : इतिहास और आख्यान का संबंध/डॉ० ज्योति सिंह	150.00
मृदुला गर्ग और नारी-अस्मिता का प्रश्न/ डॉ० ज्योति सिंह	300.00
काका हाथरसी : एक समीक्षा-यात्रा/डॉ० मिथिलेश माहेश्वरी	300.00
सांप्रदायिकता और हिंदी कथासाहित्य/डॉ० मनोज कुमार	250.00
अपनी कविताओं में अशोक चक्रधर/डॉ० दीपा के०	250.00
आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य में संगीत (पुरस्कृत)/डॉ० मीना अग्रवाल	450.00
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य/डॉ० हरीशकुमार सिंह	350.00
साठोत्तरी हिंदी-गुजल : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल का योगदान/डॉ० अनिलकुमार शर्मा	350.00
एक साक्षात्कार : पं० अमृतलाल नागर के साथ/डॉ० शंकर क्षेम	150.00
गुजल : सौंदर्य और यथार्थ/अनिरुद्ध सिन्हा	150.00
समय के हस्ताक्षर ( हिंदी के आधुनिक कवि )/डॉ० ज्योति व्यास	150.00
कालिदास के साहित्य में भौगोलिक तत्त्व/डॉ० लालबहादुर रावल	300.00

जनपद बिजनौर के आधुनिककालीन साहित्यकार/डॉ० अशोककुमार	350.00
बिजनौर क्षेत्र की ग्रामोद्योग-संबंधी शब्दावली का अध्ययन/डॉ० ओमदत्त आर्य	500.00
आस्थावाद एवं अन्य निबंध/डॉ० मिथिलेश दीक्षित	300.00
साहित्य और संस्कृति/डॉ० मिथिलेश दीक्षित	300.00
हास्य-निबंध : स्वतंत्रता के पश्चात्/डॉ० आशा रावत	350.00
आज़ादी के बाद का हिंदी गद्य-व्यंग्य/डॉ० प्रेम जनमेजय	350.00
हिंदी बालकाव्य के विविध पक्ष/विनोदचंद्र पांडेय	300.00
फिजी में प्रवासी भारतीय/डॉ० शुचि गुप्ता	300.00
मुक्तिबोध का रचना-संसार/डॉ० शिवशंकर लधवे	200.00

### हास्य-व्यंग्य

मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
मेरे इक्यावन व्यंग्य/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	300.00
चुनी हुई हास्य कविताएँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	250.00
मंचीय व्यंग्य एकांकी/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
बाबू झोलानाथ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	60.00
राजनीति में गिरगिटवाद/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	100.00
भज्जी का जूता/महेशचंद्र द्विवेदी	150.00
क्विलयर फंडा/महेशचंद्र द्विवेदी	120.00
प्रिय-अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग/महेशचंद्र द्विवेदी	170.00
वसीयतनामा/पं० सूर्यनारायण व्यास, सं० राजशेखर व्यास	150.00
नो टेंशन/डॉ० सुरेश अवस्थी	170.00
काका की विशिष्ट रचनाएँ/काका हाथरसी	160.00
काका के व्यंग्य-बाण/काका हाथरसी	60.00
कक्के के छक्के/काका हाथरसी	160.00
लूटनीति मंथन करी/काका हाथरसी	160.00
खिलखिलाहट/काका हाथरसी	60.00
पैसे कहाँ से दें/डॉ० आशा रावत	200.00
चाहिए एक और भगतसिंह/डॉ० आशा रावत	100.00
गुरुदक्षिणा (व्यंग्य उपन्यास)/डॉ० आशा रावत	100.00
नमस्कार प्रजातंत्र/महेश राजा	150.00
ए जी सुनिए/अशोक चक्रधर	100.00
इसलिए बौड़म जी इसलिए/अशोक चक्रधर	100.00
चुटपुटकुले/अशोक चक्रधर	60.00
तमाशा/अशोक चक्रधर	60.00
रंग जमा लो/अशोक चक्रधर	65.00
सो तो है/अशोक चक्रधर	60.00
हँसो और मर जाओ/अशोक चक्रधर	60.00

नमस्ते जी/डॉ० बलजीत सिंह	150.00
अब हँसने की बारी है/डॉ० बलजीत सिंह	200.00
1991 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	50.00
1992 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	50.00
1993 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	50.00
1994 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	60.00
1995 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	65.00
1996 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	100.00
1997 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	100.00
1998 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	100.00
1999 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	120.00
2002 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
2003 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
2004 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	170.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कहानियाँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	100.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कविताएँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
पिछले दशक के श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य एकांकी/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	100.00
शिवशर्मा के चुने हुए व्यंग्य/डॉ० शिव शर्मा	50.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास)/डॉ० शिव शर्मा	150.00
अपने-अपने भस्मासुर/डॉ० शिव शर्मा	150.00
उलटा-पुलटा/डॉ० राकेश शरद	60.00
हास्य-व्यंग्य : मधुप पांडेय के संग/मधुप पांडेय	160.00
धमकीबाज़ी के युग में/निश्तर खानकाही	60.00
ला खर्चा निकाल/गजेंद्र तिवारी	200.00
जलनेवाले जला करें/गजेंद्र तिवारी	60.00
प्रतिनिधि व्यंग्य/दामोदरदत्त दीक्षित	100.00
कवयित्री सम्मेलन/सुरेंद्रमोहन मिश्र	100.00
पेट में दाढ़ियाँ हैं/सूर्यकुमार पांडेय	100.00
ये है इंडिया/डॉ० हरीशकुमार सिंह	120.00
आँखों देखा हाल/डॉ० हरीशकुमार सिंह	150.00
लिफ्ट करा दे/डॉ० हरीशकुमार सिंह	200.00
देवेंद्र के कार्टून/देवेंद्र शर्मा	80.00
कार्टून कौतुक/देवेंद्र शर्मा	120.00
लिफाफे का अर्थशास्त्र/डॉ० पिलकेन्द्र अरोरा	120.00

### कहानी

जिज्ञासा और अन्य कहानियाँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	60.00
--	-------

पच्चीस कहानियाँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
कथा जारी है/बाबूसिंह चौहान	150.00
इक्कीस कहानियाँ/सत्यराज	100.00
अंदर धूप बाहर धूप ( नारी-मन की कहानियाँ )/डॉ० मीना अग्रवाल	150.00
उत्तराखंड की लोकगाथाएँ/डॉ० दिनेशचंद्र बलूनी	200.00
एक बौना मानव/महेशचंद्र द्विवेदी	100.00
लव जिहाद/महेशचंद्र द्विवेदी	200.00
कौन कितना निकट/रेणु 'राजवंशी' गुप्ता	120.00
लघु कथाएँ/डॉ० हरिशरण वर्मा	150.00

### उपन्यास

अनोखा उपहार/श्रीमती सुषमा अग्रवाल	200.00
आसरा/श्रीमती सुषमा अग्रवाल	100.00
तीन बीघा ज़मीन/श्रीमती सुषमा अग्रवाल	200.00
कालचक्र से परे/श्रीमती नीरजा द्विवेदी	200.00
और लहरे उफनती रहीं/डॉ० तारादत्त निर्विरोध	200.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास)/डॉ० शिव शर्मा	150.00
अराज-राज/डॉ० मोहन गुप्त	200.00
सुराज-राज/डॉ० मोहन गुप्त	350.00
एक गुमनाम फौजी की डायरी/डॉ० आशा रावत	150.00
एक चेहरे की कहानी/डॉ० आशा रावत	150.00
गुरुदक्षिणा (व्यंग्य-उपन्यास)/डॉ० आशा रावत	100.00

### एकांकी-नाटक

मंचीय व्यंग्य एकांकी/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
बच्चों के हास्य नाटक/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
बच्चों के रोचक नाटक/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
बच्चों के अनुपम नाटक/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
बच्चों के उत्तम नाटक/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
भारतीय गौरव के बाल नाटक/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित नाटक/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
ग्यारह नुक्कड़ नाटक/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
नीली आँखें/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	60.00
संसार : एक नाट्यशाला/बाबूसिंह चौहान	150.00
ग्यारह एकांकी/डॉ० हरिशरण वर्मा	200.00
दमन/रामाश्रय दीक्षित	100.00

## ललित निबंध एवं रेखाचित्र

कैसे-कैसे लोग मिले/निश्तर खानकाही	125.00
यादों का मधुबन/कृष्ण राघव	150.00
समय के चाक पर/डॉ० लालबहादुर रावल	125.00
समय एक नाटक/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	160.00
दर्पण झूठ बोलता है/बाबूसिंह चौहान	60.00
मकड़जाल में आदमी/बाबूसिंह चौहान	80.00
उफनती नदियों के सामने/बाबूसिंह चौहान	100.00
पीठ पर नील गगन/बाबूसिंह चौहान	100.00
इन दिनों समर में/डॉ० कृष्णकुमार रत्न	250.00

## गीत-गज़ल

निश्तर खानकाही समग्र (प्रकाशनाधीन)/निश्तर खानकाही	500.00
मोम की बैसाखियाँ (गज़ल-संग्रह)/निश्तर खानकाही	50.00
गज़ल मैंने छेड़ी (गज़ल-संग्रह)/निश्तर खानकाही	80.00
गज़लों के शहर में (गज़ल-संग्रह)/निश्तर खानकाही	200.00
मेरे लहू की आग (गज़ल-संग्रह)/निश्तर खानकाही	150.00
कोई आवाज़ देता है/डॉ० कुँअर बेचैन	150.00
दिन दिवंगत हुए/डॉ० कुँअर बेचैन	150.00
कुँअर बेचैन के नवगीत/डॉ० कुँअर बेचैन	200.00
कुँअर बेचैन के प्रेमगीत/डॉ० कुँअर बेचैन	150.00
पर्स पर तितली (हाइकु)/डॉ० कुँअर बेचैन	200.00
मातृभूमि के लिए/रमेश पोखरियाल 'निशंक'	200.00
संघर्ष जारी है/रमेश पोखरियाल 'निशंक'	170.00
देश हम जलने न देंगे/रमेश पोखरियाल 'निशंक'	150.00
जीवन-पथ में/रमेश पोखरियाल 'निशंक'	150.00
तुम भी मेरे साथ चलो/रमेश पोखरियाल 'निशंक'	150.00
शमा हर रंग में जलती है/रामेश्वरप्रसाद	150.00
अक्षर हूँ मैं (कविताएँ)/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
सन्नाटे में गूँज (गज़ल-संग्रह)/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	160.00
भीतर शोर बहुत है (गज़ल-संग्रह)/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	160.00
मौसम बदल गया कितना (गज़ल-संग्रह)/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	100.00
रोशनी बनकर जिओ (गज़ल-संग्रह)/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
शिकायत न करो तुम (गज़ल-संग्रह)/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
आदमी है कहाँ (गज़ल-संग्रह)/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
हिंदी की सर्वश्रेष्ठ गज़लें/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00

सच सूली पर टँगने हैं (अनुपलब्ध)/डॉ० अजय जनमेजय	80.00
तुम्हारे बाद (अनुपलब्ध)/डॉ० अजय जनमेजय	80.00
आदमी के हक में (गज़ल-संग्रह)/डॉ० रामगोपाल भारतीय	100.00
यहाँ तक वहाँ से (कविताएँ)/रमेश कौशिक	200.00
हास्य नहीं व्यंग्य (कविताएँ)/रमेश कौशिक	150.00
गांधारी का सच (खंडकाव्य)/आर्यभूषण गर्ग	200.00
राधेय (खंडकाव्य)/डॉ० आकुल	120.00
असित चंद्र : अवदात चंद्रिका (काव्य-नाटक)/डॉ० आकुल	120.00
जिंदगी गाती तो है/डॉ० आकुल	120.00
आसमान मेरा भी है (गज़ल-संग्रह)/किशनस्वरूप	100.00
बूँद-बूँद सागर में (गज़ल-संग्रह)/किशनस्वरूप	100.00
पंथ के पाँवड़े (काव्य-संग्रह)/किशनस्वरूप	100.00
आँचल-आँचल खुशबू (गज़ल-संग्रह)/कर्नल तिलकराज	100.00
जुख्म खिलने को हैं (गज़ल-संग्रह)/कर्नल तिलकराज	100.00
अग्निमुता/राजेंद्र शर्मा	150.00
सीतायनी/डॉ० शंकर क्षेम	150.00
हिरना लौट चलें (गीत-संग्रह)/शचींद्र भटनागर	150.00
तिराहे पर (गज़ल-संग्रह)/शचींद्र भटनागर	150.00
ढाई आखर प्रेम के (गीत-संग्रह)/शचींद्र भटनागर	200.00
अखंडित अस्मिता (मुक्तक-संग्रह)/शचींद्र भटनागर	200.00
गुलमुहर की छाँव में (गज़ल-संग्रह)/मनोज अबोध	100.00
स्नेहा/तारा प्रकाश	100.00
उजियारा आशाओं का/तारा प्रकाश	150.00
बुलंदी इरादों की/तारा प्रकाश	150.00
चलने से मंज़िल मिलती है/तारा प्रकाश	200.00
इंद्रधनुष/तारा प्रकाश	200.00
सुरों के ख़त/अश्विनीकुमार 'विष्णु'	100.00
सुनहरे मंत्र का जादू/अश्विनीकुमार 'विष्णु'	100.00
सफ़र में साथ-साथ (मुक्तक-संग्रह)/डॉ० मीना अग्रवाल	150.00
जो सच कहे (हाइकु-संग्रह)/डॉ० मीना अग्रवाल	150.00
यादें बोलती हैं (कविताएँ)/डॉ० मीना अग्रवाल	200.00
एक मुट्ठी धूप/नीरजा सिंह	100.00
कटे हाथों के हस्ताक्षर/डॉ० कमल मुसद्दी	150.00
फ़ासले मिट जाएँगे (गज़लें)/डॉ० बलजीत सिंह	150.00
शब्द-शब्द संदेश (दोहा-संग्रह)/डॉ० बलजीत सिंह	150.00
जीवन है मुस्कान (दोहा-संग्रह)/डॉ० बलजीत सिंह	150.00
भीतर का संगीत (दोहा-संग्रह)/डॉ० बलजीत सिंह	200.00

सुख के बिरवे रोप (दोहा-संग्रह)/डॉ० बलजीत सिंह	200.00
इंद्रधनुष के रंग (दोहा-संग्रह)/डॉ० बलजीत सिंह	200.00
बहती नदी हो जाइए (गज़ल-संग्रह)/डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	150.00
जीवन-अमृत : पर्यावरण चेतना (दोहा-संग्रह)/डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
अक्षर-अक्षर हो अमर (दोहा-संग्रह)/डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
वैदुष्यमणि विद्योत्तमा (खंडकाव्य)/डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
स्मृतियाँ/श्रीमती सुषमा अग्रवाल	100.00
अनजाने आकाश में/महेशचंद्र द्विवेदी	170.00
बातें कुछ अनकही/सत्येंद्र गुप्ता	200.00
मैंने देखा है/सत्येंद्र गुप्ता	200.00
हौसला तो है/सत्येंद्र गुप्ता	200.00
जज़्बात की धूप/धूप धौलपुरी	250.00
आड़ी-तिरछी यादों-सा कुछ/नवलकिशोर शर्मा	180.00
एड्स शतक/पूरणसिंह सैनी	150.00
खोजें जीवन सत्य (दोहा-संग्रह)/डॉ० ओमदत्त आर्य	150.00
राष्ट्र-शक्ति/सलेकचंद संगल	150.00
माँ तुझे प्रणाम/सलेकचंद संगल	150.00

### आत्मकथा-संस्मरण

मेरा जीवन : ए-वन/काका हाथरसी	100.00
आत्मसरोवर/ओम्प्रकाश अग्रवाल	125.00
निष्ठा के शिखर-बिंदु/नीरजा द्विवेदी	200.00
सफ़र साठ साल का/डॉ० अजय जनमेजय (संपादक)	400.00
यादों की गुल्लक/गीतिका गोयल, अनुभूति भटनागर (संपादक)	300.00
आधी हकीकत आधा फ़साना/डॉ० बलजीतसिंह	150.00

### बाल-साहित्य

धरती पर चाँद (बालगीत)/शंभूनाथ तिवारी	150.00
हम बगिया के फूल (बालगीत)/डा० बलजीतसिंह	150.00
आओ गीत सुनाओ गीत (बालगीत)/डा० बलजीतसिंह	150.00
जादूगर बादल (बालगीत)/विनोद भृंग	150.00
आटे-बाटे दही चटाके (शिशुगीत)/बालकृष्ण गर्ग	150.00
चुनमुन की कहानियाँ (पुरस्कृत)/गीतिका गोयल	150.00
किशोर मन की कहानियाँ/डॉ० सरला अग्रवाल	150.00
हरा समंदर गोपी चंदर (अनुपलब्ध)/डॉ० अजय जनमेजय	150.00
अक्कड़-बक्कड़ हो हो हो (अनुपलब्ध)/डॉ० अजय जनमेजय	100.00

नन्हे पंख ऊँची उड़ान (अनुपलब्ध)/डॉ० अजय जनमेजय	150.00
मानव-विकास की कहानी/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
पार्टी गेम्स/चाँदनी कक्कड़	125.00

### विविध

उत्तराखंड में आध्यात्मिक पर्यटन/डॉ० सरिता शाह	200.00
निश्तर खानकाही, डॉ० गिरिराजशरण, डॉ० मीना अग्रवाल	
पर्यावरण : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	200.00
नारी : कल और आज	200.00
निश्तर खानकाही, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
विश्व आतंकवाद : क्यों और कैसे	125.00
हिंसा : कैसी-कैसी	200.00
दंगे : क्यों और कैसे (पुरस्कृत)	100.00
रमेशचंद्र दीक्षित, गिरिराज शाह, निश्तर खानकाही, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
मानवाधिकार : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
रमेशचंद्र दीक्षित, गिरिराज शाह, गिरिराजशरण अग्रवाल	
सुरक्षा-संस्कृति	150.00
अपराध-अपराधी : अन्वेषण एवं अभियोजन/डॉ० गिरिराज शाह	200.00
गुरु नानकदेव/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	40.00
अमृतवाणी/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	60.00
वेद-वेदान्त दर्शन/डॉ० मूलचन्द दालभ	300.00
प्रकृति : एक ज्ञेय तत्त्व/डॉ० मूलचन्द दालभ	300.00
कन्हैया गीता /डॉ० मूलचन्द दालभ	900.00
मैं हरिद्वार बोल रहा हूँ/डॉ० कमलकांत बुधकर	395.00
टास्कफोर्स : हैल्थकेयर प्रोजेक्ट्स/डॉ० गोविंद शर्मा एवं रवि लंगर	450.00
सिद्धाश्रम का संन्यासी/मनोज भारद्वाज	150.00
समुद्री दैत्य सुनामी/डॉ० लालबहादुर रावल	150.00

### हिन्दी साहित्य निकेतन

16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०)

फोन : 01342-263232, 09368141411